आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा
पर
पाश्चात्य प्रभाव

[राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा पी एच डी की
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डा० हरिकृष्ण पुरोहित
प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

उपमा प्रकाशन

प्रकाशक
उपमा प्रकाशन
बापू बाजार,
उदयपुर

मूल्य १२,००

मुद्रक
राजधानी प्रिंटर्स
लालजी सांड का रास्ता,
जयपुर

सादर

श्रद्धेय डा० सोमनाथ जी गुप्त को

जिनकी छत्रच्छाया मे मैंने हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया

और वो सदैव मुझे प्रेरणा व प्रोत्साहन देते रहे

प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी साहित्य के अध्ययन के संदर्भ में पाश्चात्य प्रभाव का मूल्यांकन महत्वपूर्ण है। यद्यपि श्रेष्ठ व मौलिक साहित्य प्रभावों का छायानुवर्ती नहीं होता, किन्तु नवीन विचारों के सम्पर्क में आने पर एक संवेदनशील साहित्यकार में प्रतिक्रिया जगना स्वाभाविक होता है। अन्य भारतीय भाषाओं के समान हिन्दी का आधुनिक साहित्य पश्चिमी प्रभाव के पार्श्व में ही विकसित हुआ। अतः यह कथन अन्यथा नहीं होगा कि बहुत अंशों में आधुनिकता और पाश्चात्य प्रभाव परस्पर पर्याय जान पड़ते हैं।

"आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा (१८७०-१९५०)—पाश्चात्य प्रभाव" शीर्षक विषय पर मैंने डॉ० सोमनाथ जी गुप्त के निर्देशन में शोध-कार्य किया जिसको राजस्थान विश्व विद्यालय ने पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकार किया है। अनुसंधान के बारे में अब यह धारणा कठोर नहीं रही कि विषय कुछ शताब्दियों पुराना होना ही चाहिए। फिर भी निर्धारित काल सीमा एवं अनुसंधान व समीक्षा के प्रणालीगत भेद के कारण विषय को वर्तमान तक लाना या कि सामयिक चर्चाओं का समावेश कर पाना सम्भव नहीं हो सका है। वस्तुतः आधुनिक साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव एक सतत प्रक्रिया है जिसके आकलन की भविष्य में भी आवश्यकता बनी रहेगी।

भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के अध्ययन की ओर प्रायः अर्द्ध शताब्दी पूर्व ही विद्वानों का ध्यान गया था। इस सम्बन्ध में डा सय्यद अब्दुल की लंदन विश्व विद्यालय द्वारा पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत थीसिस द इन्फ्लुएंस आफ इंग्लिश लिट्रेचर आन उर्दू लिट्रेचर' (१९२४) तथा कलकत्ता विश्व विद्यालय से प्रकाशित प्रियरंजन सेन की पुस्तक 'वेस्टर्न इनफ्लुएंस इन बंगाली लिट्रेचर' (१९२४) का उल्लेख करना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव का अध्ययन कुछ शोध प्रबन्धों के रूप में उपलब्ध है—डॉ० विश्वनाथ मिश्र का 'इंग्लिश इन्फ्लुएंस आन हिन्दी लैंग्वेज एण्ड लिट्रेचर (१८७०-१९२०),' डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा का 'द इन्फ्लुएंस आफ इंग्लिश आन माडर्न हिन्दी पोएट्री एण्ड क्रिटिसिज्म', डा ऊषा सक्सेना का 'द इन्फ्लुएंस आफ इंग्लिश आन द डवलपमेंट आफ हिन्दी फिक्शन (१८८१-१९३६)' डा० गणेशन का 'हिन्दी उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव,' डा श्रीपति शर्मा का 'हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव' तथा डा० शान्तिगोपाल पुरोहित का 'हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव।' उपर्युक्त शोध प्रबन्धों की सूची ही विषय के महत्व एवं उसके प्रति बढ़ती

हुई पाश्चात्य देन का अध्ययन करती है। इन शोध ग्रन्थों में भाषा एवं कुछ साहित्यिक विधाओं पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन किया गया है। अभी तक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता बनी हुई थी जिसमें विचारधारा को केन्द्र में रख कर पाश्चात्य प्रभाव का आकलन किया जाय। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी दृष्टि से किया गया प्रयास है जो तत्सम्बन्धी अध्ययन को एक नया आयाम देता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पाश्चात्य विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा का विवेचन तथा विचार-वस्तु का वर्गीकरण कर उसमें एकसूत्रता का विधान किया गया है। प्रथम अध्याय 'पीठिका' में पाश्चात्य प्रभाव के स्रोतों का उल्लेख है। अगले तीन अध्यायों में भारतीय जीवन पर प्रतिफलित होनेवाले पाश्चात्य प्रभावों को जिनका परिचय आधुनिक हिन्दी साहित्य के माध्यम से मिलता है आंका गया है। इन अध्यायों में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक-आर्थिक विचारधाराओं का विवेचन किया गया है। पांचवें, छठे और सातवें अध्यायों में आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों—छायावाद-रहस्यवाद, प्रगतिवाद मनोवैज्ञानिक धारा पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन है। अंतिम अध्याय में अन्तर्धारा रूप में विद्यमान अपेक्षाकृत कम व्यापक किन्तु पाश्चात्य दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों—राष्ट्रीयता, मानववाद एवं प्रयोगवाद का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी साहित्य के सभी अंगों का विवेचन नहीं है, किन्तु जितना है उसी से विषय अत्यधिक व्यापक बन गया है। मेरा उद्देश्य साहित्यिक विधाओं का विवेचन करना नहीं है वरन् उनमें अभिव्यक्त विचारधारा की ही विवेचना करना है। विचार तत्व को स्पष्ट करने की दृष्टि से इतस्ततः चयन प्रवृत्ति का ही मैंने आश्रय लिया है।

पाश्चात्य प्रभाव से स्वतन्त्र आधुनिक हिन्दी साहित्य का निश्चय ही मौलिक विकास भी हुआ है। परन्तु वह प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेच्य विषय नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में यत्र तत्र इंगित ही किया गया है।

अन्त में, श्रद्धेय डॉ० सोमनाथ जी गुप्त के प्रति विनम्रता प्रकट करना मैं अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूं। उनकी प्रेरणा और सतत प्रोत्साहन के बिना यह शोध प्रबन्ध लिखना सम्भव नहीं था। शास्त्रों ने 'ऋषि ऋण' की गणना ऐसे ऋण में की है जिससे उऋण नहीं हुआ जाता।

—हरिकृष्ण पुरोहित

जयपुर
१ अगस्त १९७०

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

हुई अभिरुचि का प्रकट करती है। इन शोध ग्रन्थों में भाषा एवं कुछ साहित्यिक विधाओं पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन किया गया है। अभी तक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता बनी हुई थी जिसमें 'विचारधारा' को केन्द्र में रख कर पाश्चात्य प्रभाव का आकलन किया जाय। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी दृष्टि से किया गया प्रयास है जो तत्सम्बन्धी अध्ययन को एक नया आयाम देता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पाश्चात्य विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा का विवेचन तथा विचार-वस्तु का वर्गीकरण कर उसमें एकसूत्रता का विधान किया गया है। प्रथम अध्याय 'पीठिका' में पाश्चात्य प्रभाव के स्रोतों का उल्लेख है। अगले तीन अध्यायों में भारतीय जीवन पर प्रतिफलित होनेवाले पाश्चात्य प्रभावों को जिनका परिचय आधुनिक हिन्दी साहित्य के माध्यम से मिलता है, खोजा गया है। इन अध्यायों में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक-आर्थिक विचारधाराओं का विवेचन किया गया है। पांचवें, छठे और सातवें अध्यायों में आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों—छायावाद-रहस्यवाद, प्रगतिवाद मनोवैज्ञानिक धारा पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन है। अंतिम अध्याय में अन्तर्धारा रूप में विद्यमान अपेक्षाकृत कम व्यापक किन्तु पाश्चात्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों—राष्ट्रीयता, यथार्थवाद एवं प्रयोगवाद का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी साहित्य के सभी अंगों का विवेचन नहीं है, किन्तु जितना है उसी से विषय अत्यधिक व्यापक बन गया है। मेरा उद्देश्य साहित्यिक विधाओं का विवेचन करना नहीं है वरन् उनमें अभिव्यक्त विचारधारा की ही विवेचना करना है। विचार तत्व को स्पष्ट करने की दृष्टि से इतस्ततः चयन प्रवृत्ति का ही मैंने आश्रय लिया है।

पाश्चात्य प्रभाव से स्वतन्त्र आधुनिक हिन्दी साहित्य का निश्चय ही मौलिक विकास भी हुआ है। परन्तु, वह प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेच्य विषय नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में यत्र तत्र इंगित ही किया गया है।

अन्त में, श्रद्धेय डा० सोमनाथ जी गुप्त के प्रति विनम्रता प्रकट करना मैं अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूं। उनकी प्रेरणा और सतत प्रोत्साहन के बिना यह शोध प्रबन्ध लिखना सम्भव नहीं था। शास्त्रों ने 'ऋषि ऋण' की गणना ऐसे ऋण में की है जिससे उऋण नहीं हुआ जाता।

—हरिकृष्ण पुरोहित

जयपुर
१ अगस्त १९७०

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवा अध्याय

छठा भ्रध्याय

सातवा भ्रध्याय

आठवा अध्याय

प्रथम अध्याय

पीठिका

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास विगत सौ वर्षों का इतिहास है। इस काल में साहित्य के मूल्य व आदर्शों में परिवर्तन हुआ है, विविध विषयों का समावेश हुआ है, उसके विभिन्न अंगों का विकास हुआ है तथा अनेक नवीन प्रवृत्तियों व वादों का प्रचलन हुआ है। इस विशद् परिवर्तन के विविध कारणों में से प्रमुख कारण भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना और पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव है।

(१) आधुनिक-युग में पाश्चात्य जातियों का आगमन एवं आंग्ल शासन की स्थापना

आधुनिक युग में भारत में पाश्चात्य प्रभाव का अनुभव अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् किया गया। अंग्रेजों के अतिरिक्त आधुनिक-काल में हम पोर्चुगीज, डच, फ्रांसिसियों आदि के सम्पर्क में भी आये किंतु भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रतिनिधित्व आंग्ल जाति ने ही किया।

पोर्चुगालियों का आगमन

भारत सोने की चिड़िया के रूप में योरपीय देशों में सदियों पूर्व से प्रसिद्ध था एवं भारत व योरप के बीच फारस के व्यापारियों के माध्यम से प्रायः घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध रहे। सातवीं शताब्दी में मिस्र व फारस पर अरब निवासियों का अधिकार हो गया। कस्तुनतुनिया पर अरबों का अधिकार (सन् १४५३) हो जाने से भारत और योरप के बीच थल-मार्ग से व्यापार बन्द हो गया। किन्तु, पूर्वी देशों और योरप का सम्बन्ध केवल व्यापारिक लाभ अथवा साम्राज्य-विस्तार के लिए ही आवश्यक नहीं था वरन् योरप निवासियों के जीवन-यापन की कुछ आवश्यक वस्तुएँ भी इस व्यापार पर आधारित थीं।* अतः योरप व पूर्वी देशों के बीच पुनः व्यापार

---

* G F Hudson in Europe and China' quoted by K M Pannikar in his Asia and Western Dominance George Allen and Unwin Ltd London 1953 P 24

Spices which became more and more essential for European cookery could not be obtained except from India and Indonesia and must come through Persia or Egypt This indispensable and naturally monopolist trade came to be

को स्थापित करने के लिए उत्साही लोगो ने जल-मार्ग मे भारत पहुंचने का रास्ता खोज निकालने का प्रयत्न किया। इस मार्ग की खोज मे कोलम्बस भारत के बदले अमेरिका (सन् १४५६) पहुँच गया था। जल मार्ग से योरुपीय जातियो मे सबसे पहले पोर्चुगीज भारत पहुँचे। लिस्बन से रवाना होकर आशा अन्तरीप (Cape of Good-hope) होते हुए वास्को ड गामा २७ मई १४६८ ई० को तीन जहाज लिए कालिकट पहुँचा। वास्को ड गामा के कालिकट पहुचने की घटना के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि दो सौ वर्षों से जिस स्वप्न को योरुप निवासी देख रहे थे तथा जिस फलीभूत करने के लिये वे पचहत्तर वर्षों से प्रयत्नशील थे वह इस दिन पूरा हुआ। एशिया मे प्रवेश करने के समय पोर्चुगालिया के सामने तीन उद्देश्य थे-गरम मसालो के व्यापार पर अपना प्रभुत्व जमाना, इस्लाम के प्रभाव को नष्ट करना ईसाई मत का प्रचार करना।

कालीकट के राजा जमोरिन ने वास्को ड-गामा का स्वागत किया तथा उसके साथ वस्तुओ का आदान-प्रदान किया। किन्तु शीघ्र ही पोर्चुगालियो के साथ सबंध बिगड गये। पोर्चुगालियो ने भारतीयो के विरुद्ध गोला-बारूद का प्रयोग किया एव स्थानीय जनता मे भय की भावना फैला दी। पोर्चुगालियो मे अलबुकर्क योग्य शासक था एवं उसने भारत मे पोर्चुगीज शासन को पर्याप्त सुदृढ बना दिया। बंगाल, मलाबार कोरोमडल का तट व सूरत पर उनका अधिकार हो गया। किन्तु पोर्चुगालियो का ध्यान सुदूर पूर्व के व्यापार पर अपना अधिकार जमाने की ओर अधिक केन्द्रित हो गया। स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय के शासन-काल मे स्पेन व पोर्चुगाल का शासन संयुक्त हो गया (सन् १५८० ई०)। तब स्पेन के शासक ने पोर्चुगाल के

---

the Chief bone of contention in the politics of Levant and was the most powerful single factor in stimulating European expansion in the fifteenth centurry The Tartar ascendancy in Persia before the conversion of the Ilkhanate to Islam, allowed Italian traders to go direct to India and cut prices against the Egyptians who were wont to raise them three hundred percent as middleman between India and Europe as a result Europeans knew where spices were produced and at what cost so that when they were again cut off from the Indian market by a hostile Islam and by incessant wars in the Levant they were well aware of the opportunities awaiting any power that could find a new route to the Indies where the spices grow'

पूर्वी राज्यों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अत पोर्चुगाल की शक्ति क्षीणतर होती गयी। डच शासकों ने पूर्व में लंका व मलक्का के राज्य पोर्चुगालिया से छीन लिए। उन्होंने बंगाल कोरोमंडल के तट व मलाबार के तट के भागों को भी पोर्चुगालियों से छीन कर अपने हस्तगत कर लिया। अंत में अंग्रेजों ने सूरत, बंगाल, कारोमंडल के तट व मलाबार के तट पर पोर्चुगालियों से अनेक युद्ध लड़े जिनमें पोर्चुगीज पराजित हुए तथा भारत में उनका अधिकार क्षेत्र अत्यधिक सीमित हो गया। यद्यपि गोआ, दमन, ड्यू जिनका क्षेत्र कुछ ही वर्गमील है— में पोर्चुगीज शासन भारतीय स्वतंत्रता के कुछ काल बाद तक बना रहा किन्तु, इस स्थिति में वह भारतीय सभ्यता व संस्कृति को प्रभावित करने में समर्थ नहीं हो सका।

प्रभाव

प्रारम्भ में पोर्चुगालियों का भारतीय जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। लगभग १८० वर्ष तक अकेली पोर्चुगीज जाति ही भारत में योरुप की प्रतिनिधि थी। पोर्चुगालियों ने भारतीय स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध भी जोड़े। भारत में पोर्चुगालियों के सम्पर्क से एक नवीन जाति का ही उद्भव हुआ जिसकी यूरेशियन सम्प्रदाय में गणना की गयी। पोर्चुगीज भाषा का भारत में व्यापक प्रसार हुआ था। जब डच, फ्रांसिसी व अंग्रेज भारत में आये तो उन्हें अपनी बात समझने व समझाने के लिये शुरू में पोर्चुगीज भाषा का ही आश्रय लेना पड़ा। पोर्चुगीज भाषा का अधिकांश भारतीय नौकरों व व्यापारियों में प्रसार हुआ था। भारत में बोली जाने वाली पोर्चुगाली भी शुद्ध रूप में नहीं रही तथा उसमें देशी भाषाओं के बहुत से शब्द प्रवेश कर गये थे। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में भी पोर्चुगीज भाषा के सैकड़ों शब्द प्रवेश पा गये। हिन्दी में अनेक पोर्चुगीज शब्द इस प्रकार घुल मिल गये हैं कि उन्हें अलग करना कठिन है। * आधुनिक योरुपीय भाषाओं में अंग्रेजी के बाद पोर्चुगालीज भाषा के ही हिन्दी में सर्वाधिक आगत शब्द हैं एवं फ्रेंच जर्मन डेनिश आदि के नगण्य है। पोर्चुगालियों की दूसरी महत्वपूर्ण देन प्रेस है। भारत में सर्व प्रथम पोर्चुगालियों ने गोआ में प्रेस आरम्भ किया।

डचों का आगमन

स्पेन के 'अजय बेड़े' की पराजय ने अन्य योरोपीय जातियों को भी पूर्वी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। हालैण्ड का ध्यान व्यापारिक कम्पनी की स्थापना की ओर गया तथा सूरत में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी (सन् १६१६) की स्थापना की गयी। भारत में डच व्यापार की दृष्टि से आये थे। पोर्चुगालियों की तरह ईसाई धर्म का प्रचार उनका लक्ष्य नहीं था। अंग्रेज, जो स्वयं भारत में व्यापार की दृष्टि से आये स्थानीय लोगों को डच व्यापारियों का विरोध करने

---

* देखिए धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी भाषा का इतिहास" पृष्ठ ७५

के लिए उत्साहित करने लगे। जब कभी डच भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करते तो अंग्रेज, जो भारत में डचों के बाद आये, भारतीयों की सहायता किया करते। डचों ने चिनसुरा में अपनी बस्ती बसायी। चिनसुरा से वे अपने व्यापार का प्रबन्ध करते थे। डचों का एक बहुत बड़ा व्यापारिक जहाज जब चिनसुरा से बंगाल की ओर गया तब उस पर अंग्रेजों और बंगाल के नवाब ने मिलकर आक्रमण कर दिया। डचों का व्यापारिक बेड़ा नष्ट भ्रष्ट हो गया। अंत में डचों ने सुमात्रा के परिवर्तन में चिनसुरा ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया। (सन् १८०५)।

फ्रांसिसियों का आगमन

फ्रांसिसियों ने भी डचों की तरह फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी (La compagine das Indes orientales) की स्थापना की (सन् १६०४)। उन्होंने पाण्डीचेरी नगर का निर्माण किया। फ्रांसिसियों के विरुद्ध लड़ाई में डचों ने पांडीचेरी पर अपना अधिकार कर लिया, किन्तु योरुप में रेस्वीक की संधि (Treaty of Ryswick) के अनुसार उसे पुनः फ्रांसिसियों को लौटा दिया गया। बंगाल में चन्द्रनगर में फ्रांसिसियों की व्यापारिक बस्ती थी। वहां से बंगाल, बिहार और उड़िसा के महत्वपूर्ण नगरों में उन्होंने अपनी शाखाएं खोली। दक्षिण भारत में राजनीति में अधिक भाग लेने के कारण लोगों में फ्रांसिसियों के प्रति अविश्वास होने लगा। बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला अपने प्रान्त में योरपीय बस्तियों के विरुद्ध था। क्लाइव ने सिराजुद्दौला से चन्द्रनगर पर आक्रमण करने की अनुमति प्राप्त करली और फ्रांसिसियों पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण से फ्रेंच शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगा। फ्रांसिसी गवर्नरों में यद्यपि डूप्ले, बुसी, काउण्ट लेली जैसे योग्य शासक थे किन्तु फ्रांस सरकार की सहायता के अभाव में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिल सकी।

प्रभाव

फ्रांसिसियों ने भारतीयों को सर्व प्रथम पश्चिमी ढंग की सैनिक शिक्षा दी। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के दिनों में मसूर के सुलतान टीपू ने क्रान्तिकारी फ्रांस से संधि की और श्रीरंगपटटम में स्वतन्त्रता का उद्घोष किया। हैदराबाद निजाम के सेनापति फ्रांसिसी योद्धा रेमाण्ड ने फ्रांस में प्रचलित क्रान्ति के चिह्नों का हैदराबाद में प्रचलन किया था। फ्रांसिसी क्रान्ति से भारत का यह किंचित सम्बन्ध कहा जा सकता है। फ्रांस योरप में कलाओं की उन्नति का केन्द्र रहा है। अंग्रेजी के माध्यम से भारतीय साहित्य व कलाओं पर भी फ्रांसिसी प्रभाव प्रतिफलित हुआ यद्यपि यह प्रभाव अति आधुनिक है और इसका भारत पर तत्कालीन फ्रांसिसी राज्य से कोई संबंध नहीं है।

डेन व जर्मन जातियों का आगमन

पोर्चुगालिया, फ्रांसिसियों, डचों एवं अंग्रेजों के अतिरिक्त भारत में व्यापार के लिए योरुपीय जातियों में डेन (बेलजियम) व जर्मन जातियों का भी आगमन हुआ। डेनों ने डेनिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना (१६१६ ई०) की। उन्होंने मलाबार के तट पर अपनी फैक्ट्रियां एवं बंगाल में हुगली के तट पर श्रीरामपुर नामक एक सुन्दर नगर बसाया (१६७६ ई०)। श्रीरामपुर उत्तर भारत में ईसाई मिशनरियों का सबसे प्रमुख केन्द्र था। आंग्ल शासन-काल में जब कभी प्रेस एक्ट आदि के कारण ईसाई मिशनरियों का कलकत्ता व आसपास के स्थानों में रहना कठिन हो जाता तो वे श्रीरामपुर पहुंच कर अपनी रक्षा करते थे। सन १७९९ ई० में इंगलैण्ड के बेपटिस्ट मिशन के भारत स्थित धर्म-प्रचारकों डा० विलियम करे, मार्शमन तथा वार्ड ने श्रीरामपुर में डेनिश मिशन की स्थापना की। आंग्ल अधिकारियों के हस्तक्षेप का विरोध कर डेन गवर्नरों ने इन मिशनरियों को सदैव सुरक्षा प्रदान की। श्रीरामपुर जो डेनमार्क के सम्राट के नाम पर "फ्रेडिक नगोर" कहलाता था तथा कारामण्डल तट पर स्थित टेंनवेबार व बालासोर की एक फेक्टरी को डेनमार्क सम्राट से बारह लाख पचास हजार रुपये देकर इंग्लैण्ड की ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्राप्त किया। श्रीरामपुर मिशन का हिन्दी बंगला व उर्दू में रचित ईसाई साहित्य के लिए इन भाषाओं के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीरामपुर के मिशनरियों ने प्रेस खोल तथा अखबार व पुस्तकें प्रकाशित की। उन्होंने गद्य में नवीन ज्ञान की शिक्षापयोगी पुस्तकें लिखी।

जर्मन प्रभाव

बंगाल में बांकी बाजार ग्राम में जर्मनों ने भी "आस्टेंट कम्पनी" स्थापित की। यह कम्पनी आस्ट्रिया के सम्राट के संरक्षण में स्थापित की गयी थी। आस्ट्रिया के सम्राट ने राजनीतिक कारणों से इस कम्पनी को स्थगित कर दिया। डच और अंग्रेजों ने हुगली के फौजदार व अली वर्दी खां (बंगाल के नवाब) के जर्मनों के विरुद्ध कान भरे जिससे उन्होंने बंगाल स्थित जर्मनों पर आक्रमण कर दिया एवं जर्मनों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा। जर्मनों व भारतीयों का यद्यपि अधिक सम्पर्क नहीं रहा किन्तु, भारतीय दर्शन व साहित्य की ओर जर्मन विद्वानों की विशेष रुचि रही। जर्मन विद्वानों ने संस्कृत भाषा व संस्कृत साहित्य के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योग दिया जिससे परोक्ष रूप में भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में योग मिला।

आंग्ल-शासन की स्थापना

भारत में पाश्चात्य प्रभाव की सबसे महत्वपूर्ण माध्यम आंग्ल जाति रही है। अन्य योरुपीय जातियों की तरह अंग्रेज भी भारत में व्यापार के लिए आये थे।

उन्होंने तब प्रथम सन् १६१३ ई० में मुग़ल [illegible] से [illegible] कोठी [illegible] प्रारम्भ में वे व्यापार के लिए आये परन्तु बाद में उन्होंने धीरे धीरे [illegible] तथा फ्रांसीसी [illegible] के प्रयास से सन् १७४० से १८४३ ई० के बीच भारत में बिखरी हुई राजनीतिक शक्तियों का लाभ उठा कर धीरे धीरे अपना राज्य स्थापित कर लिया। [illegible] पारस्परिक [illegible] बढ़ता हुआ [illegible] लाभ उठाने के लिए उन्होंने [illegible] तथा [illegible] के साथ सन्धि-विग्रह कर उन पर अपना प्रभाव स्थापित किया। बंगाल के नवाब को प्लासी के युद्ध (सन् १७५७) में पराजित करने पर उनकी शक्ति बढ़ गयी तथा [illegible] शासन-विस्तार का स्वरूप स्पष्ट हुआ।

अन्तिम शक्तिशाली मुग़ल सम्राट औरंगजेब के शासन-काल में ही मुग़ल साम्राज्य के पतन के चिह्न प्रकट होने लग गये थे। औरंगजेब के पश्चात् कोई भी शक्तिशाली शासक नहीं हुआ था। साम्राज्य की छिन्न भिन्न स्थिति का वर्णन करना। दिल्ली के मुग़ल बादशाहों की हत्या (जहाँदारशाह १७१३, फर्रुखसियर १७१९) नादिरशाह का आक्रमण (१७३९) व उसके द्वारा दिल्ली में कत्ले आम कराना, हैदराबाद, दक्षिण तथा अवध में मुग़ल नवाबों द्वारा स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना, सिक्ख राजपूत व मरहठों के विद्रोह, अफगानों के भारत पर बार-बार आक्रमणों से तत्कालीन युग की राजनीतिक विशृंखलता का पता चल जाता है। उस समय में जनता शान्ति की इच्छुक थी परन्तु प्रायः नित्य के युद्धों के कारण जनता के लिए वह दुर्लभ होती जा रही थी। दिल्ली में दो दो मुग़ल बादशाहों की हत्या होने पर शाह आलम अपने जीवन की रक्षा के लिए बंगाल में अंग्रेजों की शरण में भागा जिनकी शक्ति वहाँ प्लासी के युद्ध (सन् १७५७) में विजय प्राप्त करने से स्थापित हो चुकी थी। दिल्ली की राजगद्दी को खाली देख कर एक ओर से अफगान व दूसरी ओर से मरहठा उस पर अधिकार करने के लिए बढ़े। दोनों शक्तियों के बीच इतिहास-प्रसिद्ध पानीपत का तीसरा युद्ध (सन् १७६१) हुआ जिसमें मरहठा शक्ति पराजित हुई। अफगानों को भी घरेलू मामलों के कारण वापस लौटना पड़ा। अवध के नवाब वजीर के साथ अंग्रेजों ने बक्सर का युद्ध (१७६४) लड़ा जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों के अधिकार बढ़ गये। जब शाह आलम बंगाल से लौट कर दिल्ली आया (सन् १७६४) उस समय वह ईस्ट इंडिया कम्पनी से केवल पेंशन पाता था तथा उसके अधिकार समाप्त प्राय हो चुके थे। परिस्थितियों के दबाव से उसने बंगाल की दीवानी का अधिकार कम्पनी को दे दिया था जो वस्तुतः (De Facto) पहले से ही अंग्रेजों के अधिकार में था। उत्तर भारत में अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ने लगा। बक्सर के युद्ध की विजय (२३ अक्तूबर १७६४) से हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र पर अंग्रेजों के आधिपत्य का सूत्रपात होता है।

बक्सर के युद्ध से हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजों का शासन-विस्तार प्रारम्भ हो गया। अवध के नवाब वजीर ने बंगाल के नवाब मीर कासिम को जो प्लासी के युद्ध

म अंग्रेजो से हार कर भागा था, अपने यहा सुरक्षा प्रदान की । अत अंग्रेजो ने अवध पर आक्रमण कर दिया । शाह आलम ने भी नवाब वजीर की सहायता दी । बक्सर के युद्ध मे अंग्रेजो की विजय हुई तथा नवाब वजीर व मुगल सम्राट शाह आलम उनके हाथो म आ गये । क्लाइव न नवाब वजीर के साथ इलाहबाद की संधि की जिससे अंग्रेजो का अवध पर प्रभाव बढ गया । इसके पश्चात युद्ध एव सधियो का तारतम्य चलता रहा क्लाइव, वारेन हास्टिंग्ज, कानवालिस सर जान शोर प्रभृति गवर्नर-जनरल अवध पर अंग्रेजो का प्रभाव बढान के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे । अत में वलेजली ने अवध के नवाब पर अत्यधिक प्रभाव डाला (सन् १७९८) तथा उसे सेना रखने की मनाही करदी और दोआब की भूमि को अंग्रेजो के अन्तगत ले लिया । नवाब की मृत्यु के पश्चात् भी प्रत्येक दशा म अंग्रेजो की सहायता मिलती रहे इस दृष्टि से उसने राज्य-प्रब न्ध भी अंग्रेजो के हाथ म रखने के लिए दबाव डाला । इस प्रकार, अवध पर अंग्रेजो का सम्पूर्णतया अधिकार हो गया ।

मरहठा पेशवा महादाजी सिंधिया शक्तिशाली मरहठा शासक था । सिंधिया ने शाह आलम को इलाहाबाद से ले जाकर दिल्ली की गद्दी पर बिठा दिया । महादाजी सिंधिया की मृत्यु (सन १७९४) के पश्चात दौलतराव सिंधिया पेशवा बना । अंग्रेजों की ओर से लार्ड लेक को सेना देकर दिल्ली पर अधिकार करने के लिए भेजा गया । उसने पहले अलीगढ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार म कर लिया व आगे दिल्ली की ओर बढा । लेक ने दिल्ली पर अधिकार कर शाह आलम को अपनी निगरानी म ले लिया । इसके बाद उसने आगरा पर घेरा डाल कर उसे भी अपने अधिकार म कर दिया । अत म लासवाडी के युद्ध (सन १८०३) म कठिन संघर्ष के बाद सिंधिया की सेना की अन्तिम रूप मे पराजय हो गयी । इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों का आगरा मथुरा मेरठ व यमुना के आसपास बहुत से स्थानो पर अधिकार हो गया । डलहौजी की हडप नीति (Doctrine of Lapse) के द्वारा सतारा, नागपुर, झासी आदि भी अंग्रेजी राज्य मे मिला लिये गये । अस्तु, बनारस, इलाहाबाद आगरा लखनऊ कानपुर, मथुरा आदि जो आगे चल कर हिन्दी-साहित्य-निर्माण के महत्वपूर्ण केन्द्र बने अंग्रेजी राज्य के अन्तगत आ गये ।

(२) नवीन वातावरण

भारत मे अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण एक नवीन वातावरण की सृष्टि हुई । औरगजेब की मृत्यु के पश्चात देश म कोई सुदृढ केन्द्रीय शासन नही था । सत्ता के लिए प्रतिदिन लडे जानेवाले युद्धो स जनता तग आयी हुई थी । अत जब भारत म अंग्रेजो का सुदृढ शासन स्थापित हो गया तब जनता को उससे प्रसन्नता ही हुई क्योकि अन्य सभी बातो से बढकर उस शान्ति की चाह थी । किन्तु, प्राचीन भार तीय शासक वर्ग की दशा इससे भिन्न थी । यह वर्ग अपनी सत्ता खो देने के कारण विक्षुब्ध था तथा उसे पुन प्राप्त करना चाहता था । फलत सन १८५७ के विद्रोह मे

उन्होने अपनी सत्ता की सुरक्षा का अंतिम हताश प्रयत्न किया जिसमें उनकी पराजय हुई। गदर के पश्चात देश में शान्ति की स्थापना हुई। महारानी विक्टोरिया ने सर्व प्रथम घोषित किया कि आम जनता को सतुष्ट करना तथा उनके सुख व समृद्धि का ध्यान रखना ही अंग्रेजी शासन का उद्देश्य है। इससे देश में एक नवीन आशा का संचार हुआ। शासन न्याय व शिक्षा पद्धति में एकरूपता स्थापित हुई व रेल, तार समाचार पत्र आदि से जुड कर सारा देश एक बन गया। स्वेज नहर के खुलने (सन् १८६९) के पश्चात भारतवासी भी योरुप जाने लगे तथा वहा के जीवन व विचारों से प्रभावित होने लगे। अंग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रीय विचारो को पनपाने में सहयोग दिया। विदेशी शासन हमारे देश मे राष्ट्रीय भावना को पनपानेवाला सिद्ध हुआ यह कथन आश्चर्यपूर्ण लगता है। तथापि यह सत्य है कि राजनीतिक प्रशासन एवं प्रबन्ध की दृष्टि से साम्प्रदायिक भाषाओ एव अन्य सास्कृतिक विभेदो को भुला सम्पूर्ण देश को एक इकाई मानने की भावना हमे अंग्रेजो से मिली है। इस भावना को साकार रूप राष्ट्रीयता की भावना मे मिला जो पूर्णत अंग्रेजो देन नही है क्योंकि अंग्रेजी नौकरशाही देश की जनता को एकता रखने के लिए कभी इच्छुक नही थी। आधुनिकता से परिपूर्ण जिस पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से हमारे देश में नवीन भावनाओ एव विचारो का एक द्वार आरम्भ हो गया उसके अवश्यम्भावी परिणामो को रोकने का विदेशी शासको ने प्रयत्न किया। •

परन्तु भारत माता के रूप में देश की कल्पना के साथ ही यह भावना भी बलवती होती गयी कि देश का शासन अंग्रेजो के हित की दृष्टि से न होकर

• Jawaharlal Nehru The Discovery of India' Singnet Press Calcutta Sixth edition 1956 p p 307
The impact of Western culture on India was the impact of a dynamic society of a modern conciousness on a static society wedd d to m diaeval habits of thought which, however sophisticated and advanced in its way could not progress because of the inherent limitations They encourged and consolidated the position of the socially reactionary groups in India and opposed all those who worked for political and social change ... change came to India because of this impact of the West but it came almost inspite of the British in India They succeeded in slowing down the pace of change to such an extent that even today th change is very far from complete

भारतीयों के हित की दृष्टि से किया जाना चाहिए। अंग्रेजी साहित्य एवं आंग्ल भाषा में व्यक्त देश प्रेम व राष्ट्रीयता की भावना से भी हमारे देशवासी अनुप्रेरित हुए। इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बुद्धिवाद आदि पाश्चात्य विचारधारायें भी भारतीय जीवन तथा चिंतन को प्रभावित करने लगी।

(३) पाश्चात्य शिक्षा का आरम्भ

पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव के सबसे महत्वपूर्ण माध्यम पाश्चात्य शिक्षा पद्धति है। यूरोपीय जातियों का शिक्षा का आरम्भिक कार्य धार्मिक प्रचार की भावना से प्रेरित था तथा ईसाई मिशनरियों ने इस दृष्टि से अनेक स्कूल व अस्पताल खोले। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के आरम्भिक शिक्षा प्रयत्नों में दक्षिण भारत में फोर्ट सेंट जार्ज (१६६१ १७१४), फोर्ट सेंट डेविड तथा सेंट मेरी स्कूल प्रमुख थे। बंगाल में पूर्णतया अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् अंग्रेजी शासक भारतीय भाषाओं को न जानने के कारण असुविधा अनुभव करने लगे। विशेषत फौजी अफसर देशी भाषाओं को न जानने से भारतीय सिपाहियों के सम्पर्क में न आ पाते थे। कम्पनी के गवर्नरों में वारेन हेस्टिंग्ज (१७७२ १७७४, १७७४-१७८५) ने सबसे पहले भारतवासियों के रीति-रस्म, स्वभाव आदि से परिचित होने का प्रयत्न किया। हेस्टिंग्ज का मत था कि जिस देश से अंग्रेजों को इतना अधिक लाभ होता हो वहां पर जब तक उन्हें कोई हानि न पहुँचे सुव्यवस्थित शासन करना चाहिये। शासन में योग्यता प्राप्त करने को अंग्रेज शासकों के लिए भारतीय इतिहास धर्म साहित्य आदि का परिचय आवश्यक था। अत हेस्टिंग्ज ने अपने अधीनस्थ अंग्रेज कर्मचारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। वारेन हेस्टिंग्ज ने अरबी व फारसी के अध्ययन के लिए कलकत्ता मदरसा (१७८१) की स्थापना की। लार्ड कार्नवालिस ने संस्कृत अध्ययन के लिए बनारस में संस्कृत कालेज (१७९१) स्थापित किया। परन्तु यह विद्यालय अधिक सफल नहीं हो सके।

(४) फोर्ट-विलियम कालेज और हिन्दी साहित्य

आधुनिक भारतीय भाषाओं के इतिहास में "फोर्ट विलियम कालेज" का महत्वपूर्ण स्थान है। वेलेजली (१७९८-१८०५) ने अंग्रेज अधिकारियों को भारतीय भाषाएँ सिखाने तथा उन्हें सुयोग्य बनाने के उद्देश्य से कलकत्ता में इस कालेज की स्थापना (सन् १८००) की। हेस्टिंग्ज की तरह वेलेजली की आकांक्षा अंग्रेजों को सुव्यवस्थित शासकों के रूप में देखने की थी। 'फोर्ट विलियम कालेज' की स्थापना का कम्पनी के बोर्ड के अधिकारियों ने विरोध किया और कुछ वर्ष तक कालेज 'बंगाल सेमनरी' के रूप में चला। फिर भी आर्थिक सहायता में उत्तरोत्तर कमी की जाती रही और अंत में कालेज तोड़ दिया गया। कालेज में गिलक्राइस्ट ने उर्दू को प्रोत्साहन दिया मोल्ट ने पुस्तकों की रचना को महत्व दिया, टेलर ने संस्कृत

बोली के शब्दो का अर्थ देकर एक कोष तैयार किया। लल्लूलाल ने "ब्रजभाषा व्याकरण" (सन् १८१२) भी तैयार की। कालेज से ईसप की कहानियां का ब्रजभाषा किन्तु, रोमन लिपि मे अनुवाद प्रकाशित हुआ। प्राचीन हिंदी साहित्य की पुस्तकों में तुलसी की रामायण और बिहारी की सतसई का प्रकाशन भी कालज से हुआ। 'न्यू टस्टामेन्ट' का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया।

कालेज से प्रकाशित दो गद्य पुस्तका लल्लूजीलाल के "प्रेमसागर" और सदलमिश्र के "नासिकेलोपाख्यान' का हिन्दी साहित्य के गद्य के विकास की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है किन्तु, इस युग के साहित्य के विशेषज्ञ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के मत मे इस दृष्टि से उनका कोई महत्व नही है। *

जहा तक हिन्दी गद्य के विकास मे फोर्ट विलियम कालेज की देन का प्रश्न है यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दी गद्य का निर्माण सर्व प्रथम कालेज म ही नही हुआ था। नाथ पंथी योगियो के ब्रजभाषा गद्य, विद्यापति के मैथिलो गद्य राजस्थानी वार्त्ताओ के गद्य वैष्णव साहित्य के गद्य तथा दक्खिनी हिन्दी के गद्य की विश्रृंखल परम्परा तो हिंदी के आदि युग से थी ही किन्तु, जिस समय कालेज मे हिन्दी की उपरोक्त पुस्तकें रची जा रही थी लगभग उसी समय और उससे पहले स पूर्व कालेज की सीमाओं म बाहर भी ऐस ग्रंथों की रचना हो रही थी जिनका गद्य अधिक परिमार्जित था। राम प्रसाद निरजनी का भाषा योग वाशिष्ठ" (सन् १७४१) का गद्य 'श्रृंखला बद्ध साधु और व्यवस्थित भाषा" म था। दौलतराम के पद्मपुराण" सन् (१७६१) की भाषा "योगवाशिष्ठ" से कम तथापि परिमार्जित थी। कालेज म जब हिन्दी पुस्तको की रचना हो रही थी उसी काल म कालेज से बाहर मुंशी सदासुख नियाज" ने "विष्णुपुराण" की कथाओ पर आधारित ज्ञानोपदेश की एक पुस्तक रची। मुंशी इंशाअल्ला खा ने 'उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी की 'हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले' के उद्देश्य से रचना की। फोर्ट विलियम कालेज मे अवश्य

---

* डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय "फोर्ट विलियम कालेज, इलाहाबाद युनिवर्सिटी स० २००४ पृष्ठ १७२

लल्लूलाल और सदल मिश्र की रचनाओं क नाते हिन्दी साहित्य के इतिहास में फोर्ट विलियम कालेज का उल्लेख करना तो आवश्यक है किन्तु हिन्दी भाषा और गद्य साहित्य के विकास या उन्हें एक कदम आग बढाने की दृष्टि से उसका काई महत्व नही है। कालेज स हिंदुस्तानी या उर्दू गद्य को प्रोत्साहन मिला न कि हिंदी को। जो काम करे ने बगला के लिय किया वह काम किसी ने हिन्दी के लिये नही किया। हा, कोष व्याकरण, टाइप, विराम चिह्न आदि आधुनिक विषयो क सूत्रपात की दृष्टि स कालेज आधुनिक भाषाओ के इतिहास में चिर स्मरणीय रहगा।

लल्लूजीलाल के 'प्रेमसागर" की भाषा को प्रधानता दी गयी। किन्तु लल्लूजीलाल के गद्य में ब्रजभाषा के शब्दों के प्रयोग बहुत अधिक थे जिनका परवर्ती हिन्दी गद्य में बहिष्कार किया गया। अतः हिन्दी गद्य की भाषा के विकास की दृष्टि से फोर्ट विलियम कालेज का अधिक महत्व नहीं था। कालेज का वास्तविक महत्व नयी कार्य प्रणाली व नये विषयों के सूत्रपात के कारण था। रायल एशियाटिक सोसायटी की तरह यहाँ भी हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह किया जाने लगा। 'रामचरित मानस' व 'बिहारी सतसई' के सर्व प्रथम प्रकाशन का श्रेय कालेज को ही है। ईसप की कहानियों के अनुवाद के रूप में कालेज ने कहानी के आरम्भ में योग दिया। प्रकरण, अनुच्छेद विरामादि चिन्हों का प्रयोग भी कालेज में रचे जाने वाले गद्य से आरम्भ हुआ जो स्पष्ट ही अंग्रेजी गद्य शैली के प्रभाव को सूचित करता है।

(५) पाश्चात्य शिक्षा का विकास

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए १८ वीं शती के अंत तथा १९ वीं शती के आरम्भ में कतिपय मानवता-वादी सुधारकों ने इंगलैण्ड में आन्दोलन किया। फलतः इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट ने भारत में ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के लिए एक लाख रुपये की स्वीकृति दी (१८१३)। किन्तु इस दशा में अधिक उन्नति नहीं हो सकी। सन् १८१६ में डेविड हेयर ने राजा राममोहन राय की सहायता से तथा सन् १८३० में अलक्जेण्डर डफ ने कलकत्ता में दो अलग स्कूल खोले। सन् १८३४ में ईस्ट इंडिया कम्पनी की शिक्षा नीति में परिवर्तन हुआ। लार्ड मैकाले तथा राजा राममोहन राय के प्रभाव से शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना दिया गया। लार्ड बैंटिक की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट (सन् १८३५) में कहा गया

'अपने सीमित साधनों के द्वारा सभी लोगों को शिक्षित करने का प्रयत्न करना हमारे लिए असम्भव होगा। अतः हमें यथाशक्ति एक ऐसे वर्ग का निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिए जो अंग्रेज शासकों व लाखों भारतीय शासितों के बीच दुभाषिये का काम कर सके ऐसे मनुष्यों का वर्ग जो रंग व रक्त की दृष्टि से भारतीय हों किन्तु जिनकी रुचि, धारणायें, नैतिक मान्यताएं व बौद्धिक विकास अंग्रेजों के अनुकूल हों। उस वर्ग के हाथों में हम भारतीय भाषाओं के विकास का कार्य सौंप सकते हैं जो पाश्चात्य नामावली से वैज्ञानिक शब्दावली अपना कर अपनी भाषाओं को समृद्ध बना उनके द्वारा विशाल जनसमुदाय में ज्ञान का प्रकाश फैलायेंगे।'*

---

* *Lord Bentick Education Report 1835*
It is impossible for us with our limited means to attempt to educate the body of the people We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons Indian in blood and colour but English in taste in the opinions in morals and in intellect To that class we may leave it to refine the vernacular dialects of the country to enrich

अस्तु, भारत म एक नय मध्यम वर्ग का उदय हुआ जिनका पेशा सरकारी नौकरी और आन्ज पश्चिमी विचार थ। एक समय आया जब अंग्रेजी मे ही बोलना, सोचना और स्वप्न दखना (?) आदर की दृष्टि से देखा जान लगा। किन्तु "मैकाले माया भारत म अधिक दिन नही चल पायी। सन् १८३४ मे भारत सरकार न घोषित किया कि अंग्रेजी सरकार का महान उद्देश्य भारत के निवासियो म साहित्य और विज्ञान का प्रचार करना होना चाहिये। मैकाले ने सोचा था कि पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान का अध्ययन भारतीयो को हिन्दू धम छोड कर ईसाई मत स्वीकार करने क लिए प्रेरित करेगा। ईसाइ मिशनरियो ने भी यही सोच कर भारत म अनेक स्कूल कालेज खोले। किन्तु उनका इच्छित परिणाम सिद्ध नही हुआ। भारतीयो न हिन्दू धम को व्यापक रूप प्रदान कर नय ज्ञान को भी उसी मे आत्मसात् करने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय प्रभति नेता वस्तुत विज्ञान व नवीनता के कारण अंग्रेजी की ओर आकृष्ट हुए थे न कि ईसाइ धम व अंग्रेजी मत मे अनुप्रेरित होकर। सन १८३५ म अंग्रेजी सरकार ने शिक्षा के प्रचार काय का अपने हाथ म ले लिया। सन् १८४४ म लाड हार्डिञ्ज ने यह घोषणा प्रकाशित की कि सरकारी नौकरिया केवल अंग्रेजी पढे लिखे लोगो का ही दी जायेंगी। इसम अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक बढा। सन् १८५४ म चाल्स उड के शिक्षा पत्र क अनुसार Wood s Education Despatch) योरूपीय ज्ञान के भारतीय जनता म प्रसार के लिए निश्चित योजनाए बनाई गयी। प्रत्यक प्रान्त म शिक्षा विभाग खोल गये, विश्व विद्यालयो कालेजो हाई स्कूलो मिडिल व प्राइमरी स्कूलो की स्थापना हुई एव धम निर्पेक्ष शिक्षा सस्थाओं को अनुदान दने का निर्णय किया गया।

चाल्स उड के शिक्षा पत्र के अनुसार गदर के पश्चात् भारत मे लन्दन विश्व विद्यालय के अनुकरण पर विश्व विद्यालय स्थापित किये गये। सन् १८६५ म लदन विश्व विद्यालय सलग्न काय सस्था (Affiliating University) मात्र न रह कर उसम अध्यापन काय भी किया जाने लगा। अत भारत विश्व विद्यालय अधिनियम (सन् १६०४) के अनुसार अध्यापन काय करनवाल विश्व विद्यालयो की भी स्थापना हुई। कलकत्ता (सन् १८५७) बनारस (सन् १६१५) लखनऊ (सन् १६२०), अलीगढ (सन् १६२०), पटना, नागपुर आगरा आदि विश्व विद्यालयो की शिक्षा से भारत का अंग्रेजी साहित्य व अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से विश्व साहित्य से परिचय बना तथा पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करने तथा नवीनता क सूत्रपात की दृष्टि से सम्पूर्ण पृष्ठभूमि तयार हो गयी।

---

those dialects with terms of science borrowed from the Western Nomencleture and to render them by degrees fit vehicles for conveying knowledge to the great mass of population

भारत में अंग्रेजी के माध्यम से दी जानेवाली उच्च शिक्षा के द्वारा भारतीय नवयुवक ऐसी विदेशी जाति के सम्पर्क में आये जिसका लक्ष्य सामाजिक विकास था। इससे भारत में एक आर्थिक सामाजिक क्रान्ति हुई जिस पर सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय जीवन आधारित है। अंग्रेजी शासन द्वारा आरम्भ किये गये कानूनों से भारत में आधुनिकता का इतना प्रसार नहीं हुआ जितना कि अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से पाश्चात्य विचारों के प्रभाव द्वारा। वस्तुतः यह भारत में अंग्रेजी राज्य का अन्तर्विरोध था कि जहाँ एक ओर वह शासन सामाजिक न्याय की अवहेलना करता था और राजनीतिक आन्दोलन को संशय की दृष्टि से देखता था वहाँ स्वयं उस शासन के अन्तर्गत दी जाने वाली शिक्षा सामाजिक न्याय के लिये लड़ने और राजनीतिक उदार विचारों के लिए आन्दोलन करने के लिए प्रेरित करती थी। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आधुनिक भारत के राजनीतिक नेता अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए हुए व्यक्ति थे। महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू ने अंग्रेजों द्वारा आरम्भ किये हुए विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई थी। जहाँ नवयुवक विद्यार्थियों की पुस्तकों में स्वतन्त्रता के गौरव गान गाए जाते थे वहाँ सरकार स्वतन्त्रता के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों को कुचलना अपना कर्तव्य समझती थी। निस्सन्देह देश में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में पाश्चात्य शिक्षा का महत्वपूर्ण हाथ था।

प्रभाव

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से समस्त देश एक भाषा के सूत्र में बंध गया। इससे राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। अंग्रेजी के रूप में राजनीतिक विचारों और उनकी अभिव्यक्ति के लिए एक सामान्य भाषा ही प्राप्त नहीं हुई वरन् सम्पूर्ण देश में एक सामान्य मनः स्थिति का आविर्भाव हुआ जिसमें राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को बड़ा बल मिला। इस सामान्य मनः स्थिति के कारण ही १९ वीं सदी के आरम्भ में होनेवाले भारतीय नवोत्थान का सभी प्रान्तों में प्रायः एक रूप था और उसकी परिणति आगे चल कर राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में हुई। अन्यथा इस मनः स्थिति के अभाव में सभी प्रान्तों में धार्मिक आन्दोलनों ने विभिन्न रूप लिया होता। अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अध्ययन से पाश्चात्य विचारधाराओं का भारतीय जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। फ्रांस राज्य क्रान्ति के स्वतन्त्रता समानता और बन्धुत्व (Freedom equality, Fraternity) के नारे में उपयोगितावादी सिद्धान्त अधिकतम संख्या के अधिकतम हित' — 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय (Greatest good of the greatest number) की विरासत भारत को मिली। यही कारण है कि जहाँ जाति प्रथा धार्मिक रीति रस्म, दासता और परतन्त्रता ही जीवन का रूप था वहाँ पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से समता, धर्म निरपेक्षता, नारी और पुरुष के सामानाधिकार और राजनीतिक स्वतन्त्रता के भावों का विकास हुआ।

जिस समय भारत मे अंग्रेजी भाषा का प्रसार हो रहा था उस समय योरुप म स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता प्रजातन्त्रवादी भावनाओं के आन्दोलन चल रहे थे जिसमे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवक अत्यधिक प्रभावित हुए। वस्तुत हमारे अधिकाश राजनीतिक नेता न केवल विश्व विद्यालयो म अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थ वरन् अपनी भावनाओ और काय प्रणाली मे भी व पाश्चात्य विचारो से प्रभावित थ। इ लैंड म जिन बथम व मिल म प्रेरणा लेकर सन् १८३२ और उसक पश्चात् सुधारवादी आन्दोलन चला उन्ही बथम व मिल के उदारवादी विचारो का प्राय अर्द्ध शताब्दी पश्चात् भारत पर प्रभाव पडा। बैंथम, रूसो, बक स्विनबन आदि बहुत से पाश्चात्य विचारकों की सूक्तियो स अपने भाषणो को अलकृत करना स्वातन्त्र्य युद्ध के नेताओ की सामा य प्रवृत्ति थी। स्वय महात्मा गाधी अपने विचारो म पाश्चात्य मनीषि टालस्टाय व रस्किन स प्रभावित थे।

(६) ईसाई मिशरियों की देन

आरम्भ मे भारत मे शिक्षा प्रसार करने म अंग्रेजो का मुख्य उद्देश्य ईसाई धम का प्रचार करना था परन्तु राजनीतिक कारणो से आग्ल-शासन प्रत्यक्ष रूप म इसका सहयोगी नही बन सका। अत ईसाई धम के प्रचार का काय ईसाई मिशन-रियो द्वारा स्वतन्त्र रूप मे किया गया। पोर्चुगालियो ने भारत आगमन के पश्चात् व्यापार के साथ यहा धम प्रचार का काय भी उत्साह के साथ आरम्भ किया। इसके लिए उन्हें पोर्चुगाल क सम्राट से आर्थिक सहायता भी मिलती थी। गोआ ईसाई धम प्रचार का केन्द्र बनाया गया। धम प्रचार क लिए प्राय बल क प्रयोग की नीति अपनाने के कारण पोर्चुगाली मिशनरी अधिक सफल नही हो सके। इसलिए भारत म ईसाई धम प्रचारको म फ्रान्सिस जेवियर (Francis Xavier) और फादर द नोबिल (Father De Nobile) अधिक लोक प्रिय हुए। पोर्चुगाली ईसाई कैथोलिक मत मानने वाले थ भारत म बाद मे आनेवाली योरुपीय जातिया प्रोटेस्टेंट धम को मानती थी अत उन्होने पोर्चुगालियो द्वारा किये जाने वाले धम प्रचार की उपेक्षा की। पोर्चुगालियो की राजनीतिक शक्ति के ह्रास क साथ ही उनक धम प्रचार का काय भी शिथिल हो गया।

भारत म आनेवाली नवीन योरुपीय जातियो का उद्देश्य धम प्रचार न होकर व्यापारिक लाभ था अत ईसाई मिशनरियो को अपेक्षित प्रोत्साहन नही मिला। जब ईस्ट इ डिया कम्पनी के हाथ म राजनीतिक शक्ति आयी तो उसने भी मिश नरियों के काय को विशेष महत्व न दिया। अत विलियम केरे के नेतृत्व मे इ गलण्ड के बपटिस्ट मिशन ने श्रीरामपुर म जो कलकत्ते के पास डेना के अधिकार म एक छोटी सी बस्ती थी अपना केन्द्र खोला तथा हिन्दू धम पर आक्रमण करना आरम्भ किया। किन्तु, लाड मिण्टो न कलकत्ता म उनके प्रचार काय को बन्द करवा

दिया । * सरकार द्वारा मिशनरियों के कार्य को प्रोत्साहन न मिलने का कारण यह भी था कि सेना में भारतीय सिपाहियों के धार्मिक विचारों को ठेस पहुँचाने से उसके दुष्परिणामों से कम्पनी के राज्य को धक्का लगने की आशंका थी। वलौर के विद्रोह और सत्तावन के गदर के अन्य कारणों में से एक कारण यह अफवाह भी थी कि सिपाहियों को दिये जाने वाले कारतूसों में गाय की चर्बी लगी हुई थी। अंग्रेजी सरकार ने ईसाई मिशनरियों के प्रचार कार्य में विशेष सहायता नहीं दी क्योंकि ऐसा करने का अर्थ सेना में असंतोष बढ़ाना होता जो भारत में स्वयं अंग्रेजी राज्य के अस्तित्व के लिए खतरा सिद्ध हो सकता था। तथापि परोक्ष रूप में सरकार ने मिशनरियों की सहायता अवश्य की। ईसाई मत स्वीकार करनेवाले हिन्दुओं को उनके सम्मिलित कुटुम्ब से अपने भाग की सम्पत्ति लेने का अधिकार था। उत्तर भारत में ईसाई मिशनरियों के चार मुख्य संस्थान थे—बपटिस्ट मिशनरी इंगलिश मिशनरी (१७६६) लंदन मिशनरी चर्च मिशनरी (१८२०)। जैसा कि पहले कह चुके हैं ईसाई मिशनरियों के प्रति भारत शासन के कड़े रुख के कारण बपटिस्ट मिशन के अधिकारियों ने डेन शासन के अन्तर्गत श्रीरामपुर में डेनिश मिशन (१७६६) स्थापित किया। इन संस्थानों में श्रीरामपुर मिशन ही सबसे महत्वपूर्ण था। श्रीरामपुर मिशन द्वारा आरम्भ किये हुए कार्य को आगरा इलाहाबाद, बनारस आदि मिशनरियों ने आगे बढ़ाया।

---

* Major B D Basu 'Rise of the Christian Power in India Vol 4 R Chatterjee 91 Upper Circular Road Calcutta 1927

The Searampur Mission, headed by Dr Carey printed many books in the vernaculars Lady Minto in her work on Lord Minto writes —soon after Lord Minto's arrival some of these publications attracted the attention of Government and it being undesirable that they were calculated to offend the native population containing as they did offensive attacks on the Hindu Mythology and the Mussalman prophet the secretary to Govt received instruction to communicate to the Revd Dr Carey the leading member of the mission at Serampore a resolution arrived at by the Governor General in council to place their press under regulation and to suspend the practice of public preaching by the natives in native dialects at the ... of G...

अधिकांश हिंदी ईसाई साहित्य धर्म प्रचार के उद्देश्य से लिखा गया था। फोर्ट विलियम कालेज में बाइबल के अनुवाद के लिए एक अलग विभाग खोला गया था। श्रीरामपुर मिशन में विलियम करे ने बाइबल के अनुवाद की एक वृहद् योजना बनाई। विलियम बाउले (William Bowley) ने हेनरी मार्टिन द्वारा उर्दू में रूपांतरित "न्यू टेस्टामेंट" का "हिंदुई" भाषा में रूपांतर किया। बेपटिस्ट मिशन द्वारा "धर्म पुस्तक का अंत भाग" (१८४८) प्रकाशित किया गया। "नार्थ इंडिया बाइबल सोसायटी" की हिंदी उप—समिति ने "धर्म पुस्तक का पुराना नियम भाग (१)" शीर्षक से 'ओल्ड टेस्टामेंट' का रूपांतर किया। जे०टी० टामसन (J T Thompson) कृत "दाऊद के गीत" (सन् १८३६) का श्रीरामपुर मिशन द्वारा प्रकाशन किया गया। इसी प्रकार कुछ अन्य पुस्तकों –'गीत हिंदुस्तानी जबान में" (ईसाईयों के लाभार्थ उर्दू में धार्मिक सिद्धांत संबंधी), "ईश्वरोक्त शास्त्र शाखा' (हिंदुस्तानी से अनुवाद, इलाहाबाद १८४८), दी प्रोपर नेम्स इन दि ओल्ड एण्ड न्यू टेस्टामेंटस रेंडर्ड इन टू उर्दू एण्ड हिंदी" (इलाहाबाद १८५०) "पाल का चरित्र (कलकत्ता १८५२) 'वेदांत का मत-विचार (मिर्जापुर १८५३,) मुमुक्षु वृत्तांत या एक हिंदू यात्री का वृतांत' (जे एच बुडेन १८५४) येशु ख्रीष्ट चरित्र र्पण" (आगरा १८५६), 'कुछ वर्णित सुखादय अर्थात् हैजा रोगादि सम्पादित भय विस्मय निवृत बाइबल के कुछ चुने हुए अंश— उनसे हैजा आदि महामारियों का भय कैसे दूर किया जा सकता है", आगरा (१८५६) के प्रकाशन भी हुए। ब्रिटिश एण्ड फारेन बाइबल सोसायटी (१८०४) ने बाइबल का जनपदीय भाषाओं में अनुवाद आरम्भ किया।

भारतीय भाषाओं में मुद्रण कला के लिए श्रीरामपुर मिशन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस मिशन के प्रसिद्ध मिशनरी डा० करे के अथक प्रयत्नों से तीस-चालीस भारतीय भाषाओं में बाइबल का अनुवाद प्रकाशित किया गया। डा० करे ने सर्वप्रथम मदनवती (कलकत्ता १५ दिसम्बर १७६८) में प्रेस लगाया जिसे दो वर्ष पश्चात् (सन् १८००) श्रीरामपुर ले जाया गया। श्रीरामपुर मिशन में सबसे पहले डा० करे ने ही हिंदी टाइप ढाला। दिल्ली में ल्थाथोग्रेफिक प्रेस की स्थापना (सन् १८३७) की गयी जिससे पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य सरल हो गया। इससे हिंदी में पत्रकार कला को प्रोत्साहन मिला। हिंदी प्रदेश में सन् १८४५ में इलाहाबाद में प्रेस की स्थापना हुई तथा टाइप ढाले गये। बाद में मिर्जापुर (सन् १८४५) व सिकन्दरा (आगरा सन् १८४७) में भी प्रेस खुले। अनेक ईसाई प्रार्थनाओं का हिंदी में अनुवाद कराया गया जिनके छन्द भी प्रायः अंग्रेजी ढंग के ही होते थे। ईसाई मिशनरियों ने धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त कथा– साहित्य व अन्य उपयोगी ज्ञान की पुस्तकों की भी रचना की। उनके द्वारा खोले गये स्कूलों में यह पुस्तकें पाठ्य–पुस्तकों के रूप में पढ़ाई जाती थीं। उन्होंने भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए व्याकरण व शब्दकोष का भी निर्माण किया। कहा जाता है कि श्रीरामपुर मिशन ने हिन्दी की जनप

दीय भाषाम्रो म लाखो पुस्तकें प्रकाशित हुई किन्तु सन् १८१२ म श्रीरामपुर मिशन के भवन म भयकर आग लग जाने से पुस्तको का सभी स्टाक जल कर राख हो गया तथा ये पुस्तकें अब अप्राप्त हैं।

हिन्दी ईसाई साहित्य का भाषा की दृष्टि से भी महत्त्व है। फोर्ट विलियम कालेज की हिन्दुस्तानी के बजाय ईसाई मिशिनरियो ने हिन्दी (आधुनिक अर्थ) म पुस्तकें रची। ईसाई मिशनरियो द्वारा प्रचार का काय जनता के बीच होता था। जनता फोर्ट विलियम कालेज की कृत्रिम उर्दू व हिन्दुस्तानी के विपरीत हिन्दी को अधिक आसानी से समझती थी। ईसाई मिशनरियो द्वारा प्रयुक्त भाषा का रूप वही था जिसे हम आधुनिक अर्थ म 'हिन्दी' कहते हैं।*

शिक्षा प्रसार के क्षेत्र म वस्तुत ईसाई मिशनरियो की देन प्रशसनीय थी। बीसवी सदी के प्रारम्भ म कम्पनी सरकार द्वारा चलनेवाले स्कूल कालेजो मे विद्यार्थियो की जितनी सख्या थी उससे दस गुना अधिक विद्यार्थी ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाये गये स्कूलो म पढ़ते थे।°

(७) योरूपीय विद्वानो, रयाल ऐशियाटिक सोसायटी एव पुरातत्त्व-विभाग की देन

यहा उन विद्वानो व सस्थाओ के कार्यों की ओर भी ध्यान देना उचित प्रतीत होता है जिनका पाश्चात्य प्रभाव को व्यापक बनाने व हमारे साहित्य के निर्माण म प्रत्यक्ष या परोक्ष योग रहा। जब योरूपवासी भारत म आये तब उनका विश्वास था कि सभ्यता का प्रारम्भ यूनान और फिलीस्तीन म हुआ है। भारत को वे अर्द्ध सभ्य ही मानते थे। तथापि यह स्वाभाविक था कि कतिपय योरूपीय विद्वान भारतीय सस्कृति के अध्ययन की ओर आकर्षित होते। कहा जाता है मद्रास के उत्तर म

● डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद वि०वि० प्रयाग १९४१ पृ० १७

श्रीरामपुर के मिशनरियो के चौथे सस्मरणात्मक लेख (Memoir) से इतना पता जरूर चलता है कि हिन्दी' या हिन्दुई से उनका मतलब हिन्दुस्तानी' की उस बोली से था जो मुसलमानो के आने के पहले सारे हिन्दुस्तान म बोली जाती थी जो सस्कृत से निकली और सब साधारण की भाषा थी।

° T N Siqueir Education in India P 44
India owes much more the education given by missionaries at hardly any cost to herself than by her own Govt with money taken from her In 1852 53 there were less than 30 000 in all the Govt educational institutions in India and more than 3 00 000 in Missionary Schools

पिलिवास्ट्टा के मिशनरी पादरी अब्राहम राजर (Abraham Roger) ने कुछ भारतीय धार्मिक ग्रन्थों को डच भाषा में अनुवादित कर सन् १६३० में 'ओपन डोर टु हिडन पेगेनिज्म' (Open Door to Hidden Paganism) शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की। कहा जाता है कि पाडिचेरी के ईसाई मिशनरियों ने यजुर्वेद का L Ezour Vedam नाम से फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया जिसकी प्रति वाल्तेयर ने भी देखी थी। एक अन्य पादरी ने संस्कृत का व्याकरण तैयार किया (लिखित सन् १७३२ प्रकाशित रोम में सन् १७६०) तथा एक दूसरे पादरी ने भारत का विवरण लिखा जिसमें षड दर्शन, जैन व बौद्धमतों का परिचय था (सन् १७४०)। एबी दुबोय ने अपनी पुस्तक "हिंदू मनर्स कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज' (१८१७) में भारतीय जीवन का विशद् वर्णन लिखा। किन्तु इन पुस्तकों में भारतीय जीवन का बहुत संक्षिप्त परिचय लिखा गया था। सन् १७६० में फ्रांसिसी नवयुवक दुपरान (Anquefil Duperron) भारत आया और भारत से अपने साथ ८० पांडुलिपियां ले गया जिनमें एक पांडुलिपि दाराशिकोह कृत उपनिषदों के फारसी अनुवाद की थी। दुपरोन ने उसका लातिनी अनुवाद Oupnekhat "ओपनिखत" नाम में किया जिसे पढ़ कर जर्मन दार्शनिक शोपेनहार विमुग्ध होगया था। प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनुवादों ने जर्मन दार्शनिकों व साहित्यकारों को विशेष रूप से प्रभावित किया। जान फिश्टे व पाल डूसान उपनिषदों से प्रभावित हुए। नीत्शे ने मनुस्मृति की भूरि भूरि प्रशंसा की।

फ्रांस व जर्मनी में प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रति जिज्ञासा का यह भाव देख कर भारत के शासक अंग्रेज भी प्राचीन भारतीय साहित्य व संस्कृति के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कलकत्ता में "रायल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल" (१४ जनवरी १७८४) की स्थापना हुई जिसके संस्थापक प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक प्रकृति अध्येता और न्याय विशेषज्ञ सर विलियम जोंस थे। एशियाटिक सोसायटी के प्रमुख सदस्यों में सर विलियम जोंस (शकुन्तला सन् १७८९ गीत गोविन्द, मनु स्मृति का अनुवाद) गिलक्राइस्ट (फोर्ट विलियम कालेज से संबंधित) चार्ल्स विल्किन्स, (भगवद्गीता का अनुवाद) हेनरी थामस कोलब्रुक (भारतीय दर्शन की सर्व प्रथम सुव्यवस्थित व्याख्या) ज्योर्ज फास्टर (शकुन्तला का जर्मन अनुवाद सन् १७९१) हेस्टिंग्ज आदि की भारतीय भाषाओं के साहित्य के अध्ययन में रुचि थी।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के संबंध में एक मनोरंजक घटना का उल्लेख मिलता है। विलियम जोंस पंडित रामलोचन कवि भूषण की सहायता से संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे और उन्होंने सुना कि संस्कृत में भी नाटक ग्रन्थ हैं तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। व कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्" का अध्ययन करने लगे। शकुन्तला का उन्होंने अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसे पढ़कर योरूपीय विद्वानों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने सर्व प्रथम शकुन्तला के द्वारा यह जाना कि संस्कृत साहित्य कितना उन्नत

धार्मिक सामाजिक व राजनीतिक उन्नति के भी प्रयास होने लगे। भारत में मध्ययुगीन असमानतापूर्ण सती प्रथा का अन्त कराने और आधुनिक पश्चिमी शिक्षा पद्धति का आरम्भ कराने का उद्देश्य ही सर्वाधिक श्रेय है।

ब्रह्म-समाज में केशवचन्द्र सेन के प्रविष्ट होने पर एक महान परिवर्तन आया। उनका विचार था कि किसी सच्चे धार्मिक के लिए समाज सेवा के प्रति उदासीन रहना उचित नहीं। उन्होंने ब्रह्म विद्यालय की स्थापना की और एक पाक्षिक पत्र 'इण्डियन मिरर' (Indian Mirror) का प्रकाशन आरम्भ किया। केशव पर उनकी इंगलैण्ड यात्रा (१८७०) का गहरा प्रभाव पड़ा। वे नव विचारों और सामाजिक सुधार के लिए और अधिक प्रेरणा लेकर भारत लौटे। स्त्री स्वतन्त्रता, शिक्षा प्रचार, सस्ता प्रकाशन आदि कार्यों के लिए दान इत्यादि के काम का उत्तरदायित्व अपने हाथ में लिया। उन्होंने बाल विवाह को रोकने का प्रयत्न किया तथा विधवा विवाह व अन्तर्जातीय विवाह का प्रोत्साहन किया।

आर्य समाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् १८७५ ई० में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य-समाज का धार्मिक नारा था वेदों की ओर लौट चलो। स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में अन्य सब धर्मों का खण्डन कर वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की। आर्य समाज यद्यपि पुरातनवादी संस्था है किन्तु सामाजिक बुराईयों का उसने सबसे बढ़ कर खण्डन किया। आर्य-समाजियों के अनुसार सामाजिक बुराइयाँ विदेशी संस्कृतियों के कुप्रभाव का परिणाम थीं अतः उन सामाजिक बुराइयों को दूर कर वैदिक संस्कृति का प्रचार उसका लक्ष्य बना।

यद्यपि आर्य समाज प्रधानतः पुरातनवादी संस्था थी परन्तु परिस्थितियों की सबलता के कारण इस युग के किसी भी आन्दोलन में आधुनिकता के प्रवेश को रोक पाना असम्भव था। आर्य समाज में भी दो विभेद हो गये— कालेज संस्था और गुरुकुल संस्था। कालेज संस्था शिक्षा की आधुनिक प्रणाली खानपान की स्वतन्त्रता और आर्य धर्म की मानव धर्म समता में विश्वास करती है तथा गुरुकुल संस्था प्राचीन भारतीय प्रणाली, निरामिष भोजन और मानव धर्म समता के पहले कट्टर हिन्दु धर्म को मानने वाली है। सन् १८८६ में कालेज संस्था के प्रवर्तकों ने एंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना की जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् १६०२ में घरेलू जीवन नागरिक हलचल और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से दूर गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना की। हिन्दुओं में समाज सुधार के कार्य को व्यावहारिक रूप देने में आर्य-समाज का महत्व पूर्ण योग रहा है। मूर्ति पूजा खण्डन जाति पाति का भेद दूर करना बाल विवाह खण्डन, विधवा विवाह समर्थन, समुद्रयात्रा का पक्ष ग्रहण, शुद्धि आदि आर्य समाज के प्रमुख कार्यक्रम थे।

ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज आन्दोलन पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के प्रति दो भिन्न प्रतिक्रियाओं की उपज थे। पश्चिम के नवीन ज्ञान एवं उपनिषदों के प्राचीन दर्शन का ब्रह्म समाज ने सामञ्जस्य किया। राजा राममोहन ईसाई धर्म सिद्धान्तों से कुछ प्रभावित थे और उन्होंने उनका ब्रह्म-समाज में समावेश भी किया। इसके विपरीत दयानन्द सरस्वती ने किसी भी प्रकार के विदेशी प्रभाव का प्रतिरोध किया एवं वैदिक संस्कृति का प्रचार किया। इन भिन्न प्रतिक्रियाओं के कारण यह आन्दोलन भिन्न लक्ष्यों की उपलब्धि में सहायक हुए। जहां ब्रह्म समाज ने भारतीय समाज की समस्याओं का हल करने के लिए आधुनिक दृष्टि प्रदान की वहां आर्य समाज राष्ट्रीय भावना के उद्बोधन के लिए प्राचीन गौरव जगाने में सहायक हुआ। सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में यह दोनों आन्दोलन समान रूप से दृढ़ संकल्प थे।

रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी

अन्य संस्थाओं में जिन्होंने हिन्दू-धर्म व वेदान्त का प्रचार किया रामकृष्ण मिशन व थियोसोफी सोसायटी प्रमुख हैं। इन संस्थाओं ने प्राचीन सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या की व उन्हें युगानुकूल रूप दिया। रामकृष्ण परमहंस (१८३५-८३) के शिष्य नरेन्द्र दत्त (विवेकानन्द) ने उनकी मृत्यु के पश्चात् रामकृष्ण मिशन की स्थापना (१८९७) की। सितम्बर १८९३ में शिकागो कान्फ्रेंस में वे वेदान्त पर अपने भाषण दे चुके थे जिसका पश्चिम के धार्मिक क्षेत्र में गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दू धर्म का उन्होंने अत्यन्त उत्साह पूर्ण प्रतिपादन किया तथापि वे कर्मकाण्ड व रूढ़ियों के विरोधी थे। उन्होंने देश में आध्यात्मिक उत्साह की लहर पैदा कर दी। उनका कथन है ' जीव शिव रूप है —सभी प्राणी ईश्वर का प्रतिरूप हैं अतः प्राणियों के प्रति दया करने का स्वांग कौन कर सकता है? दया नहीं, सेवा-मनुष्य की सेवा को ईश्वरीय रूप समझना चाहिए'। विदेश यात्रा ने उनकी देश भक्ति की भावना को और भी अधिक उत्तेजित किया। उनका कथन था "मैं उस धर्म में विश्वास नहीं करता जो विधवा के आंसुओं को न पोंछे तथा अनाथ बालक की भूख न मिटाये।" अमेरिका में जब एक सज्जन ने उनसे पूछा 'भारत में व्यापक आन्दोलन का क्या उद्देश्य है?' तो उन्होंने उत्तर दिया 'हिन्दू धर्म के मूल आचार की खोज करना तथा हिन्दुओं में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करना।'

अमेरिका में सन १८७५ में थियोसाफिकल सोसायटी की स्थापना हुई थी। थियोसोफी समाज के सदस्यों का उद्देश्य मानव धर्म की एकता स्थापित करना था। किन्तु उन्होंने आर्यधर्म की प्रतिष्ठा एवं पूर्वी देशों के साहित्य धर्म एवं विज्ञान के अध्ययन को प्रधानता दी। स्वामी दयानंद सरस्वती के निमंत्रण पर मैडम

ब्लावात्सकी (Madame Blavatsty) एवं कर्नल अलकाट (Colonel Olcolt) का भारत में आगमन हुआ।

भारत में एनी बेसेण्ट के आगमन (१८६३) से थियोसोफिकल सोसायटी के विचारों का प्रचार बढ़ा। सामाजिक सुधार और राजनीतिक कार्य बसेंट के जीवन के दो मूल तत्व थे। उन्होंने हिन्दु धर्म के उत्थान और होम रूल आन्दोलन (१९१६) के रूप में राजनीतिक जागृति का प्रयास किया। उनके मत में "भारत के लिए सर्व प्रथम कार्य है प्राचीन धर्मों को जागृत कर उन्हें शक्ति-पूर्ण बनाना। प्राचीन हिन्दू धर्म और जोराष्ट्र धर्म तथा लंका और बर्मा का बौद्ध धर्म सबका उत्थान परम आवश्यक है। इसके फलस्वरूप भारतीयों में नये सम्मान प्राचीनता का गर्व, भविष्य के प्रति विश्वास और इनके फल-स्वरूप निश्चित रूप से देश भक्ति की लहर का उदय होगा जिससे कि राष्ट्र के नव निर्माण का कार्य प्रारम्भ होना निश्चित है।"

इन विचारों से स्पष्ट है कि इस समय हिन्दू धर्म में मौलिक परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही थी जिसके परिणाम स्वरूप देश में राजनीतिक जागृति और राष्ट्रीय भावनाओं का विकास हुआ।

(९) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन

सन १८५७ के विद्रोह के पश्चात् देश में विभिन्न धार्मिक संस्थाओं ने धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों द्वारा राजनीतिक चेतना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तयार कर दी थी। अब राजनीतिक सुधारों की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। ब्रिटिश इन्डिया एसोसियेशन (१८५१), बम्बई एसोसियेशन, ईस्ट इन्डिया एसोसियेशन भारतीयों की राजनीतिक सुधारों की आकांक्षा के फलस्वरूप ही स्थापित हुए थे। सन १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से अखिल देशव्यापी राजनीतिक आन्दोलन का रंगमंच स्थापित हो गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रारम्भ में उदारवादी नीति अपनायी एवं राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के सामने प्रस्ताव रखती रही। विदेशी शासन से पूर्ण स्वतन्त्रता का नारा सर्व प्रथम बाल गंगाधर तिलक ने लगाया। उन्होंने घोषणा की "स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।" लार्ड कर्जन के 'बंग भंग' की आज्ञा (सन १९०२) पर देश में सर्व प्रथम ब्रिटिश सरकार के प्रति अविश्वास की भावना जागृत हुई और रूस पर जापान की विजय (सन् १९०५) से प्रेरित होकर देश की जनता ने शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध मोर्चा बन्दी की। यह आन्दोलन भारत का प्रथम राष्ट्रीय जागृति का प्रतीक था। अन्त में ब्रिटिश सरकार को बंग भंग की आज्ञा हटानी पड़ी (सन् १९११)। इस आज्ञा को वापस लेने तथा युद्ध समाप्ति के पश्चात् राजनीतिक अधिकारों के प्रदान करने के आश्वासन से प्रेरित हो प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९) के अवसर पर

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया जिसकी स्वयं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अत्यधिक प्रशंसा की।

हमारे देश की राष्ट्रीयता की भावना में प्रथम विश्व युद्ध की परिणति से एक नयी हलचल प्रारम्भ हुई। ब्रिटिश सरकार के आश्वासनों से यह आशा बंधी थी कि अंग्रेजों के युद्ध में विजयी होने पर भारत राजनीतिक स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर होगा। परन्तु, युद्ध समाप्ति के पश्चात् रोलट बिल पास कर के भारतीय स्वतन्त्रता को और भी कुचला गया। इस स्थिति में महात्मा गांधी ने देश की राजनीति की बागडोर अपने हाथ में ली तथा जिस सत्याग्रह का प्रयोग वे दक्षिण अफ्रिका में कर चुके थे उसी आधार पर भारत में असहयोग आन्दोलन (सन् १९२०) छेड़ा। स्वतन्त्रता का नारा लगानेवाले निहत्थों को हजारों की संख्या में भून दिया गया। जलियाँवाला बाग का हत्याकांड व पंजाब का मार्शल ला राज्य इस बात के साक्षी हैं कि भारत को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए कितना बड़ा मूल्य देना पड़ा था। कांग्रेस ने अपना विधान बदल कर अपना लक्ष्य शांतिपूर्ण तरीकों से स्वराज्य प्राप्ति बनाया। महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन सत्य और अहिंसा पर आधारित था। आन्दोलन में भाग लेनेवाले सहस्त्रों लोगों को नेताओं के साथ जेल के सींकचों में बन्द कर दिया गया। आन्दोलन में देश भक्तों ने अंग्रेजी सरकार द्वारा दी हुई पदवियों को लौटा दिया, मंत्री मण्डल, सरकारी यूनिवर्सिटियों व अदालतों का बहिष्कार किया तथा विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। सरकार को लगान न देकर असहयोग प्रदर्शित किया। बारडोली में यह आन्दोलन सबसे अधिक सफल रहा। अन्त में चौराचौरी (मध्य प्रदेश) में सत्याग्रहियों के अपने आदर्श से च्युत हो जाने के कारण यह आन्दोलन समाप्त कर दिया गया (१२ फरवरी, १९२२)। कांग्रेस ने पुनः सरकार से सहयोग आरम्भ कर दिया तथा चर्खा, अछूतोद्धार आदि रचनात्मक कार्यों को प्रधानता दी।

तत्पश्चात् ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा साइमन कमीशन की नियुक्ति की गई जिसका उद्देश्य भारतीय विधान (१९२०) में संशोधन पेश करना था। इस कमीशन की नियुक्ति के समय कांग्रेस की सम्मति नहीं ली गई अतः कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन (सन् १९२९) में "पूर्ण स्वराज्य" को अपना लक्ष्य घोषित किया तथा १९३० में महात्मा गांधी के नेतृत्व में पुनः असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ जिसको दमन करने के लिए सरकार द्वारा सभी साम्राज्यवादी तरीका—जेल, लाठी, गोली आदि का काम में लाया गया। अन्ततः गांधी इरविन समझौता (५ मार्च १९३१) हुआ। इस वर्ष के अन्त में महात्मा गांधी को राउंड टेबल कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए लन्दन आमन्त्रित किया गया। गांधीजी वहाँ से निराश लौटे तथा लौट कर उन्होंने देश में फिर असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया (जनवरी सन् १९३२) जो दो वर्ष तक चलता रहा। अन्त में कांग्रेस ने पुनः मंत्री मण्डल बनाना स्वीकार किया।

द्वितीय महायुद्ध (सन १९३९ ४५) के प्रारम्भ होने पर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को युद्ध म सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने 'क्रिप्स मिशन' आदि के रूप म भारत को बहुत से राजनीतिक अधिकार प्रदान करने की इच्छा प्रकट की तथा केवल देश की रक्षा व सेना के अधिकारो तथा वायसराय के रूप मे ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि को अपनी ओर से रखना चाहा। किन्तु काग्रेस ने इस भेंट का भी अस्वीकार कर दिया व महात्मा गाधी के नेतृत्व मे अगस्त १९४२ म भारत छोडो आन्दोलन आरम्भ किया। देश के नेता पुन जेलो मे बन्द किये गये व इस आन्दोलन को भी कुचल दिया गया। पर युद्ध समाप्त होने के पश्चात् १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया व इसी स्वतन्त्र भारत की भूमि पर हिन्दुस्तान व पाकिस्तान दो नये राष्ट्रो का निर्माण हुआ।

(१०) पश्चिम की देन–प्रेस पत्रकारिता का विकास

आधुनिक युग म भारत को प्रेस पश्चिम की अत्यन्त महत्वपूर्ण देन है। प्रेस के कारण ही देश मे सामाजिक राजनीतिक, सास्कृतिक व साहित्यिक जागृति इतने कम समय म हो सकी।

भारत मे सर्व प्रथम पोर्चुगालिया ने गोआ म प्रेस स्थापित किया। उत्तर भारत म सन १७७२ म एक प्रेस सुव्यवस्थित रूप म कार्य करता था। सर चार्ल्स विलकिन्ज के निरीक्षण म सन १७७९ म कलकत्ता मे एक प्रेस की स्थापना की गई। 'बगाल गजट ओर कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर' नामक भारत म पहला पत्र २९ जनवरी १७८० को प्रकाशित हुआ जो दो वर्ष पश्चात् बन्द हो गया। उस समय अग्रेजी म अन्य प्रकाशित पत्र "इडियन गजट" (नवम्बर १७८०) 'कलकत्ता गजट' (फरवरी १७८४) 'मद्रास करियर' (१२ अक्टूबर १७८५) थे।

वेलजली ने फ्रांसिसी युद्ध के समय सर्व प्रथम प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाया जिससे कि शत्रुओ को युद्ध सम्बन्धी समाचारो का ज्ञान न हो सके। लार्ड मिंटो के समय यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया परन्तु उसने आपत्तिजनक विषयो की चर्चा करने का सर्वथा निषेध कर दिया। चार्ल्स मेटकाफ ने सन १८ ५ मे प्रेस सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा दिए। सन १८३७ ई० म दिल्ली म हिन्दी का पहला लीथोग्राफिक प्रेस खुला। सन १८५७ के गदर के बाद भारतीयो ने अनुभव किया कि अधिकाश प्रेस और पत्र अग्रेजो के अधिकार म है अत वे स्वय अपने विचारो का देश मे प्रचार नहीं कर पाते तथा अधिकाश पत्र जनता म झूठी बातो का प्रचार करते हैं। गदर के पश्चात् भारतीय पत्रकारिता ने तीव्र गति से उन्नति की। १८७८ म वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट द्वारा देशी समाचार पत्रो पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गए। लार्ड रिपन ने पुन इन प्रतिबन्धो को उठा दिया परन्तु बग भग के आन्दोलन (१९०५) के परिणामस्वरूप पुन उन्ही प्रतिबन्धो को लगा दिया गया।

भारतीयो म सबसे पहिले गगाधर भट्टाचाय न "बगाल गजट (१८१६) का अ ग्रेजी म प्रकाशन किया । भारतीय भाषाओ म श्रीरामपुर मिशनरियो ने सबस पहिल बगाली म दिग्दशन" मासिक और समाचार दपण ' साप्ताहिक प्रकाशित किय,श्रीरामपुर के मिशनरिया ने श्रीरामपुर मे कालज (१८१८) खोला जिसके लिए करे माशमन और वाड न अत्यधिक प्रयत्न किया था । इसी वष उ हान दोनो उपरोक्त पत्र निकाल । श्री जुगलकिशोर शुक्ल न पहला हि दी समाचार पत्र उदण्ड मातण्ड (१८१६) प्रकाशित किया । प्राय आधी शताब्दी तक हि दी पत्रकारिता का समुचित आरम्भ नही हो सका । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिकाओ क प्रकाशन क साथ हिन्दी पत्रो का प्रकाशन समुचित रूप से आरम्भ हुआ । भारतेन्दु की 'कवि-वचन-सुधा '(१८६८) 'हरिश्चन्द्र मेगजीन" (१८७०) बद्रीनारायण चौधरी की आनन्द कादम्बनी' (१८८१) प्रतापनारायण मिश्र का ब्राह्मण" (१५ माच १८८३) राधाचरण गोस्वामी का 'भारतेन्दु" (१८८३) अम्बिकादत्त व्यास का 'पीयूष प्रवाह' बालमुकुन्द गुप्त के सम्पादन म भारत मित्र' ने तत्कालीन साहित्य और समाज का प्रतिनिधित्व किया । आगे के युग म महावीरप्रसाद द्विवेदी क सम्पादन म ' सरस्वती" (१६००) ने साहित्य के नय मान प्रस्तुत किय । इसी प्रकार "इन्दु' (१६०६) जो जयशकर प्रसाद की प्रेरणा से निकाला गया (सम्पादक अम्बिका प्रसाद गुप्त) हिन्दी मे छायावादी आन्दोलन का अग्रणी बना । प्रेमचन्द ने प्रगतिशील मासिक ' हस" (१६३०) का प्रकाशन आरम्भ किया । इस परम्परा मे 'रूपाभ' (१६३५) 'नया साहित्य आदि पत्र प्रकाशित किय गय । स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय द्वारा प्रकाशित व सम्पादित "प्रतीक' हिन्दी म प्रयोगवाद का प्रवत्त क बना ।

हिन्दी साहित्य क इतिहास म पत्रकारिता के महत्व को एक इसी बात से पहिचाना जा सकता है कि हिन्दी मे जितन भी साहित्यिक आन्दोलन व युगान्तर उपस्थित हुए हैं व सब पत्रो के माध्यम से ही हुए । किसी साहित्यिक प्रवति को विकासमान करने मे हिन्दी म युगान्तकारी पुस्तको का अपेक्षा युगान्तरकारी पत्रो का महत्व कही बढ कर है ।

(११) साहित्यिक सस्थाए —उद्देश्य पाश्चात्य सस्थाओं के अनुरूप

बगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी क आदश पर हिन्दी प्रदेश म भी शैक्षणिक व सास्कृतिक सस्थाओ का निमाण हुआ जिसम बनारस की काशी नागरी प्रचारिणी सभा (१८६३) तथा प्रयाग का हिन्दी साहित्य सम्मलन (१६१०) विशष रूप से उल्लखनीय हैं । काशी नागरी प्रचारिणी सभा कुछ विद्यार्थियों के प्रयत्न से स्थापित हुई थी जिनम बाबू श्यामसुन्दर दास आरम्भ म ही उद्योगशील रह । साहित्य क अतिरिक्त सभा की पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' म 'इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान दशन आदि विभिन्न विषयो पर विचारपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुए ।

सभा ने हिन्दी में महत्वपूर्ण शोध कार्य प्रकाशित किया। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका" का प्रकाशन ही हिन्दी की कमियों को पूरा करने की दृष्टि से हुआ था। कहना न होगा कि यह विषय नये थे तथा पाश्चात्य प्रभाव के परिणाम स्वरूप उनके अध्ययन की ओर विद्वानों की रुचि आकर्षित हुई थी।*

इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना भी पश्चिमीय आदर्शों के अनुरूप साहित्य संस्था का निर्माण करने के उद्देश्य से हुई थी। इस आदर्श को बाबू श्यामसुन्दर दास ने सम्मेलन की प्रथम लेखमाला में स्पष्ट कर दिया था।* पाश्चात्य आदर्शों के अनुरूप अनेक स्वाध्याय मण्डल (Study Circle) स्थापित हुए जहां निबंध पढ़े जाते, आलोचनाएं होतीं तथा साहित्य रचना को प्रोत्साहन मिलता।

* नागरी प्रचारिणी सभा काशी तृतीय वार्षिक रिपोर्ट उद्धृत श्यामसुन्दरदास 'मेरी आत्म-कहानी' में

'हिन्दी में भाषा-तत्व, भू-तत्व, विज्ञान, इतिहास आदि विषयक लेखों और ग्रंथों का पूर्ण अभाव देख सभा ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका निकालना आरम्भ किया है।'

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रथम लेखमाला "इस सम्मेलन के जन्म दाताओं ने अपना आदर्श यूरोप की इण्टरनेशनल कांग्रेस आफ ओरियण्टलिस्टस (International Congress of Orientalsits) पुरातत्वज्ञों की सार्वदेशिक परिषद् रखा था और उसी के अनुरूप वे इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन को चलाना चाहते हैं, परन्तु अभी तो इसका पहला ही अधिवेशन हुआ है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन उद्देश्यों और मनोरथों में कहां तक सफलता प्राप्त होगी। भविष्य के गर्भ में क्या है इसे मानवी शक्ति से कौन जान सकता है परन्तु इस स्थान पर इस उद्देश्य का निर्देश कर देना इसलिए आवश्यक है कि जिसमें इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन से नियन्ता अपनी कार्य प्रणाली में उसे कहीं भूल न जायें। यूरोपीय पुरातत्वज्ञों की सार्वदेशिक परिषद् में बड़े-बड़े गम्भीर विषयों पर विचार किया जाता है और प्रत्येक विद्वान की यह इच्छा रहती है कि वह अपने आविष्कारों और सिद्धान्तों को सर्व साधारण के सम्मुख प्रकाशित करने के पहिले इस परिषद् के अधिवेशन में उपस्थित करे। इससे परिषद् और पुरातत्वज्ञ दोनों के कार्य को बहुत कुछ गौरव प्राप्त हो जाता है और यही कारण है कि इस परिषद् के निश्चित सिद्धान्तों पर बड़े सम्मान की दृष्टि से ध्यान दिया जाता है तथा जहां तक सम्भव होता है प्रत्येक देश में उनके अनुसार कार्य करने का उद्योग किया जाता है। हमारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तो अभी बीज बोया गया है। ईश्वर करे आगे चलकर इस वृक्ष से वांछित फल उत्पन्न हों।

नवीन पाठयक्रम एव अनुवादों के द्वारा पाश्चात्य प्रभाव

हिन्दी माहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव की दृष्टि स नवीन पाठ्यक्रम एव अनुवादा का विशेष महत्व है। पाश्चात्य माहित्य से हमारा सम्पर्क आग्ल भाषा के माध्यम से स्थापित हुआ। कालेज एव विश्व विद्यालयो की उच्च कक्षाओं म आग्ल साहित्य के अध्ययन के लिए रखे गय पाठ्यक्रम का उन विद्यार्थियो के मानसिक गठन पर प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था जो भविष्य म हिन्दी माहित्य के कवि नाटककार उपन्यासकार आदि के रूप म प्रतिष्ठित हुए। विश्व विद्यालयो से बाहर भी प्राय उन पाश्चात्य लखको की रचनाए पढी जाती थी जो पाठ्यक्रम म रखी जाती थीं। साथ ही अनेक पाश्चात्य रचनाओं के अनुवाद किये गये। यह अनुवाद पाश्चात्य लेखको के प्रति अनुवादको का आकर्षण ही प्रकट नही करते प्रत्युत हिन्दी माहित्य म उनके द्वारा कतिपय नवीन प्रवृत्तियो का भी सूत्रपात हुआ।

कविता

पाठ्य क्रमानुसार उच्च कक्षाओ मे जान मिल्टन (John Milton Paradise Lost Lycidas L' Allegro, Il Pensoroso अलेक्जण्डर पोप (Alexander Pope An Essay on Criticism Essay on man) सेम्युल जानसन (Samuel Johnson-The Vanity of Human Wishes, London) आलिवर गोल्डस्मिथ (Oliver Goldsmith The Hermit The Deserted Village The Traveller) जेम्स टामसन (James Thomson The Seasons) विलियम कूपर (William Cooper The Task) टामस ग्रे (Thomas Gray Elegy Written in a country Church yard) विलियम वर्ड्स्वर्थ (William Words worth Excursion) सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott Lay of the Last Ministerel) मारमिन (Marmin The Lady of the Lake) जार्ज गार्डन बायरन (George Gordon Byron Child Harold s Pilgrimage) पर्सी बिशी शली (Percy Bysshe Shelley Adonis) जान कीटस (John Keats Hyperin Sleep and poetry) आल्फ्रेड टेनीसन (Alfre d Tennyson Aylmer s Field The Princess Enoch Arden Mort d Arthur, Dora Ulysses, The Lotus Eaters) मथ्यु आरनोल्ड (Methew Arnold Sohrab and Rustum) टामस बी० मकाल (Thomas B Macaulay Lays of Ancient Rome) हनरी डब्लू लागफेला (Henry W Long fellow Evengeline) का अध्ययन कराया जाता था।

इस काल म प्रचलित पाठ्यक्रम म रखे गय कवियो की कविताओं क अनुवाद भी प्रस्तुत किय गय। पाठ्यक्रम म रखे जानेवाले कवियो क अतिरिक्त अन्य कवियो की रचनाओं के भी अनुवाद हुए।

निम्नलिखित अनुवाद उल्लखनीय हैं —

गोल्डस्मिथ (Goldsmith) —हरमिट Hermit (योगी) लक्ष्मीधर पाडे १८७६ हरमिट Hermit (एकातवासी योगी) श्रीधर पाठक १८८६, ेजरटेड विलेज Deserted Village (ऊजड़ ग्राम) श्रीधर पाठक १८८६ ट्रैवलर—Traveller (श्रात पथिक) श्रीधर पाठक १६०२

ग्रे (Gray)—शेफड ग्रण्ड फिलासफर Sephered and Philosopher (गडरिया ग्रौर ग्रालिम) श्रीधर पाठक १८८४ एलिजि Elegy (ग्रामस्थ शवागार लिखित शाकोक्ति) कामताप्रसाद गुरु १६०८ एलिजि Elegy (ग्रामीण गीत) महेशचन्द्र १६१५

लागफेला (Long fellow)— एवेंजलीन Evengeline (ए गलेना) श्रीधर पाठक १८८६ साम ग्राफ लाइफ Psalm of life (जीवन गीत) लक्ष्मीनारायण १६०४

पोप (Pope)— एसे ग्रान क्रिटिसिज्म Essay on criticism (समालोचना दश) जगन्नाथदास रत्नाकर १८६७ हेपिनेस ग्राफ रिटायरमेंट Happiness of Retirement (एकातवास का सुख)

टामस पार्नेल (Thomas Parnel)—हरमिट Hermit (योगी) श्रीधर पाठक १८६५

बायरन (Byron)—फयर द वेल Fare thee well (ग्राशीर्वाद) गौरीदत्त बाजपेयी १६०३ ग्रण्ड ग्राट दाऊ डेड सो यग ग्रण्ड फेयर And art thou dead so young and fair, (तरुणी तू चल बस ग्रभी) गौरीदत्त बाजपेयी १६०४

जेम्स टेलर (James Tayler)— माई मदर My mother जने द किशोर १६०४

सदे (Southey)—स्लीप Sleep (निद्रा) सनातन शर्मा १६०५ स्कालर Scholar (पुस्तकावलोकन प्रमी विद्वान) १६१०

वडस्वथ (Wordsworth)—ग्रफेक्शन ग्राफ मागरेट The affection of the Margret (माता का विलाप) १६१० द कुक्कू The Cuckoo (कोयल) जीवनसिंह १६०६

कूपर (Cowper)—सोलिट्यूड ग्राफ ग्रलेक्जण्डर सल्किर्क Solitude of Alexender Selkirk

स्काट (Scott)—लव ग्राफ कण्ट्री Love of Country (स्वदेश प्रीति) गौरीदत्त बाजपेयी १६१०

ग्रनेंस्ट जोन्स (Earnest Jones)—द पोयट ग्रण्ड लिबर्टी The Poet and Liberty (कवि ग्रौर स्वतन्त्रता) महावीर प्रसाद द्विवेदी १६०६

मकाल (Maucaly)—हारशियस Horatius द्वगनलाल मिश्र १९०३ बचन पाडेय १९११ रघुनाथ प्रसाद कपूर १९१२

कम्पबेल (Campbell) लाड अलिस डाटर Ulliwn's daughter (लाड अलिनकुमारी) सनातन शर्मा १९०४

अन्य कविताए टामस मूर (Thomos Moor) लास्ट रोज आफ समर (ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब) १९१०, जान टामसन (John Thompson) रूल ब्रिटानिया (इग्लण्ड का राष्ट्रीय गीत) १९१९ कालरिज (Coleridge) वृद्ध नाविक, शेक्सपियर (Shakespeare) म्याइ डिअर (मित्रता)।

उपरोक्त पाठ्यक्रम एव अनुवाद भारतेन्दु युग तथा अधिकाश म भारतेन्दु युग के बाद के हैं अत इनका प्रभाव भी द्विवेदी युग मे प्रतिफलित हुआ। भारतेन्दु युग म आग्ल शासन के प्रति भारतीय प्रतिक्रिया प्रकट हुई थी। द्विवेदी युग म आग्ल साहित्य के अध्ययन एव अनुवादो से नवीन विचारो का समावश हुआ। उपयु क्त अनुवादो मे अधिकाश का हिन्दी साहित्य की प्रवतिया पर कोई प्रभाव नही हुआ। लागफेलो के 'साम आफ लाइफ" (Paslm of Life) के अनुरूप भौतिक जीवन क सौन्दय एव समस्याओ की ओर आकषण, गोल्डस्मिथ क "डेजरटेड विलेज' (Deserted Village) क अनुरूप उजडती हुइ ग्रामीण सभ्यता क प्रति क्षोभ, वडस्वथ गोल्डस्मिथ तथा टामस की रचनाओ के अनुरूप प्रकृति प्रेम की भावना तथा गोल्ड स्मिथ के "हरमिट' (Hermit) के अनुरूप प्रेम के उदात्तीकरण की प्रवतियाँ द्विवेदी युग की कविता पर पाश्चात्य प्रभाव का फल है। जान टामसन के रूल ब्रिटानिया'(Rule Britania) गीत के सदृश राष्ट्र गीतो की भी रचना का जाने लगी। द्विवेदी युग मे वग कवि माइकल मधुसूदन दत्त तथा छायावादी युग क प्रारम्भ म रवीन्द्रनाथ टगोर की कविताओ के माध्यम म भी हिन्दी कविता पर पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुआ।

द्विवेदी युग क बाद की हिन्दी काव्य धारा म आग्ल साहित्य क पाठ्यक्रम की पुस्तको एव अनुवाद पुस्तको का अधिक महत्व नही ठहरता। छायावादी कवि आँग्ल रोमाटिक कविता से सीधा प्रभाव ग्रहण करन लग।

छायावादी कवि आग्ल रोमाटिक काव्य स पूणत प्रभावित हैं। अन्य कारणो क अतिरिक्त यह प्रभाव इसलिए भी स्वाभाविक था क्योकि अधिकाश छायावादी कवियो ने कालज और विश्व विद्यालयो म आग्ल रोमाटिक काव्य का अध्ययन किया था। वडस्वथ का प्रकृति चित्रण, कीटस का एन्द्रिय सौन्दय शली की स्वप्नदर्शिता ब्लेक की रहस्यात्मकता क राशि राशि भाव छायावादी कविता म बिखरे पडे हैं। प्रगतिवादी एव प्रयोगवादी कविता पर भी पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दिखायी दता है।

विश्वविद्यालयों म पाठ्यक्रम क अनुसार क्रिस्टोफर मारलाव (Christopher
Marlowe)के डाक्टर फास्ट (Doctor Faustus) विलियम शक्सपीयर (William
Shakespeare) क जूलियस सीजर (Julius Caesar) सेंट कोर्योलनस (St Coreol
anous) ए मिडसमर नाइटस ड्रीम (A Midsummer Night s Dream), मच
एडो अबाउट नथिंग (Much Ado Abou Nothing) रिचर्ड थड (Richard
Third) हैमलट (Hamlet) ओथेलो (Othello) मकबथ (Macbeth) किंग
लियर (King Lear) द टेम्पेस्ट (The Tempest) द मर्चेंट आफ वनिस (The
Merchant of Venice), टवलफ्थ नाइट (Twelfth Night) किंग जान (King
John) रिचड सकण्ड (Richard Second) हनरी फोर्थ (Henry Fourth)
हेनरी फिफ्थ द टेमिंग आफ दी श्यू (The Teaming of the Shrew) बजामिन
जानसन (Benjamin Johnson) के एवरी मन इन हिज ह्यूमर (Every man
in his humour) दी एलकेमिस्ट (The Alchemist) जान मिल्टन (John
Milton) के कोमस (Comus) सम्सन एगोनाइस्टस (Samson Agonistes)
जोसफ एडीसन Joseph Addison) क कटो (Cato) आलिवर गोल्डस्मिथ क
शी स्टूप्स टु कोन्कर (She Stoop to conquer) रिचड बी शरीडन Richard
B Sheridan) के द राइवल्स (The Riv ls) व स्कूल फोर स्कडल (The
School for Scandal) का अध्ययन कराया जाता था।

शेक्सपीयर के द कामडी आव एरस (The Comedy of Errors) का
मुशी इमदाद अली ने भ्रमजाल (१८७६) द मर्चेंट आफ वेनिस (The
Merchant of Venice) का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दुलभ बन्धु (१८८०) लाला
सीताराम ने द कामडी आव एरस (The Comedy of Errors) का भूल
भुलय्या मच एडो अबाउट नथिंग (Much Ado About Nothing) का
मनमोहन का जाल द टेम्पेस्ट (The Tempest) का जगल म मगल रोमियो
एण्ड जूलियट (Romeo and Juliet) का प्रम कसौटी मेजर फोर मजर
(Measure for Measu e) का बगुला भगत सिम्बलाइन (Cymbeline) का
सती परीक्षा एज यू लाइक इट (As you like it) का अपनी अपनी रुचि, द
विन्टस टेल (The Winter s Tale) का शरत् ऋतु की कहानी तथा हेनरी
फिफ्थ (Henery V) हैमलेट (Hemlet) किंग लियर (King lear) ओथेलो
(Othello) जूलियस सीजर (Julius Ceaser) रिचड सकड (Rachred II)
का अनुवाद किया। गोपीनाथ पुरोहित न रोमियो एण्ड जूलियट का प्रेम लीला
(१८९७) द मर्चेंट आफ वनिस का गोकुलनाथ शर्मा ने वेनिस का बाका
(१८८८) आयनों का गन्धर्वसिंह न (१८९४) एज यू लाइक इट का गोपीनाथ
पुरोहित न मन भावन (१८९६) जूलियस सीजर का गणपति कृष्ण गुजर न

जयन्त (१६१२) रोमियो एण्ड जुलियट का चतुर्भुज औदीच्य ने (१६१५) तथा ओथलो का गोविन्द प्रसाद घिलड्याल ने (१६१८) अनुवाद किया। शेक्सपीयर के नाटकों के प्रति हिन्दी लेखकों का आकर्षण प्रभी भी पाया जाता है। डा० सोमनाथ गुप्त ने ओथलो व हैमलेट का और डा० रांगेय राघव ने शेक्सपीयर के सभी नाटकों का अनुवाद किया। डा० हरिवंशराय बच्चन ने शेक्सपीयर के सभी नाटकों को अनुवाद पद्य में अनूदित किया।

शेक्सपीयर के नाटकों के कुछ अनुवाद तथा रूपान्तर पारसी थियेट्रीकल कम्पनी द्वारा अभिनीत किये गये। आलफ्रेड थियेट्रीकल कम्पनी (१८७७) द्वारा रोमियो और जूलियट तथा हैमलेट खेला गया। न्यू अलफ्रेड कम्पनी द्वारा मर्चेन्ट आफ वेनिस मेजर फार मेजर, रिचर्ड थर्ड और किंग लियर का अभिनय किया गया। यह नाटक रूपान्तरित थे तथा उनकी भाषा उर्दू थी।

जी० पी० श्रीवास्तव ने फ्रांसिसी नाटककार मोलियर (Moliere) की रचनाओं को अंग्रेजी से अनूदित किया। उन्होंने मौक डाक्टर (Mock Doctor) का मार मार कर हकीम (१६११) लमोर मेडिसिन (L' Amour Medicin) का आंखों में धूल (१६१२) ला मेडिसिन वोला (La Medicin Volant) का हवाई डाक्टर (१६१४), ला मैरेज फोस (La Marriage Force) का नाक में दम (१६१८) जोज दादि एण्ड ला जलूसी दू बारबोनीय (George Dandni and La Jalousie Du Barbonille) का जवानी बनाम बुढ़ापा (१६१८) शीर्षक से अनुवाद किया। मालियर के मौक डाक्टर का लल्लीप्रसाद ने ठोक पीट कर वैद्यराज (१६१२) तथा तोताराम ने एडीसन (Addison) के केटो-ए ट्रैजेडी (Cato A Tragdy) का केटो कृतान्त शीर्षक से अनुवाद किया।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने नार्वे के नाट्यकार इब्सन (Ibsen) के पिलर्स आफ सोसायटी (Pillars of Society) का समाज के स्तम्भ और ए डोल्स हाउस (A Doll's House) का गुड़िया का घर शीर्षक से अनुवाद किया।

प्रेमचन्द ने गाल्सवर्दी (Galsworthy) के सिलवर बाक्स (Silver Box) का चाँदी की डिबिया, जस्टिस (Justice) का न्याय तथा स्ट्राइफ (Strife) का हड़ताल शीर्षक से अनुवाद किया। ललिताप्रसाद शुक्ल ने गाल्सवर्दी के स्किन गेम (Skin Game) का धोखाधड़ी शीर्षक से अनुवाद किया। प्रेमचन्द ने जार्ज बर्नार्ड शा के बैक टु मैथुसेला के प्रथम भाग इन दी बिगिनिंग (In the beginning Back to Methusellah) का सृष्टि का आरम्भ शीर्षक से अनुवाद किया।

टालस्टाय (Tolstoy) के फर्स्ट डिस्टिलर (First Distiller) का तलवार की करतूत (केशवानन्द) तथा लाइट शाइन्स इनटू डार्कनेस (Light Shines into Darkness) का अंधेरे में उजाला शीर्षक से अनुवाद किया गया।

मैटरलिंक (Maeterlink) के सिस्टर बन्रिस (Sister Beatrice) का रूपान्तर लसिंग (Lessing) के मीना ग्राफ बारनलम् (Mina of Barnnelm) (भगवन्त शास्त्री मीना अथवा प्रेम–प्रतिष्ठा) गटे (Gothe) के फाउस्ट (Faust भोलानाथ) शिलर (Shiller) के देर नेफे श्रालसो ग्रॅन्कल (Dar Naffe also Onkel हरदत्त शर्मा भतीजा उर्फ चाचा) मिलटन के कामस (Comus) ग्रास्कर वाइल्ड (Oscar Wilde) के डचज ग्राफ पदुग्रा (Duchess of Padua) (प्रेम की पराकाष्ठा या पदुग्रा की रानी) गोल्डस्मिथ (Goldsmith) के शी स्टूप्स टू कोंकर (She stoops the conquer सत्यदेव शुक्ल हा हा हो) के अनुवाद भी हुए।

हिन्दी म शेक्सपीयर के नाटको के सर्वाधिक अनुवाद किये गये। लाला सीता राम द्वारा शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवादो से शेक्सपीयर के नाटको की शिल्प विधि का हिन्दी लेखको का परिचय हुग्रा। बगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय जो स्वय शेक्सपीयर के नाट्य शिल्प से प्रभावित थे हिन्दी पाठको के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुए। नाथूराम प्रेमी ने बगला से उनके दुर्गादास (१६१६) मेवाड पतन (१६१७) शाहजहां (१६१७) नूरजहा (१६१८), उस पार (१६१७), ताराबाइ (१६१८), भीष्म (१६१८) चन्द्रगुप्त (१६१८, सीता (१६१८), सूम मडली (१६१८) भारत रमणी (१६१६) पाषाणी (१६२०) सिंहल विजय (१६२०) नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये। बगला नाटकों के अनुवादो के माध्यम से हिन्दी मे शेक्सपीयर के नाट्य विधान एव उसकी रोमाचकता का समावेश हुग्रा। गाल्सवर्दी (Galsworthy) इब्सन (Ibsen) एव जार्ज बर्नड शा (George Bernard Shaw) के नाटकों के अनुवादों से सामाजिक याथ बुद्धिवादिता एव शिल्पविधि मे स्वाभाविकता का समावेश हुग्रा। एकांकी तथा रेडियोरूपक के विभिन्न भेदो पर पाश्चात्य प्रभाव निर्विवाद रूप म स्वीकार किया जाता है।

उपन्यास

विश्व विद्यालयों मे प्रारम्भिक काल के पाठ्यक्रम म रोबिंसन क्रूसो (Robinson Crusoe Deniel Dafoe), प्राइड एण्ड प्रेज्युडिस (Pride and Prejudice Jane Asusten) इवानोव व केनिल वथ (Ivanhoe, Kenil worth Sir Walter Scott) ए टेल ग्राफ टू सीटीज (A Tale of two cities Dickens) वेनिटी फेयर (Vanity Fair Henry Esmound) द न्यू कमस (The New comers W M Thackeray) ग्रादम बीड, सिलास मेरनर, मिडल मार्च (Adam Bede, Silas Marner, Middle March Geroge Eliot) द क्लोइस्टर एण्ड द हार्थ (The Cloister and the Hearth-Chamblro Reade) टाम ब्राउन्स स्कूल डेज (Tom Brown's School Days-Thomas Hugh) उपन्यास निर्धारित थे।

अंग्रेजी से हिन्दी मे रूपान्तरित उपन्यासों की आरम्भ मे संख्या अधिक नही रही इसका कारण यह था कि लेखकों की रुचि बगला उपन्यासों को हिंदी मे रूपान्तरित करने की ओर अधिक थी। प० बद्रीलाल ने रोबिन्सन क्रूसो का इतिहास बगाली से अनूदित किया (१८६० बनियन के पिलग्रिम्स प्रोग्रेस (Pilgrim s Progress Bunyan) का गोपीनाथ पुरोहित ने वीरेन्द्र (१८९७) शीर्षक से अंग्रेजी से अनुवाद किया। पुरुषोत्तमदास टडन ने शेक्सपीयर के पेरीक्लीस (Pericles) के आधार पर भाग्य का फेर (१९००) उपन्यास लिखा जो हिन्दी प्रदीप मे प्रकाशित हुआ। रेनाल्ड (Reynold) के फाउस्ट (Faust) का नर-पिशाच रै हाउस प्लाट (Rye House Plot) का सत्यवीर अनु कन्हैयालाल (१९०२) जोसफ विलमत (Joseph Wiltmat) यशोदानन्द अखौरी (१९०५) मिस्ट्रीज आफ द कोर्ट आफ लदन (Mysteries of the Court of London) का लन्दन रहस्य (सदानन्द शुक्ल १९१३ ठाकुरप्रसाद खत्री १९१५) ब्राज स्टेच्यू (Bronze Statue) का पीतल की मूर्ति (१९१७) के रूप म अनुवाद किया गया। किले की रानी, दुजन मनग तरग रहस्य भेद आदि रेनाल्ड के उपन्यासों के अन्य अनुवाद किये गय। राइडर हेगार्ड के (Rider Haggard) शी (She) का श्री या अवश्य माननीया और स्टोव (Stove) के अंकिल टाम्स केबिन (Uncle Tom's Cabin, का राम काका की कुटिया (अनु महावीर प्रसाद पोद्दार १९१६) जाज इलियट (George Eliot) के सिलास मेरनर (Silas Marner) का सुखदास (अनु प्रेमचन्द १९१८) के रूप मे अनुवाद किया गया।

बगाल म बकिम चन्द्र के उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी" (अनु गदाधरसिंह १८८२) राधारानी-(हरिश्चन्द्र १८८३), युगलागुलीय-(प्रतापनारायण मिश्र, १८८४), राजसिंह (प्रतापनारायण मिश्र १८८४) कपाल कुण्डला-(प्रताप नारायण मिश्र १९०१) कृष्णकान्तेर बिल (अयोध्यासिंह कृष्णकात का दानपत्र १८९८, गुलजारीलाल, कृष्णकात का बिल १९१६) देवी चौधरानी—(बालेश्वर प्रसाद मिश्र, देवी १८९०), चन्द्रशेखर—(ब्रजनन्द सहाय १९०७) इन्दिरा—(किशोरीलाल गोस्वामी १९०८, रामेश्वर पाडेय १९१६, गिरिजा कुमार घोष १९१६) विषवृक्ष—(गुलजारीलाल चतुर्वेदी १९१५) मृणालिनी—(जयरामदास गुप्त १९१८) के अनुवाद प्रकाशित हुए।

रमेशचन्द्र दत्त की रचनाओं में बग विजय (गदाधरसिंह १८८६), माधवी कंकन (गोपालराम गहमरी १९०८, जनादन झा १९१२) ससार (बेनीप्रसाद १९१०) समाज (जनादन झा १९१३) राजपूत जीवन सध्या (जनादन झा १९१३) महाराष्ट्र जीवन प्रभात (रुद्रनारायण १९१३) के अनुवाद किये गये।

पचकौड़ी दे के उपन्यासो के गोपालराम गहमरी ने अनुवाद किये-जीवनमृत रहस्य (१९०४) काला साप (आखो देखी घटना—१९१०) गोविन्दराम (१९०५)

जासूसी चक्कर (१९१२) मनोरमा (१९१३) नील वसना सुन्दरी १९१३)। रामलाल वर्मा ने पचकौडी डे के भीषण भूल (१९१७) व घटना चक्र (१९१८) का अनुवाद किया।

रवीन्द्रनाथ टगोर के मुकुट (१९१०), नौका डूबी आश्चर्य घटना १९१३) चोखर वाली (आँखो की किरकिरी १९१३) के अनुवाद हिन्दी म हुए।

अग्रेजी मे रेनाल्ड तथा पचकौडी डे जो स्वय रेनाल्ड से प्रभावित थे, के अनुवादो का तिलस्मी व जासूसी उपन्यासो की धारा पर प्रभाव प्रतिफलित हुआ। सन् १९२० ई० के पश्चात् हिन्दी म सामाजिक उपन्यासो की रचना प्रधान रूप से होने लगी। थकरे (Thackeray) डिकन्स (Dickens) जाज इलियट (George Eliot) आदि ने हिन्दी के सामाजिक उपन्यासो को प्रभावित किया। उस समय इन लेखको की रचनाओ को पाठ्य क्रम मे प्रधान रूप से स्थान दिया जाता था। रूसी उपन्यासकार टालस्टाय (Tolstoy) गोर्की (Gorky) तथा चेखव (Tchekov) की रचनाओ से भी हिन्दी उपन्यासकार प्रभावित हुए। फ्रासीसी प्रकृतवादी लखक बालजाक (Balzac) तथा एमिल जोला (Emile Zola) का भी हिन्दी के नग्न यथार्थवादी उपन्यासो म प्रभाव मिलता है। मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक यथार्थ वादी (मार्क्सवादी) उपन्यासो पर भी पाश्चात्य प्रभाव दृष्टव्य है।

कहानी

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का आरम्भ भारतेन्दु युग (१८७०–१९००) से होता है किन्तु हिन्दी कहानी का आरम्भ द्विवेदी-युग (१९००–१९२०) से हुआ। 'सरस्वती'' के प्रकाशन (१९००) स कहानी कला के आधुनिक रूप का विभिन्न उद्गमो से सगठन होने लगा कि तु उनमे पाश्चात्य प्रभाव ही सबसे महत्वपूर्ण था। उच्च-कक्षाओ के पाठ्य क्रम म इस समय चाल्स एण्ड मेरी लम्ब (Charles and Mary Lamb) की टेल्स फ्राम शेक्सपीयर (Tales from Shekespeare) वाशिंगटन इरविंग (Washington Irving) की द स्कच बुक (The Sketch Book) मथनियल हाथान (Mathaniel Hwthorne) की द टगल वुड टेल्स (The Tangle Wood Tales) शारलेट मेरी योग (Charleth Mery Vouge) की ए बुक आफ गोल्डन डीड्स (A book of Golden Deeds) निर्धारित थी। हिंदी कहानियो की शिल्प विधि के आविर्भाव के उद्गम सूत्रो की विवेचना करते हुए डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने चार सूत्रो का उल्लेख किया है— (अ) सस्कृत नाटको की कथावस्तु (आ) शेक्सपीयर के नाटको की कथावस्तु (इ) उर्दू किस्सा और अफसाने (ई) प्रारम्भिक बगला कहानिया। सस्कृत नाटको की कथावस्तु लेकर आरम्भ म सरस्वती म आख्यायिकाए प्रकाशित की गयी थी। किन्तु सस्कृत नाटको की कथावस्तुओ की अपेक्षा शेक्सपीयर क नाटको की कथावस्तुओ ने कथा-तत्व क निर्माण की अधिक प्रेरणा दी। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित हिन्दी की पहली

कहानी 'इन्दुमती' पर शेक्सपीयर के 'टम्पेस्ट' की छाप है। शेक्सपीयर के नाटकों की कथावस्तु लेकर 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी मे 'सिम्बेलिन' 'एथेन्स वासी टाइमन' 'पेरिक्लिस' आदि आख्यायिकाएं लिखी गईं। गंगाप्रसाद ने 'हिन्दी शेक्सपीयर' (१६१४) पुस्तक मे शेक्सपीयर के प्राय सभी नाटकों को आख्यायिकाओं के रूप मे प्रस्तुत किया। 'हिन्दी शेक्सपीयर' की अपेक्षा 'सरस्वती' मे शेक्सपीयर के नाटकों की कथावस्तु के आधार पर लिखी गयी कहानियों ने हिन्दी कहानी को अधिक प्रभावित किया। 'सरस्वती' में प्रकाशित शेक्सपीयर के नाटकों की आख्यायिकाओं का महत्व बहुत है। वस्तुत हिन्दी कहानी के कथा विकास के निर्माण का एक मात्र उद्गम सूत्र यही है। * हिन्दी कहानी के आदि युग में लोक कहानियों से प्रेरणा लेकर जो कहानियां लिखी गईं उनमे परोक्ष रूप से पाश्चात्य प्रभाव क्रिया शील था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में डा० ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम लोक कथाओं की ओर हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित किया। लोक कथाओं के सम्बन्ध मे पश्चिमी दृष्टिकोण अधिक सहानुभूति सपन्न था। हिन्दी के कहानी लेखक भी लोक-कथाओं की ओर आकर्षित हुए। हिन्दी कहानियों के आदि काल मे रवीन्द्रनाथ टगोर शरतचन्द्र बंद्योपाध्याय पाचकोड़ी अनादिधन बंद्योपाध्याय आदि की बंगला कहानियों के अनुवाद भी हुए। यह बंगला कहानी लेखक स्वयं पश्चिमी कहानी से प्रेरणा ले रहे थे अतः बंगला के माध्यम से हिन्दी कहानी पर पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुआ। शिक्षा केन्द्रों मे पढ़ाई जाने वाली अंग्रेजी कहानियों का हिंदी कहानी पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि अंग्रेजी कहानी कला का अभी अधिक विकास नहीं हुआ था। अंग्रेजी कहानी स्वयं रूसी, अमेरिकी व फ्रांसिसी कहानियों से प्रभाव ग्रहण कर रही थी। इस समय रूसी व फ्रांसीसी कहानियां के अंग्रेजी से अनुवाद भी हुए। प्रेमचंद द्वारा अनुवादित 'टालस्टाय की कहानियां' गोपाल नेवटिया द्वारा अनूदित 'यूरोप की कहानियां' चंद्रगुप्त विद्यालंकार द्वारा अनूदित तुर्गनेव की कहानियां और इलाचंद जोशी द्वारा अनूदित मोपांसा की कहानियां इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। सामाजिक बुराइयों के प्रति विद्रोह, मानवीय सहानुभूति, यथार्थवादिता एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हिन्दी कहानी पर पाश्चात्य प्रभाव दर्शाते हैं।

निबंध

हिन्दी गद्य रचना का शृंखलाबद्ध स्वरूप भारत मे आंग्ल शासन की स्थापना के बाद ही मिलता है। गद्य के विकास के अभाव में निबन्ध का प्रादुर्भाव अकल्पनीय ठहरता है। हिन्दी मे आधुनिक युग मे ही निबंध लिखे जाने लगे तथा उन पर

---

* डा० लक्ष्मीनारायण लाल 'हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास' साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग १६५३ पृष्ठ २६६।

पाश्चात्य प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई देता है। स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूति की गद्य में सहज अभिव्यक्ति जिसमें पाठक सीधे और सही रूप में लेखक के भावों एवं विचारों का परिचय पाता है—निबंध का यह रूप पाश्चात्य प्रभाव से हिन्दी में विकसित हुआ है—तथा हमारे देश में ऐसी रचना प्राचीन युग में नहीं मिलती। *

हिन्दी में आधुनिक युग के आरम्भ एवं विकास काल में फ्रांसिस बेकन (Francis Bacon) के एसेज (Essays) तथा 'द एडवांसमेंट ऑव लर्निंग (The advancement of Learning) जोसेफ एडीसन (Joseph Addison) के एसेस (Essays) जोसेफ एडीसन व रिचार्ड स्टील (Joseph Addison and Richard Steele) के सर रोजर द कोवरले (Sir Roger de Coverlay) आलिवर गोल्डस्मिथ (Oliver Goldsmit) के सिलेक्शन फ्राम द बी (Selaction from the Bee) चार्ल्स लैम्ब (Charles Lamb) के एसेज ऑन इलिया (Essays on Elia) विलियम हैजलिट (William Hazlitt) के एसेज (Essays) राबर्ट लुई स्टीवेन्सन (Robert Louis Stvenson) के वरजिनिबस प्यारस्क (Verginibus Puresque) को उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जाता था। आंग्ल साहित्य के यही प्रमुख निबंध-लेखक थे।

इस काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लार्ड फ्रांसिस बेकन (Lord Francis Bacon) के निबंधों का 'बेकन विचार रत्नावली' (१९०१) शीर्षक से अनुवाद किया। बेकन विचार रत्नावली में बेकन के ५८ निबंधों में से ३६ का अनुवाद किया गया है।

जगन्नाथदास रत्नाकर ने अलेक्जेण्डर पोप (Alexander Pope), के एन ऐसे आन क्रिटिसिज्म '(An Essay on Criticism) का 'आलोचनादर्श' (पद्य रूप में), नाथूराम प्रेमी ने सेमुअल स्माइल्स (Samuel Smiles) के सेल्फ हेल्प (Self Help) का 'स्वावलम्ब' तथा थ्रिफ्ट (Thrift) का मितव्ययता अमृत लाल भट्ट ने लार्ड चेस्टरफील्ड्स एडवाइस टू हिज सन (Lord Chesterfield s advice to His Son) का 'कर्त्तव्य शिक्षा' शीर्षक से अनुवाद किया। अंग्रेजी में लिखे गये निबंधों के अनुरूप हिन्दी में निबंध रचना की जाने लगी।

---

* गंगाबख्शसिंह द्विवेदी युगीन निबंध प्र० हिन्दी विभाग लखनऊ वि वि पृ १६ 'निबंध के क्षेत्र में भारतीय विद्वान पश्चिमी साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित हुए। इसका मुख्य कारण यह था कि उनके साहित्य में इस प्रकार की रचनाओं का बिल्कुल अभाव था। काव्य नाटक तथा कहानी आदि तो हिन्दी को संस्कृत की पतृक सम्पत्ति के रूप में मिल गये परन्तु निबंध नाम के प्रतिरिक्त कुछ न मिला।

कृष्ण बिहारी मिश्र ने विलियम हैज़लिट (William Hazlitt) के 'क्रिटिसिज्म' (Criticism) निबंध के आधार पर "समालोचना" (मर्यादा जून १६१२) सोमेश्वर दत्त शुक्ल ने जान रस्किन (John Raskin) के "द रूट्स आफ आनर" (The Roots of Honour) निबंध के आधार पर "गौरव के मूल कारण" (मर्यादा अक्टूबर १६१३), प्रसाद वर्मा ने टालस्टाय (Tolstoy) के 'वाई डू मैन स्टूपीफाई दमसेल्वज" (Why Do Men Stupify Themselves) के आधार पर 'मनुष्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग क्यों करते हैं," शारदाप्रसाद दुबे ने शोपेनहार (Sophenhaur) के "सेल्फ थिंकिंग," के आधार पर 'स्वतन्त्र विचार" (मर्यादा जून १६१६), वनमालीप्रसाद शुक्ल ने मेटरलिंक (Meterlink) के 'परफ्यूम्स" (Perfumes) के आधार पर 'पुष्पात्मा" (सरस्वती जनवरी १६२३) निबंध लिखे।

स्वाधीन चिंतन एवं निश्छल अनुभूति की पाश्चात्य निबंधकारों के समान हिन्दी लेखक अपने निबंधों से अभिव्यक्ति करने लगे, यह पाश्चात्य प्रभाव का ही फल है।

अस्तु, पाठ्यक्रम में निर्धारित पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं एवं अनुवादों से हिन्दी लेखकों का पाश्चात्य साहित्य से परिचय बढ़ा। पश्चिम में साहित्यिक रूपों के अनुरूप हिन्दी के काव्य व गद्य रूपों में परिवर्तन आने लगा तथा विचार-धारा की दृष्टि से भी पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर हिन्दी में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ जिनका विवेचन आगे के अध्यायों में किया जायेगा।

——

धार्मिक विचारधारा स्वरक्षात्मक प्रवृति

१९वी शताब्दी के प्रारम्भ म जब व्यापार और धम प्रचार क लिए आने वाली योरुपीय जातियो म से आग्ल जाति का शासन हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश म सुदृढ स्थापित हो गया एव भारतीय जीवन और साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव अनुभव किया जाने लगा तब प्राचीन व नवीन का सघष सव प्रथम धार्मिक क्षत्र म प्रकट हुआ। यह स्वाभाविक भी था क्योकि धम सस्कृति का अनिवाय और प्रमुख अग है। विदेशी सस्कृति के समागम के अवसर पर विजित जाति की धार्मिक क्षेत्र म स्वरक्षात्मक प्रवृति सबस अधिक सचेष्ट हो जाता है।

भारतेन्दु युग की धार्मिक विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव (१) पश्चिमी सभ्यता के भौतिकवादी दृष्टिकोण (२) ईसाई धम प्रचार के विरुद्ध भारतीय प्रति क्रिया तथा (३) पश्चिम की बुद्धि सगत विचार पद्धति क माध्यम के प्रतिफलित हुआ।

पाश्चात्य सभ्यता का भौतिकवादी रूप

पाश्चात्य सभ्यता भारतीय सभ्यता का तरह धम प्राण नही है। वह एहिकता परक अथवा भौतिकवादी है। सयास नही सासारिक जीवन का सर्वागीण विकास पाश्चात्य सभ्यता का मूल मन्त्र है। पाश्चात्य सभ्यता मूल रूप म व्यावहारिक था। उसके बाजा व राजसिहासन क वभव क पाछे इगलण्ड क पुतलीघरो की धुए म युक्त चिमनिया थी। व्यापारिक लाभ क लिए जो सौदागर बन कर आय थ व शासक बन बठे। व्यापार व राज्य क प्रसार क साथ उन्हान अपन धम का भी प्रचार किया। भारतवासी अपन का धम परायण समझे बठे थ। पाश्चात्य सभ्यता क आगमन क साथ उन्हाने देखा कि विदेशी लोग अपन धम का प्रचार करत हैं व किया है। पर उनका धम किसी प्रकार उनकी लौकिक उन्नति म बाधक नही होता वरन् व लौकिक समृद्धि क प्रति अत्यन्त सजग रहन ³। अत पाश्चात्य सभ्यत क प्रभाव स्वरूप भारतीय जीवन म लौकिक समृद्धि की भावना का उदय हुआ। आग्ल शासन के परिणाम-स्वरूप देश म जो परिवतन आय उन्होने इस देश क निवासियो को एक नया अनुभव दिया—धम ही सब कुछ नही है। जो देश कभी धन धान्य से पूर्ण था, जहा उद्योग धन्ध समृद्ध थ जहा की भूमि रत्नगर्भा थी वहाँ अब बेकारी गरीबी, भुखमरी और अकाल सुरसा की तरह बढत जा रहे थ। हमारी आध्यात्मिकता भौतिक समृद्धि क माग में बाधक सिद्ध होन लगी था।

आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक समस्याओं को प्रमुखता

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में आध्यात्मिकता का स्वर मन्द पड़ने लगा एवं परिवर्तन भी आ गया। इस युग के लेखकों ने शृंगार व भक्तिसम्बन्धी रचनाएं भी पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं परन्तु वे रीतिकालीन कविता से भिन्न हैं। उनमें आत्मीयता और स्वाभाविकता पायी जाती है तथापि विषय की नवीनता की दृष्टि से वे मूल्यवान नहीं हैं। भारतेन्दु युग के साहित्य में समाज सुधार व देश भक्ति का स्वर ही सबसे अधिक मुखर है तथा अन्य स्वर गौण हैं।

भारतेन्दु अपने निबन्ध 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में समाज की तत्कालीन हीनावस्था में जबकि पेट भर खाने को भी नहीं मिलता 'सहज धर्म उदरपूरण" पर ध्यान देना आवश्यक बतलाते हैं।* प्रताप नारायण मिश्र की दृष्टि में जब देशवासी भूखों मरते हों तो संन्यासी होना निर्दयता और स्वार्थपरता है।+

भारतेन्दु युग के लेखक धर्म को व्यक्तिगत प्रश्न ही रखना चाहते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उस युग में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सनातन धर्म आदि मत-मतान्तर फल गये थे जिनमें यदि कुछ अच्छी बातें थीं तो भी वे आपस में अपने मत प्रचार के लिए वाद विवाद में समय नष्ट करते और सच्ची देश सेवा को भुला देते थे। भारतेन्दु धर्म को केवल विश्वास की वस्तु मानते हैं तथा व्यवहार में धार्मिक विभिन्नताओं को दूर रख संगठित होने का संदेश देते हैं।×

---

* भारतेन्दु के निबन्ध' से डा केसरी नारायण शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस सं २००८ पृष्ठ ४०
जब पेट भर खाने ही को न मिलेगा तो धर्म कहां बाकी रहेगा इससे जीव मात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिए।

\+ प्रताप नारायण ग्रन्थावली से विजयशंकर मल्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी सं २०१४ पृष्ठ ३७१
यदि हम विरक्त हों तो हमें आज अपनी आत्मा के कल्याणार्थ वन में जा बैठना श्रेयस्कर न होगा, क्योंकि हमारे चतुर्थांश भाई भूखों मर रहे हैं और तीन चौथाई ऐसे हैं कि तीन खाते हैं तेरह की भूख बनी रहती है। ऐसी दशा में केवल अपने परलोक की चिन्ता करना निर्दयता और स्वार्थपरता है (हमारी आवश्यकता)

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पब्लिक ओपीनियन (हरिश्चन्द्र मैगजीन भाग १ अंक ७) पृष्ठ १९९
मत और सांसारिक कामों से क्या सम्बन्ध? मत या धर्म विश्वास का नाम है और वह दिल में रखने और विश्वास रखने की चीज है इससे व्यवहार से क्या सम्बन्ध? पर सोच है कि हमारे धर्म शास्त्र वाले वचक को भी धर्म बता गये तो अब हम लोगों को उचित है कि धर्म और व्यवहार दोनों को एक में न सानें। तैंतीस करोड़ देवताओं को अलग अलग मानों पर जहां व्यौहार का काम पड़े एक हो जाओ और जब अपने हित की बातें आवें तब एक ही आवाज दो।

वयक्तिक दृष्टि से विरोध न होते हुए भी भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने भक्ति व भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त 'वेदान्त' के सामाजिक प्रभाव को तत्कालीन युग के लिए बुरा बताया है। किसी समय की अमृत-तुल्या' भक्ति को भारतेन्दु युग के साहित्यकार विष तुल्य मानते हैं क्योंकि हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने हमें लौकिक समस्याओं के प्रति विमुख बना दिया है। धर्म के नाम पर व्यक्ति से कुछ भी कराया जा सकता है किन्तु देश की उन्नति के लिए कोई कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं होता। देशोन्नति के प्रति यह उदासीनता की भावना इस युग के साहित्यकारों के लिए दुःख का विषय है। भक्ति को इस युग का लेखक दास भावना के प्रसार का साधन मानता है। बालकृष्ण भट्ट नवीन शिक्षा व विज्ञान के प्रति उदासीन भक्तों के विरुद्ध खीझ प्रकट करते हैं।*

पर भक्ति—भावना से भी बढ़कर अकर्मण्यता को फैलाने वाला वेदान्त दर्शन सिद्ध हुआ। जहाँ तक भक्ति के कारण दास्य भावना के फैलने का प्रश्न है बालकृष्ण भट्ट भक्ति भावना के विरोधी हैं। इस दृष्टि से वे इसे अहं ब्रह्मास्मि के सिद्धान्त से निम्नतर भी मानते हैं क्योंकि अहं ब्रह्मास्मि' कहनेवाला व्यक्ति अपने को ब्रह्म का स्वरूप ही समझता है अतः वह दीन भावना का शिकार नहीं होता। किन्तु अहं ब्रह्मास्मि कहने हुए जो लोग जगत् को मिथ्या स्वरूप मानते हैं उनकी विचारधारा को बालकृष्ण भट्ट समाज के लिए घातक समझते हैं। + उनके मत में वेदान्तवादियों ने व्यास के प्राचीन वेदान्त को न अपना कर मिथ्या का ही पोषण किया है तथा उनके प्रभाव से फैलनेवाली सर्वनाशकारी अकर्मण्यता के बदले वे फिर भी सच्चे

---

* बालकृष्ण भट्ट 'भक्ति' भट्ट निबन्धावली' भाग २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं० २००७ पृष्ठ ४८

सच्ची भक्ति वही है जो निस्वार्थ हो पर अकुटिल चित्त हमारे भक्तजन उनकी (नव शिक्षितों का) ठठोली का कुछ भी ख्याल न कर प्रेम और अनुराग में डूबे हुए संसार के यावत् बाह्य प्रपंच को लात मारते हैं। सूरदास की काली कमली चढ़ै न दूजो रंग—देश या जाति का नवाभ्युत्थान या अधःपतन साइंस की नई नई ईजादें में अनेक तरक्कियाँ होती रहें उनका इसमें कुछ सरोकार नहीं।

+ बालकृष्ण भट्ट सुख क्या है वही पृष्ठ ५१

सुख के सम्बन्ध में आधुनिक वेदान्तियों का तो सिद्धान्त ही निराला है विज्ञान व्यास-कृत प्राचीन वेदान्त दर्शन का जो कुछ उत्तम सिद्धान्त था कि सुख दुःख में एक सा रहना सुख में फूल न उठना दुःख में घबराय नहीं सान कर छिप नास्तिक से बनाते अब मानते हैं कि सुख दुःख, पाप-पुण्य बुरा भला होना एक हैं और बड़े भ्रम हैं। पाप पुण्य दोनों शरीर करता है और आत्मा निर्लिप्त है।

भक्तों की प्रेम भावना को प्रशंसनीय ठहराते हैं।* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी वेदांत वादियों की प्रेमशून्यता व अकर्मण्यता का 'भारत दुर्दशा' (१८८०) नाटक में प्रतिकार करते हैं। + प्रताप नारायण मिश्र द्वारा वैराग्य भावना के विरोध का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। मिश्रजी केवल वैराग्य-भावना का विरोध ही नहीं करते वरन् आध्यात्म चिंतन के लिए त्याज्य षड वर्ग काम, क्रोध, लोभ मोह मद व मत्सर का सामाजिक हित के लिए संग्रह आवश्यक मानते हैं। वे देशहित की दृष्टि से काम क्रोधादि के संग्रह की आवश्यकता नये प्रसंग में प्रस्तुत करते हैं। ×

---

* बालकृष्ण भट्ट मनुष्य जीवन की सार्थकता' वही पृष्ठ ३६

इस उत्तम कोटि के महात्मा (सच्चे भक्त) अब इस समय बहुत कम जानते हैं कि अह ब्रह्मास्मी कहने वाले धूर्त-बचकों से तो यही भले। यद्यपि जिस बात की पुकार हम है सो तो इन दासोस्मी में भी नहीं पायी जाती फिर भी प्रेम और दृश्य जगत् सर्वथा निस्सार नहीं है न सर्वनाशकारी अकर्मण्यता ही का दखल इनमें है इससे ये बहुत अंशों में सराहनीय हैं।

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'भारत दुर्दशा' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६०५

इस नाटक में 'सत्यानाश' फौजदार कहता है

रचि के मत वेदांत को सबको ब्रह्म बनाय

हिंदुन पुरुषोत्तम कियो तोरि हाथ अरु पाय।

महाराज वेदांत ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिन्दू ब्रह्म हो गये। किसी को इतिकर्तव्यता बाकी ही न रही। ज्ञानी बन कर ईश्वर से विमुख हुए, रूक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसीसे स्नेह शून्य हो गये। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहां ?

× प्रतापनारायण ग्रंथावली सं० विजयशंकर मल्ल नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पृष्ठ १५२

कामना अर्थात् अगाढ़ इच्छा प्रेममय परमात्मा के भजन और देशहित की रक्खें। क्रोध का पूर्ण प्राबल्य अपने अथवा देश भाइयों के दुःख अथवा दुर्गुण पर लगा दें (अर्थात् उन्हें कच्चा खा जाने की नियत रक्खें) लोभ सद्विद्या औरसद्गुण का रक्खें। मोह अपने देश अपनी भाषा और अपनेपन का करें। जान जाय पर इन्हें न जाने दें। अपने आर्यत्व अपने पूर्वजों के यश का पूर्ण मद (अहंकार) रक्खें। इसके आगे संसार को तुच्छ समझें दूसरे देशवालों में चाहे जैसे उत्कृष्ट गुण हों उनको कुछ न गिन के अपने में ऐसे गुण संचय करने का प्रयत्न करें कि दूसरों के गुण मंद पड़ जाय। मात्सर्य का ठीक ठीक बर्ताव यह है।

(युवावस्था)

एहिकतापरक पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की दृष्टि आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक समस्याओं की ओर प्रमुख रूप से केन्द्रित है। पूर्व भारतेन्दु साहित्य में हम किसी न किसी रूप में भक्ति भावना की अभिव्यक्ति पाते हैं। लेकिन भक्ति का विरोध किसी रूप में नहीं मिलता।

भारतेन्दु युग के साहित्य में इस स्वर-परिवर्तन का कारण पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव एवं परिवर्तित परिस्थितियों में युग की आवश्यकता है। भारतेन्दु-युग के साहित्यकार यद्यपि व्यक्तिगत रूप से धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं तथापि सामूहिक विचारधारा की दृष्टि से वे उस फलाने के पक्षपाती नहीं। व्यक्तिगत रूप में स्वधर्म को मानते हुए लौकिक समृद्धि की कामना ने भारतेन्दु युग के साहित्यकारों को प्रेरित किया। इसी भावना ने उन्हें विरोधी धर्मों के प्रति भी सहिष्णु बनाया तथा हिन्दू धर्म में घुसी हुई बुराइयों को दूर करने की प्रेरणा दी। हिन्दू धर्म को उन्होंने पुरानी रूढ़ियों और कुप्रथाओं से मुक्त कर व्यापक मानव धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। इसमें वे पाश्चात्य सभ्यता के एहिकतापरक दृष्टिकोण से प्रभावित हुए हैं।

ईसाई धर्म प्रचार के विरुद्ध भारतीय प्रतिक्रिया

जब एक ओर विजयी आंग्ल जाति हमारे देश का आर्थिक शोषण करने में लीन थी उस समय ईसाई मिशनरी शांतिपूर्ण उपायों से जनता में अपना धर्म फैलाने का प्रयत्न कर रहे थे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत में कैथोलिक चर्च के ईसाई मिशनरी केवल पोर्तुगाली शासन-काल में दक्षिण में आये थे। पुर्तगाली शासन काल में दक्षिण में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए उन्होंने हिंसा का प्रयोग भी किया था। किन्तु उत्तर भारत में जो ईसाई मिशनरी आये वे प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयायी थे। योरुप में ५वीं शताब्दी के उत्तरकाल में रोमन साम्राज्यवाद का अन्त व कैथोलिक चर्च की स्थापना हुई थी। १६वीं शताब्दी तक योरुप में सामन्तवादी सभ्यता का प्रभुत्व रहा। यही समय पोप के धार्मिक एकाधिकार का था। इस समय चर्चों में विलासिता व्याप्त हो गयी। यही नहीं, चर्च के लिए धन संग्रह करने को मुक्ति पत्र बेचे जाने लगे। तब सन् १५२० में मार्टिन लूथर ने पोप की सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। मार्टिन लूथर ने धार्मिक अंध विश्वासों के खण्डन व धार्मिक मामलों में बुद्धि तर्क के प्रयोग का सर्व प्रथम प्रयास किया था। लूथर ईसाई धर्म का विरोधी नहीं था। वह चर्च की केवल बुद्धिसंगत शुद्धि का पक्षपाती था। कहना न होगा कि भारत में ईसाई धर्म प्रचार के युग में हिन्दुओं के मन्दिरों में पाप वे ही बुराइयाँ फैली हुई थीं जिनको रोमन चर्च में प्रबलता देख कर लूथर व उसके अनुयायियों ने उनका विरोध किया था। धार्मिक पुरोहित व पण्डे विलासिता में लीन थे। जनता धार्मिक अन्ध विश्वासों में डूबी हुई थी। सच्ची आध्यात्मिक भावना का लोप हो गया था। भारतीय नवोत्थान के पथ प्रदर्शकों ने बुद्धि व तर्क के आधार

पर धार्मिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती को मार्टिन लूथर कहा जा सकता है। उन्होंने मध्य युग व आधुनिक-युग में आई हुई धार्मिक बुराइयों को दूर कर प्राचीन वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना का प्रयत्न किया। लूथर ने भी इसी दृष्टि से कैथोलिक धर्म में सुधार के लिए आंदोलन किया था।

ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार, का कार्य विद्यालयों में धर्म-प्रचार शिक्षा दान, चिकित्सालय अनाथालय आदि सेवा कार्यों द्वारा ईसाई धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने जन स्थानों पर धार्मिक व्याख्यान देने आदि के रूप में फैला हुआ था। मिशनरी प्राय हिन्दुओं के देवी-देवताओं व सामाजिक कुरीतियों की निन्दा किया करते थे। हिन्दुओं की मूर्ति पूजा बहु देववाद, अवतारवाद बली प्रथा आदि उनकी आलोचना के विषय थे। इन आलोचनाओं से प्रभावित तथा हिन्दू धर्म की रक्षणात्मक प्रवृति से प्रेरित होकर १६वीं सदी में ब्रह्म समाज आर्य समाज आदि धार्मिक आंदोलन उठे। इन आन्दोलनों में मतवादिता आ गयी थी। तत्कालीन साहित्य पर इन आन्दोलनों का केवल ऊपरी प्रभाव पड़ा। जो नये विचार ईसाई धर्म प्रचार भारतीय नवोत्थान (१६वीं सदी के धार्मिक आंदोलन) व पश्चिमी ज्ञान के कारण पनपे बुद्धि तर्क के प्रयोग से समाज में प्रश्रय पा रहे थे उनका तत्कालीन साहित्य पर सम्मिलित रूप में प्रभाव प्रतिफलित हुआ। 'दबी हुई आग' * निबन्ध में प्रतापनारायण मिश्र ने ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाये गये विद्यालयों में हिन्दू धर्म को इस रूप में बालकों के सामने रखने पर जिससे कि वह अपने धर्म के प्रति अश्रद्धा हो क्षोभ प्रकट किया। 'एक विचार' * लेख में उन्होंने कानपुर के हिन्दुओं को अनाथालय खोलने की अपील की जिससे कि हिन्दू बालक ईसाई अनाथालय में रह कर विधर्मी बनने को बाध्य न हो। ईसाई धर्म प्रचार के कार्य ने वस्तुत भारतेन्दु युग के लेखकों को सचेत कर दिया था और वे हिन्दुओं में धर्म-सुधार के लिए कटिबद्ध हो गये।

ब्राह्मण वर्ग सामाजिक प्रगति में बाधक

इस युग के लेखकों के अनुसार हिन्दू धर्म के पतन के कारणों में धर्म का नेतृत्व करनेवाले ब्राह्मण-वर्ग का हाथ था जो विलासी और स्वार्थी हो गये थे तथा उनमें सच्ची आध्यात्मिक भावना व धार्मिक ज्ञान का अभाव था।

भारतेन्दु युग के लेखकों में अधिकांश ब्राह्मण वर्ग के होते हुए भी इस तथ्य के प्रति पूर्णतया सजग हैं कि तत्कालीन युग में ब्राह्मण लोग धर्म व समाज के पतन के प्रमुख कारण हैं। अत राधाचरण गोस्वामी 'रोम के पोप" लोगों से

---

* प्रतापनारायण ग्रन्थावली में सकलित

इनकी समानता बतलाते हैं तथा बालकृष्ण भट्ट दुनिया भर की सारी बुराइयों को सनातन धर्म में देखते हैं। परन्तु ब्राह्मण वर्ग के प्रति इन लेखकों का विरोध वास्तविक नहीं केवल मौखिक ही था। वे स्वयं भी इस वर्ग के थे। तथापि उन्होंने बताया कि ब्राह्मण वर्ग नवीन परिस्थितियों में सामाजिक प्रगति का बाधक बन गया है और समय की गति को पहिचान कर उन्हें अन्ध विश्वासों को छोड़ कर नये विचारों का स्वागत करना चाहिए।

मन्दिरों में दुराचार का विरोध

भारतेन्दु युग के साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि तत्कालीन समय में धर्म की प्रमुख संस्था मन्दिर व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे मन्दिरों के महन्त पराई स्त्रियों के साथ होली खेल कर उन्हें गुलाल से लाल बनाने में आनन्द का अनुभव करते थे।* मन्दिरों के पुजारी भक्ति के बदले दर्शनार्थ आयी हुई रमणियों पर कुदृष्टि रखते थे। × भारतेन्दु व प्रतापनारायण मिश्र ने

* प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण वर्ष १ अंक २ पृष्ठ १०) गुजराती पत्र लिखता है दादुर से महाराज विट्ठलजी के मकान में होली की लीला हुई थी। आप पहिले पुरुषों के साथ नाच फिर पराई स्त्रियों के साथ नाच कर उन उनको गुलाल से लाल बनाया। उक्त सूचना के साथ सम्पादकीय टिप्पणी द्रष्टव्य है हाय इन्हीं गुरुओं ने देश को चौपट कर दिया पर इनके अन्धे चेलों को अब तक नहीं सूझता।

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गुरु और महन्त" (कविवचन सुधा भाग २ संख्या ३६) पृष्ठ २०६

अब महन्तों में सतोगुण के बदले रजोगुण और तमोगुण पूर्ण रहता है। और मन्दिर व मठवाले अपने को हाकिम भी समझते हैं और प्रायः दर्शन करने वालों को कोड़ा मारना व धक्का देना व कुछ अण्डबण्ड कह देना तो उनका साधारण धर्म है और स्त्री विषय का तो पूछना ही नहीं है मन्दिर क्या होते हैं मानो स्त्रियों की खान होते हैं। वहाँ के सेवकों की यह दशा होती है कि उन्मत्त होकर निर्भय स्त्रियों के यूथ में प्रवेश करते हैं मानो वह गऊ का थोक विधाता ने उन्हीं साडों के हेतु बनाया है और गुरुओं की यह दशा है कि जिस दिन कोई उत्सवादिक होता उस दिन सज-धजा कर पुतले से बन खड़े हुए पर नयन भृंगों के विश्राम स्त्रियों के मुख कमल हो रहे हैं सेवकों के अनेक दूत पास खड़े रहते हैं जो नेत्र में जमी उनसे भुगतान होने लगा दूतों ने उपदेश किया कि श्री महाराज से मिल कर जन्म क्यों नहीं कृतार्थ करती सेवकों का तन मन धन सब गुरु का है इस भुलावे में जो सीधी थी वह तो आ गई वा उन्होंने दर्शन छोड़ दिया और जो कोई उपाय नहीं होता है तो गुरु लोग किसी बहाने उनसे अंग का स्पर्श भीड़ में करके कृतार्थ हो जाते हैं और अगम्य वस्तु का उतनी ही लब्धि बहुत समझते हैं।

मन्दिरो मे इस दुराचार की अन्त्येष्टि के लिये विह्वल शब्दों में अपील की। बाह्याचारा मे विश्वास न रख उन्होंने निश्चित भक्ति भावना का प्रतिपादन किया। *

मन्दिर मे मदिरापान व मास भक्षण का विरोध

मन्दिरो म दुराचार के साथ ही तत्कालीन युग मे मदिरा पान व मास भक्षण भी अत्यधिक प्रचलित हो गया था। ऊपर से तिलकधारी व भगवद्-भक्त प्रतीत होनेवाले लोग छिपे रूप मे मास भक्षण, मदिरा पान व स्त्री-सेवन से भी परहेज नही रखत थे। अत भारतेन्दु मडल के लेखको न धार्मिक सुधार से प्रेरित होकर इन प्रवतियो का विरोध किया। भारतेन्दु ने "पाखण्ड विडम्बन" (१८७२) शीर्षक से कृष्ण मिश्र के सस्कृत नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' के तीसरे अक का अनुवाद किया। इसम यही बताया गया है कि किस प्रकार इन्द्रिय भोग के सुख से प्रेरित होकर लोग सात्विक श्रद्धा से मुख मोड लेते हैं। "शान्ति" अपनी सखी करुणा के साथ माता श्रद्धा की खोज मे जाती है। वह श्रद्धा को एक कापालिक के साथ देखकर मूर्छित हो जाती हैं किन्तु करुणा उसे बतलाती है कि वह तो तमोगुणी श्रद्धा है। इसी बीच दिगम्बर जन, बौद्ध तथा सोम सिद्धान्त मानने वाले पात्रो का क्रमश रगमच पर आगमन होता है। वे कापालिक के सम्मुख अपने अपने मतो का प्रतिपादन करते हैं किन्तु अन्त म कापालिक के शिष्य बन कर मदिरा सेवन म प्रवत्त हो जाते हैं। इन सभी की कामना है कि धम की बेटी श्रद्धा को पकड कर महाराज क पास ले चलें। दिगम्बर गणित करके श्रद्धा और धम का पता लगाता है। पता चलता है कि ये दोनो कृष्णभक्ति के पास मे हैं। इसस इन पाखण्डियो को निराशा होती है एव शान्ति व करुणा उनके मन्तव्य जान कर विष्णु भक्ति को सूचित करने के लिये जाती हैं। अस्तु 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का अनुवाद तत्कालीन परिस्थितियो से प्रेरित होकर किया गया। लोगो की धम मे श्रद्धा नही रही तथा मास मदिरा का सेवन अति तक पहुँच गया। वष्णव धर्मावलम्बी भारतेन्दु क लिए यह अनुवाद करना स्वाभाविक ही था। अपनी मौलिक रचनाओ मे भी भारतेन्दु न मास मदिरा के सेवन की प्रवृति का विरोध किया। 'पाखण्ड विडम्बन" म एक बगाली पात्र के विधवा विवाह का समथन करन पर पुरोहित इस प्रथा को श्रेयकर नही मानता किन्तु इससे योग' की स्वच्छदता मिलने की दृष्टि स इसका अनुमोदन करता है।

---

* वही पृष्ठ २०६

ओ मेरे प्यारे हिन्दुओ ! तुम इनके जाल मे कब तक फसे रहोगे। अरे क्या इन्ही के भरोसे तुमको भगवान मिलेगा। निश्चय जानो कि य लोग परलोक म कुछ काम न आयेंगे य तो केवल पत्थर की नाव हैं परलोक मे व ही काम आवेंगे जो सब विद्या से भूषित निष्कलक चरित्र और ईश्वर म निश्चल भक्ति रखत हैं।

इस प्रहसन के पात्र गिद्धराज उनके मन्त्री पुरोहित चोबदार वैष्णव व शव भक्त आदि का यमराज के यहा न्याय होना है तथा अहिंसा प्रिय शव व वष्णव मतो के अतिरिक्त सभी का दण्ड दिया जाता है।

वदिकी हिंसा हिंसा न भवति (१८७३) मे भारतेन्दु ने धम की आड म हिंसा व दुराचार करनेवाले वैदिक धर्मानुयायो की खिल्ली उडाई है। 'पाखण्ड विडम्बन' मे उन्होने अवैदिको के मास भक्षण व मद्यपान चित्र प्रस्तुत किया था परन्तु इस अनुवाद से कदाचित् उनका मन सतुष्ट नही हुआ और उन्होने इस मौलिक प्रहसन की अवतारणा की। इस प्रहसन म हिंसामय यज्ञ करनेवाले राजा के पूछने पर पुरोहित मछली के स्वाद की प्रशसा करता है। पुरोहित व मत्री मास भक्षण व मदिरापान का धर्मानुमोदित सिद्ध करने के लिए भागवत व मनुस्मृति आदि ग्रन्था म विकृत रूप मे उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। बगाली वष्णव भी इन कथनों का अनुमादन करता ह। मास न खानेवाले शव व वष्णव मतो को भट्टाचाय वद से परे बताते हैं। गडकीदास के रूप मे वष्णव ढोगी का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। शव वष्णव व वेदान्ती मास खान के विरोधी हैं। वे अपने को सभा के उपयुक्त न समझ कर चले जात हैं। अन्तिम अक मे यमराज के दूत राजा पुरोहित, मत्री, गण्डकीदास, शव और वष्णव को यमराज के पास पकड कर लाते हैं। चित्रगुप्त यमराज क सामने लेखा उपस्थित करता है। यमराज हिंसा करनेवालो को नरक की यातना का दण्ड देते हैं तथा शव व वष्णव का उनकी अकृत्रिम भक्ति के कारण कलास और वैकुण्ठवास देकर आदर करते हैं। भारतेन्दु न 'प्रेम योगिनी' नाटिका म मन्दिरों क महन्तों व तीथवासी पण्डितो के दुराचार का पूणतया रहस्योद्घाटन किया है। प्रेमयोगिनी अपूण रचना है। इसम चार गर्भाक हैं। पहले गर्भाक मन्दिरादम म गुमाइयो व भक्त समझे जानवाल लागो मे व्याप्त दुराचार का अत्यधिक प्रभावोत्पादक वणन किया गया है। पुजारीजी मिसरजी" पूजा करन क लिय नियत समय स देरा से आते हैं। जलधरिया अभिषेक क लिये पानी भरने म देरी करता है। मन्दिर म आनेवाल बाबुओं' के लिय नहाना आवश्यक नहीं है किन्तु व भी कार्तिक क नहान का पुण्य लाभ उठा लना चाहते हैं। मन्दिर म गुमाइयो क विलासितापूण जीवन को दर्शाते हुए लेखक उनके सम्बन्ध में कहता है

मालो लूट महरवो लूट मन्दिर में रहै म स्वग म रहै। खाए क अच्छा पहिर क परमारी स महाराज कहवो गाढा तो पहिरव न करिय मलमल नागपुर ढाक पहिरिय ग्रतर फुलल बसर परसात्ता वाटा चामो सबम सबको त्यो, ऊपर स ऊ बान वा मुम अलग है।' *

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रेम योगिनी भारतेन्दु नाटकावली पृ० ७२७

दूसरे गर्भांक 'गैबी गबी' में काशी के विशिष्ठ निवासियों दलालों, गंगापुत्र, दुकानदार मडरिया गुण्डा, यात्री मुसाहिब आदि के चरित्र का यथार्थ अंकन किया गया है। एक परदेसी काशी निवासियों की बुराई करता है परन्तु वह 'जिजमान' और ग्राहक है अतः कोई उसके विरुद्ध अपना मुंह नहीं खोलता। नाटककार ने यहां तीर्थवासी पण्डितों की लोभपूर्ण प्रवृत्ति को दर्शाया है। एक काशी निवासी पात्र झूरीसिंह जब बोलता है अपशब्द ही उच्चरित करता है। वह उस परदेशी से पूछता है 'तो हूँ लीना करबा' 'लीना' शब्द का श्लेष तीर्थस्थानों की तत्कालीन पतितावस्था का अधम चित्र प्रस्तुत कर देता है। तीसरे गर्भांक 'प्रतिध्वनि वाराणसी' में मुगलसराय स्टेशन का दृश्य है। इसमें दर्शाया गया है कि काशी में तीर्थ यात्रा के लिए आनेवाले यात्रियों से धन गाठने के लिए पंडे लोग कितने व्यग्र होते हैं। ग्यारह पृष्ठ के इस गर्भांक में पूरे आठ पृष्ठ में तक मास में और थोड़ा सा रुककर फिर एक पूरे पृष्ठ में पंडे द्वारा किया गया काशी वर्णन यद्यपि नाटक कला की दृष्टि से दोष पूर्ण समझा जायगा किन्तु पंडों द्वारा बात को बढ़ा चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति उनकी साकेतिक भाषा और परदेशियों के सामने काशी का सजीव चित्र प्रस्तुत करना सजीव हो उठा है। 'मोहनी बाड़े का तार' ही उन पंडों के लिए परदेशियों से दिलचस्पी का कारण है। चौथे गर्भांक में 'पिशुनपिशुनद्विज दृश्य निकसत' दृश्य में काशी में रहने वाले दक्षिण भारत के पंडितों की हीन मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। आर्थिक लाभ से प्रेरित होकर वे इच्छानुसार धार्मिक नियमों की व्याख्या कर लेते हैं तथा भाग नाव, भोजन की चिन्ता में लीन रहते हैं। वस्तुतः 'प्रेमयोगिनी' नाटिका से हिन्दी में यथार्थवादी नाटकों का सूत्रपात हुआ है। यद्यपि इस नाटिका में कथावस्तु की एकसूत्रता नहीं है और यह अपूर्ण रचना है तथापि इन बिखरे हुए चार दृश्यों के चार चित्रों में तत्कालीन धार्मिक पतितावस्था का यथातथ्य चित्रण हुआ है।

प्रताप नारायण मिश्र ने कलि कौतुक रूपक (१८८६) में कपटी साधुओं के दुराचार व मांस भक्षियों तथा मदिरा सेवियों के अनाचार का प्रदर्शन किया। राधा चरण गोस्वामी ने अपने प्रहसन तन मन धन गोसाई जी के अर्पण (१८९२) में पुजारियों की दूषित मनोवृत्ति तथा उनके अनुयायियों की मूढ़ता का सजीव वर्णन किया। इस प्रहसन में बताया गया है कि किस प्रकार गुरुओं की अंध-भक्ति के कारण सरल चित्त भक्तगण मूढ़ता से अपनी बहन बेटियों की प्रतिष्ठा संकट में डाल देते हैं। बालकृष्ण भट्ट के सौ अजान और एक सुजान (१८९१) उपन्यास में मंदिरों में व्याप्त दुराचार की भर्त्सना की गई है। इस उपन्यास में सेठ हीराचन्द की मृत्यु के बाद उनके लड़के कुसंगत में पड़ जाते हैं जिन्हें चंद (चन्द्रशेखर) ठीक राह पर लाता है। मठ का परिचय उपन्यासकार इन शब्दों में देता है "इस मठ के पण्डे या पुजारी थोड़े से जटाधारी काले कलूटे योगी या गुसाईं लोग थे। वे ही यहां प्रधान या मुखिया थे। जो कुछ इस मठ में चढ़ता था, वह सब उन्हीं लोगों में बंट जाता

था। आचारगत उजड्डपन और असत् व्यवहार में यह गुसाईं भी और पड़े तथा तीर्थनियों से किसी बात में कम न थे। इस स्थान के पुरातन व पवित्र होने में कोई सन्देह नहीं किन्तु इन अपढ़ योगियों का दुराचार देख घिन होती थी।" * किशोरीलाल गोस्वामी ने 'स्वर्गीय कुसुम' उपन्यास में देवदासी प्रथा का विरोध किया किन्तु यह विरोध तीव्र नहीं है। भारतेन्दु ने 'वैष्णवता और भारतवर्ष' निबन्ध में मन्दिरों में स्त्रियों के सहवास की भर्त्सना की। गोपी और श्रीकृष्ण के प्रेम व रास को तत्कालीन युग में साधारण नायक नायिका की प्रेम क्रीड़ाओं का रूप दे दिया गया था। भारतेन्दु ने उनके "श्रुति सम्मत ज्ञान वैराग्य भक्ति बोधक ग्रंथ" का प्रचार करने की आवश्यकता बताया। प्रतापनारायण मिश्र ने श्रीकृष्ण के चरित्र पर चोरी व व्यभिचार के लांछन को अनुचित सिद्ध करते हुए उनके चरित्र से लौकिक प्रेम-क्रीड़ा की प्रेरणा न लेकर धर्म निष्ठा, गम्भीरता आदि गुणों को अर्जित करने की प्रेरणा दी। इस नैतिकतापूर्ण स्वर में लेखकों के धार्मिक सुधार की प्रवृत्ति ही काम कर रही थी।

भारतेन्दु-युग के साहित्य में मन्दिरों में होनेवाली पशुबलि का भी विरोध पाया जाता है। ईसाई धर्म प्रचारक मन्दिरों में होनेवाली पशु बलि को भी हिंदू धर्म की बुराई के रूप में बताते थे। फिर इस युग के लेखक प्रायः वैष्णव धर्मावलम्बी थे जो अहिंसा प्रेमी थे। भारतेन्दु ने अपनी बंगाल यात्रा के अवसर पर भरत मूर्ति के सामने बलि का स्वरूप देख कर उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप 'प्रजा विलाप' कविता लिखी। उन्होंने तदीय समाज की ओर से दिल्ली दरबार के समय गो-वध बन्द कराने के लिए हजारों हस्ताक्षर करवा कर भेजे। प्रतापनारायण मिश्र ने नवरात्र के समय होनेवाले अजा वध के विरुद्ध लिखा। उन्होंने 'गोवध' के विरुद्ध 'गो पुकार' समस्या कविता लिखी। गोवध का विरोध हिन्दू धर्म की रक्षा की भावना से प्रेरित होकर किया गया था। राधाकृष्ण दास के 'निःसहाय हिन्दू' उपन्यास में 'गोवध' का विरोध किया गया है। इसमें एक हिन्दू पात्र गाय की रक्षा करने का प्रयत्न करता है जिसे उसका एक मुसलमान मित्र सहायता करता है। किन्तु धर्मान्ध मुसलमान इन दोनों का वध करने के लिए षड्यन्त्र करते हैं। उपन्यास में तत्कालीन सामयिक समस्या शहर की गंदगी की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है।

पंडितों व पुजारियों की स्वार्थपरता का विरोध

भारतेन्दु युग के लेखकों ने पंडितों व पुजारियों की स्वार्थपरता का भी विरोध किया। भारतेन्दु ने 'जाति विवेकिनी सभा' व 'सत्यनाति गोपाल की'

---

* बालकृष्ण भट्ट — नूतन ब्रह्मचारी, भट्ट गया कार्यालय पृष्ठ ३१

निबंधों मे लोभ वश जाति व्यवस्था देनेवाले काशी के पण्डितो पर व्यग किया गया है। 'जाति विवेकिनी सभा' निबन्ध मे गडरिया जाति को क्षत्रिय जाति म मिलाने का परिहासपूर्ण वर्णन किया गया है। पण्डित और क्षत्रिय के वार्तालाप मे पण्डित कहता है कि यह चमार, डोम मुसलमान क्रस्तान वेश्या, कोल सभी को ब्राह्मण जाति का सिद्ध कर सकता है। इसी तरह वह उत्तम जाति के लोगो को नीच बताने को तत्पर है। केवल दक्षिणा पाकर वह कसी भी व्यवस्था देने को तैयार है।* राधाचरण गोस्वामी ने 'यमलोक की यात्रा' म कायस्था के स्वय को क्षत्रिय बताने व 'नापित स्तोत्र' म नाइया के अपने को ब्राह्मण सिद्ध करने के प्रयत्न पर व्यग किया है। राधाचरण गोस्वामी की दृष्टि म केवल उच्च जाति म उत्पन्न होन से ही कोई स्वग का अधिकारी नही होता अत जाति व्यवस्था के इस रूप पर उन्होने अपनी रचनाओ म व्यग किया है।

धर्म-तत्वों की बुद्धिवादी व्याख्या

हमारे के सभी धर्मों मे कतिपय अलौकिक तत्वा का समावेश मिलता है। ईसाई धम भी इसका अपवाद नही था। तथापि जसा कि पहले लिख चुके हैं कि ईसाई धम के साथ भारत मे आधुनिक युग म विज्ञान व तक बुद्धि का भी प्रवेश हुआ। तत्कालीन युग म हिन्दुओ का केवल मूर्तिपूजा मे ही विश्वास नही था वरन् वे तैतीस करोड देवी देवताओ की पूजा करते थे। उनका म त्र टोना म भी विश्वास था। राम कृष्ण आदि ईश्वरावतार उनकी धार्मिक भावना क आधार थे। ईसाई मत ऐकेश्वरवादी है तथा वे म तिपूजा म विश्वास नही करते। अत वे लोग हिन्दुओं के बहुदेववाद व मूर्तिपूजा का अपने व्याख्यानों म खण्डन करते थ। तक बुद्धि को प्रधानता देनेवाले इस युग म यह सहज ही प्रश्न किया जाने लगा कि ईश्वर यदि सब नियन्ता है तो उसके यह तैंतीस करोड अलग शरीर कसे हैं, क्या वह एक नही है? यदि अलग अलग देवताओं की अलग शक्तिया हैं तो ईश्वर सवशक्तिमान किस प्रकार कहा जा सकता है? यही नही पापी व अत्याचारियो को दण्ड देने क लिए उस अवतार लेने की क्या आवश्यकता हुई? यह दण्ड तो ईश्वर अपनी इच्छा से क्षण भर में प्राकृतिक कोप के द्वारा दे सकता है। यह और ऐसे ही प्रश्न बुद्धि को सचेतन करने म समथ थे। अस्तु यद्यपि इस धार्मिक आलोचना प्रत्यालोचना के कारण भारतेन्दु युग के लेखको के धार्मिक विश्वास म उल्लेखनीय अन्तर नहीं आया तथापि उन्होने अपने विश्वास के लिए बुद्धिवादी आधार की

---

* भारतेंदु क निबन्ध (स०) डा० केसरी नारायण शुक्ल पृ० १२०
हिन्दुओ का शास्त्र पसारी की दुकान है और अमर कल्पवृक्ष हैं इसम तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है पर दक्षिणा आपको बाय हाथ म रख देनी पडेगी।

अवश्य खोज की। बहुदेववाद के स्थान पर अद्वैतवाद (Monism) की ओर उनकी
प्रवृत्ति दिखाई देता है। यद्यपि शंकर के अद्वैत वेदान्त की तरह संसार को माया
समझ कर अकर्मण्य बन जाने का इस युग के लेखकों ने विरोध किया तथापि
आध्यात्मिक तत्व चिंतन की दृष्टि से भारतेन्दु ने वैष्णवता और भारतवर्ष निबन्ध
र ईश्वर के अद्वैत व निराकार होने की ओर संकेत किया है थोड़ी बुद्धि बढ़ने
ो से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि इतने देवी देव इस अनन्त सृष्टि के
यामक नहीं हो सकते। इसका कर्ता स्वतंत्र कोई विशेष शक्ति सम्पन्न ईश्वर है।
र बुद्धि के कारण प्रथम मनुष्य साकार उपासना छोड़कर निराकार की ओर
र करता है।* भारतेन्दु स्वयं वैष्णव थे। इस निबंध में उन्होंने वैष्णव धर्म
ही भारत का मूल धर्म व वेदों में विष्णु का सर्वेश्वर रूप दर्शाया है। इस
प्रकार वे अनेक देवी-देवताओं के बदले ईश्वर के अद्वैत रूप की स्थापना करते हैं।
यह अद्वैत भाव का प्रचार केवल ईसाई धर्म का प्रभाव नहीं कहा जा सकता।
तत्कालीन युग के धार्मिक आंदोलनों—ब्रह्म समाज आर्य समाज तथा विवेकानन्द
द्वारा अद्वैत वेदान्त की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की गयी थी। ईसाई मत व इस्लाम में भी
एकेश्वरवाद की भावना कार्य कर रही थी। प्राचीन भारतीय दर्शन में योग सिद्धांत
में ईश्वर के अनन्त स्वरूप का विवेचन मिलता है। अस्तु इस प्रसंग में ईसाई मत
के प्रचार के सम्बन्ध में हम यही कह सकते हैं कि उनकी आलोचनाओं से प्रेरित
होकर बहुदेवोपासना के बदले ईश्वर के सर्वेश्वर व अद्वैत रूप की कल्पना अधिक
बुद्धि संगत मानी जाने लगी यद्यपि व्यवहार रूप में इस युग के लेखकों के धार्मिक
विश्वास वही बने रहे। इस निबंध के उपर्युक्त उद्धरण में यद्यपि भारतेन्दु ने ईश्वर
के निराकार रूप को बुद्धि संगत बताया है तथापि उन्होंने सगुणोपासना के पक्ष में
तर्क प्रस्तुत किया है कि निर्गुण भक्त भी भक्ति के भावावेश में सगुणोपासक की
भांति ही ईश्वर को सम्बोधित करते हैं। भारतेन्दु ने इस निबंध में धर्म का ऐति-
हासिक विवेचन किया है। यह पाश्चात्य प्रभाव का ही परिणाम है। इससे पहले
तत्कालीन युग में धर्म केवल विश्वास व कर्मकाण्ड का विषय था ऐतिहासिक
विवेचन का नहीं।

प्रतापनारायण मिश्र ने शैव सर्वस्व (१८९०) में मूर्तिपूजा के पक्ष में तर्क
प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि भारत में शिल्प विद्या की उन्नति के कारण यहां मूर्ति
पूजा होना स्वाभाविक है। अरब के अशिक्षितों के यहां से जब इस्लाम फारस के
रसिकों में पहुँचा तो वहां 'सूफी सम्प्रदाय' की तथा ईसाई मत जब रोम पहुँचा
तो रोमन कैथोलिक मत की स्थापना हो गयी जिनमें मूर्तिपूजा का किसी रूप में
समावेश हो गया। अतः हिन्दुओं में मूर्तिपूजा होना आक्षेप योग्य नहीं है। मिश्रजी

---

* वही पृ० ३२

मत म मूर्ति स्वय ब्रह्म नही है वरन् ब्रह्म के लिये सकेत अथवा चिह्न है। मूर्ति ा के पक्ष म दिय गये यह तर्क ईसाईयो द्वारा किय गय मूर्तिपूजा विरोध के प्रति त्नीय प्रतिक्रिया दर्शाते हैं। *

पश्चिम की तर्क बुद्धि के अनुसरण क कारण तत्कालीन युग म पौराणिक ानकों की बुद्धि सगत व्याख्या तथा अ ध विश्वासो के निराकरण की प्रवृति भी यी जाती है। प्रतापनारायण मिश्र ने पौराणिक गूढाथ' निब ध मे निराकार वर के साकार कल्पनामयस्वरूप के चार या आठ भुजाए अ कित करने का कारण नके महा सामर्थ्य का द्योतन करना बताया है। इन्द्र के सहस्त्र नेत्र होने का ात्पर्य यह बताना है कि राजा एसा होना चाहिए जो सभी प्रकार के लोगो के सभी ावो पर दृष्टि रख सके।

हि दू धम की पतितावस्था म तत्कालीन युग मे अनेक अ ध विश्वासों का वेश हो गया था जा अवज्ञानिक व समाज के लिए विघातक थ। भारतेन्दु ने वष्णवो े बीच खानपान म छुआछूत की प्रवति का परित्याग करके एकता की भावना लान ी आवश्यक्ता बतायी तथा विलायत यात्रा को समयापयोगी बताया। + श्री राधाचरण ोस्वामी व बालकृष्ण भट्ट की रचनाओ मे सामाजिक उन्नति की दृष्टि से धार्मिक अ धविश्वासा का विरोध पाया जाता है। हि दू धर्मानुसार मृत्यु के समय गोदान किया जाना आवश्यक समझा जाता रहा है। बिना गोदान के वतरणी के पार नही लगा जा सकता, गोस्वामीजी इस पर अपन कथात्मक निबध यमलोक की यात्रा' म व्यग करते हैं कि यदि गाय की पूछ पक्ड कर वतरणी पार हो सकती है तो कुत्ते की पूछ पकड कर क्यो नही ? × राधाचरण गोस्वामी राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता के द्वितीय अधिवेशन म इलाहाबाद के मध्यम वग के प्रतिनिधि बन कर गये थ। उस अधिवशन म एक प्रस्ताव भारतीया क लिए इ ग्लड जाकर शिक्षा प्राप्त कर सिविल सर्विस में भर्ती होने के पक्ष म स्वीकार किया गया। किंतु, हिन्दू समाज उस समय अ धविश्वासा का क्रीतदास बन रहा था। समुद्र यात्रा के परिणामस्वरूप धम के नष्ट हो जाने क भय से हिन्दू पण्डित विदेश-यात्रा की स्वीकृति नही देते थ। राधाचरण गास्वामी ने इस प्रकार क पण्डितो का विरोध करते हुए

---

* प्रतापनारायण मिश्र 'शैव-सवस्व' 'प्रतापनारायण ग्र थावली' पृ० ६२४

+ भारतेन्दु के निब ध पृ० ३४१

× राधाचरण गास्वामी यमलाक की यात्रा पृ० ४
यदि गो की पूछ पकड कर पार उतर जाते हैं तो क्या बल से नही उतर सकते ? जब बैल से उतर सकते हैं तो कुत्ते न क्या चोरी की ? मुझे याद आया कि साहब मजिस्ट्रेट की मेम को एक कुत्ता मैंने दान किया था अत 'रतन' कुत्ते की पूछ पकड कर वतरणी पार की।

'विदेश यात्रा विचार' पुस्तिका में विदेश यात्रा की आवश्यकता को प्रतिपादित किया। उनके मत मे मजदूर लोगो के लिए जीविकोपार्जनार्थ, धनवानों के लिए व्यापारार्थ, अन्य लोगो के लिए यांत्रिक विद्या सीखने मुकदमे की पैरवी कराने सिविल सर्विस के लिये पढ़ने जाने, प्रजा पालक महारानी विक्टोरिया के दर्शन करने तथा देशाटन के लिए विदेश यात्रा करना आवश्यक है। अत धर्म के नाम पर विदेश यात्रा का निषेध नही किया जाना चाहिए। लेखक यह नहीं मानता कि विदेश जाने से कोई 'साहब मात्र बन जाता है तथा उसके मत म विदेशी सभ्यता के सम्पर्क म जाने से हमम देश भक्ति आदि के उच्च भाव उत्पन्न होते हैं। विदेश यात्रा का निषेध करनेवाले ब्राह्मणो के आदेशो की इस सम्बन्ध की स्पष्ट भर्त्सना करने का लेखक प्रतिपादन करता है। *

आलोच्य काल के लेखको की एक अन्य विशेषता जो अत्यधिक महत्वपूर्ण है प्रेम को धर्म का मूल मानना है। इस युग के लेखकों ने मत मतान्तरों से परे प्रेम के आधार पर उदात्त धार्मिक भावना को प्रश्रय दिया। भारतेन्दु की वैष्णव भावना (भक्तिरस) की कविताओं में प्रेम को अत्यधिक महत्व दिया गया है। भारतेन्दु वैदिक धर्म का सार भी शुद्ध प्रेम ही मानते हैं। + वैष्णव भावना के अतिरिक्त प्रेम म धर्म का मूल तत्व मानने की प्रेरणा देश भक्ति की भावना से भी प्रेरित हुई है। भारतेन्दु ने तदीय सर्वस्व' व वैष्णवता और भारतवर्ष' निबन्धों मे सभी

---

* राधाचरण गोस्वामी 'विदेश यात्रा विचार पृ० ३०

हे हमारे प्यारे हिन्दुओ इन झूठे भ्रमो को छोड़ो शास्त्र मे विलायत जाना या समुद्र यात्रा करना कोई पाप नही, पातक नही महापातक नहीं, अनुपातक नहीं इसका निषेध अन्ध-परम्परा मात्र से है या बिरादरी के झगड़ो का एक झगड़ा है। हर एक बिरादरी म दो चार चौधरी, पंच मुखिया होते हैं, वह सर्वदा ऐसे झूठे जाल बना कर रोटी चलाया करते हैं वही लोग इसका निषेध करके कुछ मूण्ड लेते हैं। या दो चार धूर्त पण्डित हैं वो धर्म के नाम से कुछ पैदा कर लेते हैं वह कोलाहल करते हैं और किसी को कोई आपत्ति नहीं। यदि कहो काशी के पण्डित व्यवस्था नही देते, तो थोड़े से रुपये खर्च कीजिये जो चाहे सो व्यवस्था ले लीजिये। विश्राम न हो मामामृत व्यवस्था' शालिग्राम के अदालत म ले जाने की व्यवस्था' देख लीजिए।

\+ शुद्ध प्रेम तुव कहुँ नहिं पायो जो श्रुति सार सही (भारतेन्दु)

धर्मानुयायियों को प्रेम भावना से एक होकर देशोन्नति के लिए प्रयत्नवान होने को आमन्त्रित किया। • प्रतापनारायण मिश्र ने 'देशोन्नति' निबन्ध मे लिखा 'प्रत्येक-देशोन्नतिकारक' को मान ही लेना पडेगा कि प्रेम एव परोधम × मिश्रजी की रचनाओ म प्रेम जीवन के तत्व रूप मे स्वीकार किया गया है। इस दृष्टिकोण को अपनाने में वे भारतेन्दु से प्रभावित हुए। + उन्होने गडरिया और मूसा निबन्ध मे ईसाई धर्म की सच्ची प्रेम भावना की भी प्रशसा की है।

यहा पर तत्कालीन युग के धार्मिक आन्दोलनो के सम्बन्ध मे भी भारतेन्दु व उनके सहयोगियों के विचारो का उल्लेख करना उचित है। १९वी सदी के धार्मिक आन्दोलनों में हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र को प्रभावित करनेवाला आर्यसमाज आन्दोलन था। ब्रह्म-समाज ने भी कुछ अग्रेजी शिक्षितों को प्रभावित किया किन्तु यह प्रभाव पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण मास मद्य सेवन आदि तक सीमित था। यद्यपि भारतेन्दु युग के साहित्यकारों का लक्ष्य भी इन आन्दोलनों के समान ही समाज सुधार करना था परन्तु आर्य-समाज की उग्रवादी प्रवृति उन्हे रुचिकर नहीं थी तथा ब्रह्म समाजियो के पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण के वे विरोधी थे। धार्मिक क्षेत्र मे प्राचीन सनातन धर्म की मान्यताओ का पालन करते हुए युगानुकूल आवश्यक सुधारा

• भारतेन्दु के निबन्ध स० डा० केसरी नारायण शुक्ल, सरस्वती मन्दिर जतनवर बनारस स० २००८ पृष्ठ २६ २७

इसमे (तदीय सवस्व) मुक्त कण्ठ से कहा गया है कि केवल प्रेम परमेश्वर का दिव्य मार्ग है। यद्यपि यह ग्रन्थ वष्णवो की शली पर लिखा गया है, किन्तु परमेश्वर के भक्त मात्र के हेतु उद्योग है। क्रिस्तान आदि विदेश धर्म प्रेमी समझें कि कृष्ण उनके निर्गुण परमेश्वर का नाम है, वैष्णवों की तो कुछ बात ही नहीं, शैव कहें कि विष्णु शिव ही का नामान्तर हैं ब्राह्मण समझें कि हरि ब्रह्म ही को कहते हैं उपासना और आर्यसमाज इसे अपना ही तत्व मानें। सिक्ख इसमे गुरु का पथ देखें और ऐसे ही भक्ति मार्गवाले पात्र सब लोग इसको अपनी निजी सम्पत्ति समझें बिना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक। जिस ससार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है जिस जाति व कुटुम्ब से तुम्हारा सम्बन्ध है और जिस देश में तुम हो उससे सहज प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरू परम पूज्य परमात्मा को केवल प्रेम मे ढूढ़ो।

(तदीय सवस्व भारतेन्दु)

× 'प्रताप नारायण ग्रन्थावली' पृष्ठ १८

\+ प्रताप नारायण मिश्र 'प्रताप लहरी' पृष्ठ ७२

श्री भारत धर्मि सरिस ऋषि उपदेशा सब मर्म
प्रेमहि गने प्रताप किन्तु सब धर्मन को धर्म

के वे पक्षपाती थे। भारतेन्दु के स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन में दयानन्द सरस्वती व केशवचन्द्र सेन के स्वर्ग में पहुँचने पर वहाँ उनके पक्ष व विरोध में दो दल बन जाते हैं। उन्हें स्वर्ग का अधिकारी माना जाय अथवा नहीं यह निर्णय करने के लिए ईश्वर द्वारा एक कमेटी बैठाई जाती है। कमेटी की रिपोर्ट में आर्य समाज व ब्रह्म समाज के कार्यों पर टिप्पणी की गयी है जिसमें स्वयं लेखक की विचारधारा प्रकट होती है। भारतेन्दु ने आर्य समाज द्वारा प्रवर्तित विधवा विवाह व शुद्धि व्यवस्था की प्रशंसा की है। उन्होंने ब्रह्म समाज की भक्ति भावना को भी श्रेष्ठ बताया है। परन्तु दयानन्द सरस्वती के कई रूप बदलने, वेदादि ग्रन्थों में काम के प्रकरणों को मानने व अन्य चेष्टा बताने तथा वेद के जबरदस्ती अर्थ करने को अनुचित ठहराया है। उन्होंने ब्राह्मण लोगों में सुरा मांसादि के प्रचार को बुरा बताया है यद्यपि इसके लिए वे केशव को उत्तरदायी नहीं ठहराते। अन्य भारतेन्दु ने सनातन धर्म के प्रति आर्य समाज की भावना का खण्डन किया तथा ब्रह्म समाजियों की अभारतीयता की निन्दा की। 'वर्षा विनोद' (१८८०) में उन्होंने इन मत मतान्तरों के कारण भारत की विशृंखल दशा का चित्रण किया * भारतेन्दु के दयानन्द सरस्वती में भी आर्य समाज का गौरव की उग्रवादिता व असहिष्णुता को अनुचित ठहराया गया है।×

पाखण्ड विडम्बन में भारतेन्दु की ब्रह्म समाज के प्रति भी प्रतिक्रिया प्रकट हुई है। ब्रह्म समाजियों पर ईसाई धर्म के प्रभाव एवं उनमें मदिरापान व मांस भक्षण की तत्परता को भारतेन्दु ने बुरा बतलाया है। एक स्थल पर राजा कहता है

मदिरा की ममता कौन करेगा जिसके हेतु लोग अपना धर्म छोड़ देते हैं। जैसो—

मदिरा ही के पानहित हिंदू धर्महि छोड़ि
बहुत लोग ब्राह्मो बनत निज कुल सों मुख मोड़ि
ब्राह्मि ब्रन्ड ब्राह्मो को पहिलो अक्षर एक
तासों ब्राह्मो धर्म में यामें दोस न नेक ×

---

* भारत में यहि समय भई है सब कुछ बिनहि प्रमान हो दुइरंगी
आध पुरान पुरानहि मानें आधे भए क्रिस्तान हो दुइरंगी
क्या तो गन्दा को चना चढ़ावें कि हाई दयानन्द जाय हो दुइरंगी
कहीं न भारत नाम यथा सब जहाँ-तहाँ पगी नक हो दुइरंगी (भारतेन्दु)

× दयानन्द सरस्वती (निबन्ध) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खं० ६ संख्या १२ १३ जून जुलाई १८७९

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ८०

यमराज के सामने मांस भक्षण के लिए अपनी सफाई देते हुए पुरोहित भी 'जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी' में प्रकाशित ब्रह्म समाज के नेता बाबू राजेन्द्रलाल के लेख का प्रमाण देता है।* ब्रह्म समाजियों में मदिरा पान के प्रचार व बाबू राजेन्द्रलाल पर 'अथ मदिरा स्तवराज' व्यंग लेख में भी भारतेन्दु ने व्यंग किया है।*

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की तरह द्विवेदी युगीन के लेखकों ने भी पाखण्डी पुजारी-पण्डा साधुओं आदि के दुराचारों पर व्यंग्य प्रहार किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ब्रह्मा की चतुराई को धिक्कारते हुए उस पर आक्षेप करते हैं—' दुराचारियों को तू प्राय: धर्माचार्य बनाता है।" नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथाकथित ब्रह्मचारियों व सन्यासियों के पाखण्ड का अनावरण करते हुए कहते हैं कि आजकल व्यभिचार व स्वादिष्ट भोजन में लीन रहना ही बाल-ब्रह्मचारियों का काम है तथा सन्यासी लोग अपने को ब्रह्म कहते हुए मिथ्या 'सोऽहम्' का उच्चारण करते फिरते हैं। मैथिली-शरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में मन्दिर के पुजारियों के दुराचार व नैतिकहीनता का ज्वलंत चित्र खींचा है। मन्दिरों में वेश्याओं के नृत्य, अश्लील गीतों व व्यभिचार का उन्होंने उल्लेख किया है। प्रेमचन्द के सेवा सदन की सुमन समाज की हृदय हीनता के कारण वेश्या बनने को बाध्य होती है। विट्ठलदास आदर्शवादी भावना से प्रेरित होकर सुमन को पाप के मार्ग से बचाने के उद्देश्य से उसे उपदेश देने जाता है। सुमन के मुख से निसृत कटु सत्य तत्कालीन धर्म के ठेकेदारों की कुत्सित मनोवृत्ति का परिचायक है

"सुमन ने बात काट कर कहा, महाशय यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुर द्वारे में झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानो मेरे चरणों से वह मन्दिर पवित्र हो गया।'

रामावतार पाण्डेय के मुकुन्दानन्द चरितावली में ब्राह्मण व साधुओं की दुराचारिता पर व्यंग्य किया गया है। मुकुन्दानन्द एक काल्पनिक चरित्र है जो वरुण

---

* वही, पृष्ठ ३६० दुहाई ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है और महाराज मैं अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोनों लेख देता हूँ। उन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध किया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं आगे के हिन्दू सब खाते-पीते थे। आप चाहिए एशियाटिक सोसायटी का जर्नल मंगा कर देख लीजिए।

X भारतेन्दु के निबन्ध पृ० १०२

लोक की राजधानी निर्वाणपुर से पृथ्वीलोक मे आता है। वह भारत, यूनान व राम के प्राचीन इतिहास का स्मरण करते हुए वर्तमान भारत की पतितावस्था की ओर इंगित करता है व उसकी सामाजिक बुराइयो की निन्दा करता है। मूर्ख पुरोहितो द्वारा श्राद्ध तर्पण कराना मास स्पर्श न करने की प्रतिज्ञा के कारण चिकित्सा व अभ्यास से भी दूर रहना चाहे काशी करवट प्रयाग करवट के रूप म मनुष्य बलि भी ली जाय छिपे रूप म ब्राह्मणो द्वारा मास भक्षण व मदिरा पान करना लाखो रुपया के व्यय से बने स्कूलो म पढकर बालको का चुरट पीना आदि सीखना व पुजारियो व साधुओ का व्यभिचारी होना आदि सुन्दरानन्द चरितावली मे गहरे व्यंग्य है।

बुद्धिवाद

धार्मिक बाह्याचारो की आबद्धता ने योरुप म बुद्धिवाद को जन्म दिया तथा बुद्धि के सहारे मनुष्य ने धार्मिक अन्धविश्वासो व आडम्बर का अन्त कर प्रगति का मार्ग खोला। बुद्धिवाद अतिशय धार्मिकता के आवर्त का भजन कर धर्म निर्पेक्षता को प्रश्रय देता है। धर्म के क्षेत्र मे बुद्धिवाद पौराणिक व धार्मिक आख्यानो की बुद्धिसगत व्याख्या करने की प्रेरणा देता है जिससे गुरुडम का अन्त कर धर्म की सच्ची चेतना जाग्रत हो सके। बुद्धिवाद की दूसरी देन विज्ञान है जिसकी उन्नति लौकिक समृद्धि की भावना की पोषक है। पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से इन विचार धाराओ का भारतीय जीवन म भी प्रवेश हुआ। बुद्धिवाद की प्रवृत्ति ने परलोक के बदले इहलोक की सत्यता को महत्व दिया। धार्मिक बाह्याचारो व मत मतान्तरो के बदले आध्यात्मिक चेतना के विकास को प्रधान समझा। अवतारवाद व आप्त वाक्यो म विश्वास करने के बदले ईश्वरावतारो का मानव रूप म चरित गान किया जाने लगा व अमानुषिक कार्यों का स्वाभाविक व मानुषिक रूप म चित्रण किया गया। मानव की अपूर्णता के नाते उनकी मानवीय कमजोरियो का चित्रण किया गया। धर्म निर्पेक्षता की प्रवृत्ति न ईश्वर के बदले मनुष्य को ही नवीन साहित्य का केन्द्र बना दिया।

बुद्धिवाद की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया धार्मिक क्षेत्र म हुई। बुद्धिवाद ने जीवन और जगत् के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को परिवर्तित कर दिया। परलोक के बदले इहलोक की सत्यता को उसने अधिक महत्व दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मानव जगत् को आनन्दरूप घोषित किया। मुक्ति की भावना का प्रतिकार करते हुए उन्होने जगत् के आनन्दरूप को ही यथार्थ बताया तथा स्वय ईश्वर को भी सृष्टि के बन्धनो से आबद्ध कहा। जीवन म निराशावादियो की भर्त्सना करते हुए उन्होने लिखा "निराशावादी अपने चारों ओर निराशा का एक कृत्रिम वातावरण बना लेता है और अवसादपूर्ण विचारो रूपी मदिरा की पुष्टि किया करता है। ससार यदि दु खपूर्ण होता तो उसकी सत्ता

सम्भव नहीं थी और फिर उसको दुःखपूर्ण सिद्ध करने के लिए किसी दार्शनिक की भी आवश्यकता नहीं थी।"* बंगला भाषा में लौकिक जीवन के प्रति अभिव्यक्त प्रेम की प्रतिध्वनि आलोच्यकाल के हिन्दी साहित्य में भी सुनाई पड़ती है। कहना न होगा लौकिकतापरक पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से इस लोक से परे (Transcendental) व संसार को माया समझ अकमण्य बने रहने की प्रवृत्ति का अन्त हुआ। हिंदी साहित्य में इस भावना के प्रसार में रवीन्द्रनाथ के काव्य का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।

इहलोक की महत्ता का प्रतिपादन

आलोच्यकाल में सबसे पहले बुद्धिवाद का आश्रय लेकर श्रीधर पाठक को हम जगत् की सत्यता प्रतिपादित करते हुए पाते हैं। रवीन्द्रनाथ की तरह पाठकजी भी जगत् को सत्य एवं आनन्दमय मानते हैं। उन्होंने लिखा है

जिसका यह सब रचा हुआ है वह परमेश्वर सच्चा है
जगत के सच्चे होने का मत क्या कर तब कच्चा है
जो सच्चा है वह प्यारा है वही सकल सुख का आगार
वही मनुष्यों के जीवन को देता है आनन्द अपार
जगत को झूठा झूठा करके करो नहीं उसका अपमान
बुद्धि को अपने काम में लाओ, हे मनुष्य हे बुद्धि निधान+

जगत् को सच्चा मानने की विचारधारा का शम प्राण भारतीय जनता द्वारा प्रतिकार किया जाना भी स्वाभाविक था। श्रीधर पाठक द्वारा दिए गए सत्यता के सन्देश का स्वागत करने पर भी उससे भोगवाद के प्रश्रय की आशंका/ संदेह की

---

* रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'साधना' मैकमिलन एण्ड का० लन्दन (मु०) १९१३ ई० पृष्ठ ५३

+ श्रीधर पाठक 'जगत सचाई' पृष्ठ १

गयी। किन्तु श्रीधर पाठक पाश्चात्य सभ्यता की प्रगतिशीलता के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे। भारत व इंगलैंड के सम्पर्क को उन्होंने शुभ अवसर माना।*

अंग्रेजी के कवि लांगफेलो (Longfellow) के स्वर में स्वर मिलाते हुए उन्होंने संसार के मिथ्यापन की विचारधारा का खण्डन किया

कहो न प्यारे मुझ से ऐसा झूठा है यह सब संसार
थोथा झगड़ा जी का रगड़ा केवल दुख का हेतु अपार
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान है निस्संदेह
फिर भी तो छोड़ा नहीं जाता पल भर को भी उनसे नेह
+ + +
जगत है सच्चा तनक न कच्चा समझो बच्चा इसका भेद
पीओ खाओ सब सुख पाओ कभी न लाओ मन में खेद
+ + +
समझ के सारे जग को मिट्टी मिट्टी जो कि रमाता है
मिट्टी करके सरबस अपना मिट्टी में मिल जाता है ×

---

* श्रीधर पाठक जगत-सच्चाई सार (सूचना)

जगत को मिथ्या मानकर अकर्मण्यता की गहरी नींद में निमग्न कदाचित एक ही देश इस भूतल पर है और वह भारतवर्ष है। उसके सुतों को मिथ्यात्व का घूंट अपनी मां के दूध के साथ ही मिलता है। राजा से रंक तक प्रायः प्रत्येक व्यक्ति इस माया मानवी के स्व विस्मारक क्रोड में दोलायमान है। यदि सुकर्मण्य शिरोमणी मास्टर इंगलैंड से इस देश का सम्बन्ध न हो गया होता तो कौन कह सकता है क्या होता?

× लोंगफलो के "साम आफ लाइफ" (Psalm of Life) के प्रथम दो पदों का भाव-साम्य द्रष्टव्य है

Tell me not in mournful number
life is but an empty dream
for the soul is dead that slumbers
And the things are not what they seem
Life is real life is earnest
And the grave is not its goal
Dust thou art to dust returnest
was not spoken of the soul

'Psalm of Life' का श्री लक्ष्मीनारायण ने "जीवन गीत" शीर्षक से अनुवाद किया। प्रकाशित— सरस्वती' अगस्त १९०४।

इसी प्रकार, इहलोक की सत्यता का रायकृष्णदास ने अपने गद्य-गीतों में प्रतिपादन किया। रायकृष्णदास की 'साधना" के गद्य-गीतों पर रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जली' के गीतो का गहरा प्रभाव प्रतिफलित हुआ है। रवीन्द्रनाथ की तरह रायकृष्णदास फूलो के सौंदर्य मे ईश्वर के प्रेम का दर्शन करते हैं। संसार को माया कहने वालो को ही वे भ्रमित मानते हैं क्योंकि विश्व ईश्वरमय है तथा संसार को छोड कर बाहर न कोई जगह है और संसार से हट कर ईश्वर से दूर होने की बात सोचना भी पाप व नीचता है।

भक्ति का स्वरूप स्वर्ग के बदले भू-केन्द्रित

बुद्धिवाद के प्रभाव से इहलोक की सत्यता मे विश्वास के साथ उसे सुन्दरतर व ग्रहणीय बनाने की प्रेरणा मिली। "साकेत" के राम स्वर्ग का संदेश लेकर पृथ्वी पर अवतरित नहीं होते वरन् वे पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने की भावना से अवतार लेते हैं।* धार्मिक क्षेत्र मे मत मतान्तरों का जञ्जाल वितण्डा-वाद का पोषक था। बुद्धिवाद के प्रभाव से आलोच्य काल में धार्मिक विभेदों व मत मतान्तरों से परे भक्ति सामान्य आध्यात्मिक प्रवृति के रूप मे प्रतिष्ठित हुई। ईश्वर को सर्वज्ञ और सर्वव्यापी मानने पर मूर्ति-पूजा व अवतारवाद में विश्वास कम होने लगा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कथमहं नास्तिक' गद्य-गीत में केवल मूर्तियो मे ईश्वर की सत्ता मे संदेह प्रकट किया।+ जयशंकर प्रसाद द्वारा मूर्तिपूजा का लिया गया पक्ष मूर्तिपूजकों की ओर से रक्षणात्मक प्रवृति (defense mechanism) का सूचक है। चित्राधार' मे प्रसाद ईश्वर को सर्वव्यापी बता कर मन्दिर में भी उसका अस्तित्व अवश्यमेव मान लेते हैं।—साथ ही सगुण भक्ति में विश्वास करते हुए भी

---

* संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया
(मैथिलीशरण गुप्त साकेत')

+ आपकी सत्ता को हम सारे जगत् में देख केवल प्रतिमाओं में ही हमारी अतिशय प्रेम नहीं है। (महावीर प्रसाद द्विवेदी कथमहं नास्तिकः)

— जब मानते हैं व्यापी जल भूमि मे अनिल में
तारा शशांक में भी आकाश में अनल में
फिर क्यो ये हठ है प्यारे मंदिर मे वह नही है
वह शब्द जो नहीं है उसके लिए नहीं है।

(जयशंकर प्रसाद चित्राधार)

प्रसाद सम्पूर्ण प्रकृति म ईश्वर का विराट रूप देखते हैं। + गिरधर शर्मा सगुण व निगु ण के भेद को अस्वीकार करते हुए ईश्वर की भावना म उनके इन नाना रूपो का समन्वय करते हैं।* किन्तु आय समाजी कवि नाथूराम शर्मा शकर' मूर्तिपूजा व धार्मिक वितण्डावाद के कट्टर विरोधी हैं। शकर की मूर्ति को वे प्राण हीन' व जडदेव' सम्बोधित कर व्यग करते हैं × तथा 'गोदान' के बदले 'वाटर साइकिल स वतरणी पार कराने का ब्राह्मण समाज की ओर व्यग्य करत हैं।* अस्तु ईसाई धम के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रवर्तित ब्रह्म समाज, आय समाज आदि की उपासना पद्धति म मूर्तिपूजा क लिए स्थान नही था। युग की बुद्धिवादी आवश्यकताओं न मर्तिपूजा म विश्वास को हिला दिया एव भक्ति को सामान्य आध्यात्मिक मानसिक प्रवति के रूप म अपनाया गया। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध तथा जयशकर प्रसाद ने विभिन्न धर्मों की एकता प्रतिपादित की तथा उन्ह एक ही स्थान पर पहु चाने वाले भिन्न रास्तो के रूप म देखा।**

+ जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा
जिस मन्दिर के दीप इन्दु दिनकर और तारा

(जयशकर प्रसाद)

* निगु ण सवगुणाकर है तू
न्यायी करुणा सागर है तू (गिरधर शर्मा)

× शल विशाल महीतल फाडे बन तिनको तुम तोड बढे हो
ले नुढकी जनधार धडाधड बधर गोलमोल गढे हो
प्राण विहीन कलेवर धार थिर ज रहे न लिखे न पढे हो
हे जडदेव शिवासत शकर भारत मे करि कोप चढे हो

(नाथूराम शकर)

* ठेके पर लेकर वैतरणी देकर दाढी मू छ
वाटर साइकिल के द्वारा बिना गाय की पु छ
मरा को पार उतारु गा

(नाथूराम शकर)

** बौद्धमत हिन्दू धम इसलाम या ईसाइयत
हैं जगत् के बीच जितने जैन आदिक और मत
वह बताता है सभी की एक ही है असलियत
है स्वमत मे निज विचारो के सबब हर एक रत
ठौर है वह एक ही यह राह कितनी हैं गई
दूध इनका एक है केवल पियाले हैं कई

(हरिऔध 'धमवीर')

मस्जिद पगोडा जिसको बनाया तू ने
सब भक्ति भावना के छोटे बडे नमने

(जयशकर प्रसाद चित्राधार')

बुद्धिवाद के बढ़ते हुए प्रभाव में आलोच्य काल के साहित्यकारों का अवतारवाद में आप्त ग्रन्थों से विश्वास हटने लगा। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मैथिलीशरण गुप्त को एक पत्र लिखा जिसमें गुप्तजी द्वारा बुद्ध को अवतार तथा वेदों को ईश्वर कृत मानने पर उन्होंने बुद्धिवादी दृष्टिकोण से आपत्ति की। + मूर्तिपूजा व अवतारवाद के खण्डन की दृष्टि से आर्य समाज आंदोलन में बुद्धिवाद का समावेश था किन्तु आर्य-समाज की कट्टरता ने उसकी तर्क सम्मतता की सीमाएं निर्धारित करदी थी। वेदों को ईश्वरीय वाणी मान तथा आधुनिक विज्ञान आदि की भी सभी बातें वेदों में निहित बतला आर्य-समाज ने माना तर्क और बुद्धि के द्वार खोल कर तत्काल ही पुनः बंद कर दिए। 'श्री सत्यार्थ प्रकाश' की सरस्वती में आलोचना करते हुए द्विवेदी जी ने वेदों के अविर्भाव व उनकी अपौरुषेयता के सम्बन्ध में दिए हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती के तर्कों को निर्बल कहा तथा उनमें खोखले की तरह न काटी जानेवाली योग्य युक्तियों और प्रमाणों का अभाव बतलाया। × खोखले की प्रशंसा करनेवाले द्विवेदी जी पर बुद्धिवाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

अवतारवाद ईश्वरावतारों का मानव रूप में चित्रण

आलोच्य काल की कविता में बुद्धिवाद का सबसे अधिक प्रभाव अवतारवाद की धारणा पर पड़ा। वाल्मीकि ने रामायण में राम का तथा वेद व्यास ने महाभारत में कृष्ण को मानव रूप में ही चित्रित किया था किन्तु पौराणिक काल में राम और कृष्ण के चरित्रों में ईश्वरत्व का आरोप किया गया तथा मध्य युग (भक्ति काल) में उन्हें ईश्वर ही मान लिया गया। गीता में कृष्ण ने धर्म की ग्लानि होने तथा दुष्टों द्वारा साधुओं को कष्ट पहुँचाये जाने पर धर्म संस्थापित करने युग-युग अवतार लेने की घोषणा की थी किन्तु आधुनिक युग में तर्क ने अवतार की आवश्यकता के सामने ही प्रश्न चिह्न लगा दिया। आधुनिक युग में मनुष्य तर्क करने लगा कि रावण या कंस जैसे दुष्टों का नाश करने के लिए सर्व शक्तिमान ईश्वर को अवतार लेने की क्या आवश्यकता हो सकती है। किसी साधारण-सी घटना से भी इस प्रकार के अनेक दुष्टों को क्षण भर में नष्ट किया जा सकता है। लीला के लिए ही यदि ईश्वर अवतार ले तो बीसवीं शताब्दी के मनुष्य की उन अलौकिक लीलाओं में श्रद्धा भी शेष नहीं रही जिसकी सम्भावना ही मनुष्य की बुद्धि से परे थी।

+ महावीर प्रसाद द्विवेदी 'द्विवेदी पत्रावली' (सं० बैजनाथसिंह विनोद) भारत ज्ञान पीठ, काशी प्रथम संस्करण १९५४, पृष्ठ ११६

× महावीर प्रसाद द्विवेदी 'विचार विमर्श' भारती भण्डार काशी, संवत १९८८ पृष्ठ २२४

मथिलीशरण गुप्त परम वैष्णव कवि हैं । निम्नलिखित पंक्तियों में अवतार-वाद में गुप्त जी के हिलते विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या
जग में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या
तो मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करें
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे

हमारा बुद्धिवादी युग दशरथ-पुत्र राम को कण-कण में व्याप्त होनेवाले ईश्वर के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता परन्तु उस दशा में गुप्तजी का आस्तिक मन सर्वव्यापी ईश्वर की चिंता न कर राम में ही रमा रहना चाहता है । कहना न होगा गुप्तजी का आस्तिक मन राम को यदि वे ईश्वर रूप में स्वीकार नहीं किए जाते तो ईश्वर से भी बढ़कर मानना चाहता है । तुलसी की तरह वे कृष्ण को भी राममय देखते हैं

धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग,
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग

अनघ' में बुद्ध का अवतार मानकर भी यशोधरा में गुप्तजी गोपा का मान रखने तथागत को उसके द्वार पर पहुँचाते हैं यह मानो बौद्ध धर्म पर गुप्तजी की वैष्णवता की विजय है । साकेतकार के राम कवि की दृष्टि में उसके विश्वास को बचाने के लिए अवतार लेते हैं

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया
सुख शांति हेतु मैं क्रांति मचाने आया
विश्वासी का विश्वास बचाने आया

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने अवतारवाद में अपनी आस्था की भिन्न प्रकार से रक्षा की है । गीता का प्रमाण देकर वे महापुरुष का अवतार होना निश्चित बताते हैं और इसी दृष्टि से कृष्ण को अवतार मानते हैं । प्रिय प्रवास' की भूमिका में उन्होंने लिखा है

हम लोगों का एक संस्कार है वह यह कि जिनको हम अवतार मानते हैं उनका चरित्र जब कहीं दृष्टिगोचर होता है तो हम उसकी प्रति पंक्ति में या न्यून से न्यून उसके प्रति पृष्ठ में ऐसे शब्द या वाक्य अवलोकन करना चाहते हैं जिसमें उसके ब्रह्मत्व का निरूपण हो । जो सज्जन इस विचार के हों, वो मेरे प्रेमाम्बुप्रस्रवण, प्रेमाम्बुप्रवाह प्रेमाम्बुवारिधि नामक ग्रन्थों को देखें उनके लिए यह ग्रन्थ नहीं रचा गया है । मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है ब्रह्म करके नहीं । अवतारवाद की जड़ में श्री मद्भगवद्गीता का यह श्लोक मानता हूँ

यद्-यद् विभूतियत्मत्व श्री मर्दजिनमववा
तत्तदवावगन्त्त्व ममतेजाशसभवम्

अतएव जो महापुरुष है उसका अवतार होना निश्चित है।" अस्तु, आलोच्य काल में अपने आराध्य को अवतार कहने के लिए इस युग के साहित्यकारों को नवीन बुद्धिसगत आधार ढूंढना पड़ा। बुद्धि एक ऐसा साधन है जिसका प्रयोग अपने विश्वास की रक्षा करने के लिए भी किया जा सकता है। इस दृष्टि से आलोच्य काल में हम धर्म का बौद्धिकरण (rationalisation) की प्रवृत्ति पाते हैं। जहाँ तक विश्वास का प्रश्न है द्विवेदी युग की कविता में कवियों ने अवतारवाद में अपनी आस्था प्रकट की है किन्तु कविता में उन्होंने राम और कृष्ण के जीवन चरित्र को जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह एक आदर्श मनुष्य का रूप है। द्विवेदी युग के राम और कृष्ण पौराणिक काल के राम और कृष्ण के समान अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न नहीं हैं। वे मानवीय शक्तियों के सहारे ही महान् दिखाई देते हैं। यह आधुनिक युग के बुद्धिवाद का ही प्रभाव है।

अतिप्राकृत-तत्व के बदले स्वाभाविकता का समावेश

राम और कृष्ण का अवतार मानते हुए भी विज्ञान व बुद्धिवाद के आधुनिक युग में उनका मानव रूप में चरित्रगान करना स्वाभाविक व वाञ्छनीय था। अवतारवाद में विश्वास न करते हुए भी मानवता की सामान्य भूमि पर उनका चरित्र पढ़ आधुनिक बुद्धिवादी भी उससे प्रभावित हो सकता है। बंगला के उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी अपनी 'कृष्ण चरित्र' पुस्तक में यह सिद्ध कर चुके थे कि किस प्रकार कृष्ण के स्वाभाविक और मानुषिक कार्य अतिमानुषिक रूप में परिवर्तित कर दिये गए थे। फलतः आलोच्य काल में राम और कृष्ण के अधिमानुषिक कार्यों को स्वाभाविक व मानुषिक रूप में चित्रित किया गया। रीतिकाल के कवियों की दृष्टि में प्रमदाओं के पदाघात से अशोक के पुष्पों का विकसित होना, चकोर का चाँद की ओर देख कर अंगारे चुगना, हंस का दूध और पानी को अलग कर देना मान हुए सत्य थे। इसी प्रकार भक्ति-काल में सूरदास की दृष्टि में कृष्ण जैसे छोटे से बालक का बड़े बड़े राक्षसों को मारना, आग पी जाना, पर्वत को अंगुली पर उठा लेना, यमुना में कूद कर कालिय नाग का दमन करना अथवा तुलसी के लिए पत्थरों का पानी पर तैराना, हनुमान का आकाश के मार्ग से जाकर सजीवन पर्वत ले आना सहज विश्वास के विषय थे किन्तु आधुनिक युग का विज्ञान को जाननेवाला मनुष्य किसी प्रकार इन चमत्कारों में विश्वास नहीं कर सकता था। फलतः काव्य में केवल स्वाभाविक चित्रण किया जाने लगा।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने कृष्ण के अति मानुषिक कार्यों को प्रियप्रवास में स्वाभाविक व मानसिक रूप में चित्रित किया। कृष्ण चरित में सम्बन्धित उनके शैशवकालीन अद्भुत कार्यों को प्राकृतिक घटनाओं के रूप में चित्रित

किया गया। यद्यपि नन्द के पुण्य प्रताप से सयोगवश कृष्ण की रक्षा हो जाती है। वरुण द्वारा नन्द हरण की कथा का कवि ने नन्द के स्वाभाविक रूप से जल में डूबने के रूप म उल्लेख किया है। कृष्ण साहस पूर्वक उन्हें बचा कर अपना कर्तव्य पालन करते हैं। कालिय मर्दन की कथा को 'प्रिय प्रवास' म भिन्न रूप दिया गया है। यमुना म रहने वाले सर्प के सहस्र फणो का उल्लेख नहीं मिलता। महाभुजग सहस्रग भुजगिनियो के साथ यमुना म रहा करता था। उनके कारण यमुना म उनके निवास स्थल का जल विषमय हो गया था जिसे पीकर पशु-पक्षी मनुष्य आदि दिन में प्रभाव से मर जाते थे। कृष्ण ने एक अवसर पर गोप और गायो को यह पानी पीकर दिन म प्रभावित होते देखा। कृष्ण ने यत्न से उनका उपचार किया तथा लोकमंगल की भावना से उस सर्प का वध करना निश्चय किया। एक दिन कृष्ण अपनी वंशु लेकर यमुना म उस स्थल पर कूद गये जहा सर्प अपनी भुजगिनियो के साथ रहता था। अपने अद्भुत वेणुवादन से कृष्ण ने सभी सर्पों को मन्त्र मुग्ध सा कर दिया और कानन मे ले जाकर छोड दिया अथवा उनका वध कर दिया। कृष्ण द्वारा दावाग्नि पीने की कथा को भी 'प्रिय प्रवास' म बुद्धिसंगत रूप प्रदान किया गया है। एक अवसर पर वन म किसी स्थल पर भयकर आग लग जाती है जिसम कुछ ग्वाल और गायें घिर जाते हैं। कृष्ण अपने साहस व धैर्य से उन सबको बचा लेते हैं व ले आते हैं। कृष्ण द्वारा उगली पर गोवर्द्धन पर्वत धारण करने की कथा का 'प्रिय प्रवास' मे बुद्धि सगत रूप यह है कि ब्रज म भयकर वर्षा होने पर कृष्ण ने ब्रजवासियो को गिरि कन्दराओ म सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया इसी से सभी लोग कहने लग कि श्याम ने गिरी द्र को उगली पर रख लिया। इस प्रसंग म इन्द्र के कोप की पौराणिक कथा की चर्चा नहीं की गई है। बौद्धिकरण की यह प्रवृत्ति हरिऔधजी की अन्य रचनाओ म भी मिलती है। 'वैदेही वनवास' म उन्होंने रावण को दस सिरवाला और बीस भुजाओ वाला कहने का कारण यह बतलाया है कि वास्तव म उसके दस सिर व बीस भुजाए नहीं थी वरन् वह इतना बुद्धिवान व बलशाली था कि उसे दस मुख व बीस भुजाओ वाला कहा जाने लगा।

मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओ म भी अलौकिक चमत्कारिक घटनाओ का उल्लेख नहीं मिलता। 'जयद्रथ वध' म सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को वध करने का अर्जुन का प्रण पूरा नहीं हो पाता। प्रायश्चित स्वरूप जब अर्जुन चिता मे जलने की तैयारी करता है एव जयद्रथ व कौरवगण इस दृश्य को देखने के लिए समुपस्थित होते है उस समय कृष्ण पश्चिम दिशा की ओर इगित कर 'अभी दिन शेष होने की सूचना देते है। सभी आश्चर्यपूर्वक पश्चिम दिशा म बादलों के बीच सूर्य को निकलते हुए देखते है। कवि ने इस घटना का प्रकृत रूप म ही उल्लेख किया है। कृष्ण के आदेशानुसार माया द्वारा सूर्यास्त से पूर्व ही सूर्य को बादलो मे छुपाने के प्रसग की चर्चा नहीं की गई है। पाठक यह सोच सकता है कि सयोगवश बादल

घिर आए होंगे और यह भ्रम हो गया होगा कि सूर्यास्त हो गया। 'साकेत' के राम विश्वास की दृष्टि से ईश्वरावतार है किन्तु साकेतकार ने राम का चरित-गान सामान्य मनुष्य रूप ही किया है। 'साकेत' का गृह चित्र सामान्य जीवन के चित्रों से भिन्न नहीं है।+ तुलसी के 'मानस' की मथरा की वाणी पर सरस्वती आकर बैठती है और वह कैकयी से राम वनवास की कुमन्त्रणा करती है। किन्तु साकेतकार को कैकयी के उज्ज्वल चरित्र की रक्षा के लिए स्वर्ग से सरस्वती को नहीं बुलाना पड़ता अपितु कवि मनोवैज्ञानिक आधार पर कैकयी के चरित्र का अकन करता है। भरत के ननिहाल रहने और राम राज्याभिषेक की परिस्थिति में मथरा का कथन 'भरत से सुत पर भी सदेह, बुलाया तक न उसे जो गेह' कैकयी के वात्सल्य भाव को जाग्रत करता है तथा वह प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होती है। द्विवेदी युग में पौराणिक कथाओं का प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। पुराणों की कल्पित कथाओं को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया जिनमें देवता दिव्य गुणों के प्रतीक तथा असुर अवगुणों के प्रतीक दर्शाये गए। मैथिलीशरण गुप्त के 'शक्ति' खण्ड काव्य में शक्ति का जन्म देवताओं के शरीर से निकले हुए ज्योति पिण्डों के पुजीभूत मिलन से हुआ तथा शक्ति पाप के प्रतीक 'महिषासुर' पर विजयिनी होती है।

स्वाभाविक चित्रण पौराणिक चरित्रों में मानव सुलभ कमजोरियों के प्रति सहानुभूतिशीलता

द्विवेदी युग में राम और कृष्ण के अवतार रूप में आस्था रखते हुए भी जब कविता में उनका मानव रूप में चित्रण किया गया तब यह स्वाभाविक था कि उनके चरित्र में मानव स्वभाव की कमजोरियों का भी आकलन किया जाता। मनुष्य सर्वथा बुरा या भला नहीं होता। वह बुराई और भलाई का सम्मिलित पुञ्ज है। अतः एक ओर जिन चरित्रों को पूर्व युग में बुरा दर्शाया गया था उनके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी अंकित किया गया तथा दूसरी ओर बुद्धिवाद के आग्रह से राम और कृष्ण के चरित्र ईश्वरत्व की ऊंचाई से उतर कर मानवता की सामान्य भूमि पर आ गये। हिन्दी कविता में यह प्रभाव बंगला कवि माइकल मधुसूदन दत्त की रचनाओं के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। माइकल मधुसूदन ने होमर, तासो, वर्जिल मिल्टन आदि पाश्चात्य कवियों की काव्य धारा में अवगाहन किया था फिर भी वे अनुकर्त्ता मात्र न होकर एक जागरूक प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने पौराणिक कथानकों को

+ राम राजा हो वहां पूर्णावतार पवित्र
पर न हमसे भिन्न है साकेत का गृहचित्र
(मैथिलीशरण गुप्त साकेत)

लेकर प्राचीन चरित्रों का नवीन दृष्टिकोण से पुनः निर्माण किया। इस दृष्टि से मेघनाद वध' उनका महत्वपूर्ण काव्य है। मेघनाद वध में राम और रावण का युद्ध अनिवार्य रूप से बुरे और भले का युद्ध नहीं है वह तो उन्होंने दो जातियों व दो भिन्न सभ्यताओं का संघर्ष है कवि ने एक ओर राम के चरित्र में मानवीय दुर्बलताओं का समावेश किया है व दूसरी ओर रावण के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी दर्शाया है। मेघनाद वध का रावण महान् राजा योद्धा और पिता है एवं मानवीय भावों समन्वित प्रोत है। हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद-वध का अनुवाद किया। अनुवाद होने पर भी मैथिलीशरण गुप्त ने राम के ईश्वरत्व में अविश्वास व राक्षसों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने में अपनी दुविधा व्यक्त की है एवं भूमिका में व यह लिखे बिना न रह सके कि मधुसूदन ने राक्षसों के प्रति पक्षपात दर्शाया है।* मूल-ग्रन्थ के तृतीय सर्ग में नृमुण्डमालिनी को देख राम मन में भय भीत हो जाते हैं पर अनुवादक ने राम के वीर चरित्र की रक्षा के लिए उन्हें नृमुण्ड मालिनी दूती के साहस पर प्रसन्न बताना चाहा है।+ इसी प्रकार राक्षस नारियों की वीरता से मूल ग्रन्थ के राम विस्मित हो उठते हैं पर अनुवादक का इससे राम के वीर जीवन का विनोद बताना अभीप्सित है।** स्पष्ट मैथिलीशरण गुप्त राम

* मैथिलीशरण गुप्त 'मेघनाद वध (निवेदन) पृष्ठ ५६।
पापी राक्षसों के प्रति कवि का इतना पक्षपात देख कर जान पड़ता है लंका का राजकवि भी मेघनाद वध में वर्णित घटनाओं का ऐसा ही वर्णन करता।

\+ वहीं, नृमुण्डमालिनी के चले जाने पर राम विभीषण से कहते हैं
मित्र देख इस दूती की
आकृति मैं भीत हुआ मन में विचार के
तत्क्षण ही युद्ध साज। मूढ़ वह मन है
छोड़ने चले जो इन सिंहियों की मना को
देखूं चलो मैं तुम्हारी भ्रातृ पुत्र-पत्नी को
गुप्तजी का मानस राम को भीत नहीं अनुमान कर सकता अतः व उनका परिवर्तित रूप प्रस्तुत करते हैं
मित्र देख इस दूती का
साहस प्रसन्नता हुई है मुझे मन में
निश्चय ही सिंहनी सी वीर नारियां हैं ये
देखूं चलो मैं तुम्हारी भ्रातृ-पुत्र पत्नी को

** राक्षस नारियों को देख कर वहीं राम चंचल हो उठते हैं
क्या ही विस्मय है कभी ऐसा तीन लोक में
देखा सुना मैंने नहीं। जागते हो रात को
क्या मैं स्वप्न देखता हूं? सत्य कहो मुझ से

के चरित्र मे किसी प्रकार की हीनता की कल्पना भी करने को तत्पर नही हैं। पर अनुवादक की बुद्धि ने उनके अपने विश्वासों को मूल-ग्रन्थ के अनुवाद में समाविष्ट करने से रोक लिया है।

बुद्धिवाद का यह प्रभाव स्वय गुप्तजी की मौलिक रचनाओं म स्पष्ट है। साकेत' म उन्होने राम की मानवीय कमजोरियो को भी दर्शाया है तथा 'रावण' के चरित्र को अधिक सहानुभूति-पूर्वक देखा है। लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने पर राम कुपित हो 'भाई का बदला भाई हो' कह कुम्भकर्ण पर प्रहार करते हैं। कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण को मूर्छित-सा देख राम उसकी सहृदयता से अभिभूत हो जाते हैं तथा रावण को अपने स अधिक सहृदय पाते हैं। विभीषण के चरित्र की उज्जवलता को गुप्तजी न भिन्न रूप म स्थापित किया है। माइकल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध का विभीषण राम की सेना म मिल जाता है तब मेघनाद अपने चाचा विभीषण को देशद्रोही कह कर उसकी भर्त्सना करता है पर गुप्तजी के 'साकेत' का विभीषण राष्ट्रीयता की क्षुद्र सीमाओ को तोड कर मानव धर्म की दुहाई देता प्रतीत होता है। वह कहता है, है वह मेरा देश नही जो करे दूसरो पर अन्याय'। इस प्रकार विभीषण के चरित्र की जिस कमजोर रग को माइकल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद वध' में पकडा था गुप्तजी साकेत' म उस रोग का निराकरण कर उसके चरित्र को और भी उज्जवलता प्रदान कर दत हैं। 'साकेत' म ककयी का चरित्र भी पश्चाताप की ज्वाला म तप कर निखर उठता है। अपने पुत्र भरत के चरित्र पर अ य जनो द्वारा सन्देह की मनोवैज्ञानिक मतप्तता म व्यथित हो वह राम के लिए वनवास माग बैठी और इससे दु खी हो दशरथ ने अपने प्राण त्याग दिए। इस कलक का निराकरण करने उसे पाश्चाताप की कितनी घोर ज्वाला मे जलना पडा है राम को लौटाने के लिए जुटी हुई चित्रकूट की सभा माता इसी की ज्वलत प्रतीक है। भरत की निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए पति की तरह अपने पुत्र का भी खाने की सौगध लेना, दु खिनी उर्मिला को देख उसके दु ख का स्वय कारण होने की लज्जा होना राम को लौटाने के लिए सभी तर्को को छोड केवल अपने अधीर हृदय की दुहाई देना एव

मित्र रत्न, जाता नहीं मैं भेद कुछ भी
चचल हुआ हूँ मैं प्रपच यह देख के।

किन्तु, यह चचलता गुप्तजी को अभीप्सित नहीं है अत वे इसका परिवर्तित रूप प्रस्तुत करते हैं

सचमुच दृश्य यह अपूर्व है
मित्र अबलाए अबलाए दीखती हैं ये
मानो शत मूर्तियों से शूरता है प्रकटी
मेरे वीर जीवन का बढता विनाद है।

जन्म जन्म के लिए स्वयं की वासना पाठक के हृदय पर वरुणा की अमिट रेखा छोड़ जाता है।

नैतिक मान्यताओं की बुद्धिवादी परिणति

आलोच्य-काल में राम और कृष्ण के पौराणिक चरित्रों का मानव रूप में अंकित किया गया। राजनीति में महात्मा गांधी ने चारित्रिक नैतिकता पर बल दिया था अतः इस पृष्ठ भूमि में हमारे आदर्श महापुरुषों में सामान्य बुद्धि द्वारा समझी जानेवाली चारित्रिक बुराइयां खटकने वाली थीं। सौभाग्यवश राम के चरित्र पर किसी प्रकार का लाञ्छन नहीं था किन्तु कृष्ण के चरित्र को समाज के नैतिक पतन के साथ लाञ्छित होना पड़ा। सूर के पदों में निभृत राधा और कृष्ण की पावन प्रेम धारा रीतिकाल में आकर घोर अश्लील शृंगारिकता में परिणित हो गयी। वैसे भी कृष्ण की गोपियों के साथ प्रेमक्रीडाएं सामान्य मानवीय व्यवहार की दृष्टि से नैतिक नहीं कही जा सकती। आधुनिक काल में लौकिक शृंगारिकता से पूर्ण इन कथाओं को आत्मा परमात्मा के मिलन की प्रतीक मानना बुद्धि संगत प्रतीत नहीं हुआ। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने लिखा

'आधुनिक युग के विचारों के लोगों को यह प्रिय नहीं है कि आप पत्ति-पत्ति मम तो भगवान श्रीकृष्ण को ब्रह्म लिखते चलें और चरित्र लिखने के समय कर्तुं मकर्तुं म्यथा कर्तुं समर्थ प्रभु' के रंग में रंग कर ऐसे कार्यों का कर्ता उन्हें बनावें जिनके करने में एक साधारण विचार के मनुष्य को भी घृणा होवे।' *

अस्तु 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण और गोपियों का प्रेम स्वच्छन्द प्रेम नहीं है। एक चांद को चाहनेवाली जैसे अनेक तारिकाएं होती हैं उसी प्रकार अनेक गोपियां कृष्ण को पति के रूप में वरण करने की कामना रखती हैं। कवि ने कहीं पर भी गोपियां अथवा कृष्ण का अमर्यादित व्यवहार नहीं दिखाया है। कवि ने रास लीला का भिन्न पृष्ठभूमि में चित्र अंकित किया है। शरद ऋतु में श्रीकृष्ण वेणु-वादन करते हैं तब उसकी मधुर ध्वनि सुन गृहों में गोप गोपिकाएं निकल पड़ते हैं तथा उस स्थल पर पहुंचते हैं जहां कृष्ण वेणु बजाते दिखाई देते हैं। वेणु की तान के साथ गोप गोपिकाओं के यूथ नृत्य करने लगते हैं। यह स्मरणीय है कि विवाहित गोप गोपिकाओं का यूथ एक ओर नृत्य में लीन हो जाता है अविवाहित गोपियां दूसरी ओर परस्पर साथ-साथ नृत्य करती हैं अविवाहित गोप भी अन्य स्थल पर अलग नृत्य करते हैं। कवि कृष्ण के चारित्रिक लाञ्छन को दूर करने के लिए अत्यधिक सचेष्ट प्रतीत होता है। रासलीला के प्रसंग में कृष्ण सभी सम्मिलित जनों का प्रकृति के सौन्दर्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। इस अवसर पर कृष्ण पतिव्रत धर्म के पालन की महत्ता भी दर्शाते हैं। कृष्ण के चरित्र में नैतिकता का यह अतिरिक्त समावेश युग की बुद्धिवादी प्रवृत्ति की मांग स्वरूप हुआ।

* प्रिय प्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, भूमिका

मानववाद

साहित्य में मानववाद की भावना फ्रांसीसी दार्शनिक काम्ते के विचार दर्शन के प्रभावस्वरूप विकसित हुई जिसका प्रभाव हिन्दी में बगला साहित्य के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। लोकसेवा को ही ईश्वर सेवा का रूप समझा गया।

लौकिक जीवन की इयत्ता स्वभावतः हमारा ध्यान पारलौकिकता से हटाकर मानव जीवन के सत्य पर केन्द्रित करती है। आलोच्य काल के साहित्य का केन्द्र बिन्दु ईश्वर न होकर मनुष्य ही है। यदि एक ओर ईश्वर स्वर्ग से उतर कर मनुष्यता के धरातल पर आ जाता है तो दूसरी ओर ईश्वर-सेवा के रूप में मानव-सेवा को प्रतिष्ठित किया जाता है। मानव सेवा की भावना रवीन्द्रनाथ की बगाली कविताओं के प्रभावस्वरूप रची गई। रवीन्द्रनाथ जब अपनी कविताओं में मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति कर रहे थे उस समय बगाल में भूदेव, विवेकानन्द आदि भी मानव सेवा के आदर्श की प्रतिष्ठा कर रहे थे। मानववाद की इस विचार धारा पर फ्रांसीसी दार्शनिक काम्ते (१९वीं सदी का आरम्भ काल) के विचारों का यथेष्ट प्रभाव था।

पाजिटिविस्ट दर्शन का मानववादी आधार
रवीन्द्र काव्य के माध्यम से

काम्ते का 'पाजिटिविस्ट' (Positivist) दर्शन इंग्लैंड के उन्नीसवीं सदी के उपयोगितावादी (Utilitarian) दार्शनिकों बेथम (Benthem) जेम्स मिल (Jame Mill) जान स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill आदि के विचारों पर आधारित था। इन उपयोगितावादी दार्शनिकों ने उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल में इंग्लैंड की राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया एवं सामाजिक कानून व नियमों में परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी। बेथम 'बहुजन हिताय" सिद्धान्त Greatest Good of the Greatest number) का प्रतिपादक था। उपयोगितावादियों के सम्बन्ध में बर्टेण्ड रसल (Russel) का कथन है कि दार्शनिकों के रूप में उनका इतना महत्व नहीं है जितना प्रगतिवादी परिवर्तनवादी नेताओं व ऐसे व्यक्तियों के रूप में जो अनजाने ही समाजवादी सिद्धान्तों के निर्माण के पथ प्रदर्शक बने। काम्ते ने उपयोगितावादी दर्शन के आधार पर मानव सेवा धर्म की विचारधारा का प्रसार किया।

काम्ते के अनुसार धर्म का लक्ष्य जीवन में सामान्जस्य लाना है जब हृदय व मस्तिष्क दोनों को समानतया आलिंगन मे आबद्ध करने से यह सामान्जस्य स्थापित हो सकता है। धर्म व्यक्ति के जीवन को नियमित बनाता है धर्म मानसिक स्तर के व्यक्तियों के जीवन को परस्पर सबंधित करता है। मानव विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अंध विश्वासों व उसके उपरान्त अचेतन मन द्वारा ... की ... कर यह सामन्जस्य प्राप्त कर लिया जाता था। किन्तु, ... की -

अनुकूल क्रमानुसार देवी इच्छाओं का स्थान प्राकृतिक नियम ग्रहण कर लेते हैं तथा केवल देवताओं को प्रसन्न करने की भावना नैतिक काम करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं रहती। शुभ-कार्यों की प्रेरणा सहयोगियों के प्रति प्रेम की भावना जाग्रत होने से सम्भव हो सकती है। अतः मानवता की भावना सामाजिक संगठन का नया केन्द्र बिन्दु बन गई है, मानवता का धर्म ऐसा धर्म है जो सभी मनुष्यों को संगठित कर सकता है तथा 'आत्मोत्सर्ग' उसका पथ प्रभाव सदय बन जाता है। काम्ते राजनीति को नैतिकता पर आधारित करने, नैतिकता को व्यापक उदात्त रूप में प्रतिष्ठित करने तथा पूँजी के न्यायोचित वितरण का पक्षपाती था। लोकसेवा के उद्देश्य से लिये गये संन्यास के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टि से संन्यास को उसने अमान्य ठहराया।

तत्कालीन युग में भारत में काम्ते का पाजिटिविस्ट दर्शन पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। हमारे देश के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में हमारी राष्ट्रीय जागृति के लिए उसमें उपयुक्त विचारधारा थी। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में यह दर्शन बंगाल में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। निरीश्वरवादी होने के कारण भूदेव व बंकिम इस दर्शन को अपनाने के लिए विशेष उन्मुख नहीं हुए किन्तु, स्वामी विवेकानन्द द्वारा 'दरिद्रनारायण' एवं अरविन्द द्वारा वासुदेव के रूप में सामान्य पददलित की ईश्वर रूप में सेवा की प्रेरणा इसी दर्शन द्वारा मिली। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से मानव-सेवा की दीक्षा ली थी किन्तु नर को नारायण रूप में प्रतिष्ठित करनेवाली भावना में काम्ते के दर्शन का अवश्य प्रभाव था। गीता से धार्मिक प्रेरणा लेनेवाले बंकिम के विचारों में भी पाजिटिविस्ट दर्शन का समावेश हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मानवता में ईश्वर के दर्शन किए। बंगाल में प्रवाहित होने वाली मानववाद की विचारधारा रवीन्द्रनाथ के माध्यम से हिन्दी में भी आई।

रवीन्द्रनाथ अपने एक गीत में पुजारी को संबोधित कर कहते हैं "भजन पूजन साधन आराधन छोड़ दे। पुजारी मन्दिर के कपाट बन्द किये, उसके कोने में अपने मन के एकान्त अन्धकार में तू चुपचाप किसकी पूजा कर रहा है। आँख खोल कर देख तेरा आराध्य ईश्वर यहाँ नहीं है। वह वहाँ है जहाँ किसान धरती पर हल चला कर मिट्टी तोड़ रहा है और श्रमिक हथौड़े से अहर्निश पत्थर तोड़ रहा है। मुक्ति? कहाँ है मुक्ति? मुक्ति तुझे कहाँ मिलेगी जब वह स्वयं ही सृष्टि के बन्धन को स्वीकार कर सबके साथ बंधा है। अपने पवित्र वस्त्रों को छोड़ कर अपने प्रभु की तरह कर्म-पथ पर आ और उसके साथ कर्म में लीन होकर स्वेद बहा।' इस गीत में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रूढ़ि, पूजा आदि धर्म के बाह्याडम्बरों को तिलाञ्जली देकर समाज के पीड़ित शोषित मनुष्यों में ईश्वर के दर्शन किए हैं। मानव सेवा का

ईश्वर सेवा के रूप मे प्रतिष्ठित करने की भावना हिंदी मे रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, जयशकर प्रसाद, हरिऔध प्रभृति कवियो की कविता मे व्यक्त हुई है।

मानव-सेवा ही ईश्वर सेवा

रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी कविता पर पाश्चात्य प्रभाव को अस्वीकार किया है। 'विदेशी काव्य का प्रचार तब कम था और उन दिनो विदेशियो से घृणा भी थी। इसलिए उनका प्रभाव मेरे ऊपर नही पडा।' किन्तु बगला के प्रभाव को उन्होने स्वीकार किया है। 'सबसे पहला प्रभाव मेरे ऊपर बगला का पडा। तब रवीन्द्र का भी उदय हो रहा था। उनका प्रभाव भी मेरे ऊपर है।+ कहना न होगा बगला के माध्यम से त्रिपाठी जी की कविता पर पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुआ है। उनके काव्य मे मानववादी स्वर परोक्ष रूप से पाश्चात्य प्रभाव ज्ञापित करता है। अस्तु रामनरेश त्रिपाठी ईश्वर को मन्दिर, मस्जिद अथवा गिरजाघर मे नही देखते। उनकी दृष्टि मे ईश्वर का स्थान 'दीनजनो की भूख प्यास' मे है। अन्वेषण कविता मे कवि तथाकथित ईश्वर भक्ति व वास्तविक सेवा के वैषम्य की विडम्बना चित्रित करता है। ईश्वर भक्त वन कुंज सगीत और उपवन मे ईश्वर को ढूंढता है किन्तु ईश्वर गरीबो के घर व दुखियो की आह मे समाया है। त्रिपाठी जी के मिलन का नायक आनन्द अपनी पत्नी विजया के साथ वन मे रहा करता था। किन्तु विदेशी शासको द्वारा देश के परतन्त्र होने तथा इस कारण देश की जनता के कष्टो के वर्णन से वह स्वदेश को शत्रुओ से मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील होता है। विजया भी अपने प्रियतम का साथ देती है एव पुरुष वेष धारण कर युद्ध के लिए उसके साथ प्रस्थान करती है। दुर्भाग्य से मार्ग मे दुर्घटनावश आनन्द नदी मे डूब जाता है। तब विजया अधीर नही होती वरन् पति की अभिलाषा पूर्ण करना अपना कर्त्तव्य निश्चित करती है तथा स्वदेश सेवा मे अपना तन मन प्राण समर्पित कर देती है। नदी मे डूब कर भी आनन्द का प्राणान्त नही होता। एक स्थान पर मुनि उसे नदी से बाहर निकाल कर उसका उपचार करते हैं एव स्वस्थ होकर आनन्द व मुनि दोनो स्वदेश सेवा मे लीन हो जाते हैं। अन्त मे सभी लोगो की सेवा से देश की जनता स्वतन्त्रता प्राप्त करती है तथा आनन्द व विजया का पुनर्मिलन होता है। स्पष्ट ही 'मिलन' एक प्रेम कथा सामान्य प्रेम कथा मात्र नही है। स्त्री व पुरुष के प्रेम के चरम रूप मे मानव सेवा धर्म की प्रतिष्ठा की गई है। पाजिटिविस्ट-दर्शन

+ पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' मैं इनसे मिला' पहली किस्त

के विचारानुकूल इस काव्य म त्रिपाठीजी ने लोकसेवा को ही ईश्वर भक्ति का रूप प्रदान किया है तथा वैराग्य भावना का विरोध किया है

ईश्वर भक्ति लोकसेवा है
एक ग्रथ दो नाम
वन मे बस कसे हो सकता
है मनुजोचित काम
पृथ्वी पर सुख शाति बनाना
देकर निज श्रम शक्ति
मनुष्यता का ग्रथ यही है
और यही हरि भक्ति

विजया अपने प्रेम का उन्नयन (Sublimation) कर लोकसेवा मे शाति पाती है।

जन जन मे प्रेमी को दिखती
है प्रियतम की काति
इसस उसे लोकसेवा म
मिलती है ग्रति शाति

'मिलन' खण्ड काव्य म देश प्रेम की भावना तो प्रधान रूप से है ही किन्तु मानव सेवा की ईश्वर सेवा के रूप मे प्रतिष्ठा पाजिटिविस्ट दशन के परोक्ष प्रभाव को ज्ञापित करती है। यहा पर यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि हिन्दी साहित्य पर पाजिटिविस्ट दशन का सीधा प्रभाव नही पडा। लोकसेवा को जीवन आदश के रूप मे अपनाने म गाधी विचार दशन का गहरा प्रभाव रहा है जो स्वय विभिन्न पाश्चात्य प्रभावो से अनुप्रेरित था।

मथिलीशरण गुप्त ने धम के बाह्याडम्बरो की भत्सना घोषित कर पीडित व दु खी लोगो म ईश्वर का स्थान बताया। स्वयमागत कविता म गुप्तजी ईश्वर को दीन दु खी के वेष म आया हुआ बतलाते हैं किन्तु ईश्वर भक्त अपने आराध्य को इस वेष म नही पहिचान पाता तथा उससे दूर हो जाता है। कवि प्रश्न करता है यह दु खी जन ही तो ईश्वर है, उसे हटा देने पर ईश्वर कहा मिलेगा? मुकुटधर पाडेय 'दीन हीन के अश्रुनीर' तथा पतितो के परिताप पीर' म ईश्वर के दशन करते हैं। जयशकर प्रसाद 'आदेश' कविता म पहरों प्राथना करने के बदले क्षण भर दु खियो पर करुणा करने की प्रेरणा देते हैं। उनके मत म अपने पापो को प्राथना से नही धोया जा सकता वरन् प्रायश्चित स्वरूप दुखिया पर करुणा करने म भगवान् प्रसन्न होते हैं।

लोकसेवा के आदश की भावना अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध के प्रिय

प्रवास' महाकाव्य मे अत्यधिक पुष्ट रूप मे व्यक्त हुई है। हरिऔधजी ने राधा और कृष्ण के चरित्र निर्माण म लोकसेवा की भावना को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। हरिऔधजी ने 'रस कलश' म नायिका के नवीन भेदो का विधान किया जिसस नारी केवल घर की बंदिनी व विलास की सामग्री ही नही रही वरन् जीवन का विशाल क्षेत्र उसका कार्य क्षेत्र बना। उन्होने देश प्रेमिका, जाति प्रेमिका, जन्मभूमि प्रेमिका धर्म प्रेमिका, लोक सेविका आदि नायिका के नवीन रूप प्रस्तुत किये। शृगार ही नहीं भक्ति के क्षेत्र म भी हरिऔधजी ने क्रातिकारी विचार प्रकट किये। प्रियप्रवास के पाठक मन म राधा कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को विश्व प्रेम म लीन कर भक्ति की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार किसी की कल्पित मूर्ति बना कर उसी के ध्यान म लीन रहने को यदि भक्ति कहा जाय वह बुद्धिसगत नही है। ससार के सभी प्राणी गिरि सरिता वृक्ष विश्वात्मा के ही रूप हैं। इनकी रक्षा करना ही सच्ची भक्ति है। उत्पीडित रोगी व व्यथित जनो की पुकार एव लोक उन्नायको का उपदेश सुनना श्रवण भक्ति के अन्तगत ज्ञानी व भले मनुष्यो की राह दिखाना कीर्तन के अन्तगत देश प्रेमियो व आत्म-त्यागियो के प्रति श्रद्धा रखना वदना के अन्तगत सर्वभूतोपकारी एव पद दलित जातियो को उठाने की चेष्टाओ का दास्य भक्ति के अन्तगत विवश विपन्नो, अनाथों अनाश्रितो का स्मरण कर उन्ह त्राण देना स्मरण भक्ति के अन्तगत, विपदा म पडे हुए मनुष्य के दु खों का निवारण करने के लिए अपना तन प्राण समर्पित कर देना आत्म निवेदन भक्ति के अन्तगत, तृषित को जल और भूखे को अन्न देना अथवा भक्ति के अन्तगत' प्रकृति के उपादानों और जीवो से सद्भावना द्वारा कार्य लेना सख्य भक्ति के अन्तगत तथा समाज की पद-दलित जातियो को आदरपूर्वक सम्मान देना पद सेवन भक्ति के अन्तगत रख कर राधा ने भक्ति की भावना को नया रूप दिया है तथा नवधा भक्ति की नवीन रूप म व्याख्या की है। अलौकिक ईश्वर के बदले लोकमंगल ही उसकी भक्ति का केन्द्र बिन्दु है।

प्रिय प्रवास के कृष्ण न तो सूर के लीलामय कृष्ण हैं एव न रीतिकाल के शृंगारी नायक। व आधुनिक युग की भावना के अनुकूल कर्मयोगी राष्ट्र जाति व मानवता, सर्वभूत के हित म लीन लोक नायक हैं। स्वजाति उद्धार उनका महान् धर्म है। स्वजाति की दुर्दशा व मनुष्य मात्र की विगर्हणा देख कर वे उत्तेजित हो जाते हैं। उनका सम्पूर्ण चरित्र लोकसेवा के लिए समर्पित एक जीवन है। स्वजाति व जन्म भूमि के हित विकराल व्याल से भी भीत न हो उसका वध करनेव यमुना म कूदते हैं वन म आग लगने पर गोपो और गायो को बचाने के लिए अपने साथियो को प्राणो की ममता छोड़ कर्तव्य पालन की प्रेरणा देते हैं तथा स्वय इस कार्य में हाथ बटाते हैं। अपने अपूर्व साहस व कर्तव्य परायणता द्वारा उन्होंने गायो व बलराम की सहायता स अजस्र वर्षा स व्रज निवासियों की रक्षा की, राजकुमार होकर भी वे दीन जनों के यहाँ जाकर उनके दु खो को पूछते व उनका निवारण करते हैं।

कृष्ण सर्वभूतहित में लीन रहते हैं व सामान्यतया पिपीलिका को भी अवध्य मानते हैं किन्तु समाज की अहितकारी कुप्रवृत्तियों को नष्ट करने के लिए हिंसा उनका आपद्धर्म बन जाता है। अस्तु, मथुरा जाकर कृष्ण वहाँ की राजनीति के प्रपंचों में क्षुब्ध हो उठते हैं। आततायी कंस का वध करने के पश्चात् समाज कल्याण के उद्देश्य से शत्रुओं का दमन करने के लिए कृष्ण सुदीर्घ काल तक मथुरा में ही रह जाते हैं। हरिऔध जी ने इस स्थल पर कृष्ण एवं ब्रजवासियों के चरित्र पर नवीन प्रकाश डाला है। मथुरा में कृष्ण राजनीतिक प्रपंचों में व्यस्त रहे तब भी यशोदा, राधा व ब्रज के साथियों की याद उन्हें व्यथित करती रही। ब्रज निवासी रोम रोम से कृष्ण के ब्रज लौट आने की कामना करते हैं तथापि कृष्ण के लोक सेवक रूप को जानने के कारण वे यह भी सोचते हैं कि यदि कोई कुप्रपंच हो तो श्याम का ब्रज में आना उचित नहीं होगा क्योंकि लोकहित ही श्याम का ध्येय है। ब्रजवासियों को यह भी विश्वास है कि यदि मथुरा में प्रपंच जाल नहीं फैलता तो श्याम दिन एक भी मथुरा में नहीं ठहरते व ब्रज लौट आते। कृष्ण को उद्धव के साथ संदेश भेजते हुए भी उन्होंने लोकसेवा के आदर्श को ही स्पृहणीय बताया। व्यक्तिगत सुखमय जीवन स्पृहणीय है परन्तु विश्वहित में संलग्न रहना श्रेष्ठतर है। मुक्ति आत्मा का सुख है परन्तु आत्मोत्सर्ग उससे भी महान् आदर्श है। मुक्ति की चाह करनेवाले को त्यागी नहीं कह सकते। वह अपना ही स्वार्थ सिद्ध करता है। सच्चा त्यागी तो वह है जो लोकसेवा में निरत रहे। लोकसेवा के आदर्श का हरिऔधजी ने कृष्ण के चरित्र द्वारा अत्यधिक दृढ़ता से पालन किया है। और राधा ? उसने कृष्ण को पति रूप में वरने की सतत कामना की थी परन्तु कृष्ण मथुरा से लौट कर ही न आये और उपदेश भेजा लोकसेवा महान् धर्म है। राधा ने चुपचुप उद्धव के संदेश को सुना सुन कर उसे स्वीकार किया नहीं वरन् एक दृढ़ संकल्प भी कर लिया

आगा भूत ने प्रियतम की विश्व के काम आऊँ
मेरा कौमार व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे

कृष्ण प्रेम में अनन्य राधा को अपने हृदय में यह भाव जगाने के लिए कितना आत्म मंथन न करना पड़ा — प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें। हरिऔधजी की राधा के इस हृदय स्वरूप की सूर की राधा की विरहावस्था से तुलना करने पर पाठक कल्पना कर सकता है कि उन आँसुओं की अथाह व्यथा को समुद्र आँखों की पुतलियों में थाम से पहले ही न सुना गया है। और यशोदा के प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्या कृष्ण ब्रज न आयेंगे जो बूंदें उसके कपोलों पर बरबस टपक पड़ती थीं वह आनन्द नीर हो कर लोकसेवा में रत रही है। सूर के उद्धव कृष्ण के सामने राधा की दशा का वर्णन करते हुए उसकी विरहावस्था का चित्रण करते हैं। यदि 'प्रिय प्रवास" के उद्धव की कृष्ण के सम्मुख राधा के चरित्र

के संबंध में कुछ कहने का अवसर मिलता तो क्या आश्चर्य है अपने ही जीवनादर्श की प्रतिध्वनि को अनुगुंज राधा के शब्दों में पाकर कृष्ण कृतकृत्य न हो जाते। राधा अपना शेष जीवन वहां देती हैं जहाँ युग की सबसे पीडित रव उन्हें पुकारती है

वे छाया थीं सुजन सिर की शासिका थीं खला की
कंगाला की परम निधि थी औषधी पीडिता की
दीना की थी भगिनी जननि थी आश्रिता की
आराध्या थी व्रज अवनि की विश्व की प्रेमिका थीं

रूप का आकर्षण उपलब्धि से वञ्चित रह कर प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में प्रियतम का विश्वात्मा के रूप में दर्शन करता है तथा उसकी परिणति विश्व प्रेम व मानव सेवा के रूप में दिखलाई देती है।

ऊपर जिन रचनाओं की विवेचना की गयी है उनमें कुछ द्विवेदी युग के बाद उस काल की हैं जब छायावादी काव्य-रचनाओं का प्रकाशन प्रचुर मात्रा में हो रहा था। वस्तुत छायावादी युग की रचनाओं में व्यक्त धार्मिक भावना जीवन से इतनी संबंधित नहीं थी जितनी आध्यात्मिक चिंतन से। यह आध्यात्मिक चिंतन भी साधनामय न होकर पुस्तकों के अध्ययन का परिणाम था। छायावादी काव्य में व्यक्त आध्यात्मिक विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव गहरा है। छायावादी कविता के अन्तर्गत रहस्यवादी काव्य धारा पर जर्मन आध्यात्मवाद का प्रभाव विशेष रूप से पाया जाता है। प्राचीन रहस्यवाद व आधुनिक रहस्यवाद का भेद जीवन के प्रति दृष्टिकोण का है। प्राचीन रहस्यवादी सांसारिकता को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधक मानता था। जर्मन दार्शनिक हीगल के आध्यात्मवाद के प्रभावस्वरूप परिवर्तनशील जगत् में परम सत्ता के व्यक्त सौन्दर्य का दर्शन करना आधुनिक रहस्यवाद की प्रमुख विशेषता है। जर्मन दार्शनिक शोपेनहार के दु खवादी दर्शन से छायावादी कविता में वेदना प्रेम की समानता पायी जाती है। ईसाई संतों ने आत्मा व परमात्मा संबंधी प्रतीकों का छायावादी कविता में बहुलता से प्रयोग हुआ है तथा फ्रांसिसी प्रतीकवाद के प्रभाव से इसमें मार्मिकता व चित्रात्मकता का अलौकिक समावेश हुआ। छायावादी कविता में व्यक्त इन आध्यात्मिक विचारों की विस्तारपूर्वक विवेचना हम आगे 'छायावाद रहस्यवाद" शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत करेंगे।

ईश्वर व धर्म संबंधी मान्यताएं धर्म निरपेक्ष नैतिकता

प्रगतिवाद का प्रेरक दर्शन मार्क्सवाद भौतिकवादी होने के कारण ईश्वर व धर्म की सत्ता में विश्वास नहीं करता। रूसी क्रांति के विधायक लेनिन ने धर्म को अफीम की संज्ञा प्रदान की (Religion is an opium)। रूस की तत्कालीन परिस्थिति में क्रांति से पूर्व किसान आन्दोलन (सन् १९०४) को पादरियों

न म मना को तथा जारशाही का साथ दिया। क्रान्ति की सफलता के पश्चात् श्वेत रूसी सनिको (जार की शेष सेना) के साथ मिल कर उन्होंने सोवियत गणतन्त्र को अपदस्थ करने का प्रयत्न किया तथा विदेशी जासूसी का काम किया। रूस म अकाल (सन् १६२१) के समय गिरजाघरो की सम्पत्ति को सोवियत सरकार ने राष्टीय हित म उपयोग करने की घोषणा की तब भी उन्होने उसका विरोध किया। अत प्रत्येक महान् धम के साथ जो रूढिवादिता व प्रतिक्रियाशीलता का रूप लगा रहता है उसी रूढि व प्रतिक्रिया का रूस के तत्कालीन धार्मिक क्षेत्र म निदशन हो रहा था। धम भीरु जनता को ईश्वर व परलोक का भय दिखला कर पादरी अकमण्य व भाग्यवा दी बनाने का प्रयत्न कर रहे थे तथा धम शोषक वग के हितो की रक्षा करनेवाला साधन व शोषण का सहयोगी बन गया था। धम के इसी रूप का प्रगतिवादी साहित्य म खण्डन मिलता है।

भारत म भी धम की परिस्थिति तत्कालीन युग म अधिक भिन्न नही रही है। आध्यात्मिक साधना से हट कर उसका स्वरूप रूढि व प्रतिक्रिया स पूण हो गया था जिसके मूल म वभव-विलासिता का नग्न रूप निहित था। प्रगतिवादियो की दृष्टि म ईश्वर व धम भी वतमान आर्थिक वषम्यपूण सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखन• वाले साधन हैं अत उनका खण्डन वाछनीय है।

अचल ईश्वर का घृणा की धूलि स सत्कार करते हैं।• दिनकर का कवि दूध के अभाव म मरे बच्चो की कब्र स, हड्डियो की पुकार सुन नक्षत्रो स उस भगवान का पता पूछता है जो बच्चो के प्रति भी इतना निदय बन गया कि दूध के अभाव म उनके प्राण घुटने दिये। वह भगवान के निवास स्वग को लूटने के लिए अभियान करता है। + स्वग-लूटन की कल्पना उनकी 'मजिल दूर नहा है' कविता म भी व्यक्त हुई है जिसमें कवि न विकासोन्मुख मानव की गरिमा का घोष का सबोधित कर नव मरा उल्लेख किया है। × बालकृष्ण शर्मा

• अचल —आज भी जनगन जिसे करबद्ध होकर याद करता
नाम ल जिसका गुनाहो के लिए परिताप करता
किन्तु मैं उसका घृणा की धूलि स सत्कार करता

+ दिनकर—दूध! दूध!! तारे बोलो इन बच्चो के भगवान कहा हैं
हटो व्योम के मेघ पथ स स्वग लूटने हम आते हैं
दूध! दूध!! ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं

× दिनकर—स्वग के सम्राट को जाकर खबर कर दे
रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे
रोकिये जसे बने इन स्वप्नवालों को
स्वग की ही ओर बढ़ते जा रहे हैं वे

नवीन की 'भूठे पत्ते' कविता में मनुष्य को भिखमंगे के रूप में घृणित विकृति का रूप देनेवाले ईश्वर के प्रति गुलगती प्रतिहिंसा तथा आर्थिक वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करने की दृढ़ भावना व्यक्त हुई है ।* केदारनाथ अग्रवाल की 'वरदान' कविता में एक ऐसी गर्भवती नारी का चित्रण है जो मंदिर में स्वर्णसिंहासन पर बैठी प्रभु-मूर्ति को देख कर कामना करती है कि उसकी कोख से मनुष्य जीवधारी उत्पन्न न होकर यदि पत्थर ही पैदा हो जाय तो वह शायद अधिक भाग्यशाली हो सकती है परन्तु, धनहीन के यहाँ उत्पन्न मानव प्राणी का जीवन कष्टमय ही हो सकता है । ×

प्रगतिवादी कविता में जहाँ आर्थिक विषमता के मूल में ईश्वरीय विधान एवं ईश्वर के प्रति भावनापूर्ण आक्रोश प्रकट हुआ है वहाँ कथा साहित्य में ईश्वर व धर्म के नाम पर भोली जनता को भुलावा देने का मत्य प्रमाणन किया गया है । प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में जमींदार राय साहब के व्यवहार की किसान नायक होरी प्रशंसा करता है तथा अपने पुत्र गोबर के द्वारा जमींदार की आलोचना के विरुद्ध दुहाई देता है "छोटे बड़े भगवान के घर से बन कर आते हैं । सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है । उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे उसका आनन्द भोग रहे हैं । हमने कुछ नहीं संचा तो भोगें क्या ?" + पर गोबर राय साहब की ईश्वर भक्ति पर कठोर व्यंग्य करता है जिसके सामने होरी परास्त-सा हो जाता है "यह पाप का धन पचे कैसे ? इसीलिए दान धर्म करना पड़ता है एक दिन ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय ।"** यशपाल के देशद्रोही

---

* बालकृष्ण शर्मा नवीन 'भूठे पत्ते' शीर्षक कविता

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ आज आग इस दुनिया भर को
यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का

× केदारनाथ अग्रवाल "युग की गंगा" 'वरदान' शीर्षक कविता

वैभव की विशाल छत्र छाया में
स्वर्ण सिंहासन पर
रक्खी देख मन्दिर में पत्थर की मूर्तियाँ
क्षुब्ध हो गर्भवती ईश्वर से माँगती है वरदान
केवल पाषाण हो
कोख की मेरी भी सन्तान

+ प्रेमचन्द, 'गोदान', सरस्वती प्रेस बनारस, नवां संस्करण १९४८ पृष्ठ २२

** वही पृष्ठ २३

ने भर्त्सना की तथा ज़ारशाही का साथ दिया। क्रान्ति की सफलता के पश्चात् श्वेत रूसी सैनिकों (ज़ार की शेष सेना) के साथ मिल कर उन्होंने सोवियत गणतन्त्र को ध्वस्त करने का प्रयत्न किया तथा विदेशी जासूसों का काम किया। रूस में अकाल (सन् १९२१) के समय गिरजाघरों की सम्पत्ति को सोवियत सरकार ने राष्ट्रीय हित में उपयोग करने की घोषणा की तब भी उन्होंने उसका विरोध किया। अतः प्रत्येक महान् धर्म के साथ जो रूढ़िवादिता व प्रतिक्रियाशीलता का रूप लगा रहता है उसी रूढ़ि व प्रतिक्रिया का रूस के तत्कालीन धार्मिक क्षेत्र में निदर्शन हो रहा था। धर्मभीरु जनता को ईश्वर व परलोक का भय दिखला कर पादरी अकर्मण्य व भाग्यवादी बनाने का प्रयत्न कर रहे थे तथा धर्म शोषक वर्ग के हितों की रक्षा करनेवाला साधन व शोषण का सहयोगी बन गया था। धर्म के इसी रूप का प्रगतिवादी साहित्य में खण्डन मिलता है।

भारत में भी धर्म की परिस्थिति तत्कालीन युग में अधिक भिन्न नहीं रही है। आध्यात्मिक साधना से हट कर उसका स्वरूप रूढ़ि व प्रतिक्रिया से पूर्ण हो गया था जिसके मूल में वैभव-विलासिता का नग्न रूप निहित था। प्रगतिवादियों की दृष्टि में ईश्वर व धर्म भी वर्तमान आर्थिक वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखनेवाले साधन हैं अतः उनका खण्डन वाञ्छनीय है।

बच्चन ईश्वर का घृणा की धूलि से सत्कार करते हैं।* दिनकर का कवि दूध के अभाव में मरे बच्चों की कब्र से, हड्डियों की पुकार सुन नभ को उस भगवान का पता पूछता है जो बच्चों के प्रति भी इतना निर्मम बन गया कि दूध के अभाव में उनके प्राण घुटने दिये। वह भगवान के निवास स्वर्ग को लूटने के लिए अभियान करता है। + स्वर्ग-लूटने की कल्पना उनकी मंजिल दूर रही है कविता में भी व्यक्त हुई है जिसमें कवि ने विश्वामित्र-गुरु मानव की गरिमा का चांद को सम्बोधित कर बड़े गर्व से उल्लेख किया है। × बालकृष्ण शर्मा

---

* बच्चन—आज भी जगमग जिसे करबद्ध आकर याद करते
नाम से जिसके गुणों के नित्य परिचय प्राप्त करते
किन्तु मैं उसकी घृणा की धूलि से सत्कार करता।

+ दिनकर—दूध दूध ! तारे बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं
हटो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने हम जाते हैं
दूध दूध ! ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं

× दिनकर—स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे
रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे
रोकिये जैसे बने इन स्वप्नवालों को
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते जा रहे वे

नवीन की 'झूठे पत्ते' कविता में मनुष्य को भिखमंगे के रूप में घृणित विकृति का रूप देनेवाले ईश्वर के प्रति सुलगती प्रतिहिंसा तथा आर्थिक वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करने की दृढ़ भावना व्यक्त हुई है।* केदारनाथ अग्रवाल की 'वरदान' कविता में एक ऐसी गर्भवती नारी का चित्रण है जो मंदिर में स्वर्णसिंहासन पर बैठी प्रभु-मूर्ति को देख कर कामना करती है कि उसकी कोख में मनुष्य जीवधारी उत्पन्न न होकर यदि पत्थर ही पैदा हो जाय तो वह शायद अधिक भाग्यशाली हो सकती है परन्तु, धनहीन के यहां उत्पन्न मानव प्राणी का जीवन कष्टमय ही हो सकता है। X

प्रगतिवादी कविता में जहां आर्थिक विषमता के मूल में ईश्वर के विधान एवं ईश्वर के प्रति भावनापूर्ण आक्रोश प्रकट हुआ है वहां कथा-साहित्य में ईश्वर व धर्म के नाम पर भोली जनता को लूटने वालों का सत्य प्रकाशन किया गया है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में जमींदार राय साहब के व्यवहार की किसान नायक होरी प्रशंसा करता है तथा अपने पुत्र गोबर के द्वारा जमींदार की आलोचना के विरुद्ध दुहाई देता है "छोटे बड़े भगवान के घर से बन कर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा तो भोगें क्या ?"+ पर गोबर राय साहब की ईश्वर भक्ति पर कठोर व्यंग्य करता है जिसके सामने होरी निरुत्तर-सा हो जाता है "यह पाप का धन पचे कैसे ? इसीलिए दान धर्म करना पड़ता है, एक दिन फाके गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय।"** यशपाल के दादा कामरेड

---

* बालकृष्ण शर्मा नवीन 'झूठे पत्ते' शीर्षक कविता

लपक चाटते झूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूं आज आग इस दुनिया भर को
यह भी सोचा क्यों न टेटुआ घोटा जाय स्वयं जगपति का
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का

X केदारनाथ अग्रवाल "युग की गंगा" 'वरदान' शीर्षक कविता

वैभव की विशाल छत्र छाया में
स्वर्ण सिंहासन पर
रक्खी देख मंदिर में पत्थर की मूर्तियां
क्षुब्ध हो गर्भवती ईश्वर से मांगती है वरदान
केवल पाषाण हो
कोख की मेरी भी सन्तान

+ प्रेमचन्द, 'गोदान', सरस्वती प्रेस बनारस, नवां संस्करण १९५८
पृष्ठ २२

** वही पृष्ठ २३

उपन्यास में उपन्यास के नायक डा० खन्ना को फोज में उठा कर ले जाने पर पठान वजीरी उसे कलमा पढ़ा कर मुसलमान बना लेते हैं। यशपाल इस धर्म-परिवर्तन को मजाक समझ कर बेबसी की अवस्था में हस कर सह लेता है। साम्प्रदायिक भावना पर व्यंग्य करते हुए यह ईश्वर व धर्म में अविश्वास प्रकट करता है 'धर्म और सम्प्रदाय मृत्यु के बाद मनुष्य को भगवान तक पहुचाने की गर्ज लगाते हैं। परन्तु जब हम जीवन में संकट में भी भगवान ने उनकी सुध न ली तब भविष्य में उनका वह क्या विश्वास करे ? ● अज्ञेय धार्मिक रूढ़ियों का आधार ही अंध विश्वास बतला कर उनका विरोध करते हैं 'वह (शेखर) सिद्ध करना चाहता था कि सुधारकों में भी जो प्रचलित नव परम्परा है कि रूढ़ियाँ किसी जमाने में ठीक थी क्योंकि उस समय की परिस्थिति के लिए बुद्धिसंगत थी पर अब नयी परिस्थिति में असंगत हो गयी हैं—वह भ्रान्तिपूर्ण है क्योंकि बहुत से विश्वासों की जड़ नवीन या प्राचीन किसी भी परिस्थिति में अनिवार्य नहीं है उनकी जड़ है विशुद्ध अंध विश्वास।' +

ईश्वर व धर्म में विश्वास न रखते हुए भी प्रगतिवादियों ने मनुष्य के व्यवहार में नैतिकता का आरोप मानव-स्वभाव के आधार पर किया है। अनीश्वरवादी प्रो० जूलियन हक्सले (Prof Julian Hurley) प्रकृति की नियमबद्धता के कारण ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते। (I do not believe in the existence of god or gods so far as we can see that the universe rules itself) इसी प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान के पात्र प्रो० मेहता का कथन है 'अगर ईश्वर के विधान इतने अज्ञेय है कि मनुष्य की समझ में नहीं आते तो उन्हें मानने ही से मनुष्य को क्या संतोष मिल सकता है।' × प्रो० हक्सले मानव प्रकृति के विभिन्न पक्षों के सामञ्जस्य को ही मुक्ति मानते है तथा मानव स्वभाव की विभिन्न रुचियों के उद्घाटनार्थ अलौकिक तत्व की कल्पना व्यर्थ समझते हैं

I believe that there exists a scale of hierarchy of values ranging from simple physical comforts to the highest satisfaction of love aesthetic enjoyment etc I do not believe that these are

---

● यशपाल 'देशद्रोही' विप्लव कार्यालय लखनऊ १९४९ पृष्ठ ५९

\+ अज्ञेय शेखर एक जीवनी भाग २ सरस्वती प्रेस बनारस द्वितीय संस्करण १९४७ पृष्ठ १४७

× प्रेमचन्द गोदान सरस्वती प्रेस बनारस, नया संस्करण १९४८ पृष्ठ ४०६

transcendental in the sense of being vouchsafed by some external power of divinity They are the product of human nature interacting with the outer world salvation means achieving harmony between different parts of our nature"

"गोदान" के प्रो० मेहता के शब्दों में प्रो० जूलियन हक्सले के उपरोक्त विचारों की ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है और यह जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो हमें हंसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहां जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मोक्ष है।" + मेहता चाहे अनीश्वरवादी हों किंतु उपन्यासकार ने उनके चरित्र को पूर्ण नैतिक चित्रित किया है। यशपाल के "दादा कामरेड" उपन्यास का पात्र राबर्ट अनीश्वरवादी है। लेखक उसकी नास्तिकता को ही उसके नैतिक आचरण का कारण सिद्ध करने के प्रति सचेष्ट दिखाई देता है। एक समय के प्रेमी प्रेमिका अब वैवाहिक जीवन व्यतीत करने पर भी विचार-परिवर्तन के कारण एक दूसरे से अलग रहते हैं। राबर्ट की पत्नी फ्लोरा के उसके किसी अन्य प्रेमी से गर्भ स्थापन हो जाता है और वह राबर्ट से प्रार्थना करती है कि यद्यपि वह पहले से ही तलाक की इच्छुक रही है किन्तु जब तक वह शिशु का प्रसव न करे राबर्ट उसे अपनी पत्नी बनाये रखे जिससे कि समाज में उसे व उसके शिशु को लज्जित न होना पड़े तथा राबर्ट कुछ आर्थिक सहायता भी भेजे। निश्चय ही यह राबर्ट के लिए कठिन परीक्षा का समय है। पर इस अवसर पर वह जिस नैतिक दृढ़ता का परिचय देता है वह ईश्वर व धर्म की दुहाई देकर वास्तविक जीवन की समस्याओं से कतरा जाने की भावना से कहीं महत्तर है। वह शैल से कहता है 'किसी को मुसीबत में देख कर उसकी परवाह न करना भी तो कसूर है। यदि फ्लोरा मेरी जगह होती और मैं फ्लोरा की जगह तो वह कहती तुमने पाप किया है, तुम उसकी सजा भोगो। और वह स्वयं भगवान से प्रार्थना कर लेती—हे भगवान तू दयामय और न्यायकारी है मुझे संकट में बचा। और उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता। उसकी आत्मा और मन शान्त हो जाता। परन्तु, मैं क्या करूं ? मैं तो इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह भयंकर संकट की परिस्थिति में है।" × और राबर्ट फ्लोरा को तत्काल तलाक न देने एवं आर्थिक सहायता भेजने का निश्चय करता है।

ईश्वर व धार्मिक रूढ़ियों में विश्वास न करते हुए भी प्रगतिवादियों का मनुष्य

\+ वही, पृष्ठ २६४

× यशपाल 'दादा कामरेड', विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण १९४३ पृष्ठ १६१

की सद्‌वृत्तियों में विश्वास प्रकट होता है। आधुनिक प्रगति ने आज ईश्वर व धार्मिक रूढ़ियों के प्रति हमारा विश्वास छीन लिया है। नेता रहस्यवादी भी आज ईश्वर के संबंध में कहने लगे हैं 'ईश्वर को मरने दो वह फिर जी उठेगा—नव नव रूपों में।' (पंत) तब मनुष्य के नैतिक मूल्यों के लिए कौन सा आधार है? चाहे हम अध्यात्मवादी हों या भौतिकवादी हमें यह आधार अपनी आन्तरिकता में पाना होगा। कोई भी उपस्थिति बाह्य उपस्थिति चाहे वह ईश्वर हो, हमारी नैतिकता का आधार नहीं हो सकती। प्रगतिवादी बाह्य आवश्यकता के रूप में नैतिकता को अपनाते हैं किन्तु बाह्य आवश्यकता अपनी आन्तरिकता के प्रति आँखें मूँद कर अनैतिक व्यवहार के लिए बाध्य भी तो कर सकती है। हमारी नैतिकता का आधार अन्ततः स्वयं हमारा आन्तरिक विवेक ही हो सकता है। प्रगतिवाद नैतिक आचरण के लिए ईश्वर व धर्म के प्रतिमानों का बहिष्कार करता है। हम समझते हैं कोई भी बाह्य प्रतिमान उचित नहीं है वह ईश्वर हो या बाह्य परिस्थिति। अवश्य हम वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है जिसके लिए दास्तवस्की के उपन्यास के एक पात्र ने कहा था 'कामरेडो, मैंने आज एक समाचार सुना है।' कमरे के सभी साथी इकट्ठे हो गये। 'क्या समाचार है कामरेड?' 'कामरेडो मैंने सुना है कि ईश्वर मर गया।' 'क्या ईश्वर मर गया?' उमंग में भर कर उन सब ने कहा 'तब हम कुछ भी करने को स्वतन्त्र हैं।'

म भारत भाग्य' ग्रात्म हत्या करने के समय भारत को जागृत होने के लिए उद्बोधन देता है तथा अंग्रेजी राज्य का सामाजिक सुधारों के लिए समीचीन अवसर बताता है 'देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अंग्रेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे। मूर्खों के प्रचण्ड शासन के दिन गए अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की चर्चा फल चली सबको सब कुछ कहने सुनने का अधिकार मिला, देश विदेश से नई-नई विद्या और कारीगरी आई। तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले, ग्रामगीत वही बाल्य विवाह भूत प्रेत की पूजा, जन्म पत्री की विधि, वही थोड़े म संतोष गप हाँकने की प्रीति और सत्यानाशी चालें।" *

समाज-सुधार

भारतेन्दु युग मे जिन सुधारो की माग साहित्य मे प्रस्तुत की गयी वे सुधार भारतीय परम्परा की विकृति और नवीन पश्चिमीय सभ्यता के शासन से उत्पन्न दुर्गुणो से सबंधित हैं। भारतेन्दु को इस बात का क्षोभ है कि "लिया भी तो अंग्रेजो से औगुन"। बालकृष्ण भट्ट भारतीयो की अनुकरणप्रियता पर आक्षेप करते हुए लिखते हैं कि केवल बुराइयो का अनुकरण करने म भारतीय अपनी तत्परता दिखाते हैं किन्तु अंग्रेजो के सद्गुणों का अनुकरण करना उन्हें अभीप्सित नही। + प्रतापनारायण मिश्र भी केवल अंग्रेजो की नकल कर कोट पैंट पहनने व अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयो को अंग्रेजो की स्वजाति हितचिंता स्मरण दिलाते

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत दुर्दशा' (१८८०) भारतेन्दु नाटकावली इडियन प्रेस पृ० ६३४

+ बालकृष्ण भट्ट भट्ट निबंधावली भाग २ पृष्ठ ४३

जब से मुसलमान यहा के जेता हुए उस समय से हम उनकी चाल, ढाल नशिस्त बरखास्त के कायदे न केवल उनकी अरबी, फारसी तथा उर्दू भाषा वरन् दीन इस्लाम को अब तक अपनियाते आये आय से अद्ध यवन हो गये यहाँ लो कि मुसलमानो को अपना एक अंग बना लिया अब पचास साठ वर्ष से हिन्दु मुसलमान दोनो अपने नये नेता का अनुकरण कर रहे हैं। केवल उनमे जो कुछ त्रुटि है उसी का उनमें भलाई क्या है उनका नही उनका सा अध्यवसाय धुन बाँध के किसी काम को करना विघ्न होता रहे पर जिसे आरम्भ किया उसे कर के तब छोडना, स्वजाति पक्षपात, विद्याभ्यास व्यसन, साहस धैर्य, वीरता, विचार की दृढ़ता आदि उनके गुणों की ओर कभी ध्यान नहीं देते उनकी सी भोग-लिप्सा पान (मद्य) दोष इत्यादि को अलबता अपना रहे हैं।

हैं। * अस्तु फैशन मद्यपान मास भक्षण अशिक्षा फूट, जुआ व्यभिचार आदि के विरुद्ध इस युग के साहित्य मे राशि राशि विचार यत्र तत्र बिखरे पडे हैं। तत्कालीन समाज मे प्रचलित कुप्रवृत्तिया देशोन्नति में बाधक थी।

भारतेन्दु ने पाश्चात्य सभ्यता के उस कुप्रभाव को देखा था जिसके परिणाम स्वरूप बगाल म नीलकठ, कृष्टोमोहन, माइकल मधुसूदन प्रभृति महानुभाव स्वधम को छोड कर ईसाई बन गये थे। यह प्रभाव बगाल तक ही सीमित नही रहा। मास मद्य-सेवन की ओर आकृष्ट होकर भारतीयो ने ईसाई मत को अपनाना प्रारम्भ किया था। भारते दु ने एक ओर मत मता तरों के झगडो एव दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता के अ धानुकरण पर क्षोभ प्रकट किया है

भारत म एहि समय भई है सब कुछ बिनाहिं प्रमान हो हुई रगी
आधे पुराने पुरानहिं मानें आधे भये किरिस्तान हो हुई रगी।+

भारते दु युग की धार्मिक विचारधारा का पिछले अध्याय में विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि इस युग के लेखको ने मदिर के पुजारियों आदि के मास, मद्य सेवन की प्रवति पर गहरा क्षोभ प्रकट किया है। धार्मिक सस्थाओ म मास मद्य-सेवन की प्रवति फल रही थी इसी से हम कल्पना कर सकते हैं कि समाज में यह प्रवृति कितनी फल गयी थी। भारतेन्दु के वैदिकी हिसा हिसा न भवति' मे यमराज के सामने एक पात्र कहता है 'अ ग्रेजों के राज्य मे इतनी गोहिंसा होती है, सब हिन्दू बीफ खाते हैं उन्हें आप दड नही देते।"× वस्तुत भारते दु ने मास मद्य सेवन का विरोध केवल धार्मिक दृष्टि स नही किया किन्तु इसम वे राष्ट्रीय जीवन का पतन की ओर बढ़ते देख रहे थे। वे ईसाइयों या मुसलमानो से सद्गुणों को लेने के लिए तत्पर थे-'लखहु एक कवे सब मुसलमान क्रिस्तान" ।❖ किन्तु

---

* प्रतापनारायण ग्र थावली विजयशकर मल्ल (सपा) नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, प्रथम खण्ड स० २००४ पृ० ६

सबकी स्वांग बनाते हो तुम किससे कम हो जो काले रग पर भी कोट पतलून पहिन कर निरे पनाडी ही बने जाते हो? ऊपरी बातों की नकल और अपनी बोली में गैंट पट मिलाने के सिवा अग्रेजो का सा स्वजाति हितपी काम तो कोई भी न देखा।

+ भारते दु वर्षा-विनोद (१८८०) भारतेन्दु ग्र थावली, द्वितीय भाग नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ ४२

× भारतेन्दु 'वदिकी हिंसा हिंसा न भवति', भारतेन्दु नाटकावली, इण्डियन प्रेस, पृष्ठ ३८६

❖ भारतेन्दु "हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान" (१८८७) भारतेन्दु ग्र थावली द्वि भाग

उनकी बुराइयों के अनुकरण के विरोधी थे।

भारतेन्दु युग के साहित्य में नारी स्वातन्त्र्य की भावना के रूप में भी समाज सुधार की प्रवृत्ति पाई जाती है। भारतेन्दु ने नवीन वातावरण में पश्चिमीय नारी समुदाय को स्वतन्त्र वायु में सांस लेते देखा था और देखा था कि जीवन के पथ पर वे किस प्रकार हंसते हंसते प्रगति की ओर अग्रसर होती हैं। इसके विपरीत उन्होंने अपनी मातृ जाति की ओर दृष्टिपात किया और गाया शादी के अवसर पर कन्याओं का क्रय विक्रय होना है दुधमुंही बच्चियां ससुराल भेज दी जाती हैं जो यौवन के आगमन के पूर्व ही विधवाएं हो जाती हैं जीवन भर सूर्य की किरण नहीं देख पाती धार्मिक अन्ध विश्वास निरक्षरता, निठल्लापन उनके जीवन के अभिशाप हैं। नीलदेवी नाटक की भूमिका में भारतेन्दु ने भारतीय नारियों के लिये पश्चिमीय रमणियों की तरह लज्जा त्याग करना उपयुक्त नहीं ठहराया है किन्तु अन्य बातों में भारतीय नारियों के दक्षता प्राप्त करने व अपना स्वत्व पहिचानने के वे पक्ष में हैं। • भारतेन्दु युग में नारी स्वतन्त्रता की प्रेरणा का स्रोत यही पाश्चात्य प्रभाव है। प्राचीन भारतीय परम्परा से परिचय प्राप्त कर उन्होंने पाया कि भारत में स्त्रियों की दशा सदा यही नहीं रही थी। अतः द्विगुणित उत्साह के साथ वे नारी स्वतन्त्रता के उद्योग में प्रवृत्त हुए।

नारी जीवन की प्रायः सभी समस्याओं पर इस युग के लेखकों ने प्रकाश डाला है। जीवन और यौवन से अनभिज्ञ बालिका को पैसों के लोभ से माता पिता अयोग्य वृद्ध पति से विवाह कर देते हैं। इस कन्या विक्रय के सम्बन्ध में एक छोटे से वार्तालाप में भारतेन्दु उन पिताओं को प्रताड़ना देते हैं। + पर्दा प्रथा के प्रति भारतेन्दु का कथन है कि यह मुसलमानों के द्वारा चलाई हुई कुरीति है और हम इसमें शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा पाना चाहिए। बचपन में लड़कियों के विधवा हो जाने के कारण समाज में व्यभिचार प्रवृत्ति अपार होगया था किन्तु कठोर नैतिक अनुशासन के कारण विधवाएं भ्रूण हत्याएं करने लगी। भ्रूण-हत्याओं को रोकने के लिये भारतेन्दु विधवा-विवाह आवश्यक समझते थे तथा इस सम्बन्ध में सरकार का हस्तक्षेप भी वाञ्छनीय मानते थे। X विधवा के कष्टमय जीवन का वर्णन करते

• भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'नीलदेवी' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६४३

+ (अ) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कविवचन सुधा भाग ३ संख्या ६ पृ ६५
(ब) वही संख्या ७ पृ १७

X भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड २ सं० ३ पृ १६५

यदि सरकार कहे कि हम धर्म विषय में नहीं बोलते तो उसको हमने पहले उत्तर सुना। सती होना हमारे यहां स्त्रियों का परम धर्म है इसको सरकार ने क्यों दूर किया है? क्योंकि यह धर्म प्राण में सम्बन्ध रखता है और प्रजा की प्राण की रक्षा करना राजा का मुख्य धर्म है। वैसे ही हम जो कहेंगे उसमें भी प्रजा के प्राण से सम्बन्ध है इसमें सरकार को अवश्य सुनना चाहिए।

हुए वे शास्त्र सम्मत या असम्मत होने के पचडे म नही पडना चाहते वरन् युक्ति के आधार पर विधवा विवाह का समर्थन करते है। हिन्दी लेखको म विधवा विवाह के सबसे प्रबल समर्थक कदाचित् राधाचरण गोस्वामी हैं। उन्होने 'हिन्दु बाल विधवाओ का न्याय ईश्वर के हाथ है और 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तिकाएँ लिखी जिनमें अनेक तरह की युक्तियो और हृदय द्रावक भावो का व्यक्त कर विधवा विवाह मडन का प्रयत्न किया। विधवा विवाह के प्रचार के लिये गोस्वामीजी के हृदय म बेचैनी और जलन थी। * गोस्वामीजी को इस बात का दु ख है कि गायो की रक्षा का तो प्रयत्न किया जाता है कि तु बाल विधवा रूपी गौओ को बचाने की चेष्टा नही की जाती। जिस तरह राधाचरण गोस्वामी समाज की सारी बुराइयो की जड विधवा विवाह निषेध को मानते हैं उसी प्रकार बाल कृष्ण भट्ट बाल विवाह को। + भारतेन्दु युग के बहुत स नाटक यथा, शरण कृत बाल विवाह' (सन् १८७४), राधाकृष्ण दास कृत 'दु खि नि बाला" (सन् १८८०) देवकीनदन त्रिपाठी कृत बाल विवाह' काशीनाथ खत्री कृत विधवा विवाह' (सन् १८८२) तथा 'बाल विधवा सताप' निद्धिलाल कृत विवाहिता विलाप' (सन् १८८३) सीताराम कृत विधवा विडम्बना' (सन् १८८४) देवदत्त मिश्र कृत 'बाल विवाह दूषक (सन् १८८५) घनश्यामदास कृत वृद्धावस्था विवाह नाटक (सन् १८८८), छुछहमलाल कृत बाल विवाह नाटक' (सन् १८९८) आदि विवाह की सामाजिक समस्या को लेकर ही लिखे गये।

सर्व इस्लामवाद (Pan Islamism) का प्रसार-सामाजिक सुधारो का नवीन स्रोत

हिन्दुओ मे जिस समय ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज आदि धार्मिक सस्थाए

---

* राधाचरण गोस्वामी 'विधवा विवाह विवरण'

यह साठ लक्ष बाल विधवायें आपकी जाति मे हैं अथवा नही। यदि हैं तो इनके दुःख दूर करने के क्या उपाय ? ? यदि कुछ उपाय नही तो सबको एक बडे मैदान म खडा करके तोपो से उडा दीजिए। या जहाजो मे बिठला कर समुद्र मे डुबा दीजिए। नही तो एक एक पाव का सखिया दे दीजिए। बस इसका दुःख मिटे। बस इस सृष्टि का प्रलय हो जाय। आकाश के चन्द्र सूय, तारागण टुकडे-टुकडे होकर गिर पडें और भारत की दीन दुखित साठ लक्ष बाल विधवाओ की अशेष यन्त्रणा भी इसी के साथ शेष हो।

+ बालकृष्ण भट्ट नये तरह का जनून भट्ट निबधावली' भाग १ पृष्ठ १६२। कमसिन का ब्याह मुल्क से उठा दिया जाय, बस देश उन्नति के शिखर पर एक बारगी फलाँग मार कर चढ जाय।

समाज सुधार का काय कर रही थी उस समय सर सय्यद अहमद ने मुसलमानों म समाज–सुधार व शिक्षा प्रचार के लिए अलीगढ़ आन्दोलन प्रारम्भ किया । सर सय्यद पाश्चात्य सभ्यता से सम्पर्क बढ़ाने तथा पाश्चात्य सभ्यता के आलोक म समाज सुधार के पक्षपाती थे । बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक मुसलमानो म राजनीतिक चेतना का सवथा अभाव था । वे हिन्दुओं से मिल कर स्वतन्त्रता प्राप्ति क लिए सचेष्ट होने की अपेक्षा अंग्रेजों द्वारा ही शासित होना श्रयस्कर समझते थे क्योंकि हिन्दुओ क प्रति उन्हे सन्देह था ।* इसी कारण साम्प्रदायिकता के आधार पर मुस्लिम लीग' की स्थापना (सन् १६०८) की गई । किन्तु, राजनीतिक घटनाओं ने मुसल मानों का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का साथ देने क लिए प्रेरित किया । मुस्लिम लीग की स्थापना के पश्चात् पहले दशक तक मुस्लिम लीग ने राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध नहीं किया । लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन (सन् १६१६) म मुस्लिम लीग ने कांग्रेस का पूणतया साथ दिया । अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध हिन्दु व मुसलमानो की एकता का कारण भारत से बाहर अन्य देशो मे रहनेवाले मुसलमानो क साथ भारतीय मुसलमानो की एकता अनुभव करना था जो धार्मिक प्रश्न लेकर अंग्रेजो के विरोधी बन गये थे । त्रिपोली पर इटली के आक्रमण (सन् १६११) एव तदुपरान्त बल्कान म मुसलमानो की शक्ति के ह्रास म तुर्की साम्राज्य विशृंखल हो गया एव प्रथम योरुपीय महासमर मे तुर्की का सुल्तान जो मुसलमानो का 'खलीफा' था इंग्लण्ड के विरोधी पक्ष की ओर से लड़ा । भारतीय मुसलमानों ने टर्की फारस मिश्र त्रिपोली मोरक्को, चीन प्रभृति देशा के मुसलमानो के साथ एकता का अनुभव किया । इन सभी देशो मे मुसलमानों की राज्य शक्ति व स्वतन्त्रता का ह्रास हो रहा था इस्लाम के पतन ने मुसलमानो म सब इस्लामवाद (Pan Islamism) की भावना का प्रसार किया व अंग्रेजों क प्रति राजभक्ति की भावना छोड हिन्दुओ से मिल कर स्वतन्त्रता आन्दोलन मे भाग लेने की प्रेरणा दी । राजनीति क क्षेत्र म द्विवदी युग हिन्दु–मुस्लिम एकता के प्रयत्न का युग था जो असफल रहा ।

---

* Dr Sayyid Abdul atif The influence of English Liter ature, on Urdu Literature, Forsler Groom and Co Ltd London Pp 41

Till the beginning cf this Centuary (muslims) had absolutly no idea of directly associating themselves with the Political movements of the country In fact they visewed them with suspicion and distrust They preferred to let the English govren rather than help their erstwh le subjects the Hindus to rule over them

राजनीतिक आवश्यकता ने भारतेन्दु-युग में मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं द्वारा अनुभव किये जानेवाले सांस्कृतिक विभेद व मध्य-युग में मुसलमानों के अत्याचारों को भुला-सा दिया यद्यपि सामान्य जनता के लिए उन्हें भुला पाना असम्भव सा था। परन्तु राजनीति में परिस्थितियों के अनुसार फिर फिर फूट के बीज अंकुरित होने पर भी साहित्य में एकता व मैत्री भाव को ही प्रश्रय मिला। द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ हिन्दु मुस्लिम एकता के भावों का पोषण हुआ। उर्दू-साहित्य इस समय सारी ओर हाली की इश्कमिजाजी कविताओं को छोड़ कर समाज सुधार व जातीयता के भावों को अभिव्यक्त कर रहा था। हाली सिबली, आजाद इकबाल प्रभृति शायर समाज-सुधार व जातीय चेतना के विषयों पर लिख रहे थे। उर्दू के इस समाज सुधार व जातीयता परक प्रदेश से हिन्दी साहित्यकार भी प्रभावित हुए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पद्मसिंह शर्मा को अपने १० अक्टूबर १९०६ के पत्र में लिखा 'कायकुब्ज अबला विलाप' को आपने खूब पहचाना आपका अनुमान ठीक है। हाली का चुपकी दाद' देख कर ही हमने उसे लिखा है।* मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती' की रचना हाली के 'मुसद्दस' से प्रेरित होकर की। प्रेमचन्द तो उर्दू से ही हिन्दी के क्षेत्र में आए थे। हिन्दी में लिखना आरम्भ करने से पहले ही वे विधवा विवाह की समस्या पर उर्दू में 'प्रेमा' उपन्यास लिख चुके थे। अतः यद्यपि यह कहना अत्युक्ति है कि उर्दू साहित्य के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में समाज सुधार व राष्ट्रीय चेतना की प्रवृत्ति का उदय हुआ क्योंकि इससे पूर्व ही भारतेन्दु युग में इन विषयों की अपनी समृद्ध परम्परा बन गयी थी तथापि समाज सुधार व देश भक्ति की हिन्दी की परम्परा को उर्दू के नवीन साहित्य के सम्पर्क से बल मिला।

नारी उत्थान की प्रवृत्ति

अतः समाज सुधार के क्षेत्र में भारतेन्दु युग से चली आने वाली नारी-उत्थान की प्रवृत्ति द्विवेदी युग में अधिक तीव्र रूप में दिखाई देती है। महात्मा गांधी ने देश के राजनीतिक संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के लिए उसमें नारी का योग दान आवश्यक माना। फलतः नारी उत्थान के प्रयत्न किये गये।

नारी जाति की अवनति का हमारे देश में प्रधान कारण स्त्री शिक्षा का अभाव है। महावीर प्रसाद द्विवेदी स्त्री शिक्षा व नारी जागृति के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। वे इस बात पर दुःख प्रकट करते हैं कि प्राचीन भारत में जहां

---

* महावीर प्रसाद द्विवेदी 'द्विवेदी पत्रावली (सं० बैजनाथसिंह विनोद) भारतीय ज्ञान पीठ, काशी प्रथम संस्करण १९५४ पृष्ठ ७८

स्त्रिया वेदाध्ययन किया करती थी व अब अज्ञान के अधकार म गिरी रहती है। रामचरित उपाध्याय के मत म स्त्रियो को शिक्षा देने स अन्य सामाजिक बुराइयां स्वत नष्ट हो जाए गी । वे स्त्री शिक्षा को पर्दा प्रथा दूर होने का उपाय बतलाते हैं। पर्दा प्रथा समाप्त होने पर दुराचार फलने की आशका प्रकट करनेवालों के प्रति मिश्रव धुओ का कथन है गुजरात व बम्बई म पर्दा न होने पर इस प्रकार की कोई शिकायत नही हुई । स्त्रियो को विद्वान बना कर हम उनसे स्पीच नही दिलानी है उनसे बाल डास नही नचाना है, प्रेम पत्र लिखवा कर उन्ह आचरण भ्रष्ट नही बनवाना है तथा कोर्टशिप की प्रथा नही आरम्भ करना है-इस प्रकार के कुतर्क करनेवाले वास्तव मे विद्या के सुन्दर गुणो को नही जानते । पशुता को छोडकर मनुष्य बनना कदापि आचरण भ्रष्टता नही है । आचरण की दुहाई देकर उन्नति के मार्ग से मु ह फेर लेना उचित नही है । क्या अवनत दशा म रह कर हम दिन रात आचरणो को ही चाटत रहेगे। और वे आचरण इस प्रकार कब भी कब तक रह सकेंगे ? जब धनाभाव स पीडित होकर एक दिन नारी को घर से बाहर आना ही पडेगा तो उन्हे शिक्षा दिला कर समाज म उनको प्रतिष्ठित स्थान क्यो न दें ? " अधिकाश लेखक स्त्री शिक्षा के पक्षपाती तो थे किन्तु व स्त्रियो को पुरुषो से भिन्न प्रकार की शिक्षा देना चाहते थे जिससे कि स्त्रियां सद्गृहणी बन सकें तथा पुरुषो से प्रतिस्पर्द्धा करने के बदले उनस सहयोग करें । सय्यद अमीरअली (मीर) स्त्री शिक्षा के पक्षपाती होते हुए भी स्त्रियो के लिए पाश्चात्य शिक्षा को उचित नही मानते-' स्त्रियो म उस समय तक अच्छी योग्यता नही आ सकती जब तक उन्हे पुरुषो से जुदी और ऊ चे दर्जे की तालीम न दी जाने । हम लोग देख रहे है कि जो एक दो म रतीय स्त्रियां नीति व्यवहार आदि म शून्य मुख्य विदेशी भाषा द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करती है उनके विचार देशी नही रह जाते । फिर सन्तान को पालने पोपने की विद्या से तो व बिल्कुल कोरी रहती हैं।' स्त्री शिक्षा के प्रचार के प्रति विशेष रूप से सचेष्ट होने के साथ द्विवेदी काल म भारत मे शिक्षा प्रसार के लिए भी हिन्दी लेखको ने अपना अभिमत प्रकट किया । मथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' म शिक्षा के अभाव को ही सामाजिक पतन का कारण माना पर व वर्तमान शिक्षा प्रणाली को दोषपूर्ण मानते हैं जिसे प्राप्त करके भी सरकारी नौकरियो का मु ह जोहना पडता है । महावीरप्रसाद द्विवदी ने 'भारत म शिक्षा की दशा' लेख में सरकार द्वारा शिक्षा के लिए समुचित व्यय न करने की नीति की निन्दा की है । वे स्कूलो के लिए बडे बडे भवनो मदानो व उपवनो के निर्माण के बदले शिक्षा को सस्ती बनाने के पक्षपाती हैं । राजनीतिक चेतना के प्रसार के लिए वे शिक्षा के प्रसार को आवश्यक मानते हैं ।*

पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता के प्रभाव स्वरूप समाज म कुछ अन्ध यस्कर समभी

---

* महावीर प्रसाद द्विवेदी विचार विमर्श भारती भण्डार काशी पृष्ठ ४२२

जानेवाली प्रवृत्तियों के प्रवेश की भी आशंका थी जिनमें मुख्य 'तलाक' की प्रथा का प्रचलन समझा गया। पतिव्रत धर्म का पालन भारतीय नारी के लिए सर्वोच्च मूल्य समझा जाता रहा है। पाश्चात्य सभ्यता के अवांछनीय प्रभाव से बचने के लिए इस मूल्य की रक्षा का सदैव प्रयत्न किया गया। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के आरम्भिक वर्षों में जापान राष्ट्रीय जागृति का प्रेरणा स्रोत रहा है। एशियाई देशों में जापान ने सब से पूर्व अपने को पाश्चात्य सभ्यता के अनुकूल ढाला। रामनारायण मिश्र अन्य गुणों में जापान का अनुकरण करने की सलाह देते हुए भी तलाक प्रथा का अनुकरण भारत के लिए हानिप्रद बताते हैं। भीमसेन शर्मा स्त्री शिक्षा का प्रभाव लक्ष्य में पतिव्रत धर्म की श्रेष्ठता बताते हुए पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के कारण उसका महत्त्व कम होने की आशंका प्रकट करते हैं। किन्तु पतिव्रत धर्म के पालन के लिए पत्नीव्रत के पालन की भी तो आवश्यकता है। प्राचीन कथाओं में पतिव्रत धर्म के आदर्श को दर्शाने के लिए पत्नी द्वारा अशक्त पति को स्वयं उठा कर वेश्या के घर पहुँचाने का भी उल्लेख किया गया है किन्तु, आधुनिक बुद्धिवादी युग में समानाधिकार की भावना इस प्रकार के व्यवहार को मान्यता नहीं देती। प्रेमचन्द के सेवा सदन' की सुमन का वृद्ध गजाधर से विवाह कर मानो उसे कुएं में डाल दिया गया है। भोली वेश्या के यहां मौलूद के अवसर पर मौलवी मौलाना सेठ, गुमाश्ता सभी मौजूद हैं। गजाधर को भी वहां जाते हुए संकोच नहीं हुआ। वह अपनी पत्नी सुमन से कहता है "जब इतने भले मानस बैठे हुए थे तो मुझे क्यों संकोच होने लगा। वह सेठजी भी आये हुए थे जिनके यहां मैं शाम को काम करने जाया करता हूं।" गजाधर का यह उत्तर पतिव्रत धर्म की महत्ता पर मानो घड़ों पानी डाल देता है। रामचरित उपाध्याय ने 'नीचता के मन मोदक' में व्यक्तिगत जीवन में उच्च आदर्शों को ताक पर रख कर नीचतापूर्ण कृत्यों में लीन रहनेवाले सिद्धान्ततः प्रगति के पक्षधर लोगों के प्रति व्यंग्य किया है।

भारतीय सभ्यता की सुरक्षा के लिए पतिव्रत धर्म के पालन की शिक्षा देने से पहले पुरुषों का अपना आचरण सुधारने की आवश्यकता थी। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत' में लक्ष्मण के चरित्र की उज्ज्वलता का सुदृढ़ आधार उन के एक पत्नीव्रत भाव को बनाया। मेघनाद वध के लिए बाण छोड़ते समय वे अपने एक *पत्नीव्रत भाव की ही शपथ लेते हैं*

यदि सीता ने एक राम को ही वर माना
यदि मैंने निज वधू उर्मिला को ही जाना
तो बस अब तू सफल बाण वह मेरा छूटा
रावण का वह पाप पूर्ण घट हाटक फूटा

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'वैदेही बनवास में राम के एक पत्नीव्रत भाव को उनके चरित्र का विशेष गुण बतलाया है। नर और नारी के

विवाह व धन को हरिऔधजी ने आध्यात्मिक आधार प्रदान किया है। उनके मत मे नारी के लिए पाश्चात्य रग मे रगी रमणियों की तरह बनाव-शृ गार की उच्छृखलता श्रेयस्कर नही। सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक) की विलासिता को भी व विनाशकारी बतलाते हैं तथा नारी को मर्यादा, शक्ति लज्जा, शिष्टता आदि गुण अर्जित करने की शिक्षा देते हैं। हिन्दी म जासूसी, ऐय्यारी व कुरुचिपूर्ण उपन्यासो के प्रकाशन की वृद्धि की ओर सकेत करते हुए मैथिलीशरण गुप्त न उन्हे दाम्पत्य प्रेम की भावना पर आघात करनेवाला बताया है। 'हिन्दी की कविता किस ढग की हो' लेख म वे लिखते हैं

दत्त बकिम और रवीन्द्र बाबू के उपन्यासो मे भी शृ गार रस का वर्णन है। पर उन्हे पढ कर अन्त म दाम्पत्य प्रेम की ही शिक्षा मिलती है। इधर हमारे उपन्यासो की उससे विपरीत दशा है। उनके परिणाम पर पहुँचने के पहले ही इतनी कुरुचि फैल जाती है कि उनकी शिक्षा के लिए स्थान ही नही रहता। उनके आदर्श पात्र भ्रूण-हत्या तक कर डालते हैं। यह सर्वथा अनुचित है-ऐसा न होना चाहिये।' × अस्तु आलोच्य काल मे पुरुष को सदाचारिता व पति और पत्नी के दाम्पत्य प्रेम की आवश्यकता पर बल दिया गया।

नारी-उत्थान के लिए अनेक सामाजिक बुराइयो को दूर करने की आवश्यकता अनुभव की गयी। पर्दा, ठहरौनी, दहेज बाल विवाह वृद्ध विवाह आदि सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध द्विवेदी काल म लेखको ने अपने विचार प्रगट किये। केशवराम पडसे ने 'परदा' कविता म इस प्रथा पर व्यग्य करते हुए लिखा कि नख से शिख तक वस्त्र ओढे हुए जब नारी राह मे चलती है तो बेचारी पशु की तरह दृष्टिगत होती है। भारतीय इतिहास के पतनोन्मुखी युग मे नारी को गृह कार्य करने वाले लद्दू पशु व पुरुष की काम पिपासा शान्त करने वाले साधन के अतिरिक्त कोई महत्व नही दिया गया था। ठहरौनी दहेज आदि की प्रथाए नारी को क्रय विक्रय की वस्तु मानने का सभ्य (?) रूप मात्र हैं। हरिऔधजी ने चुभते चौपदे म नारी के हृदय की चुभन को अभिव्यक्ति दी और धन देख कर विवाह करनेवाले व्यक्तियों की भर्त्सना की। महावीरप्रसाद न 'ठहरौनी' कविता मे इस कुप्रथा पर व्यग्य किया। गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही दहेज की कुप्रथा को विध्वसक आग के रूप में देखते हैं जिसम परिवार के सारे सुख जल कर भस्म हो जाते हैं। प्रेमचन्द का 'सेवा सदन' दहेज के दुष्परिणामों का ही मूर्त रूप है। सुमन की मा उसका छुटपन म ही ब्याह करके 'कन्या-दान' के ऋण स मुक्त होना चाहती है किन्तु सुमन के पिता कृष्णचन्द्र नये विचारों से प्रभावित थे अत उन्होने उसका बाल विवाह नही

× मैथिलीशरण गुप्त पाचवा हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ कार्य विवरण पृष्ठ ५५.

किया। सुमन के सयानी होने पर उसके लिये वर ढूंढा जाने लगा तब दहेज की समस्या सामने आयी। अपने को प्रगतिशील कहनेवाले शिक्षित लोग भी दहेज के बिना शादी करने के लिए तयार नहीं हुए। अंत में कृष्णचंद्र को दहेज के लिए धन इकट्ठा करने के लिये बुराई का रास्ता अपनाना पड़ा। रिश्वत न लेने का आदर्श छोड़ कर उन्होंने रिश्वत ली किन्तु अभ्यस्त न होने से पकड़े गये ईमानदारी से आकर सब कुछ स्वीकार कर लेने से उन्हें सजा दे दी गयी। सुमन का भाग्य अंधकार से घिर गया। उसका विवाह गांव में वृद्ध गजाधर से हुआ। इस प्रकार, हम देखते हैं कि मध्यम वर्ग में रिश्वतखोरी, वृद्ध विवाह बाल विवाह आदि बुराइयों के मूल में आर्थिक संकट निहित है जिसे टहरौनी दहेज आदि कुप्रथाएं और भी तीव्र बना देती हैं। बाल विवाह की बुराई के लिए अवश्य माता पिता जिम्मेवार होते हैं किन्तु वृद्ध विवाह करने के लिए स्वयं पतिदेव ही लालायित रहते हैं। आलोच्य काल के लेखकों ने विवाह के इच्छुक वृद्धों पर तीव्र व्यंग्य किए। रामचरित उपाध्याय ने वृद्धों द्वारा बाल विवाह की रोक वृद्ध विवाह प्रचार की कामना के प्रति व्यंग्य किया। 'चुभते चौपदे' में अयोध्यासिंह उपाध्याय वृद्ध विवाह के विरुद्ध लिखते हैं। धन के बल पर वृद्ध विवाह करने पर मैथिलीशरण गुप्त का व्यंग्य और भी अधिक पैना व गहरा है। वे वृद्ध की नवेली बहू से शादी करने में उसकी मौत से शादी की कल्पना करते हैं।

विधवा विवाह एवं वेश्यावृत्ति

आलोच्य काल में नारी सुधार संबंधी दो और समस्याओं का विवेचन आवश्यक है–विधवा विवाह एवं वेश्यावृत्ति। भारतीय नारी का सबसे दयनीय रूप उसकी विधवा अवस्था में देखा जा सकता है। परमुखापेक्ष विध्वस्त रूप मानो वह जीवन की व्यंग्य है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में निरन्तर रूप से नारी का यह करुण रूप साहित्यकारों के हृदय को झकझोरता रहा है। आलोच्य-काल में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने विधवा विवाह संबंधी पुस्तक की समालोचना करते हुए विधवा-विवाह की बुद्धिवादिता के आधार पर समर्थन किया तथा इस विषय में शास्त्रों की दुहाई देना भी उन्होंने व्यर्थ समझा। 'कथमहं नास्तिक' में द्विवेदीजी बाल विधवाओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के कारण नास्तिक कहलाना भी उचित समझते हैं। 'बाल विधवा विलाप' में उन्होंने अछूत, रूखा नीरस अन्न खानेवाली, चांडालिनी की तरह मुंह ढांप कर बाहर निकलनेवाली व रात-दिन गालियां सहनेवाली बाल-विधवा की कारुणिक दशा का चित्र खींचा है। समाज से हृदयहीन रेंगता तिरस्कार पाकर उनके हृदय से निकला हुआ वज्र निपात के सदृश तिरस्कार पाठकों के हृदय को स्तब्ध करने वाला है

धिक्कार ताहि हत भारतवर्ष देश
धिक्कार सभ्य समुदायहु निर्विशेष

धिक्कार बुद्धि बल वैभव को हमेश
पावें जहां निबल नारि इतो क्लेश

नाथूराम शंकर शर्मा की समाज के प्रति प्रतिक्रिया और भी तिक्त रूप में हुई। वे समाज की नग्नता को स्पष्ट शब्दों में उघाड़ कर रख देते हैं। कुल की मर्यादा नष्ट होने व्यभिचार फलने और नारी के प्रकृत धर्म लज्जा को छोड़ व्यभिचारिणी होने का प्रमुख कारण विधवा विवाह निषेध ही है। प्रेमचन्द ने 'प्रेमा' उपन्यास (लेखक के हम खुरमा व हम सवाब उपन्यास का अनुवाद) में विधवाओं के प्रति संवेदना प्रगट की तथा विधवा-विवाह के रूप में इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रतिज्ञा उपन्यास में पुनः विधवा-समस्या पर लेखनी उठाई जो कि उनके 'प्रेमा' उपन्यास का ही विकसित रूप है। अस्तु भारतेन्दु-युग में विधवा विवाह की आवश्यकता पर किये जाने वाले बल की द्विवेदी-काल में भी टेक निभायी गई।

आलोच्य-काल में नारी जाति की अत्यधिक जघन्य समस्या वेश्या-वृत्ति को भी लेखकों ने अपना विषय बनाया। प्रेमचन्द ने 'सेवा-सदन' में वेश्यावृत्ति के सामाजिक कारणों को यथार्थ रूप में देखा। सेवा-सदन में न तो वेश्या जीवन के घृणापूर्ण चित्र हैं और न सकुचित नैतिकता की दृष्टि से सुधार का भ्रमपूर्ण स्वर ही। उपन्यास के पात्र पद्मसिंह के शब्दों में 'हम उनसे (वेश्याओं से) घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएं हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है। यह दालमण्डी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात स्वरूप है।' सुमन का चरित्र एक दृढ़ नारी का चरित्र है जो जीवन में पग पग पर कठिनाइयों का सामना करती है। सुमन का पति उसके साथ दुर्व्यवहार कर उसे घर से निकाल देता है। पड़ोसी पद्मसिंह से आश्रय पाने की सुमन की आशा फलीभूत नहीं होती। तब भोली वेश्या के सम्पर्क में वेश्यावृत्ति को अपनाने के अतिरिक्त उसके सामने कोई रास्ता नहीं रहा। वेश्यावृत्ति अपना कर भी सुमन कभी किसी को अपना तन नहीं देती क्योंकि वेश्यावृत्ति के प्रति उसके हृदय में आन्तरिक घृणा का भाव है। सुमन के वेश्या होने के अपवाद के कारण केवल उसे ही सामाजिक अन्याय का शिकार नहीं होना पड़ता वरन् बहन शान्ता को भी उसके कारण दुःख झेलना पड़ता है। शान्ता की शादी के लिये आयी हुई बरात को जब पता लगता है कि शान्ता की बहिन वेश्या रह चुकी है तब बरात वापस लौट जाती है। विट्ठलदास व पद्मसिंह के अधिक कहने पर सुमन विधवाश्रम में प्रवेश करती है। उधर शान्ता भी अपने को अपमानित अनुभव कर विधवाश्रम का सहारा लेती है। जब आश्रमवासियों को सुमन के पहले के वेश्याजीवन का पता

चलता है तो उन्हें आश्रम में दुराचार फैलने की दुश्चिन्ता हो उठती है। दोनों बहनों को आश्रम छोड़ना पड़ता है। जब सुमन शान्ता के होनेवाले दूल्हे सदन से मिलती है तब वह उसकी कायरता व शान्ता के अपमान के लिए उसे धिक्कारती है। सदन अपने पिता से लड़ कर शान्ता से विवाह कर लेता है। अब शान्ता व सुमन दोनों सदन के साथ रहने लगती हैं। शान्ता के लड़का होने पर जब उसके श्वसुर सदन के यहाँ आते हैं उससे पहले ही अपने सम्भाव्य अपमान के भय से शान्ता गंगा की शरण ले लेती है। सुमन का पति गजाधर सन्यासी और नारी जाति के उद्धारक के रूप में संयोगवश सुमन को बचा लेता है तथा सुमन सेवा सदन की स्थापना कर नारी उद्धार के कार्य में लीन होती है। 'सेवा सदन' में प्रेमचन्द ने वेश्या जीवन की समस्या का सुधारवादी हल प्रस्तुत किया है। किन्तु उपन्यास का पात्र कुँवर अनिरुद्धसिंह वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के मूल उपायों का द्रष्टा प्रतीत होता है जब वह कहता है "जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज-कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर सम्मान के पात्र हों वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो। हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है। जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूद का अन्त होगा, उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायगी, य चिड़िया उड़ जायेंगी-पहले नहीं।" उपन्यास के अन्तिम अंश में प्रस्तुत किया गया सुधारवादी हल कला की दृष्टि से ही उपन्यास के सौन्दर्य को कम नहीं करता वरन् ऐसा प्रतीत होता है कि सुमन के विद्रोही चरित्र को उपन्यासकार ने बरबस झुका दिया है। सामाजिक न्याय, नारी जाति के अधिकारों के लिए संघर्ष व नैतिक मान्यताओं का नवीन मूल्यांकन कदाचित् समस्या का स्वाभाविक निदान होता न कि केवल एक नये आश्रम की स्थापना। द्विवेदी-युग की सुधारवादी प्रवृत्ति उपन्यासकार को, युग की विचारधारा के अनुकूल समाधान प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है।

नारी महत्ता का प्रतिपादन

समाज-सुधार की आवश्यकता दर्शाते हुए उपर्युक्त रूप में नारी उत्थान के प्रयत्नों के साथ आलोच्य काल में नारी के प्रति उच्चता की भावना अभिव्यक्त की गई। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की उक्ति को चरितार्थ करने-वाले प्राचीन भारत में नारी जाति के प्रति समुचित आदर की भावना पायी जाती थी किन्तु, मध्य युग में उसकी स्थिति 'ढोर, गवार, शूद्र, पशु' से बढ़कर नहीं रही। आलोच्य-काल में स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में नारी के प्रति आदर की भावना अभिव्यक्त की गई। सांस्कृतिक पुनरुत्थान काल की नारी विलासिता की पुतली मात्र न समझी जा कर घर से बाहर भी पुरुष के कार्यक्षेत्र में सहयोगिनी मानी गयी-केवल सहयोगिनी ही नहीं आवश्यकतानुसार पुरुष को कर्तव्य सुझाने वाली प्रेरक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित की गई। आदर्श के लिये आत्मोत्सर्ग करने

वाली वह महिमामयी अजेय शक्ति के रूप मे आदरणीया मानी गई। श्रीधर पाठक 'भारत गीत' कविता मे सती समाज का जय गान करते हुए आर्य महिला को विश्व की अजेय शक्ति कह उसका गुणगान करते हैं। लाला भगवानदीन ने 'वीर क्षत्राणी' म कमला कलावती व किरणदेवी को अपने सतीत्व की रक्षा करनेवाली वीर नारी के रूप म चित्रित किया नीलदेवी, वीराबाई कर्मदेवी दुर्गावती आदि क्षत्राणियां देश रक्षा के लिये कटिबद्ध हैं एव सुमित्रा अनसूया कु ती रेणुका विदुला आदि माताए अपने पुत्रो को कर्त्त व्यपथ पर बढने की प्रेरणा देती हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी एक प्रारम्भिक कविता म जसवतसिंह की पत्नी व बूढावन की रानी को युद्ध के लिए अपने पतियो को प्रेरणा देनेवाली शक्ति क रूप म चित्रित किया। रामनरेश त्रिपाठी के खण्ड काव्य 'मिलन' की नायिका विजया पति क कर्त्त व्य म बाधक होनेवाली नारी क जीवन व सौंदर्य को धिक्कारणीय मानती है

नारी क कारण से जग म
यदि न पति अपयश का भाजन
तो सचमुच है घोर पाप का
फलस्वरूप यह नारी का तन
है धिक्कार योग्य नारी का
हास्य घटा भरा वह यौवन
बनता है जिसके प्रभाव म
पुरुष पति अपकीर्ति निकेतन

उनके 'स्वप्न' की नायिका सुमन न केवल अपने को पति क कर्त्त व्य मार्ग की बाधक नहीं मानती वरन् वह कर्त्त व्य भ्रष्ट पति को कर्त्त व्य प्रेरणा भी देती है। विदेशियो द्वारा देश क पराक्रान्त होन पर सुमन अपने पति को देश-रक्षा क लिए युद्ध म जाने की प्रेरणा देती है किन्तु, उसका पति उसके रूप व यौवन पर मुग्ध है तथा अपने प्राणो का मोह लिए घर पर बैठा रहता है। सुमन स्वय पुरुष वेश धारण कर युद्ध म चली जाती है। कुछ समय उपरान्त वह बदले हुए वेश म अपने पति क पास लौट आती है जिसम कि उसका पति उसे पहचान न सके और स्वदेश रक्षा क लिए विमुख पुकार करता है। पति द्वारा सुमन क सबध म पूछताछ करने पर वह उसके वीरगति पाने की मिथ्या सूचना देती है। इसम प्रभावित होकर सुमन का पति भी स्वदेश रक्षा के लिए युद्ध भूमि का प्रस्थान करता है और विदेशी शत्रु को पराजित कर सुमन व उसका पति साथ लौटते हैं। त्रिपाठी जी ने नारी को पुरुष म भी बढ कर कर्त्त व्यपरायण चित्रित किया है। इसमें भारतीय-नारी म नारी क प्रति आदर भावना का परिचय मिलता है। 'मिलन' में नारी क यह पुरुष पर कि

मिका और राष्ट्र इन दोनों में से उसका प्रेमी किसे अधिक प्रेम करता है तथा उसके लिए वह किसका त्याग कर सकता है पुरुष इस मानसिक दुविधा को नारी के अपने कर्त्तव्य-पथ में सहयोगिनी होने के रूप में हल करता है जिससे कि उसे किसी का भी त्याग न करना पड़े।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं में कवियों द्वारा उपेक्षित नारी चरित्रों के प्रति सहानुभूति ही अभिव्यक्त नहीं की वरन् उनकी गौरव गरिमा भी प्रतिष्ठित की। उनके 'साकेत' की उर्मिला सीता से भी अधिक त्यागमयी है। राम के साथ जाने से सीता के लिए कुटिया ही राजभवन बन जाती है पर उर्मिला प्रिय-तम की विघ्न न बनने के लक्ष्य से राजमहल में ठहर कर भी तपस्विनी सी रहती है। उर्मिला की विरह-पीड़ा असहनीय है। वह मन से चाहती है कि लक्ष्मण लौट आयें पर अवधि समाप्त होने से पहले राम और सीता की सेवा छोड़ लक्ष्मण के लौट आने का अचेतनावस्था में उसे भ्रम होने पर वह 'फिरो फिरो' चिल्ला उठती है। चित्रकूट में लक्ष्मण द्वारा क्षण भर कुटिया में प्रवेश करने पर अचानक उन्हें क्षीण छाया-सी उर्मिला दिखलाई देती है तो वे भ्रमित से हो जाते हैं। उस समय लक्ष्मण को बाँध न रखने का उर्मिला का विनोद उसी की गरिमा के अनुकूल है तथा लक्ष्मण का उत्तर उर्मिला के गौरव को और भी महत्ता प्रदान करने वाला है कि उसके योग्य बनने के लिए लक्ष्मण को अभी तपस्या करना है सीता की बहिन उर्मिला केवल उपभोग की वस्तु नहीं। वर्तमान स्वतन्त्रता संग्राम में नारी पीछे नहीं रही इसकी प्रतिध्वनि साकेत के नारी चरित्रों की सृष्टि में मिलती है। जब लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने का समाचार सुन शत्रुघ्न शंखनाद करते हैं तो उस रणघोष को सुन सम्पूर्ण साकेत-नगरी युद्ध-प्रयाण के लिए प्रस्तुत हो जाती है। कैकयी भी युद्ध के लिए साथ चलने को तैयार होती है और उर्मिला सेनानी बन कर आगे बढ़ती है। उर्मिला का चरित्र यहाँ भी अत्यधिक उज्ज्वल रूप में प्रकट हुआ है। शत्रुघ्न वीरों को उत्साहित करते हुए स्वर्ण लंका लूटने को तैयार होने की प्रेरणा देते हैं तब उर्मिला बीच में ही रोक कर उस पापमय सोने को न छूने का आदेश देती है तथा भारतीय आदर्श की रक्षा के लिए शत्रुओं को दण्ड देकर भी अन्त में उनके प्रति दया की सीख देती है। इस प्रकार गुप्त जी ने उर्मिला को कर्तव्य परायण आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है।

गुप्तजी की 'यशोधरा' में भी गौतम को 'गौरव गाथा' को इतना महत्व नहीं दिया गया, जितना यशोधरा को 'करुण-कथा' कह कर कवि ने उसके महान त्यागमय रूप को दर्शाया है। बुद्ध के संबंध में रचित अन्य सम-सामयिक रचनाओं बुद्ध चरित (लेखक आर्नोल्ड लाइट आव एशिया'- अनुवादक रामचन्द्र शुक्ल) व सिद्धार्थ (लेखक अनूप शर्मा) में गोपा के चरित्र को विशेष गौरव प्राप्त नहीं हुआ। 'सिद्धार्थ' में तो कवि ने यशोधरा का वासनापूर्ण रूप ही दर्शाया है तथा रंग

गृह-कारागार में सिद्धार्थ यशोधरा की भुज-वल्लरियों की बच्च शृंखलाओं में बन्दी बन जाते हैं। पर, गुप्तजी की 'यशोधरा' में गोपा का रूप सौंदर्य गौतम को बन्दी बनाने के बदले उन्हें अधिक चिंताशील बना देता है। गौतम के गृह-त्याग में भी उनकी यशोधरा के प्रति प्रेम-भावना ही मूल प्रेरणा स्रोत है। वृद्धावस्था का रूप देख वे यशोधरा के भी वृद्ध होने की आशंका से व्यथित हो उठते हैं। संसार को निस्सार समझ वे अर्द्ध निशा में यशोधरा को सोती हुई छोड़ कर मुक्ति की खोज में चले जाते हैं। प्रश्न उठता है, यशोधरा से बिना कहे सिद्धार्थ क्यों चले गये ? क्या वे समझते थे यशोधरा उनके कर्तव्य पथ में बाधक बनेगी ? स्वयं अपने मन की कमजोरी के कारण यशोधरा से बिना कुछ भी कहे चले गये। कुछ हो, इससे यशोधरा के आत्म सम्मान को ठेस पहुँची है। नवयुग की नारी का सजग स्वर उनकी दृढ वाणी में प्रकट हुआ है

सिद्ध हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात
पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात
सखी वे मुझसे कह कर जाते
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते ?
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं रण में
क्षात्र धर्म के नाते

डा० सोमनाथजी गुप्त ने लिखा है सखि वे मुझसे कह कर जाते वाले गीत में यशोधरा के हृदय की उस ग्लानि का चित्र है जो सजग स्त्री पति द्वारा ठगे जाने पर अपने हृदय में अनुभव करती है। सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलनों के समय कितनी ही भारत की स्त्रियों ने यह सब (प्रियतम को प्राणों के पण में भेज) कर के दिखा दिया था। नारीत्व का यह अनुभव और उसकी सक्रिय व्यंजना गांधीवाद की बहुत बड़ी देन है। + अस्तु गौतम की सिद्धि ही गोपा के जीवन की सबसे बड़ी कामना बन जाती है। गौतम के प्रत्यागमन की सूचना मिलने पर वह सभी से पहला प्रश्न करती है आली उन्हें सिद्धि तो मिली है ? पर वह मानिनी बुद्ध के पास नहीं जाती तथागत ही आते हैं गोपा का मान रखने उसके द्वार पर। स्वयं बुद्ध अपनी सिद्धि प्राप्ति में गोपा के घोर ध्यान की महत्ता स्वीकार करते हैं जिसने कि उन्हें मार के प्रहारों में बचाया था। बुद्ध का कथन दीन न हो नारि सुना हीन नहीं नारी कभी' नारी की महत्ता की प्रतिष्ठापना करता है एवं न्दान्न की तरह पाठक भी कहना चाहता है 'गोपा के बिना नहीं गौतम भी

• डा० सोमनाथ गुप्त [illegible] मनुष्यों में गांधीवाद साहित्य-सन्देश' के प्र क में

ग्राह्य मुझे' । भिक्षा लेने के लिए द्वार पर आये हुए तथागत को अपना पुत्र राहुल जिसके साथ सिद्धार्थ की अनुपस्थिति में वह जीवन भर हसी खेली, रोई है, अर्पित कर देती है। इस अवसर पर गोपा के शब्द देवी की मंगलवाणी के सदृश प्रतीत होते हैं

तुम भिक्षुक बन कर आये थे
गोपा क्या देती स्वामी ?
था अनुरूप एक राहुल ही
रहे सदा वह अनुगामी
मेरे दु:ख में भरा विश्व-सुख
क्यों न भरूं फिर मैं हामी
धम्मं शरणं गच्छामि
बुद्धं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

अत आलोच्य-काल में नारी को अतिशय महत्ता से मण्डित किया गया है। कवियों की आस्थावादिता के कारण नारी चरित्रों का वर्णन विस्तार आवश्यकता से अधिक भी हो गया है। नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है 'इसी समय से ऐसी साहित्यिक कृतियाँ प्रधान होने लगी थीं जो कदाचित् पुरानी साहित्यिक परम्परा के विरुद्ध नयी बात थी। इन चरित्रों के साथ एक अतिरिक्त भावनामयता लगी हुई है।' *तथापि साहित्य में प्रगटित नारी सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण से तत्कालीन युग की सामाजिक व सांस्कृतिक नव चेतना का परिचय मिलता है।

अछूत जातियों के प्रति सहानुभूति

पद दलित जनों का उत्थान आलोच्य काल के साहित्य का युगधर्म है। समाज में नारी की दयनीय स्थिति ने ही नारी उत्थान की भावना को प्रेरणा दी थी। इसी प्रकार समाज का दूसरा पददलित अंग अछूत कही जाने वाली जातियाँ रही हैं। नारी जाति के उत्थान की तरह अस्पृश्यता निवारण कार्य को भी महात्मा गांधी ने उठाया। वे एक भंगी की लड़की को स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रपति के पद पर देखने के आकांक्षी थे। वस्तुत छूआछूत का भेदभाव राष्ट्रीयता के विकास में अत्यधिक बाधक था। अस्तु, आलोच्यकाल के साहित्य में हरिजन उद्धार की प्रवृत्ति पायी जाती है। मैथिलीशरण गुप्त अछूतों में महान् आत्माओं का दर्शन करते हैं। कबीर व रैदास अछूत ही थे। मनुष्य अच्छे कार्यों से महान बनता है अत छुआछूत की भावना व्यर्थ है

+ नन्ददुलारे वाजपेयी 'आधुनिक साहित्य' भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद पृष्ठ १४

श्री कबीर रदास कौन थे, सोचो बारम्बार
उनसे कौन घृणा करता है, जिन पर प्रभु का प्यार
शुद्धाचार विचार चाहिये और सत्य व्यवहार
धारण करो साधुता लेगा पद रज तक संसार
पूत कर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत
छूत बुरी है महोभाग्य है यदि हम हुए अछूत

सियारामशरण गुप्त की 'एक फूल की चाह' कविता में अछूत की मार्मिक वे मुखरित हुई है। देवी के फूल को पाने की इच्छा लिए ज्वर-पीड़ित अछून क की मृत्यु हो जाती है और फूल लेने के लिए गया हुआ उसका पिता मन्दिर प्रवेश अपराध में जब सात दिन का कारावास झेल कर लौटता है तो उसे श्मशा बालिका की राख की ढेरी ही मिलती है। बद्रीनाथ भट्ट 'पतित का उलाह कविता में छुआछूत के रक्षक ब्राह्मणों के प्रति व्यंग्य करते हैं। महात्मा गांधी हृदय परिवर्तन की नीति द्वारा अछूतोद्धार में उनका विश्वास नहीं प्रतीत होत हिंदू समाज में अछूतों को समुचित स्थान न मिलने पर 'पतित का उलाहना' अछूत सवर्ण हिंदुओं से अपनी जाति का विच्छेद कर स्वातन्त्र्य भावना व्य करता है।

विवाह-समस्या

द्विवेदी युग में नारी-चरित्र के आदर्शीकरण का परिणाम छायावादी-यु नारी को अतीन्द्रीय रूप में चित्रित करने के रूप में पाया जाता है। वस्तुत ग युग में आदर्शवाद एवं शृंगार उपभोग विरोधी भावना के कारण साहित्य में न चरित्र का आदर्शात्मक कल्पनाजन्य स्वरूप अभिव्यक्त हुआ था किन्तु, पाश्च सभ्यता के प्रभाव स्वरूप जीवन की मान्यतायें बदलने लगी। छायावाद के अंत आते आते हम पाते हैं कि नारी के जिस आदर्श व मोहक रूप का चित्रण कि जा रहा था वही नारी भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था विवाह स के प्रति ही विद्रोह करने लगती है। निश्चय ही आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान प्रभाव-स्वरूप ही सामाजिक मान्यताओं में यह परिवर्तन उपस्थित हुआ है।

इधर मनोवैज्ञानिक कहे जानेवाले कथाकारों का लैंगिक-नैतिकता विवाह-संस्था की उपयोगिता में विश्वास नहीं है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों विवाह समस्या प्रधान रूप से चित्रित की गयी है। अतः यहाँ पर इस सम का अवलोकन उचित होगा।

जैनेन्द्र के पहले उपन्यास 'परख' (१६२६) में बाल-विधवा कट्टो हृदय अपने मास्टरजी सत्यधन को चाहती है। पर सत्यधन जब गरिमा से विवाह क चाहने लगता है तो कट्टो का सत्यधन के प्रति सरल-विश्वास हिलता नहीं

वह सत्यधन के मित्र व गरिमा के भाई बिहारी के साथ 'एक प्राण दो काया रहने के 'वध य–यज्ञ' के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होती है। कट्टो अपने मास्टरजी को सुखी देखने के लिए ही बिहारी के साथ बचती है। सत्यधन ने विवाह धन व सुविधा के लिए किया था। किंतु, गरिमा के पिता जब सारा धन बिहारी के नाम लिख कर मर जाते हैं तो बिहारी व कट्टो के प्रति उसके हृदय में आक्रोश जगता है। इस समय कट्टो का यह प्रश्न 'क्या मैं तुम्हारी नहीं हूं' और चालीस हजार के नोट सत्यधन को सौंपना कट्टो के हृदय में सत्यधन के प्रति संचित प्रेम को ही अभिव्यक्त करते हैं। यह प्रेम भाव–रूप है शारीरिक संबंध की अपेक्षा इसमें नहीं है। शारीरिक एकता का भान तो बिहारी व कट्टो के सम्बन्ध में भी कहीं नहीं मिलता। वे एक दूसरे से अलग होते हैं सेवा के कर्तव्य को लेकर। क्या यह आदर्शवाद मनोवैज्ञानिक आधार पर पोषित हो सकता है? शायद नहीं शायद हां। पर यहां पर एक ही बात पर ध्यान केंद्रित होता है बाल–विधवा कट्टो बिहारी के साथ बंध कर भी सत्यधन के लिए प्रेम संचित किये है और इस बात के कारण लेखक व पाठक की सहानुभूति उसके प्रति कम नहीं होती है वरन् इसी कारण बढ़ती है। क्या यह विवाह की प्रचलित मान्यता के प्रति विरोधी भाव व्यक्त नहीं करता?

जनेन्द्र की सुनीता में स्पष्ट ही विवाह प्रथा के विरोध में बहुत कुछ ध्वनित होता है। यद्यपि सुनीता और श्रीकांत सहमत हैं कि विवाह निबाहने योग्य संस्था है क्योंकि मानवता रूढ़ि–संस्था 'कुटुम्ब' पर आधारित है और कुटुम्ब विवाह पर टिका है और नागरिकता नहीं चल सकती यदि जीवन परीक्षण के लिए ही समझ लिया जाय, कानून तोड़ने ही के लिए, फिर भी श्रीकांत के मन में असगत भाव उठता है और हरिप्रसन्न को पहले ही पत्र में, जो उसे मिलता नहीं लौट आता है वह लिखता है 'हम दोनों का कुछ भी तरिक मेल नहीं।' जनेन्द्र स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को प्रकृत रूप में ही देखते हैं अतः विवाह संस्था को समाज की उपयोगिता की दृष्टि से भले ही वे मान्यता दें, जो कि वे देते हैं, किन्तु यौन नैतिकता (Sex Morality) एक ही स्त्री व पुरुष के सम्बन्ध के औचित्य को स्वाभाविक व अनिवार्य नहीं मानते। 'सुनीता' में स्टडी रूप में हरिप्रसन्न और सुनीता हैं। किस सम्बन्ध से व पास हैं यह सोचना ही व्यर्थ है। लेखक व्याख्या करता है "हमने हरिप्रसन्न और सुनीता नाम दिये हैं। वे नाम झूठे नहीं हैं पर नाम ही हैं। सुनीता स्त्री है, हरिप्रसन्न पुरुष है। उन नामों के बहुत नीचे जाकर उन दोनों में एक केवल स्त्री रह जाती है दूसरा पुरुष रह जाता है ... परिवार पीछे आते हैं। नाम–रिश्ते नाम गोत्र, मत–पथ, वर्ण सम्प्रदाय सब पीछे आते हैं। ... सुनीता नाम के तल सगृहीत व्यक्तित्व के भीतर वह मात्र और प्रकृत स्त्री है, उसी भांति दूसरा भी अपने नाम

को अभिमत छोड़ कर बस पूर्ण है।" * आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के मत में स्त्री का एक पति के शासन में रहना अथवा पुरुष का एक स्त्री से यौन सम्बन्ध रखना चाहे सभ्यता की देन हो किन्तु स्वाभाविक नहीं है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक ए० ए० ब्रिल के अनुसार अत्यधिक नैतिक स्त्रियों में भी अन्य पुरुष से संयोग की भावना जगे बिना नहीं रहती जिस पर वे स्वयं लज्जित हो उठती हैं। फिर भी यह भाव उन्हें सुखकर भी प्रतीत होता है। + दार्शनिक बर्ट्रेंड रसल स्त्री व पुरुष को स्वभावतः बहुवैवाहिक प्राणी मानता है। × सुनीता के पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के प्रति प्रेमाकर्षण का अन्तर्द्वन्द्व मीरा के प्रतीक के रूप में व्यक्त हुआ है। सिनेमा हाल में प्रदर्शित मीरा का चित्र सुनीता को उन्मित कर देता है। राणा के प्रति उसे सहानुभूति है पर मीरा के प्रति भी श्रद्धा भाव उमड़ता है जो पतिव्रता नहीं है।। — इसके लिए सुनीता श्रीकान्त से क्षमा-याचना भी करती है। पाठक यहां स्पष्ट समझता है मीरा की कथा प्रकारान्तर से सुनीता की ही कथा है। मीरा ही सुनीता है, एक रूप में श्रीकान्त ही राणा और हरिप्रसन्न कृष्ण बनवारी। मीरा के प्रति सहानुभूतिशील न हो पाना असम्भव है और यह विवाह प्रथा के, पतिव्रत धर्म मान्यता के बन्धन को ढीला करता है। श्रीकान्त हरिप्रसन्न को सुनीता के पास छोड़ कर दूसरे शहर में जाता है और वहां इसी उद्देश्य से अधिक ठहर जाता है कि हरिप्रसन्न व सुनीता अधिक निकटता अनुभव कर सकें। निकटता की उस सीमा तक पहुंच कर जहां ग्लानि का अनुभव होता है, हरिप्रसन्न लौट आता है और बिना कुछ बताये घर से चल पड़ता है। तब श्रीकान्त आकर उससे हरिप्रसन्न को न रोक सकने का उत्तर पाना चाहता है। सुनीता के यह कहने पर भी कि 'सच कहती हूं मैंने अपने का नहीं बचाया' श्रीकान्त सरल विश्वास से 'अटल प्रवर यकीन मैं न हूं तो रोऊं' वह अपने मन

---

* जैनेन्द्रकुमार 'सुनीता' हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई चौथा संस्करण १९४९ पृष्ठ १००

\+ A A Brill "I might say that this is one of those fanciful emotions that particularly all moral women sometimes secretly desire to taste We have named it the being for naughty desire or 'prostitution complex"

× Bertrand Russel "I think that uninhibited civilized people, whether men or women are generally polygamous in their instinct"

— । जैनेन्द्रकुमार 'सुनीता', हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई चौथा संस्करण १९५०, पृष्ठ ५३

पर टिके सुनीता के चेहरे को थपथपाता है थपथपाता है। सुनीता पति द्वारा परित्यक्त न होने के अधिकार को मांगती है और वह अधिकार उसे प्राप्त है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि जनेन्द्र की दृष्टि मे विवाह सस्था की उपयोगिता स्वीकार्य है किन्तु, अवश्य ही वे सेक्स मारलिटी के प्रतिपक्षी नही। जैनेन्द्र के 'एक रात' कहानी सग्रह की अतिम कहानी 'क्या हो' का नायक दिलकर फासी की सजा पाकर अपनी मृत्यु की कल्पना करता है तो अपनी पत्नी सुषमा के भाग्य पर ही क्षुब्ध है जिसे वह जीवन मे कष्ट के अतिरिक्त कुछ दे नही पाया। वह अपने जीवित रहते ही सुषमा को कुलवन्त जो उसे सुषमा की भार आर्पित भी प्रतीत होता है, से विवाह कर लेने की प्राथना करता है और सुषमा अपने पति की आत्मा को शाति देने उसके जीवित रहते ही (फासी की सजा पाने के बाद दो दिन का महमान ही तो है वह) यह विवाह करने का निश्चय कर लेती है– जहर के प्याले को हस कर पीने का स्वाद से जिन्दगी भर घूट घूट। * जनेन्द्र विवाह सस्था को व्यक्ति के परोन्मुख बनने का अवसर देने के साधन के रूप मे उपयोगी तो मानते हैं कि तु वे उसे किसी रूप में व्यक्ति की अन्तर्भावनाओ व जीवन सुविधाओं के प्रति कठोर नही बनने देना चाहते।

ऊपर जैनेन्द्र के उपन्यासो के आधार पर विवाह समस्या व प्रचलित यौन नतिकता का विवेचन किया गया है। जनेन्द्र के उपन्यासो की मूल समस्या विवाह की समस्या ही है। किन्तु अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म भी विवाह समस्या के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये गये हैं। इलाचन्द्र जोशी के पर्दे की रानी' उपन्यास म इन्द्रमोहन किसी प्रकार निरञ्जना को प्राप्त करना चाहता है किन्तु, जब वह अपने सभी प्रयत्नो म असफल होता है तो अन्त मे शीला से विवाह कर लेता है। इसलिए नही कि उसे प्रेम है वरन् इसलिए कि विवाहित जीवन व्यतीत करने के कारण उसके सम्बन्ध म निरञ्जना को अच्छी धारणा बन जाएगी और तब वह शायद निरजना को पा सकेगा। + इन्द्रमोहन के व्यवहार से समाज में विवाह सस्था के सम्मानीय स्थान की धारणा का परिचय तो मिलता ही है कि तु उसकी आड म दुष्प्रवृत्तियो के पोषण का भीषण व्यग्य भी निहित है। अज्ञेय के शेखर एक जीवनी व 'नदी के द्वीप' उपन्यासों मे उनकी विवाह सम्बन्धी धारणा प्रकट हुई है। नदी के द्वीप' से दो एक उदाहरण देखें। चन्द्रमाधव रेखा को पाना चाहता है पर

---

* जनेन्द्रकुमार 'एक रात', सरस्वती प्रेस बनारस द्वितीय सस्करण १९४६ पृष्ठ २१५

+ इलाचन्द जोशी 'पर्दे की रानी' भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद द्वितीय सस्करण स० २००२ पृष्ठ ११८।

उस ओर से अधिक आशा न रहने पर गौरा की ओर भी आकर्षित होता है, किन्तु दोनों ओर से निराशा ही मिलती है। तथा रेखा व गौरा की ओर आकर्षित व प्रयत्नशील होने का उसका कारण यह है कि वह स्वयं अपने विवाह से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सका। इस सम्बन्ध में वह एक पत्र में रेखा को लिखता है 'पर मैं अपने विवाह को विवाह कभी नहीं मान सका हूँ—ऐसा विवाह संस्कार को कायम करने की रस्म से अधिक कुछ नहीं है, न हो सकता है।* [illegible] के मन में अपनी ही विवाहिता स्त्री का पुनः स्वीकार करने की भावना जगती है और उस पर दया आती है। विवाह पति व पत्नी के बीच भयंकर एकरसता और नीरसता का रूप ग्रहण कर लेती है जो जन्म देता है। रेखा और भुवन प्रेमी प्रेमिका ही हैं पर जब मौन असह्य हो जाता है तो रेखा कहती है 'कैसे हम लोग सात बरस से ब्याहे पति-पत्नी की तरह हो गये हैं—बातचीत के लिए कोई विषय नहीं मिलता तकल्लुफ की बातें कर रहे हैं'—भुवन ने हँस कर कहा—"तकल्लुफ काफी है यही क्या कम है? सात बरस बाद तो जुम्हाई का वक्त आ जाता है—या बिल्कुल मौन उपेक्षा का'।+ रेखा को विदा देते भुवन प्लेटफार्म पर खड़ा है कि रेखा डिब्बे से झाँकी में खिल कर भुवन को बताती है यह जो पड़ोसिन बैठी है, मुझ से पूछ रही थी, ये आपके हजबैंड हैं? मैंने कहा, हाँ। शादी को कितने बरस हुए हैं? मैंने कहा सात। बोली बड़ी भाग्यवती हैं आप! क्यों? कि सात बरस बाद भी आपके हजबैंड आपको इतना प्यार करते हैं। भुवन आकारों में हम क्यों इतना बँध जाते हैं कि आत्मा मर जाय।" × हेमेन्द्र जब रेखा को तलाक देता है तो यह रेखा के लिए प्रसन्नता की ही बात है किन्तु तलाक की प्रथा में भी सामाजिक न्याय के सम्बन्ध में रेखा आश्वस्त नहीं है क्योंकि असफल विवाह की ग्लानि, आत्मावसादों मर्माघातों का कोई उत्तर नहीं है। हेमेन्द्र से तलाक के पश्चात् जब रेखा का रमेशचन्द्र से विवाह निश्चित होता है वह भुवन से लिखती है 'बरसों मैं श्रीमती हेमेन्द्र कहलाई, उसके क्या अर्थ थे? अब श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊँगी—उसके भी क्या अर्थ हैं [illegible] इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि मैं तुम्हारी हूँ ये पार्थिवता के बंधन, ये आकार, ये सूने कंकाल ।—। डा० देवराज के 'पथ की खोज' उपन्यास में चन्द्रनाथ का मित्र हरिशंकर स्त्री पुरुष के लिए एक—

---

* अज्ञेय 'नदी के द्वीप' प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, दिल्ली १९५१ पृष्ठ ११८।

\+ वही, पृष्ठ २७९।

× वही पृष्ठ ३२१।

।—। वही, पृष्ठ ४१२।

दूसरे के आकर्षण व भूख के प्रशंसावाचक नाम को ही प्रेम कहता है तथा इसे ही हिंदु विवाह की सफलता का कारण मानता है। विवाह के लिए भावना के नापसंद किये जाने का समाचार जब चन्द्रनाथ को मिलता है तो वह विवाहित जीवन की व्याख्या करता है 'समाज की दृष्टि में विवाहित जीवन किसी उच्चादर्श की खोज या प्राप्ति के लिए नहीं है जिसके लिए समान मस्तिष्क और समान दृष्टि तथा वेदनाओंवाले स्त्री-पुरुषों का साहचर्य आवश्यक हो, वह उसे केवल काम-वासना का क्रीडा क्षेत्र तथा प्रजनन का यंत्र समझता है। उसके व्यवहार से लगता है मानो दाम्पत्य जीवन व्यभिचारशाला है और विवाह उसका दरवाजा जिसमें खड़े होकर युवक और युवतियां एक दूसरे से शारीरिक आकर्षण तथा ऐश्वर्य का मोल करते हैं। * विवाहित जीवन के असफल होने पर कष्टमय जीवन की वेदना प्राय नारी के ही भाग्य में गिरती है।

प्रेम संबंधी काडवेल की विचारधारा का आरोपण

प्रेम जीवन के साधन रूप में

प्रेम के संबंध में प्रगतिवादियों का विशिष्ट दृष्टिकोण पाया जाता है। वे प्रेम का आधार आर्थिक मानते हैं। आदर्शवादियों की तरह वे प्रेम का शाश्वत रूप स्वीकार नहीं करते वरन् उनके अनुसार आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रेम भावना में परिवर्तन स्वाभाविक है। क्रिस्टफर काडवेल (Christopher Caudwell) का कथन है कि हमारे सामाजिक (आर्थिक) संबंधों का भावात्मक पहलू ही प्रेम है। प्रेम चाहे जितना महत्वपूर्ण हो किन्तु, आर्थिक उत्पादन से पर उसका महत्व नहीं है। अत काडवेल विभिन्न युगों की आर्थिक व्यवस्था के अनुसार प्रेम की व्याख्या करते हुए प्रतिपादित करते हैं कि ग्रीक समाज में दास-प्रथा प्रचलित थी। अत उस युग का प्रेम स्वप्नदर्शी (Platonic) था। सामन्ती-युग में सामन्तों के परस्पर युद्धों के कारण उसका स्वरूप रोमानी हुआ। पूंजीवादी-युग में व्यक्तिवाद के विकास के फलस्वरूप अत्यधिक आवेश, अतृप्ति तथा व्यक्तिवादी प्रेम का प्राधान्य हुआ पूंजीवादी युग में अधिकांश जनता एक ओर आर्थिक शोषण के चक्र में पिसती है तो दूसरी ओर इस युग की विकसित आर्थिक व्यवस्था से जीवनयापन के साधनों को अधिक मात्रा में उपलब्ध करने की लालसा बढ़ जाती है। विवाह तथा वैवाहिक जीवन अधिक खर्चीला हो जाता है। अत लोग एक विचित्र प्रकार के कल्पनात्मक प्रेम में डूबे रहते हैं जिसमें अतृप्ति व वेदना की प्रधानता रहती है। प्रगतिवादियों के [illegible] वर्तमान समय में जीवन के भावात्मक व आर्थिक पहलू में दरार पड़ गई है [illegible]

। * । डा० देवराज 'पथ की खोज', बुद्धिवादी प्रकाशन [illegible]
पृष्ठ २०७ ।

में आर्थिक समता की स्थापना से ही दूर हो सकती है। अतः वे प्रेम की अमरता में विश्वास नहीं करते तथा उसे जीवन के विकास के साधन रूप में ही स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः वर्तमान युग की जटिल समस्याओं के बीच विश्वास के कोमल तन्तु पर प्रेम के अटूट बने रहने की कल्पना असत्य एवं भ्रमपूर्ण है। यशपाल मनोवैज्ञानिक के बदले प्रेम के आर्थिक पहलू को प्रधानता देते हैं। 'दादा कामरेड' में एक रात हरीश शैल से उसके प्रेम के अनुभवों को पूछता है तब शैल अपने जो अनुभव बतलाती है उसका निष्कर्ष यही है कि प्रेम बन्धन जीवन का विस्तार करने के साधन रूप में वरेण्य है। जहाँ प्रेम जीवन के विस्तार में बाधक बनता है वह नष्ट हो जाता। शैल का एक लड़के से प्रेम सबंध होता है जिससे वह गर्भवती हो जाती है और समाज के डर से उसके पिता गर्भपात करवाते हैं। यह लड़का एक पुत्रहीन इकलौती लड़की के पिता बड़े जमींदार के यहाँ विवाह कर लेता है और प्रेम नष्ट हो जाता है। इसके उपरान्त शैल व राबर्ट के प्रेम में भावुकता का आभास मिलता है किन्तु उसका भी अन्त आर्थिक संबंध की कठोर यथार्थ भूमि पर होता है।

यशपाल के 'देशद्रोही' में भी प्रेम का आधार आर्थिक दर्शाया गया है। लेफ्टीनेन्ट डा० खन्ना को फौज के युद्ध वजीरी उठा ले जाते हैं। डा० खन्ना की पत्नी राज को फौज से खन्ना की मृत्यु की सूचना भेज दी जाती है किन्तु खन्ना को परिस्थितिवश एक स्थान से दूसरे स्थान भटकना पड़ता है। वजीरियों के यहाँ उसका प्रेम कुण्ठित रहता है क्योंकि वहाँ प्रेम मौत के भय से कम नहीं है। वहाँ हब्बा और नूरन के प्रेम से उसे भय ही अनुभव होता है। पर गजनी में सौदागर अब्दुल्ला के हाथ बिके अख्तार (मुसलमान बना कर डा० खन्ना को दिया गया नाम) को अपने नये मालिक की लड़की नर्गिस के प्रति आकर्षण अनुभव होता है क्योंकि नर्गिस का प्रेम हब्बा व नूरन के प्रेम की भांति आत्मघातकारी नहीं है और नर्गिस जहाँ हब्बा व नूरन से अधिक सुंदर, निर्मल व व्यवहार कुशल है वहाँ अख्तार को अपने सिर पर भय की छाया भी इतनी गहरी नहीं दिखाई देती है। संस्कारवश अख्तार को दिल्ली में अपनी पत्नी राज का स्मरण आता है पर वह अपने मन को यही समझाता प्रतीत होता है कि जीवन में प्रेम का उपयोग विकास के लिये साधन रूप में ही हो सकता है वह स्वयं साध्य नहीं बन सकता।

'मनुष्य के रूप' उपन्यास में यशपाल ने अपने प्रेम सम्बन्धी विचारों को आग्रहपूर्वक व्यक्त किया है। विधवा सोमा पशु की भांति जीवन व्यतीत करते हुए भी ससुरालवालों द्वारा मुसलमान के हाथों बेचे जाने के भय से मोटर ड्राइवर धनसिंह के साथ भाग जाती है किंतु, पुलिस की नजर न बचा पाने से धनसिंह को जेल जाना पड़ता है तथा सोमा को आर्य-समाजी मन्त्री की सहायता व कम्युनिस्ट भूषण के सम्पर्क से सेठ ज्वालासहाय की कोठी में आश्रय मिलता है। इस घर की लड़की मनोरमा जिसके भाई जगदीश सराला से कम्युनिस्ट भूषण की मित्रता भी

तथा बाद मे मनोरमा से भी हो गई आदर्शवादी प्रेम म विश्वास करती है। वह सोमा को सा त्वना देत हुए कहती है" यदि धर्नासह न भी आये, वह तुम्हें भूल भी जाय तब भी तुम उससे प्रेम करती रह सकती हो। यही कितना बडा सुख और सतोष है।" पर सोमा इसके उत्तर में जीवन की यथाथ समस्या उपस्थित कर देती है हाय म कहाँ रहूँगी क्या करूगी ?" नित्य जीवन म असहाय स्थिति उत्पन्न होने पर गहन प्रेम भी घृणा मे परिणित हो जाता है। इसका उदाहरण भी यशपाल के देशद्रोही' उपन्यास मे देखा जा सकता हैं। राज अपने पति डा० खन्ना की मृत्यु का समाचार पाकर अफीम खा सती होने का प्रयत्न करती है किन्तु वही राज दो तीन वष बाद बदरी बाबू से विवाह कर लेती है क्योंकि व उसे व्यक्तिगत सहारे के रूप मे मिले थे। राज की बहिन चान्द जिस समय मृत्यु के मुख में जाते हुए डा० खन्ना को लेकर आश्रय के लिये राज के यहा जाती है तब राज उसे देखने तक मे इन्कार कर देती है। ऐसी परिस्थिति 'मनुष्य के रूप म भी है। एक समय धर्नासह से यह कहने वाली सोमा यदि तुम पुन कही चले गये तो प्राण हत्या कर लूगी' के पास सुदीघ जीवन के अन्तराल के बाद जब धर्नासह भूषण के साथ मिलने जाता है तो वह यही कह पाती है 'म सोमा नही हूँ तुम लोग क्यों मेरे पीछे पडे हो" क्योंकि अब वह सोमा पहाडन है जो चित्रपट उद्योग म सबसे अधिक आय पैदा करती है और धर्नासह जस गरीब के साथ उसका निबाह नही हो सकता। अस्तु यशपाल की दृष्टि म 'प्रेम केवल जीवन का सहायक साधन है। *

प्रगतिवादी दृष्टिकोण से प्रेम के सर्वोत्तम रूप के सबध मे भी यशपाल के उपन्यासो मे आभास मिलता है। प्रगतिवादी दृष्टि से श्रेष्ठ प्रेम वही है जिसमे आर्थिक आश्रय की माग नही होती तथा व्यक्ति समानता के आधार पर परस्पर प्रेम बधन मे आबद्ध रहते हैं। 'मनुष्य के रूप म जब मनोरमा देखती है कि सोमा धर्नासह के प्रति उदासीन होकर उसके भाई जगदीश सरोला की ओर आकृष्ट होने लगी है तो उसके हृदय को ठेस पहुँचती है। क्या प्रेम परिवतनीय है विशेषकर भौतिक सुख सुविधा मात्र के कारण ? "सहसा उसका (मनोरमा का) मस्तिष्क बिजली की तरह कौंध गया सभी स्त्रिया आश्रय का मूल्य, प्रेम क मूल्य अपने शरीर से चुकाती हैं। आत्म निभर प्रेम तो वही है जो मूल्य मे आश्रय न मांगे। प्रेम के मल्य में जीवन भर का आश्रय पाया या कुछ रूपये। प्रेम करने का अधिकारी वही है जो आश्रय न मांगे, जो अपने पाव पर खडा हो।" + ऐसा प्रेम देशद्रोही' उपन्यास में समरकन्द (रूस) मे गुलशा डा० खन्ना के प्रति निवेदित करती है। गुलशा को डा० खन्ना से

---

* यशपाल, 'मनुष्य के रूप' विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४९

+ वही पृष्ठ १७१

उसकी परिणीता राज का पता चलता है तो वह इसी से संतुष्ट हो जाती है कि जीवन भर स्नेह के माधुर्य को यदि नहीं पाया जा सकता है तो जितने क्षण भी पाया जा सके। पर डा० राधा के निश्चिन्त विश्वास पर इससे ठेस पहुँचती है। वह सोचता यह भी क्या जबरन अपने प्रेम का बोझ लादते फिरना। राज का प्रेम शील और संकोच भरा उसका माधुर्य सुधा के लिए स्पृहणीय बन जाता है और भारत के लिए गुलशा से विदा लेने के पश्चात् सुधा अपनी भूल पहिचानता है। राज के प्रेम से गुलशा के प्रेम की तुलना कर वह पाता है कि गुलशा के जिस व्यवहार को उसने निर्लज्जता का पर्दा डालना समझा था वह वास्तव में उसकी आत्म निर्भरता व आत्माभिमान था। अपने उदासीन अथच् कठोर व्यवहार के पश्चाताप रूप उसकी स्फुट हुई वह एक विस्तृत पत्र लिख गुलशा को समझा है, उसकी यह रुखाई उसके गत सम्पूर्ण जीवन में स्त्री के गुणों के प्रति स्वीकार किए विश्वासों का परिणाम था जिसके अनुसार नारी का गुण पुरुष के प्रति अधीनता प्रकट करना है।*

ढहती मान्यतायें

प्रगतिवादी साहित्य की रचना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के ध्येय को लेकर की जाती है अतः स्वभावतः उसमें समाज की प्रचलित मान्यताओं के प्रति आक्रोश पाया जाता है तथा प्रगतिवादी साहित्यकार उन्हें ढहते हुए रूप में चित्रित करता है। वह पूंजीवादी सभ्यता के खोखलेपन को दर्शाता है तथा इस व्यवस्था में समझे जानेवाले सभ्य, शिष्ट व संस्कृत को केवल कुत्सित मानता है। उसकी दृष्टि में पूंजीवादी व्यवस्था मानवीय मूल्यों का दम घोट देती है। वह इन निष्ठाओं का मूल्यांकन नवीन कसौटी जनहित के आधार पर करता है

धर्म नीति और सदाचार का मूल्यांकन है जनहित
सत्य नहीं वह जनता से जो नहीं प्राण सम्बंधित ॥ +

वह स्थूल जनहित के आदर्श के आधार पर नवीन संस्कृति के निर्माण की ओर अग्रसर होता है। पूंजीवादी व्यवस्था जिसमें धनवान अधिक धनी व निर्धन अधिक धनहीन बन जाते हैं—सिद्धान्त पर आधारित आधुनिक सभ्यता को प्रगतिवादी हेय दृष्टि से देखते हैं। प्रेमचन्द ने आधुनिक सभ्यता को 'महाजनी सभ्यता' कहा है जिसका आधार निर्धन जनता का आर्थिक शोषण है। निराला ने आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि

---

* यशपाल, दादा कामरेड, विप्लव कार्यालय १९४१, लखनऊ, पृष्ठ १६६
+ सुमित्रानन्दन पन्त युगवाणी पृष्ठ ५

जिस प्रकार रात में वेश्यायें धोखा देती हैं उसी प्रकार दिन में सभ्यता छलती है। • प्रभाकर माचवे ने 'बीसवी सदी' शीर्षक कविता में आधुनिक सभ्यता के ढांचे को वर्ग संघर्ष पर आधारित बताया है। उनके अनुसार आधुनिक सभ्यता में आदर्शों के पतन का कारण पूंजीपतियों का स्वार्थ है। 7

सभ्यता का प्रमुख आधार शिक्षा है। पूंजीवादी व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य सत्य का ज्ञान प्राप्त करना नहीं रहता वरन् इस व्यवस्था को बनाये रखना ही हो जाता है। इस दृष्टि से प्रगतिवादियों ने आधुनिक शिक्षा का भी विरोध किया है। प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास में जमींदार राय साहब कहते हैं 'समाज की ऐसी अवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पीसें और खायें कभी सुखद नहीं हो सकती। पूंजी और शिक्षा जिसे मैं पूंजी का ही एक रूप समझता हूं इनका किला जितनी जल्द टूट जाय उतना ही अच्छा।" राय साहब के यह विचार तो प्रगतिशील हैं किन्तु, प्रो० मेहता की प्रतिक्रिया दृष्टव्य है 'जितनी बुद्धि आपके जबान में है काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती। इससे प्रकट है प्रेमचन्द आधुनिक शिक्षा के उस रूप को हेय समझते हैं जिसमें पढ़े लिखे लोग कहने के लिये प्रगतिशीलता का दम भरते हैं किन्तु व्यावहारिक जीवन में प्रतिगामी तत्वों का साथ देते हैं। अज्ञेय की दृष्टि में आधुनिक शिक्षा श्रम से जी चुराना सिखाती है। + डा० राम विलास शर्मा आधुनिक शिक्षा को विद्यार्थी एवं जन साधारण के बीच दीवार के रूप में देखते हैं। (卐)

प्रगतिवादी साहित्यकारों की दृष्टि में पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मिलने वाला न्याय सच्चा नहीं है वरन् इस व्यवस्था की रक्षा के लिए निर्मित ढोंग है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में महाजन झिंगुरीसिंह कानून और न्याय को पैसे का दास मानता है। वह भली प्रकार जानता है कि कानून चाहे दिखाने के लिये निर्धन के पक्ष में हो पर वास्तविकता इसके विपरीत है। वह कहता है कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी आसामी के

• सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

दिन में वेश्यायें जैसे रात में
दगा की इस सभ्यता ने दगा की

7 अज्ञेय (सपा) तार सप्तक प्रतीक प्रकाशन दिल्ली, १९४३

+ अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' भाग २ सरस्वती प्रेस बनारस द्वितीय संस्करण १९४७ पृष्ठ २१४

(卐) अज्ञेय (सम्पादक) 'तार सप्तक,' प्रतीक प्रकाशन दिल्ली, १९४३, पृ०

साथ लडाई न करे, कोई जमीदार किसी काश्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है। राज देखते हो। जमींदार मुसके बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूतों से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है उससे न जमींदार बोलता है न महाजन। ऐसे आसमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आसमियों की गर्दन दबाते हैं कचहरी, अदालत उसी के साथ है जिसके पास पैसा है।* यशपाल के 'दादा कामरेड' उपन्यास में कम्युनिस्ट नेता हरीश व उसके साथियों पर षड्यन्त्रकारियों द्वारा लूटे हुए रुपयों से मजदूर हड़ताल चलाने का अभियोग लगाया जाता है। अदालत में अभियोग के सुने जाने के समय शैल को हरीश का कथन स्मरण हो आता है जिसमें उसने पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजीपतियों के द्वारा किये जानेवाले शोषण को साम्राज्यवादी शोषण के समान ही बतलाया था। अभियुक्तों की ओर से सुल्तान द्वारा दिया गया बयान पूंजीवादी न्याय की नग्नता को प्रगट करता 'कुछ आज्ञायें और व्यवस्थायें पूंजीपति श्रेणी की व्यवस्था में पूंजीपति श्रेणी के अधिकारों और शोषण को कायम रखने के लिए जारी की हैं। इस व्यवस्था का जारी रहना ही सरकार और अदालत की दृष्टि में न्याय है।'× सुल्तान पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण को सबसे बड़ी हिंसा व डकैती समझता है।

प्रगतिवादी कला साहित्य आदि संस्कृति के तत्वों को पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत स्वतन्त्र नहीं मानता। कला आदि संस्कृति के तत्व पूंजीवादी के हाथों में दामों पर बिक कर अपनी स्वतन्त्रता खो देते हैं क्योंकि इस युग में कला स्रष्टा कला को जीविका के साधन रूप में अपनाने के लिये बाध्य होता है। प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान' में 'बिजली का संपादक ओंकारनाथ उच्चादर्शी होने पर भी आर्थिक कठिनाई के कारण अन्त में रायसाहब जैसे समाज के प्रतिगामी तत्वों की बुराई करने में असमर्थ हो जाता है। यशपाल के मनुष्य के रूप' उपन्यास में एक पात्र बनवारी सिनेमा के लिये रचनायें लिख कर कला की साधना करना चाहता है किन्तु जीविकोपार्जन की समस्या उसे शीघ्र ही सिखा देती है कि कला वही है जो जीविका दे सके। अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' में शेखर की 'हमारा समाज' पुस्तक इतनी शर्तों के बाद प्रकाशन के लिये ली जाती है कि पुस्तक के लेखक को कहना पड़ता है मैने तो पुस्तक कुएँ में डाल दी है और मुण्डेर पर पड़े हुए ६०) रु० उठा लिये।' भवानीप्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' कविता में कला

---

* प्रेमचन्द 'गोदान' सरस्वती प्रेस बनारस, नया सस्करण १९४८ पृ० ३२८

× यशपाल दादा कामरेड,' विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४१ पृष्ठ २१२

के बाजार मे बिकनेवाली जिन्स (Commodity) का रूप ग्रहण करने के प्रति गहरा व्यंग्य व्यक्त हुआ है। *

अस्तु हम देखते है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य म सामाजिक विचारो में गहरा परिवतन दृष्टिगत होता है, जिसके मूल मे परिवर्तित परिस्थितिया एव पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय समाज मध्ययुगीन रूढियो से ग्रस्त था। पश्चिम के सामाजिक जीवन को देख कर हिन्दी साहित्यकारो को नवीन प्रेरणा मिली तथा उन्होने सुधारपरक दृष्टिकोण अपनाया। एक ओर देश मे पश्चिम के अन्धानुकरण की आंधी उठ खडी हुई थी तो दूसरी ओर हिन्दू समाज मे कट्टरपथी लोगों का बहुमत था। हिन्दी साहित्यकारो ने जहां कट्टरपथियों के विरुद्ध सामाजिक प्रगति का स्वर छेडा वहा वे पाश्चात्य सभ्यता के अवगुणों के प्रति भी सजग बने रहे। पश्चिम के सम्पर्क को समाज सुधार के लिए स्वर्ण अवसर माना गया तथा सामाजिक कुरीतियों की भर्त्सना की गयी। इसी प्रकार, उन्होने पश्चिम के अन्धानुकरण से फल रही फशनपरस्ती तथा आचरणहीनता का भी विरोध किया। सुधार का प्रमुख साधन नवीन शिक्षा को ही स्वीकारा गया तथा नारी-स्वातन्त्र्य की भावना को विशेष प्रश्रय मिला। नारी स्वातन्त्र्य की माग सामाजिक दशा सुधारने के लिए ही उठायी गयी प्रतीत होती है अन्यथा कोर्टशिप की प्रथा व तलाक जसी पाश्चात्य रीतियो के कुप्रभाव से दूर रहने को उचित ठहराया गया है। यही नही, नारी के स्वस्थ प्राचीन सस्कारो— पतिव्रत धम को जीवित रखने के लिए पुरुषो के आचरण को सुधारने—एक पत्निव्रत धम पालन करने पर बल दिया गया। विशेषतः उन मध्ययुगीन सस्थाओ— वश्यावृत्ति आदि को समाप्त करने की अपील की गयी जो नारी की सामाजिक स्थिति को दयनीय बनाये हुए थी। स्वातन्त्र्य सग्राम म पुरुष के समान अपना योगदान देनेवाली नारी को साहित्य म महिमा मण्डित किया गया। पश्चिम म नारी को सामाजिक राजनीतिक अधिकारो की प्राप्ति के लिए सघष करना पडा था किन्तु भारत मे अपने त्याग बलिदान के कारण वह उसे सहज प्राप्य हो सका यद्यपि वह कितना वास्तविक था इसमे सन्देह है। भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता वर्णाश्रम धम व्यवस्था है। नृतत्व के

---

* अज्ञेय (सपा) 'दूसरा सप्तक' प्रगति प्रकाशन दिल्ली, १९५१ पृ २७
जी बहुत देर लग गया हटाता हूँ
गाहक की मर्जी अच्छा जाता हूँ
है गीत बेचना वसे बिल्कुल पाप
क्या करू मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ
जी हा, हुजूर मैं गीत बेचता हूं !

आधार पर रंगभेद की भावना होने पर भी पश्चिम में अपने ही समाज के लोगों में जाति पाँति की प्रथा अकल्पनीय थी। अतः सामाजिक उन्नति के लिए अस्पृश्यता निवारण की भावना को साहित्य में प्रश्रय मिला। पाश्चात्य सम्पर्क के प्रति कथित प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त नैतिक बन्धनों से मुक्ति तथा आवश्यकतानुसार अपने को ढालने के रूप में भी नवीन विचारों का प्रभाव प्रतिफलित हुआ। वस्तुतः सुधार परक दृष्टि एवं भारतीय आदर्शों की रक्षा की भावना हिन्दी साहित्यकारों की आरम्भिक प्रतिक्रिया ही थी। कालान्तर में पाश्चात्य सम्पर्क के प्रति ग्रहणशीलता का भाव बढ़ने लगा तथा मूल्यों में परिवर्तन भी अनुभव किया जाने लगा। नये मूल्य भारतीय आदर्शों के प्रतिकूल भी थे जो विवाह और प्रेम सम्बन्धी नवीन धारणाओं में स्पष्ट है। सम्भवतः प्रचलित शिक्षा के रूप व्यवसाय आदि के सम्बन्ध में शंका जगने लगी। पारिवारिक संगठन के प्रति अनास्था का भाव हमारे साहित्य में अधिक मुखर होता जा रहा है। फिर भी, हमारे समाज में मानवी सम्बन्धों का स्वरूप अधिक परिवर्तित नहीं हुआ है अतः साहित्य में वर्णित नये सम्बन्ध कभी आरोपित भी जान पड़ते हैं जो पाश्चात्य प्रभाव को और भी प्रामाणिक बनाता है।

चौथा अध्याय

राजनीतिक-आर्थिक विचारधारा : संघर्ष व न्याय-कांक्षा

पृष्ठभूमि

हमारे देश में उन्नीसवीं सदी में होनेवाले धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए किए गये बीसवीं सदी के राजनीतिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि थे। पहले अध्याय में हम राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की ओर इंगित कर चुके हैं। तत्कालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को समझने के लिए यहां आंग्ल शासन की राजनीतिक आर्थिक नीति की ओर संकेत करना समीचीन होगा जिसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

भारत में आंग्ल शासन की स्थापना हो जाने पर अंग्रेजों ने सब प्रथम रंगभेद की नीति को प्रश्रय दिया। सेना में किसी भी भारतीय को चाहे वह कितना ही वीर, शिक्षित और कुशल हो परन्तु अंग्रेज अफसरों के बराबर पद नहीं दिया जाता था। सिविल सर्विस के लिए यद्यपि भारतीयों को परीक्षा में बैठने की अनुमति थी तथापि एक सीमा तक ही उच्च पद दिए जाते थे। उसके बाद केवल अंग्रेजों को उच्च पद मिलते थे। अंग्रेजों और भारतीयों का सामाजिक जीवन भिन्न था और कुछ क्लब, पार्क आदि में भारतीयों का प्रवेश नहीं हो सकता था। न्याय के सम्बन्ध में भी अंग्रेज और भारतीयों में भेद किया जाता था। लार्ड रिपन के समय अंग्रेजों और ईसाइयों द्वारा इलबर्ट बिल (१८८३) जिसका उद्देश्य न्याय की दृष्टि में अंग्रेजों और भारतीयों के भेद को दूर करना था का घोर विरोध किया गया। भारतीयों ने समझ लिया कि यह विरोध जातीयता पर आधारित है तथा काले और गोरे का यह भेद उन्हें असह्य हो उठा। अंग्रेज शासकों द्वारा शान शौकत रखने के लिये अत्यधिक अपव्यय किया जाता था। लार्ड लिटन और लार्ड कर्जन के शाही दरबार तथा हाथियों पर बैठकर निकाले गये जलूस शासकों की अदूरदर्शिता के सूचक थे। इससे जनता में असंतोष व्याप्त हो गया था। सत्तावन के विद्रोह के पश्चात् भारतीय सैनिकों को सेना में भर्ती करने के लिए कुछ विशिष्ट जातियों को 'सैनिक जाति' कह कर प्रधानता दी गई। इस प्रकार अंग्रेजों ने "फूट डालो व राज्य करो" (Divide and Rule) की अपनी इतिहास प्रसिद्ध नीति के बीज आरम्भ में डाल दिये जिसके परिणाम स्वरूप आगे चल कर हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य बढ़ा। अंग्रेजी राज्य के परिणाम स्वरूप सब से बड़ा परिवर्तन आर्थिक क्षेत्र में आया। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति तथा भारत

मे अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद यहां के उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया गया और भारत केवल कच्चे माल को बेचने वाला देश रह गया। विदेशों में खरीदे जानेवाले भारतीय माल की खपत में भारी कमी आ गई।

विदेशी माल की खपत भारत में बढ़ती गई किन्तु स्वदेशी माल की खपत बन्द सी हो गई। भारत का आर्थिक नियन्त्रण पूर्णतया अंग्रेजों के हाथ में था। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में जब कि इङ्गलण्ड का औद्योगिक विकास हो रहा था वहां के बने हुए माल को खपाने के लिए भारत ठेके का बाजार बना हुआ था। औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप लंकाशायर संसार में सूती कपड़े के उत्पादन का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। जब तक भारत में सूती कपड़ो के कारखाने नहीं खुले यहां लंकाशायर के सूती कपड़ो की ही खपत होती थी। भारत में सूती कपड़ो के कारखाने खुलने पर भी इङ्गलण्ड से आनेवाले माल पर करों की कमी करके उसकी खपत को प्रोत्साहन दिया गया। चाय रबड, काफी और नील के बड़े बड़े उद्योगो पर केवल अंग्रेजो का आधिपत्य था। रेलो का काम अंग्रेजी कम्पनियों को पूंजी पर निश्चित ब्याज देकर सौंपा गया। चाय आदि के उद्योग ही नहीं वरन् सामुद्रिक यात्रा, बैंक बीमा आदि व्यापार भी अंग्रेजों के ही हाथ में थे। भारत का धन सहस्त्रो धाराओ में होकर इङ्गलण्ड बहा जा रहा था।

इङ्गलैण्ड ने भारत में ही साम्राज्यवादी युद्ध नहीं लड़े वरन् देश के बाहर भी भारत की शत्रुओ से रक्षा करने के नाम पर कई युद्ध लड़े। इन युद्धो का व्यय भी भारतीय जनता को टक्सों के रूप में देना पड़ता था। भारत में साम्राज्य विस्तार की योजना बनाई गई तथा भारत स्थित ब्रिटिश साम्राज्यवादियो ने पूर्वी देशो मे साम्राज्य बढ़ाने के लिये मानो अभियान किया। इन सभी युद्धों का भार करदाता सामान्य भारतीय नागरिको पर पड़ता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजत्व काल मे प्रथम अफगान युद्ध (१८४०), पहले दो बर्मा युद्ध (१८२४-२६, १८५२) चीन (१८५६-६०) फारस (१८५६-५७), नेपाल (१८१४-१६), लंका (१७६८), मलक्का (१८१०), सिंगापुर (१८१६), जावा (१८११), केप कालोनी मिश्र (१८०१) आदि युद्ध लड़े गये। सन् १८५७ के गदर को दबाने का चार करोड़ रुपये का व्यय और कम्पनी के राज्य का अन्त होने पर उसकी क्षतिपूर्ति के लिए तीन करोड़ सत्तर लाख रुपया भी भारतीय कोष से दिया गया। ब्रिटिश सम्राट की अधीनता मे जाने पर भी युद्धों का वही तांता बना रहा। अबीसीनिया ईराक, अफगानिस्तान (१८७८-८०) मिश्र सूडान बर्मा (१८८५) आदि के युद्ध कम्पनी का राज्य समाप्त होने के उपरान्त लड़े गये। इन युद्धो का व्यय भी भारत को देना पड़ता था। इस प्रकार आर्थिक शोषण और दुर्व्यवस्था का साम्राज्य था। किसानों की बेदखली दुर्भिक्ष, बीमारियों आदि से जनता तंग आई हुई थी।

मुसलमानों के प्रति दृष्टिकोण

राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये किये गये राष्ट्रीय आन्दोलनों मे हिन्दु-मुस्लिम सम्बन्ध का अध्याय एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अग्रेजी राज्य की भारत में स्थापना के पूर्व यहा की राजनीतिक व्यवस्था अत्यधिक विशृंखल थी। जनता सबसे बढ़ कर शांति व सुव्यवस्था की इच्छुक थी। विगत काल के मुसलमान शासकों के अत्याचारों की याद अभी भी हिन्दु जाति के हृदय म तिक्त बनी थी। अब तक हिन्दू मुसलमानी शासकों के अत्याचारों से पिसते आये थे। उनकी विद्रोही आत्मा मूक बन्दी और विवश पडी थी। अग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित हुई। स्वभावत इस युग के लेखकों ने मुसलमानी अत्याचारो से सतोष की सास ली तथा मुसलमानों के प्रति अपनी विरोधी भावना को अभिव्यक्त किया।

सन् १८७५ मे प्रिंस आफ वल्स (सम्राट एडवर्ड सप्तम) का स्वागत करते हुए भारतेन्दु ने ब्रिटिश राज्य को मुसलमानी राज्य से अधिक सुखदायक ठहराया।* इसी प्रकार बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारत मे अग्रेजी राज्य को ईश्वर का वरदान रूप मानते हैं क्योंकि यह विगत युग के अन्याय पूर्ण मुसलमानी राज्य के अन्त तथा सुख शान्ति के नवीन युगारम्भ का सूचक प्रतीत होता है। + भारतेन्दु युग के अधिकांश ऐतिहासिक नाटकों के कथानक मुगल काल से लिये गये हैं जिनमे मुसलमान शासकों की लम्पटता व कामुकता का निदर्शन तथा हिन्दु राजा व रानियों के उदार चरित्र का चित्रण हुआ है। भारतेन्दु कृत 'नील देवी' (१८८२) राधाकृष्ण दास कृत 'महाराणा प्रताप' (सन् १८९७) काशीनाथ खत्री कृत तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक' (सिन्धु देश की राजकुमारियां, गन्नौर की रानी, महाराजा लवजी का स्वप्न-सन् १८८४) राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह' (सन् १८९५) आदि ऐसी ही रचनाए हैं।

---

* श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन (१८७५) भारतेन्दु ग्रंथावली द्वितीय भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ ६९६

जसे आतप तपित को छाया सुखद गनात
जवन राज के अन्त तव आगम तिमि दरसात
मसजिद लखि विसुनाथ ढिग परे हिये जो घाव
ता कहू मरहम सरिस यह तव दरसन नर राव

\+ यवन राज्य अन्याय अनेकिन की सुधि आवत
अजहूँ लौं हम भारतीय को हिय हहरावत
बच्यो कण्ठगत प्रान होय जाकर मन भारत
लहि अग्रेजी राज फेरि सम्हरत से आरत। (प्रेमघन)

भारतेन्दु के रूपक 'नीलदेवी' में पंजाब के राजा सूयदेव व अमीर अब्दुशरीफ खां सूर के युद्ध का कथानक है। अमीर प्रथम युद्ध का आश्रय लेकर रात्रि में ही सूयदेव की सेना पर आक्रमण कर देता है तथा राजा को बन्दी बना लेता है। पिंजड़े में बन्द सूयदेव से जब इस्लाम स्वीकार करने के लिये कहा जाता है तो वह घृणा से थूक देता है। इस पर अमीर के सैनिक शस्त्र लेकर उसे मारने दौड़ते हैं। राजा पिंजड़े को छोड़ कर बाहर निकल आता है और कई यवनों का संहार कर वीर गति प्राप्त करता है। राजा की मृत्यु होने पर राजपूत सेना निराश और छिन्न भिन्न हो जाती है रानी नीलदेवी अन्य कोई उपाय न देख नर्तकी का छद्मवेष धारण कर पति के हत्यारे से बदला लेने का निश्चय करती है। वह नर्तकी के वेष में अमीर के खेमे में पहुँच जाती है तथा अपने नृत्य व गान से सबको मुग्ध कर लेती है। जब शराब के नशे में मशगूल होकर अमीर रानी को 'जान साहब' कह कर सम्बोधित करता है तब वह उसकी छाती में छुरा भोंक देती है। इसी समय राजकुमार सोमदेव अपने सैनिकों के साथ अमीर के शिविर को छिन्न भिन्न करते हुए आ पहुँचता है तथा 'भारत वर्ष की जय' 'आर्यकुल की जय' 'महारानी नीलदेवी की जय' के नारों से आकाश गुंजायमान हो जाता है। अन्त में रानी सुखपूर्वक सती होने का संकल्प प्रगट करती है। यहाँ हम नीलदेवी को वीर नारी के रूप में पाते हैं। रीतिकाल की नारी केवल अभिसार व विलास की सामग्री थी किन्तु भारतेन्दु-युग के साहित्य में चित्रित हिन्दु नारी केवल अपने व्यक्तित्व को ही नहीं पहचानती वरन् अपने देश की उन्नति व जातीय अभिमान से भी मंडित है।

भारतीय नारी दीन हीन नहीं है उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष अभी शेष नहीं हुआ है या नहीं होना चाहिये यह राधाचरण गोस्वामी ने अपने नाटकों अमर सिंह राठोड़ (१८९४) और सती चन्द्रावली में नारी पात्रों की सृष्टि करके बतलाया। अमरसिंह की स्त्री महारानी अपने पति की लाश स्वयं सशस्त्र वेष में मुगल दरबार में सेना सहित पहुँच कर ले आती है। सती होने के पूर्व वह जो संदेश देती है वह किसी शहीद होनेवाले राजनीतिक नेता के शब्द लगते हैं। *

सती चन्द्रावली' नाटिका में चन्द्रावली जातीय अभिमान से मंडित दर्शायी गई है। अशरफ हजरत सलामत का भाई होने का दम्भ भरता है तो चन्द्रावली गर्व

---

* राधाचरण गोस्वामी अमरसिंह राठोड़' पृष्ठ ४२

जिस प्रकार बने देश का कल्याण कीजिए और ऐक्य करके फिर देश के स्वाधीन होने की चेष्टा कीजिये। यह तो मेरे प्राणनाथ अमरसिंह अकेले ने देश के लिये आत्म समर्पण किया है, इसी प्रकार जब और लोग भी आत्म समर्पण करेंगे तब देश स्वाधीन होगा।

से कहती है मुझे नही जानते मैं कौन हूँ मैं एक हिन्दू लडकी हूँ।' साम्प्रदायिक भावनाओ को लिये हुए चन्द्रावली का विरोध हिन्दू नारी के आत्माभिमान से मण्डित है। भारतेन्दु अपनी कविताओ मे जब भी विगत युग का स्मरण करते हैं तो उनके सामने हिन्दुओ के आदर्श चरित नायक ही आते हैं। मुसलमानो का वे जब भी स्मरण करते हैं तो विरोधी तत्व के रूप मे। गोवध, अत्याचारों आदि का वर्णन करते हुए प्रताप नारायण मिश्र ने युग भावना के अनुकूल उसे मुसलमानी राज्य के पतन का कारण माना है।* स्वय भारतेन्दु ने मुसलमानी शासन के अत्याचारो की क्षोभपूर्ण शब्दों मे अभिव्यक्ति की है। वे बार बार अपनी रचनाओ मे जयचन्द' को कोसते हैं जिसने फूट के बीज डाले और भारत मे यवन राज्य स्थापित होने से भारतीय सस्कृति नष्टप्राय हो गयी।

अस्तु मुस्लिम राज्य काल मे हिन्दुओ पर होनेवाले अत्याचारों की अभिव्यक्ति भारतेन्दु युग के साहित्य मे मिलती है। इसी कारण कुछ आलोचको ने भारतेन्दु-युग की राष्ट्रीयता को हिन्दु राष्ट्रीयता की सज्ञा प्रदान की है। किन्तु, गहराई से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के लेखको ने केवल विगत युग मे किये गये मुसलमान शासको के अत्याचारो को बुरा बतलाया है। उन्होने इस्लाम धर्म का कभी विरोध नही किया। इसके विपरीत भारतेन्दु ने 'कुरान का अनुवाद श्रद्धापूर्ण शब्दों मे किया। 'पचपवित्रात्मा इतिहास पुस्तक' मे उन्होने इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद अली, बीबी फातमा इमाम हुसेन तथा इमाम हसन की जीवनिया लिखी। भारतेन्दु ने मुस्लिम काल की अपेक्षा अग्रेजी राज्य काल को अच्छा बतलाया है। इसका कारण यह नहीं था कि वे अग्रेजी राज्य की बुराइयो से अवगत न हो वरन् धर्म के नाम पर मुस्लिम काल मे होनेवाले अत्याचारो से सुख की सास पाना ही वे पर्याप्त समझते हैं और इसी से अग्रेजी राज्य की बुराइयो से अवगत होते हुए भी उसे अपेक्षा कृत कम बुरे' (Lesser evil) के रूप मे अच्छा बताते हैं। इस दृष्टि से भारतेन्दु की बादशाह दर्पण' रचना मे भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय भावना निर्भ्रान्ति रूप मे प्रकट हुई है।+ जहा तक विदेशी शासन द्वारा होने वाले आर्थिक शोषण एव राजनीतिक पराधीनता के पाश से मुक्त होने का प्रश्न है वे

---

* प्रताप नारायण मिश्र 'कानपुर महात्म्य' प्रताप-लहरी पृष्ठ ११२
'इन्ही पापनते चोपट भा ज्वानो राज मुसल्लम बयार'

\+ डा केसरी नारायण शुक्ल (सम्पादक) भारतेन्दु के निबध' सरस्वती मन्दिर, जतन वर बनारस, सवत् २००८ बादशाह दर्पण' पृष्ठ १७४

यद्यपि उस उर्दू शेर के अनुसार बागवा आया गुलिस्तां मे कि सयाद आया जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया क्या मुसलमान क्या अग्रेज भारतवर्ष

हिंदु मुस्लिम एकता के पोषक हैं। किंतु, हिंदु संस्कृति के संरक्षण के विषय में वे मुसलमानों को अंग्रेजों से भी बढ़ कर शत्रु मानते हैं। युग की परिस्थितियों के अनुरूप भारतेन्दु-युग के अन्य लेखक भी हिंदु-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं किंतु, अंग्रेज शासकों के मुसलमानों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार तथा मुसलमानों के हिंदुओं से अपने को अलग रखने की नीति का उन्हें सदैव क्षोभ बना रहता है। अस्तु एक उर्दू पत्र के सम्पादकीय में गोवध का पक्षपात करने पर प्रतापनारायण मिश्र "आलमे तसवीर' ॥ निबंध में हिन्दु मुसलमानों को एक दूसरे का सहायक होने का संदेश देते हैं। बालकृष्ण भट्ट भी मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ बर

को सभी ने जीता किन्तु उनमें तब भी बड़ा अभेद है। मुसलमानों के काल में सत सहस्त्र बड़े-बड़े दोष थे किन्तु दो गुण थे। प्रथम तो यह कि उन सबों ने अपना घर यहीं बनाया था उससे यहां की लक्ष्मी यहीं रहती थी। बीच-बीच में जब कोई अग्रणी मुसलमान बादशाह उत्पन्न होते थे तो हिन्दुओं का रक्त भी उष्ण हो जाता था। किसी ने सच कहा है कि मुसलमानी राज्य हैजे का रोग है और अंग्रेजी क्षयी का। इनकी शासन प्रणाली में हम लोगों का धन और वीरता निःशेष होती जाती है। बीच में जाति पक्षपात मुसलमानों पर विशेष दृष्टि आदि देख कर लोगों का मन और भी उदास होता है। यद्यपि लिबरल दल से हम लोगों ने बहुत सी आशा बांध रक्खी है पर यह आशा ऐसी है जैसे रोग असाध्य हो जाने पर विषवटी की आशा। जो कुछ हो मुसलमानों की भांति इन्होंने हमारी देवमूर्तियां नहीं तोड़ीं और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया न घास की भांति सिर काटे और न जबर-दस्ती मुंह में थूक कर मुसलमान किये गये। अभागे भारत को यही बहुत है। विशेष कर अंग्रेजों से हम लोगों को जसी शुभ शिक्षा मिली है उसके लिये हम उनके ऋणी हैं। भारत कृतघ्न नहीं है। वह सब मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेगा कि अंग्रेजों ने मुसलमानों के कठिन दण्ड से हमको छुड़ाया यद्यपि अनेक प्रकार से हमारा धन ले गये किन्तु पेट भरने को भीख मांगने की विद्या भी सिखा गये।

११ विजय शंकर मल्ल (सम्पादक) 'प्रताप नारायण ग्रंथावली' 'आलमे तसवीर' पृ० १८१

हिन्दु मुसलमान दोनों भारत माता के हाथ हैं। न इनका उनके बिना निवाह है न उनका इनके बिना। अतः सामाजिक नियमों में एक दूसरे के सहायक हों। इसमें दोनों का कल्याण है। कोई दाहिने हाथ से बायां हाथ अथवा बाएं से दाहिना हाथ काट के सुखी नहीं रह सकता।

भाव छोड़ने की प्रेरणा देते हैं। *

राजभक्ति की भावना

सतावन के विद्रोह के पश्चात् महारानी-विक्टोरिया की घोषणा ने भारतीयों में राजभक्ति की भावना को पोषित करने में अत्यधिक योग दिया। अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से प्रसन्नता का दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि अंग्रेजी साम्राज्य पाश्चात्य सभ्यता के नवीन रूप को लेकर आया था जिसके संसर्ग से भारतीय समाज में नवीन सुधारों, नवीन जागृति व नवीन ज्ञान की आकांक्षा जागृत हुई। भारतेन्दु ने भी अपने 'बलिया का भाषण' में अंग्रेजी राज्य के सुकाल को सामाजिक सुधारों के लिए स्वर्ण काल बतलाया।% राधाचरण गोस्वामी अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ अंधेर, अन्याय असभ्यता के समय का अन्त समझते हैं।=

भारतेन्दु युग के लेखक व १८५७ का विद्रोह

अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति राजभक्ति की भावना का प्रदर्शन गदर के प्रति तत्कालीन साहित्यकारों की प्रतिक्रिया से स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि १८५७ के विद्रोह के संबंध में हमारे साहित्य में केवल अंगुलियों पर गिनी जा सकनेवाली पंक्तियां ही लिखी गयीं। इसका एक कारण गदर के पश्चात् होनेवाले अंग्रेजी राज्य के दमनकारी रूप को ठहराया गया है। भारतेन्दु ने इस दमन के आतंककारी रूप की ओर संकेत

---

* बालकृष्ण भट्ट' हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८८५ पृ० १३

हिन्दुओं को समझना चाहिए और बहुत से हिन्दु समझते हैं कि मुसलमानों की हिजो में अपने ही भाइयों की हिजो है और मुसलमान भी हिन्दुओं की हिजो को अपनी ही हुसी समझें। अफसोस है कि बहुत थोड़े मुसलमान शायद इस बात को जानते हैं कि एक ही लफ्ज हिन्दुस्तानी या नेटिव हिन्दु मुसलमानों दोनों को सूचित करता है। हम दोनों के बरी यूरेशियन किरानी जब कभी हेटफुल निगरो शब्द का स्तेमाल करते हैं तो उसके मानी से मुसलमानों को अलग नहीं छेक देते मुसलमानों को चाहिए कि हिन्दुओं के साथ बैर भाव को अब सदा के लिए तलाक दे देना हर तरह पर मुनासिब समझें।

% भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बलिया भाषण' कविवचन सुधा जिल्द १ संख्या ३ पृष्ठ ८

अंग्रेजों के राज में सब प्रकार का सामान पाकर भी हम लोग इस समय जो उन्नति न करें तो केवल हमारे अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है।

= राधाचरण गोस्वामी 'विधवा विवाह विवरण' पृ० ७

किया है। + इसी प्रकार, प्रतापनारायण मिश्र ने गदर के दमन को एक अनय के रूप मे स्मरण किया है। (卐) 'हम राज भक्त हैं' निबन्ध म वे विद्रोह म भाग लेने वाले भारतीयो को नमक हराम कहते हैं तथा भारतीयो द्वारा गदर के समय में अंग्रेजो को मदद दी जाने के सम्बन्ध मे गौरव अनुभव करते हैं। × उन्होने 'अंग्रेंडला स्वागत' म गदर का वर्णन केवल कुछ भारतीय सेना के बिगड खडे होने के रूप मे किया है तथा भारतीय प्रजा की ब्रिटिश राज्य के प्रति सहानुभूति दर्शाई है। *

+ कठिन सिपाही—द्रोह अनल जा जल बल नासी
जिन भय सिर न हिलाय सकत कहुँ भारतवासी
(भारतेन्दु)

(卐) प्रतापनारायण मिश्र 'प्रताप लहरी' पृष्ठ २०७
सन् सतावन मा गलवा या भये सब हिन्दु हाल बहाल
जितनी तिरिया कम्पू कटि गइ सो तो जानत है ससार
बडे लड धन बालक बारे जिन मुहु ब दूध की धार
बाग कम्पनी कायम रहिय चलि है जुगन जुगन लगि नाव
अनरथ जो न होय सो थोरो यह सब धरती को परभाव। ३४

× प्रतापनारायण मिश्र हम राजभक्त हैं, ब्राह्मण जिल्द ५ सख्या २ पृष्ठ १
आधुनिक गवनमेन्ट के झूठे खुशामदी सन् १८५७ के बलवे के सिवा और कोई दोष नही लगा सकते पर उन्ह भी समझना चाहिए कि वह अपराध प्रजा का न था, किसी प्रतिष्ठित हिन्दु मुस्लिम का दोष न था केवल थोडे से नमकहरामो के कारण भारतीय नेशन मात्र को कलक लगाना बुद्धिमानी से दूर है। यदि मान ही लें कि यह अपराध हिन्दुस्तानियो का ही था तो भी इसका उत्तर है कि उस समय में हमारी सरकार को सचमुच सहायता किसने दी थी? हमी ने !!! क्या कि हम राज भक्त हैं। राजभक्ति हमारा सनातन धर्म है।

* सन सतावन माहि जबहि कुछ सेना बिगरी
तब राजा रिझि रही सुहृद ह्वै परजा सिगरी
दुष्ट समुझि अपने भाइन कहु साथ न दीनों
भोजन बिन विद्रोहिन को बन निरबल कीन्हो
ठौर ठौर निज घर लुटवाय प्रान फुकवाये
प्रान गोय बहु ब्रिटिश बश के प्रान बचाये
पक्षपात प्रिय लोग कहैं कहिबो जो चहहीं
प सांचे भूराम भक्त भारत सुत अहहीं
(प्रतापनारायण मिश्र अंग्रेंडला स्वागत)

सामन्तवाद का विरोध

भारतेन्दु युग में अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति की भावना की विविध प्रकार से व्याख्या की जा सकती है मुसलमानी राज्य के अत्याचारों के पश्चात् अंग्रेजी-राज्य काल में देश में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना हुई। भारतेन्दु-युग में राजनीतिक चेतना देश व्यापी नहीं हुई थी। अंग्रेजी शासन की दमनपूर्ण नीति के कारण उस समय उसका खुला विरोध नहीं हुआ आदि तत्कालीन युग की राज्यभक्ति की भावना के कारण बताये जाते हैं। यह सभी कथन आंशिक सत्य के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। किन्तु, जिस सत्य की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता वह यह है कि अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ भारतीयों ने जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से सामन्तवाद नष्ट प्राय हो गया। ५७ का गदर मूल सामन्तवाद की प्राण रक्षा के लिए किया गया अंतिम हताश प्रयत्न था। यह भारतेन्दु की दूरदर्शिता थी कि उन्होंने उस युग में भी पहिचान लिया कि देशोन्नति में राजा व नवाब—सामन्त वर्ग, सहायक नहीं हो सकता। पतनोन्मुखी सामन्तों का भारतेन्दु की रचनाओं में अत्यधिक सजीव चित्रण हुआ है। भारतेन्दु के प्रथम अनूदित नाटक 'विद्या-सुन्दर" में स्वयंवर के लिए आये हुए राजकुमारों के प्रति कन्या का पिता राजा कहता है कि उनका केवल राजवंश में जन्म हुआ है पर वास्तव में वे पशु तुल्य हैं। † राजकुमारों के प्रति यह अशोभनीय उक्ति राजवंश के प्रति अश्रद्धा की द्योतक है। राजशेखर के 'कर्पूर मंजरी' सट्टक का भी भारतेन्दु ने अनुवाद किया है जिसमें राजा को स्त्रियों की काम वासना का शिकार चित्रित किया गया है। केवल अनुवाद ही नहीं, भारतेन्दु ने अपनी मौलिक रचनाओं में भी सामन्त वर्ग का व्यंगात्मक चित्रण किया है। उनकी रचना 'वदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का सामन्ती पात्र 'राजा' मदिरा पान को ही मुक्ति का द्वार समझता है। × 'अंधेर नगरी' का चौपट राजा तो बकरी मरने का दण्ड-विधान करते करते स्वयं ही स्वेच्छा पूर्वक फांसी पर लटक जाता है। 'विषस्य विषमौषधम्" बड़ोदा नरेश मल्हार राव गायकवाड़ को गद्दी पर से उतारे जाने की घटना के आधार पर लिखित भाण है। मल्हार राव ने लक्ष्मीबाई नामक सौभाग्यवती स्त्री से जबरदस्ती विवाह कर लिया जिस पर उसके पति ने मल्हार राव के विरुद्ध नालिश करदी। इसी कारण मल्हार राव को राजगद्दी से उतारा गया। 'विषस्य विषमौषधम्" का यही

---

† भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'विद्यासुन्दर' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'वदिक हिंसा हिंसा न भवति' भारतेन्दु नाटकावली ३७६।

व्यंग्यात्मक आधार है। इस भाण में भारतेन्दु ने अंग्रेजों द्वारा मल्हार राव को गद्दी से उतारने के निर्णय का समर्थन किया है तथा विषयग्रस्त राजाओं के निदान के लिए अंग्रेजी शासन के विधि की सराहना की है। "भाण" का पात्र भड़ाचार्य मल्हार राव की अत्यधिक कामुकता का उल्लेख करता है।* 'दिल्ली दरबार दर्पण' में भारतेन्दु ने देशी नरेशों की सांस्कृतिक हीनता और कायरपन की बड़ी मीठी चुटकियां ली हैं। सभ्य समाज के आचार व्यवहार से अनभिज्ञ व थोथी शान के दिखावे में ही यह वर्ग अपनी वाह वाही समझता है। +

इसी प्रकार 'लेवी प्राण लेवी" शीर्षक में भारतेन्दु ने बनारस में गवर्नर जनरल लार्ड मेयो के सम्मान में हुए दरबार का चित्र खींचा है जिसमें इस दरबार को 'कठपुतली का तमाशा" कहा गया है। अंग्रेजों के सामने यह सामन्ती-वर्ग

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- 'विषस्य विषमौषधम्" भारतेन्दु नाटकावली पृ० ५६१

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दिल्ली दरबार दर्पण कवि वचन सुधा खंड २, कोई तो दूर से ही हाथ जोड़े आए और दो एक ऐसे थे कि जब एडिकांग के कन्धे झुका कर इशारा करने पर भी उन्होंने सलाम न किया तो एडिकांग ने उनकी पीठ पकड़ कर धीरे से झुका दिया। कोई बैठ कर उठना जानते ही न थे यहां तक कि एडिकांग को उठो कहना पड़ता था। कोई झंडा, तमगा सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का नहीं बोल सके और कोई बिचारे इनमें से दो ही एक पदार्थ पाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वाइसराय पर अपनी अपनी जान व माल निछावर करने को तैयार थे। कितने बाबू ऐसे थे जिनके कुछ अर्थ ही नहीं हो सकते और नवाब साहब को अपनी अंग्रेजी का ऐसा कुछ विश्वास था कि अपने मुंह से केवल अपने ही को नहीं वरन् अपने दोनों लड़कों को भी अंग्रेजी, अरबी ज्योतिष, गणित आदि ईश्वर जाने कितनी विद्याओं का पंडित बताए गए। २६ तारीख को सब के अन्त में महारानी तंजोर नकाब में आई। वे लाल का सब वस्त्र पहने थीं और मुंह पर भी लाल का नकाब पड़ा हुआ था। इसके सिवाय उनके हाथ पांव दस्ताने और मोजे से ऐसे ढके थे कि सबके जी में उन्हें देखने की इच्छा रह गई। वाइसराय से मिसेस फय (Interpreter) ने हाथ मिलाया। वाइसराय की किसी बात के उत्तर में एक बार महारानी के मुंह से 'यस' निकल गया जिस पर श्रीयुत ने बड़ा हर्ष प्रकट किया कि महारानी अंगरेजी भी बोल सकती हैं, पर अनुवादक मेम साहब ने कहा कि वे अंग्रेजी में दो चार शब्द से अधिक नहीं जानतीं।

आंख उठा कर देखने को भी साहस नहीं कर सकता। *

भारतेन्दु ने देशवासियों को जागृति के लिए अपील करते हुए उन्हें सामन्त व ब्राह्मण वर्ग से सचेत रहने की चेतावनी दी है। अपने 'बलिया में भाषण' में भारतेन्दु ने स्पष्टतया राजा, नवाब हाकिम व पण्डितों को निकम्मा कहा है। + अस्तु ५७ का विद्रोह केवल पतनोन्मुखी सामन्तवाद व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच राजनीतिक संघर्ष मात्र नहीं था। वह प्राचीन व अर्वाचीन के बीच सावमूलक संघर्ष था। भारतेन्दु की दूरदर्शिता ने प्राचीन के बदले अर्वाचीन का पल्ला पकड़ा।

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र "लेवी प्राण लेवी" (कवि वचन सुधा जिल्द २ सं० ५ पृ० १४)

लाट साहब की लेवी" समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे पहन कर आये थे वे सब उस गर्मी में बड़े दुखदायी हो गये। जामे वाले गर्मी के मारे जामे से बाहर हुए जाते थे। पगड़ीवालों की पगड़ी सिर की बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमखाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भांति जीत रक्खा था। सब के अंगों से पसीने की नदी बहती थी मानो श्रीयुत को सब लोग आदर से "अर्घ्य पाद्य" देते थे। कोई खड़ा हो जाता था कोई बैठा ही रह जाता था कोई डेरे के बाहर घूमने चला जाता था इतने में कोलाहल हुआ लाट साहब आते हैं' रामनारायण साहिब ने फिर अपने मुंह को खोला और पुकारा 'स्टैंड अप (खड़े हो जाव) सब के सब एक साथ खड़े हो गए। राय साहब का 'सिट डोन' कहना तो सबको अच्छा लगा पर 'स्टैंड अप' कहना सब को बुरा लगा मानो भले बुरे का फल देने वाले राय साहब ही थे। इतने में फिर कुछ आने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गये। वाह वाह दरबार क्या था 'कठपुतली का तमाशा' था या बल्लमटेरों की 'कवायद' थी या बन्दरों का नाच या किसी पाप का फल भुगतान या या फौजदारी की सजा थी हाय पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वर यह सभ्यता देगा जो हिन्दुस्तान के और खण्ड के वासियों ने पाई है।

\+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया में भाषण' (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड १ संख्या ३ पृ १२।

राजे महाराजे नवाब हाकिम देशोन्नति नहीं कर सकते। कुछ समय बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गन्दे काले आदमियों से मिल कर अपना अनमोल समय खोवें। भाइयों राजा महाराजों का मुंह मत देखो मत यह आशा रक्खो कि पण्डितजी कथा में कोई ऐसा उपाय बतावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े तुम आप ही कमर कसो आलस छोड़ो।

राजभक्ति एवं देशभक्ति की सम्मिलित धारा

अंग्रेजी शासन के प्रति आशाओं का प्रमुख कारण गदर के बाद महारानी विक्टोरिया की घोषणा थी जिसमें भारतीय प्रजा पर पुत्रवत् शासन करने का आश्वासन दिया गया था। यह आशाएं फलवती नहीं हुईं। भारतवासियों ने इसके लिए इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में कंजरवेटिव बहुमत को दोषी समझा अतः लिबरल दल के प्रति नवीन आशाएं बांधी गईं परन्तु लिबरलों का बहुमत होने पर भी वही दशा रही। अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति भारतीयों की आशा की निराशा में परिणति भारतीय इतिहास की अत्यधिक करुणापूर्ण घटना है। इसी राजनीतिक विचारधारा के अनुरूप भारतेन्दु युग के साहित्य में ब्रिटिश शासन के प्रति आरम्भ में राजभक्ति की भावना पाई जाती है किन्तु राजनीतिक चेतना के साथ देशभक्ति की भावना और यहां तक कि विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह का स्वर भी प्रकट होने लगा।

भारतेन्दु युग के लेखकों ने अंग्रेजी राज्य के केवल बधावे नहीं बजाये। इस युग के लेखक राजवंशीय व्यक्तियों के स्वागत गान में देशहित की बातें रखते थे। भारतीय विचारधारा के अनुसार भारतेन्दु राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हैं। राजघराने के किसी भी व्यक्ति के स्वागत में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। साथ ही प्रजा के दुखों से राजा को अवगत कराना वे अपना धर्म मानते हैं। वे राजभक्त और देशभक्त दोनों साथ हैं। किन्तु एक पराधीन देश के प्राणी के लिए राजभक्ति व देशभक्ति के मार्ग भिन्न भिन्न होते हैं—दो रास्तों में से उसे एक को चुनना होता है। भारतेन्दु व उनके साथियों ने प्रजा के हित का मार्ग अपनाया फलतः आगे चलकर वह सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा।

भारतेन्दु ने नवीन विक्टोरिया के पति एलबर्ट की मृत्यु के अवसर पर १४ सितम्बर सन् १८६१ को "लवराज दशम अतलादिका" कविता की रचना की यह भारतेन्दु की प्रारम्भिक काल की रचना है। यह कविता शोकोद्गार होने के बदले प्रशंसात्मक कोष ही है। सन् १८६६ में ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन पर भारतेन्दु ने श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र' लिखा। इस कविता में 'षट् ऋतु रूपक की योजना है। कवि राजकुमार की भुजा भुजा को छांव' में 'अभय पद दान' की मांग करता है। 'सुमनोञ्जली' (सन् १८७०) ड्यूक आफ' एडिनबरा के काशी आगमन पर पढ़ी गयी रचनाओं का संग्रह है। 'प्रिंस ऑफ वेल्स के पीड़ित होने पर लिखी गयी कविता (सन् १८७१) में भारतेन्दु ने विक्टोरिया के सम्बन्ध में लिखा— जिनकी माता सब प्रजाजन को जीवन प्रान'। ड्यूक ऑफ एडिनबरा की रूस की राजकुमारी ग्रैण्ड डचेज मेरी से विवाह के अवसर पर (सन् १८७४) उन्होंने मुंह दिखावनी' लिखी जिसमें 'आशा दासी' को भेंट करने की

कल्पना है। प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर भारतेन्दु ने 'राजकुमार शुभागमन वर्णन' (१८७५) कविता लिखी। इस कविता में कवि अतिथि एडवर्ड सप्तम के प्रति सम्मान की भावना प्रकट करते हुए इस अवसर पर सुसज्जित नगर का वर्णनात्मक चित्रण करता है तथा उसके पूर्वयुगीन वैभव का स्मरण करता है। इसी अवसर पर भारतेन्दु ने एक अन्य कविता भी लिखी है—'भारत भिक्षा'। यह कविता बंगाल के कवि हेमचन्द्र बनर्जी की एक कविता का भावानुवाद है। भारतेन्दु की इससे पूर्व लिखित राजघराने के व्यक्तियों से सम्बंधित कविताओं में देश की दुर्दशा का वर्णन नहीं किया गया है किन्तु 'भारत भिक्षा' में कवि भारत माता को अश्रुनिपात करती व्याकुल जननी के रूप में चित्रित करता है। वह अपनी पूर्वकालिक गौरवपूर्ण सभ्यता का स्मरण करती है तथा अकिञ्चन इच्छाओं को भी प्रकट करती है। इस कविता में अंग्रेजी शासन के आतंक की ओर भी संकेत किया गया है। 'मानसोपायन" (सन् १८७७) कविता की भूमिका में 'बेचारे छोटे पद के अंग्रेजों को हमारे चित्त की क्या खबर है ये अपनी ही तीन छटांक पकाना जानते हैं' का विद्रोही स्वर भी व्यक्त हुआ है। तथापि सभी अंग्रेज शासकों को भारतेन्दु ने बुरा नहीं कहा। 'रिपनाष्टक' लिखकर कवि ने कृपापूर्ण शासन का स्तवन किया। कवि के हृदय में राजपरिवार के लोगों के प्रति पूर्ण सम्मान है। यह सम्मानपूर्वक उस परिवार के लोगों के सामने यदा कदा देश की दुर्व्यवस्था की ओर संकेत करता है।

भारतेन्दु की तरह 'प्रेमघन' भी राज परिवार के प्रति अनुकूल अवसरों पर अपनी राजभक्ति की भावना प्रकट करते हैं। महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबली के अवसर पर उन्होंने 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता की रचना की जिसमें उन्होंने सन् १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य-संग्राम की निंदा की तथा धर्मराज, रघु और राम के सदृश 'अंग्रेजों के सुखद राज की कीर्ति' के अटल बने रहने की कामना की।+ सम्राट एडवर्ड सप्तम के भारत साम्राज्याभिषेक के अवसर पर उन्होंने 'भारत-बधाई' (१९०२ ई०) शीर्षक राजभक्ति से पूर्ण कविता की रचना की। युवराज जार्ज फ्रेडरिक अर्नेस्ट अलबर्ट प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर उन्होंने स्वागतार्थ 'आर्याभिनन्दन (१९०६) शीर्षक कविता लिखी। सम्राट पंचम जार्ज [१९ मे साम्राज्याभिषेक पर भी प्रेमघन ने बधाई रूप में 'सौभाग्य समागम अथवा भारत सम्राट सम्मिलन' शीर्षक कविता की रचना की।

प्रतापनारायण मिश्र ने भी राजकुमार विक्टर के आगमन (१८९० ई०) पर 'युवराजकुमार स्वागतते' कविता राजभक्ति से प्रेरित होकर लिखी। मिश्रजी

\+ प्रेमघन हार्दिक हर्षादर्श' प्रेमघन-सर्वस्व
तेरे सुख राज की कीरति रहै अटल इव
धर्मराज, रघु राम प्रजा हिय में जिमि अंकित।

की 'ब्रेडला-स्वागत' और लार्ड रिपन सम्बन्धी कुछ कविताएं राजभक्ति पूर्ण हैं जिनमें देशभक्ति की भावना का भी समावेश हुआ है।

भारतेन्दु युग के कवियों में पंडित सुधाकर द्विवेदी ने अंग्रेजी राज्य की निर्बाध प्रशंसा की है। महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर उन्हें महामहोपाध्याय की पदवी भी दी गयी थी। यद्यपि सुधाकर जी का अभी तक कोई काव्य संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है तथापि उनके स्फुट पदों में अंग्रेजी न्याय, विद्या का प्रचार, रेल, दियासलाई आदि आविष्कारों की प्रशंसा की भावना मिलती है। श्री किशोरीलाल गुप्त के शब्दों में "सुधाकर जी इतना न सोच सके कि ये सब अंग्रेजी राज्य की बरकतें नहीं थीं समय की बरकतें थीं।"+

राधाकृष्ण ने भी महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबली के अवसर पर जुबली कविता की रचना की। विक्टोरिया की मृत्यु पर 'विजयनी विलाप' शीर्षक कविता में उन्होंने शोक प्रकट किया।

अंग्रेजी राज्य के प्रति भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की आशा बंधी थी, किन्तु अंग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति के कारण यह आशा शीघ्र ही निराशा में परिणत हो गयी। स्वयं भारतेन्दु ने ही इस आशा के मिथ्यापन को पहचान लिया था। 'भारत दुर्दशा' नाटक में उन्होंने भारत दुर्दैव के मुंह से कहलवाया

'कहां गया भारत मूर्ख जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी (क्वीन विक्टोरिया) का भरोसा है।× पार्लियामेंट में ग्लेडस्टन के प्रधान मन्त्री पद पर चुनाव के अवसर पर उनके प्रति धन्यवाद की सभा कलकत्ता के तत्वावधान में कृतज्ञता ज्ञापन के लिये सभा आयोजित की गई जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिबरलों के प्रति आशाएं व्यक्त की।● किन्तु अल्प काल में ही यह आशा निराशा

+ किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस १९५९ पृष्ठ ४२६

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'भारत दुर्दशा' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६०२

● भारत मित्र अंक ७

आपकी और आपके सहयोगियों की इस प्रकार दया और समवेदना का विषय अनुशीलन करने से यह हम सब का निश्चय हुआ कि विलायत में भी ऐसे बहुत महात्मा हैं जो भारतवर्ष के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होते हैं अतएव यह आईन निर्धारित नहीं हुआ है तो भी हम लोगों को यह सम्पूर्ण आशा हो गयी है कि भविष्य में इस विषय की अथवा और किसी विषय की प्रार्थना ब्रिटिश पार्लियामेंट में की जायगी तो आप ऐसे उदार और स्वाधीनता प्रिय महाशयों की सहायता के द्वारा हम लोगों को आशानुरूप फल मिलेगा।

परिणित हो गयी। 'पार्लियामेंट और भारतवर्ष' निबंध का लेखक ग्लैडस्टन की नीति को भी कंजरवेटिव शासकों की नीति के समान ही भारत के लिए हानिप्रद ठहराता है।+ अन्यत्र इसकी अभिव्यक्ति विद्रोहात्मक रूप में पायी जाती है। 'वर्तमान राजनीति की चर्चा' शीर्षक निबंध में इस युग का लेखक अंग्रेज शासकों की मनमानी का तीव्र विरोध करता है।X

विदेशी शासन के विरोध के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण

विदेशी शासन की बुराई आर्थिक शोषण ही नहीं है, इसके साथ ही विजित देश के आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाना तथा अधिकारों से वंचित कर उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण करना भी उसका परोक्ष लक्ष्य बन जाता है। भारतवासियों को 'काला' कहना, उन्हें असभ्य समझना और उनके साथ अमानवीय व्यवहार रखना, न्याय की दृष्टि से काले और गोरे में भेद बरतना, सिविल सर्विस में भारतीयों को स्थान न देना, सेना में भर्ती करने में भेद नीति रखना, प्रेस और हथियार रखने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगाना, भारतवासियों से अपनी उच्चता प्रदर्शित करने के लिए अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा वैभव का अवांछनीय प्रदर्शन करना, साम्राज्यवादी शोषण के ऐसे कटु अनुभव थे जिन्होंने राजा को ईश्वर का रूप समझनेवाली भारतीय प्रजा की राजभक्ति के सामने एक बड़ा प्रश्न चिह्न लगा दिया। भारतेन्दु-युग के लेखकों ने भारतीयों के साथ किये जानेवाले इस प्रकार के अत्याचार के विरुद्ध क्षोभ प्रकट किया है तथा यह क्षोभ प्रकट करते समय उनकी देशभक्ति की भावना राजभक्ति के सिर पर चढ़ कर बोलती है।

रंगभेद

यह इतिहास का व्यंग है कि यूनान, मिश्र व चीन की तरह भारत की प्राचीन संस्कृति अत्यधिक समृद्ध होते हुए भी उन्नीसवीं सदी की विदेशी गोरी शासक जाति ने इस देश के निवासियों को अफ्रीका के हब्शियों की तरह असभ्य और जंगली समझा तथा उन्हें काला व 'नेटिव' शब्दों से सम्बोधित किया। जिस प्रकार शेक्सपियर के 'मर्चेंट आफ वेनिस' (*Merchant of Venice*) में यहूदियों

+ भारत-मित्र अंक १४

हम यह नहीं कहते कि कंजरवेटिव ही हम लोगों पर विशेष तीव्र भाव रखते हैं लिबरल ग्लाडस्टन साहब ने भी चीन गृह युद्ध का भार भारत पर अर्पित किया था।

X सारसुधा निधी वर्तमान राजनीति की चर्चा अंक ३०-३१ पृ० ३५०

यह समय ऐसा आ गया है कि समझने से कहना कठिन है
भारतवर्ष उन लोगों (इंग्लैण्ड निवासियों) की क्रीडा-भूमि नहीं है कि जो इच्छा सो ही करें।

के साथ दुर्व्यवहार से भारतमाता की आत्मा व्यथित हो उठती है उसी प्रकार भारतवासियों को अपमान की दृष्टि से 'काला' कहने पर भारतेन्दु की आत्मा व्यथित हो उठती है।+ संसार में सबसे पहले 'सभ्य, शूर सुखरासी' होनेवाले भारतीयों को अंग्रेजों द्वारा काला कहने पर 'प्रेमघन' क्षोभ प्रकट करते हैं।× दादा भाई नौरोजी के इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट के सदस्य बनने के उपलक्ष्य में विरचित 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद' (सन् १८८२) कविता में प्रेमघन को 'कालेपन' पर अभिमान हो जाता है।• अंग्रेजों द्वारा प्रयुक्त नेटिव शब्द का बालकृष्ण भट्ट विरोध करते हैं।(A)

अंग्रेजों के वैभव प्रदर्शन का विरोध

काले और गोरे के भेद की नीति विदेशी शासकों के रग रग में भरी थी। यही कारण है कि अंग्रेज शासक भारतीयों से सामाजिक व्यवहार तो रखना दूर मिलने जुलने में भी अपना अपमान समझते थे। उन्हें अपने ऐश आराम के सामने देश की दशा का ध्यान ही नहीं रहता था। प्रतापनारायण मिश्र विदेशी शासकों

\+ कहि कृष्ण इन्हें मति तुच्छ करो नहीं भींटहु तुच्छ विचार धरो
इनहूँ कहँ जीवन देह दया इनहू कहँ ज्ञान सनेह मया
इनहू कहँ लाज कृपा ममता इनहूँ कहँ क्रोध क्षुधा समता
इनहूँ तन सोभित हाड़ तुचा इनहूँ कहँ मालिक ईस रचा (भारतेन्दु)

× जाहिल औ जंगली जानवर कायर क्रूर कुचाली रामा
हरि हरि हाय कहावे भारतवासी काला रे हरि
भये सकल जग में पहिले जे सभ्य सूर सुखरासी

(प्रेमघन)

• अचरज होत तुमहु सन गोरे बाजत कारे
तासो कारे कारे शब्दहु पर हैं वारे
अरु बहुधा कारन के हैं आधारहि कारे
विष्णु कृष्ण कारे कारे सेसहु जग धारे
प्रेमघन (मंगलाशा और हार्दिक धन्यवाद)

(A) बालकृष्ण भट्ट हिन्दी प्रदीप सितम्बर १८८६ पृ० १३
हमारा राज्य ही हमसे छीन गटक बैठे और अब तक हमें मूर्ख बताते ही जाते हैं। नेटिव, मूर्ख, झूठे खुशामदी आदि उपाधियां देते हुए आप बड़े बुद्धिमान और सच्चे उदार बनते हैं।

के इस व्यवहार के प्रति असतोष प्रकट करते हैं।*

बालकृष्ण भट्ट अंग्रेजो के शान शौकत से रहने के ढग की आलोचना करते हैं।+ वे अंग्रेजो को ही सरकारी ऊचे ओहदे देने की नीति की भर्त्सना करते हैं तथा सेना में भारतीयो को ऊचे पद न मिलने के कारण अंग्रेजो की नीति को पक्षपातपूर्ण ठहराते हैं।×

इलबर्ट बिल—न्याय की दुर्व्यवस्था

इलबर्ट बिल का विरोध रगभेद की नीति का ज्वलत प्रतीक था। इस बिल के पास होने के पहले भारतीय न्यायाधीश किसी भी अंग्रेज का न्याय नहीं कर सकता था जब कि अंग्रेज न्यायाधीश को किसी भी भारतीय अधिकारी को दण्ड देने का अधिकार था। इस युग के साहित्यकारो ने अंग्रेजो द्वारा 'इलबर्ट बिल' के विरोध पर क्षोभ प्रकट किया। 'अंग्रेजो से भारतवासियो का जी क्यों

---

* जे अनुशासन करन हेतु इत पठये जाही
ते बहुधा बिन काज प्रजा सो मिलत लजाहीं
जिते निरास हुया रहहिं तिते कहुँ लघु अवसर मह
जन रजन हित करहि न स्वीकृत कछु कष्ट कह
सनिकहु भोग बिलास माँहि त्रुटि करन न चहहीं
नेकहि श्रीसम लखे पवतन कर पथ गहहीं
(प्रतापनारायण मिश्र)

\+ बालकृष्ण भट्ट "हिन्दी प्रदीप मार्च १८८५ पृ० १३
कसी उम्दा वरांडेदार बारिको मे एक अदना सा गोरा रहता है और कितना बहुमूल्य खाना खाता है। कितने गाय बैल बकरे साल भर म उसके पोषण के लिए चाहिए कसी कसी बडे दाम की औषधिया उन्हें निरोग रखने को दी जाती हैं। इसी के मुकाबले हिन्दुस्तानी सिपाहियों की पल्टनों को देखिय फी सिपाही पीछे १२ रुपया या १५ रुपया से अधिक खर्च सरकार का न पडता होगा।
हम हम देखत है गवनर जनरल से लेकर जिलो के कलक्टर और जट तक सब अंग्रेज ही अंग्रेज भर रहे है देशी लोगो को कही एक ओहदा भी एसा नहीं मिलता।

× वही पृष्ठ १४
इतनी पल्टनों म एक भी देशी मनुष्य कप्तान या मैजर आदि के पद पर नियुक्त न किया जाय।

नही मिलता' लेख म इस पक्षपात का स्पष्ट विरोध मिलता है।+ प्रतापनारायण मिश्र ने 'बेकार न बठ कुछ किया कर' निबध म इस बिल के विरोधियो का विरोध किया।—

अग्रेजी राज्य काल मे न्याय की व्यवस्था के प्रति भी इस काल के साहित्य मे क्षोभ पाया जाता है। न्याय व्यवस्था का सबस बडा दोष यह था (और अभी है) कि वह सब साधारण को सुलभ नही हो पाता था। एक अदालत से दूसरी अदालत में जाने म धन का जो व्यय होता था उसके कारण सर्व साधारण को न्याय मिलना कठिन था। फिर न्यायाधीश पक्षपाती भी होते थ। अस्तु भारतेन्दु का 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक तत्कालीन युग म न्याय की दुर्व्यवस्था की प्रतिक्रिया म विरचित प्रतीत होता है और उसम सच्चाई पर दृढ रहने की आवश्यकता ध्वनित होती है। 'अधेर नगरी' नाटक मे अग्रेजी राज्य काल के न्याय पर गहरा व्यग है।

न्याय की दुर्व्यवस्था के साथ ही भारतीयों के प्रति अग्रेजो के दुर्व्यवहार पर इस युग के लेखकों के मन म क्षोभ था। प्रतापनारायण मिश्र ने 'टेढ जानि शका सब काहू' तथा 'सब सहायक सबल के' निबधो में भारतीयो के प्रति अग्रेजों के दुर्व्यवहार की घोर निन्दा की है। भारतेन्दु ने 'ककड स्तोत्र' निबन्ध मे अग्रेजी राज्यान्तगत शांति व्यवस्था की खुटकी ली है। बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी

+ 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' खण्ड २ सख्या १।

अग्रेजी पढ लेन को किसी हिन्दु के क्रिस्तान हो जाने को बहुत स लोगो के अग्रेजी चाल ग्रहण कर लेने को हम मिलना नही कहते हम इन दोनो जातियो का जी तब मिला समझें जब एक के चित्त मे दूसरी की ओर से सहज स्नेह हो और परस्पर के दुख सुख के साझी हो। हिन्दु लोग जसा इनको अपवित्र विदेशी, क्रूर इत्यादि दोषो से पूरित समझते हैं वैसे ही अग्रेज लोग हिन्दुओ को पराजित मूल अधेरे मे पडे हुए समझते हैं यहा तक कि हिन्दु भक्ष्य, अग्रेज भक्षक यह सम्ब ध दृढ हो रहा है और अग्रेजो के जाति-पक्षपात से यह गाठ और भी दृढ होती है और परिणाम इसका बुरा दिखाई पडता है। क्या कारण है कि हिन्दु मजिस्ट्रेट अग्रेज को दण्ड न दे सक पर अग्रज हिन्दु को द ? केवल पक्षपात नीलवालो का बम्बई म सिपाही का और ऐसे ही यदि अखबारो म चुने जाय तो सकडो मुकदमे होगे जिनम अग्रेजो का अग्रेजो ने पक्षपात किया है।

— विजयशकर मल्ल प्रतापनारायण ग्रथावली 'बेकार न बठ कुछ किया कर' पृष्ठ ४४।

इलबर्ट ने गुड दिखा के ईट मारी है। इन्हें अग्रेज अधिकारियो का इतना पक्षपात कि हिन्दुस्तानी हाकिम, बिना युरोपियो की पचायत बठे उनका न्याय ही न कर सकें। क्यो न हो 'घर का परसया अधेरी रात।

प्रदीप' में प्राय पुलिस के हथकण्डो के विरुद्ध लिखते थे। भट्टजी ने 'सौ अजान और एक सुजान' उपन्यास मे भी पुलिस के भ्रष्टाचारों का वर्णन किया है। पुलिस दरोगा सोचता है, ५००) रुपया रोज पैदा किए बिना दातुन करना हराम है। अच्छा फिर हमारा गुजारा भी तो किसी तरह होना चाहिए। बड़े बड़े नवाबों का जो खर्च न होगा वह हम अपने जिम्मे बांधे हैं।

आर्म्स एक्ट व प्रेस एक्ट

तत्कालीन युग मे 'आर्म्स एक्ट व 'प्रेस एक्ट' के विरुद्ध भी साहित्यकारो ने क्षोभ प्रकट किया। अंग्रेजी राज्य के प्रति स्वामिभक्ति की भावना रखने वाले भारतवासियो की स्वतन्त्रता पर यह प्रहार भारतेन्दु को मर्मविदारक प्रतीत हुआ।× प्रतापनारायण मिश्र ने भी आर्म्स एक्ट का विरोध किया। = प्रेमघन ने 'जीर्णपद' कविता में रामलीला का वर्णन करते हुए परोक्ष रूप से आर्म्स एक्ट की निन्दा की है। अब योद्धाओं के लिये केवल नकली युद्ध में भाग लेकर अपना कौतुक दिखाना ही शेष रह गया है। -

---

× मर्महि भाति नृप भक्त जे भारतवासी लोग
शस्त्र और मुद्रण विषय करी तिनहु की रोक

(भारतेन्दु)

= निज तन रक्षा हित जिन हाथ हथ्यार रहु नाहीं।
लूटि लेहि घर चोर चह जब जेहि निसि माहीं।

(प्रतापनारायण मिश्र)

" प्रेमघन प्रेमघन-सर्वस्व जीर्णपद पृ० ३१।
बड़े बड़े योद्धा दुहु ओर बने कपि निश्चर
भिरत परस्पर लरत महाकरि बान परस्पर
मनहु असम्भव अंग्रेजी के राज लराई
जानि लड़ाके लोग युद्ध झूठे मे आई
चमक निकारत मन की निज करतब दिखरावत
भूले युद्ध नवाबी के पुन याद करावत।

इसी प्रकार प्राचीन समय की वीर जातियो को अब खेती करके अपनी जीविका पालन करते देख वे उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं ।+

भाषा नीति, गोवध

दफ्तरों म हिन्दी के बदले उर्दू को स्थान गोवध आदि अन्य विषय थे जिनके कारण तत्कालीन साहित्यकारो को अंग्रेजी शासकों के प्रति क्षोभ था । महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर लिखित प्रतापनारायण मिश्र के 'जुबली' शीर्षक लेख म इन विषयों का सकेत मिलता है ।×

आंग्ल शासन के प्रति विरोध की भावना इसी तथ्य से प्रकट है कि इस युग म रचे गये पौराणिक नाटको म भी प्रकारान्तर से आंग्ल शासन की बुराईयों को ही दर्शाया गया है । बालकृष्ण भट्ट के वेणु सहार पौराणिक नाटक मे भृगु के द्वारा नाट्यकार मानो अपने युग की बात कहता हैं

क्या कारण है कि हमारा आश्रम इन दिनो निरन्तर जन सचार विहीन सा रहता है । मनुष्य की कौन कहे पशु पक्षी तक उदासीन से मालूम होते हैं । काल विपर्यय सा हो गया है । ठीक समय पर अच्छी वर्षा न होने से आश्रम पादप सब

\+ वही पृष्ठ ४५ ।

रहे वीर योद्धा थ आज किसान गए बनि
खेत उसास उदास सप जसे खोया मनि
रहे चलावत जे तलवार तुपक एडाने
आजु चलावहि ते कुदारि फरसा बिलखाने
जे छात्रत घरि मुड समर महं बैठि सिंहासन
कडवी बालत बठि खेत काटि बनी बेदम
रहत मान अभिमान भरे सजि अस्त्र शस्त्र ज
सहम मार सिर धरे लाज सो दबे जात वे

× प्रतापनारायण मिश्र जुबली, ब्राह्मण खण्ड ४ स ब १ पृष्ठ ८

अनेक स्मारक चिन्ह बने और बधुए छूटे अनेक कविता की गई अनेक एडरैस भेजे गए पर अभागे भारत के लिए क्या किया ? यदि आर्म्स एक्ट उठा लिया जाय हम शस्त्रास्त्र सचालन की आज्ञा फिर हो जाय तो अथवा गोवध उठा दिया जाय तो अथवा जो बिल्ली की सी घातें करने वाली उर्दू दफ्तरो से भगा दी जाय तो हम और हमारे वशज सदा यही कहेंगे कि साहस के बिना घृत दुग्धादि के बिना कचहरी म यथातथ्य अक्षरो के बिना भारतवासियो के ज्यू (जीव) बिल्ली की भाँति अपौरुष थ सो महारानी की दया से वही जिउ बली अर्थात् बलिष्ठ हो गए अथवा इनकम टैक्स ही से हमारा गला छूटे तो सदा कहेंगे कि जीउ बलि अर्थात् जीव का बलिदान देने वाला राक्षस महारानी के शताब्दी सम्बन्धी उत्सव ही म मारा गया ।

मुरझाने से है। जान पड़ता है यह सब राजा के उपद्रव का परिणाम है क्योंकि अनावृष्टि तथा प्रजा मे आदि व्याधि रोग शोक आदि कष्ट का फैलना बिना राजा के अत्याचार के नहीं होता। राजा मे लोभ के आते ही सुख समृद्धि का अन्तर्भाव हो जाता है तो निश्चय इस समय कुछ राजोपद्रव है जिससे लोग दुःखी हो रहे हैं।*

आंग्ल शासन के आर्थिक शोषण का विरोध

अंग्रेजी राज्य के प्रति भारतीयो से असतोष का प्रधान कारण हमारे देश का आर्थिक शोषण था। जो देश कभी धन धान्य से पूर्ण था जहा घरेलू उद्योग धन्धे समृद्ध थे जहा की भूमि रत्नगर्भा थी अब वहा बेकारी, अशिक्षा और असतोष सुरसा की तरह बढ़ते जा रहे थे। सबसे दुःख पूर्ण बात तो यह थी कि यहां का धन विदेश चला जा रहा था। भारत का धन केवल इंगलैण्ड ही नही जा रहा था वरन् इंगलैण्ड अपने साम्राज्य और राजनीतिक प्रभाव के विस्तार के लिए जिन युद्धो को लड रहा था उनका भार भी प्रायः भारत को ही उठाना पड़ता था। 'फ्री ट्रेड' की नीति के कारण भारत का व्यापार नष्ट हो गया। इस पर भी देश मे अकाल और महामारी का प्रकोप बढ़ चला। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् बगाल मे किये गये किसानों के बन्दोबस्त से किसानों की कठिनाइयां बढ़ गई। १८६६ ई० म अकाल पडा जिसमे दस बीस लाख मनुष्यों की मृत्यु हो गयी। इस वर्ष मन्दी का जमाना था। सन् १८६८-६९ में फिर अकाल पड़ा। तत्कालीन युग के अकाल, महामारी, टक्सों का तांता अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शोषण के प्रतीक थे।

साम्राज्यवादी शोषण

इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध भारतेन्दु युग के लेखको ने आवाज उठाई। भारतेन्दु ने अपने 'बलिया म भाषण' में 'हजार तरह से' विदेशो मे जाने वाली भारत की लक्ष्मी को रोकने की अपील की। † साम्राज्यवाद के सूक्ष्म आर्थिक शोषण को

---

* भट्ट निबधावली, (स०) धनजय भट्ट सरल पृ० ६०

† भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया में भाषण' (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका भाग १ सख्या ३) जसे हजार धारा होकर गगा समुद्र मे मिली है वसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इग्लैंड फ्रांसीस जर्मनी, अमेरिका को जाती है।

और भी

भीतर भीतर सब रस चूसे हसी हसी के तन मन धन मूसे
जाहिर बातन मे अति तेज, क्यों सखि सज्जन, नहीं अंग्रेज।

(नये जमाने की मुकरी)

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी

भारतेन्दु ने पहिचाना था। 'अंग्रेज स्तोत्र' में उन्होंने आंग्ल शासन को विष्णु कह कर व्यंग किया है जो लक्ष्मी को अपने ही पास रखता है।+ प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविता में साम्राज्यवादी शोषण के प्रति व्यंग किया है। — समय का फेर निबंध में उन्होंने जीवन यापन की आवश्यक सामग्रियों क धन एवं विदेशी माल खरीदने की भर्त्सना की। • युवराज एडवर्ड सप्तम के भारत आगमन के अवसर पर बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन' ने 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता में सम्पत्ति के क्षीण होने के कारण सुकाल को भी अकाल बताया। ✓

ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई

(भारत दुर्दशा पहला अंक)

हिंद चूरन इसका नाम विलायत पूरन इसका काम
चूरन जब से हिंद में आया इसका धन बल सभी घटाया
चूरन साहब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता

(अंधेर नगरी)

+ डा० लक्ष्मी नारायण शुक्ल (सम्पा) भारतेन्दु के निबंध सरस्वती मन्दिर, जतनबर बनारस स २००८ 'अथ अंग्रेज स्तोत्र लिख्यते' पृ० ६८

— नाव म लीज धन दौनानि को टिक्कस दीजे काटि कर जान
और बातन के सब सुख है मानो रामचन्द्र के राज
कर अड चन्दापय हा लक्ष्मी जाय विदेश बसी है
नौन तेल लकरिहु के हित नित रहती प्रजा तरसी है।

× × ×

सबसु लिये जात अंग्रेज, हम केवल लेक्चर के तेज।

• विजयशंकर मल्ल (सम्पादक) प्रतापनारायण ग्रन्थावली समय का फेर पृष्ठ २७२

✓ यदपि तिहारे राज भयो भारत अति उन्नत
भाग सो अब सब काऊ सब विधि सुख पावत
पै दु ख अति भारी इक यह जो बढत दीनता
भारत म सम्पति की दिन दिन होत छीनता
सुख सुकालहु जिन्ह अकालहि के सम भारत
कई कोटि जन सहत सन्ना भोजन की सासत

(हार्दिक हर्षादर्श)

साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण के विभिन्न व अनेक तरीके थे। भारत की लक्ष्मी 'हजार तरह से' विदेशों में जा रही थी और उसके जाने का सबसे बड़ा मार्ग व्यापार था। भारत के सभी घरेलू उद्योग नष्ट हो गये थे। नये कल कारखाने नहीं खुल पा रहे थे। भारत इंग्लैंड को केवल कच्चा माल भेजनेवाला देश रह गया। भारत से जो कच्चा माल इंग्लण्ड जाता वही वहां से बन कर पुन भारत में आकर कई गुनी कीमत पर बिकता। देश में उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक था कि विदेशी माल के भारत में आने पर उस पर अधिकतम कर लगाया जाता किन्तु विदेशी शासन से इसकी अपेक्षा करना व्यर्थ था। श्रीनिवासदास ने 'भारत खण्ड की समृद्धि' निबंध में ग्लासगो व एडिनबरा व रूस की नीति के अनुरूप भारत में आनेवाले विदेशी माल पर कर लगाने की नीति को अपनाने की अपील की।+ बालकृष्ण भट्ट ने भी भारत में आने वाले विदेशी माल पर आयात कर न लगाने की अंग्रेजों की नीति को स्वार्थपूर्ण बतलाया।×

टैक्स

आर्थिक शोषण का दूसरा रूप था भारतवासियों पर टैक्स लगाना। सामान्य अवस्था में तो देश में विभिन्न प्रकार के टैक्स लगाये ही गये थे किन्तु, अंग्रेजी

+ श्रीनिवासदास 'भारत खंड की समृद्धि" सारसुधानिधि' जिल्द १ सं ६ पृ २६

बहुत से लोग तो इस बात को भी नहीं जानते कि यहां से रुई विलायत को जाती है और वहां से वस्त्र बन कर आता है जिसमें कितनी हमारी हानि होती है। जिस समय यहां से कपड़ा इंगलिस्तान में जाता था उस समय (सन् १७७३) ग्लासगो और एडिनबरा के निवासियों ने कैसे उद्वेग से यह सम्मत किया था कि भारतखण्ड का बना हुआ कपड़ा कोई न ले और सरकार से प्रार्थना करके हिन्दुस्तानी पदार्थों पर कर बढ़ाया जाय। अभी रूस के तुर्किस्तानी गवर्नर ने यह आज्ञा दी है कि 'चाय' और 'अफीम' भारतखण्ड से रूसी एशिया के विभाग में न आने पावे और हिन्दुस्तान के सब पदार्थों पर कर अधिक किया जाय। इसी प्रकार क्या हम लोगों को उचित नहीं है कि अपने हानि-लाभ का आप विचार करें।

× बालकृष्ण भट्ट 'आत्म त्याग' भट्ट निबंधावली भाग २ पृ० १८

किन्तु वहां (इंग्लैंड में) और के मुकाबले खुदगर्जी का अलबत्ता बेहद दखल है। आपस में आत्म-त्याग और सहानुभूति ज्यों की त्यों कायम है। लंका शायरवालों की बड़ी हानि के ख्याल से रूई के माल पर इम्पोर्ट ड्यूटी का न लगना गवर्नमेंट की हाल की कार्यवाही इस बात की गवाही है। इस खुदगर्जी के लिए जो सरासर अन्याय और धर्म नीति के विरुद्ध है अंग्रेजी गवर्नमेंट को दुनिया की और सल्तनतें नाम रखती हैं पर वहां 'स्वार्थ अर्थों ही मूर्खता' का सिद्धान्त सब को दबा रहा है।

साम्राज्यवाद को विदेशों में किसी प्रकार का युद्ध लड़ना होता तो उसका व्यय भी भारतवासियों पर टैक्स लगाकर वसूल किया जाता। भारतवासियों को १८५७ के विद्रोह का व्यय ही टैक्स के रूप में नहीं देना पड़ा वरन् अफगानिस्तान वर्मा, काबुल, मिश्र आदि में लड़े गये साम्राज्यवादी युद्धों का व्यय भी देना पड़ा। इन टैक्सों के विरुद्ध भारतेन्दु-युग के साहित्य में राशि राशि भावों की अभिव्यक्ति मिलती है।

विदेशी युद्धों का व्यय

अफगान-युद्ध की समाप्ति पर भारतेन्दु ने 'विजयवल्लरी' की रचना की। अफगान युद्ध अंग्रेजों ने भारतीय सेना को भेजकर जीता था। युद्ध में विजयी भारतीयों को प्रसन्न देखकर कवि प्रश्न करता है कि क्या भूमि का कर उठ गया अथवा टैक्स माफ हो गया या सिविल सर्विस में प्रवेश पाने का जन-साधारण का अधिकार मिल गया अथवा नाट्य-प्रदर्शन, भाषण और समाचार-पत्रों को स्वतन्त्रता मिल गयी अथवा गोवध बंद हो गया जिससे कि भारतीय सैनिक इतने प्रसन्न दिखाई देते हैं। कथित प्रश्न ही अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति पर तीव्रतम प्रकाश डालते हैं जिसमें उसकी सारी नग्नता उघड़ कर प्रकट हो जाती है। तत्पश्चात् कवि वास्तविक स्थिति को प्रकट करता है कि 'अफगान युद्ध में अंग्रेजी सरकार के विजयी होने के कारण भारत-वासियों में यह प्रसन्नता का भाव क्यों उदित हुआ है। इसका प्रतिकार करते हुए वह कटु सत्य को व्यक्त करता है कि युद्ध न होने से भारतवासियों पर नया टैक्स नहीं लगेगा तथा इस प्रकार उनका धन नष्ट होने से बच सकेगा केवल मात्र इसी बात के लिए प्रसन्नता है। +

\+ नहिं नहिं कारन नहीं यहै और ही बात
जो भारतवासी सब प्रमुदित अतिहिं लखात
काबुल सों इनको कहा हियैं हरख की आस
ये तो निज धन नास सों रन सौं और उदास
सुजस मिले अंगरेज को होय रूस की रोक
बढ़े ब्रिटिश वाणिज्य पै हमको केवल शोक
भारत राज मझार जो कहुँ काबुल मिल जाई
जज कलेक्टर होइहैं हिंदु नहिं तित धाई
ये तो केवल मरन हित द्रव्य देन हित दीन
तासों काबुल युद्ध सों ये जिय सदा मलीन
इनके जिय के हरख को औरहि कारण कोय
जो ये सब दुख भूल के रहे अनन्दित होय
..
सुनी है 'सोन' न युद्ध बिना लगिहै नहीं टिक्कस
रहि है प्रजा अनन्द सहित बढ़ि है भत्री जस

विलियम म्योर के आगमन पर काशी मे गंगा के तट पर रोशनी की गई थी। भारतेन्दु ने उस समय एक नाव पर रोशनी से एक ओर ओह टक्स (Oh Tax) और दूसरी ओर

'स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री विलियम म्योर
टिकस छुडावहु सबन को विनय करत कर जोर'

लिखवाया। 'विलियम म्योर के आगमन पर नेवदान' शीर्षक लेख मे उन्होंने नगर के प्रकाश को दूषित स्त्री की तरह श्रीहीन बताया। + 'अथ अंग्रेज स्तोत्र लिख्यते' निबंध मे भारतेन्दु ने अंग्रेजो के लिए लिखा है 'तुम चन्द्र हो इनकम टैक्स तुम्हारा कलंक है।" × युद्धों के कारण बढने वाले टक्सो व दरिद्रता का 'प्रेमघन' ने होली की नकल या मोहरम की शक्ल (A) कविता मे तथा राधाचरण गोस्वामी ने होली के एक गीत * मे विरोध किया। 'सार

यहि सोचि आनन्द भरे भारतवासी जन
प्रमुदित इत उत फिरहिं आज रच्छिन लखि निज धन, भारतेन्दु)

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कवि वचन सुधा' जिल्द २ सं० १२

उस समय का दीपदान काशी के शुभ चिन्तकों को ऐसा जान पडता था जैसे काशीपुरी अपने हृदय की प्यास के दु ख की अग्नि को प्रकट दिखाती थी। भला जिस स्त्री ने महीना से अन्न का दर्शन मात्र नही किया यदि उसको कोई षोडसी श्रृंगार करके बैठावे तो उसे सुख प्राप्त होगा कदापि नहीं। यही दशा इस नगर की थी।

× डा केसरीनारायण शुक्ल भारतेदु के निबन्ध' सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस सं० २००८ अथ अंगरेज स्तोत्र लिख्यते" पृ० ९७

(A) प्रेमघन

रिपन गये जब सो उत हाय तब सो विपत परी उतराय
डफरिम लाट भये इत आय प्रथम परे अति सरल सुनाय
पर इत आय किये मन भाय करनी कछु कही नहीं जाय
रो ओ सब मुंह बाय बाय, हय हय टिक्कस हाय हाय
रावलपिन्डो खूब सजाय माल दरबार कीन्ह हरखाय
दिल्ली काबुल युद्ध करवाय जग स पूरन सुभट बुलाय
न्योता भन विधि तिन्हें जिवाय भाल खजाना निहिन लुटाय
रो ओ सब मुंह बाय बाय हय हय टिक्कस हाय हाय

* —राधाचरण गोस्वामी सार सुधानिधि वर्ष १ अंक ८

इत अकाल उत टिक्स लगायो कर सब पै बरजोरी
तेज अनाज ठिक कहुँ नाही मरत प्रजा सब ठोरी
भीख मागत ले झोरी!

सुधा निधि' म 'हिन्दु समाज शीषक एक लख प्रकाशित हुआ जिसम काबुल व अबी सीनिया के युद्धो का भारत पर व्यय लादने का विरोध व्यक्त हुआ है। ⓐ प्रतापनारायण मिश्र ने 'छुची चोट निहाई के माथे' निबध म मिश्र तथा रूस के विरुद्ध लडे जानेवाले युद्धों म भारतीयो क भाक ज न का विरोध किया। ❖

व्यापार और उद्योग

भारत की कला और उद्योग नष्ट हो गय। भारत का धन विदेशों में लद कर चला गया। टक्स की मार से भारतवासी सुख की सास नहीं ले पात थ। इस पर भी अंग्रेजी राज्य की शान शौकत को दिखान म होनेवाला व्यय भारत वासियों के हृदय के कांटे की तरह चुभने लगा। भारत क वाइसराय लाड मेयो की जब शेरअली ने हत्या की तो राज्य व्यवस्था क समथक भारतेन्दु ने शेरअली के लिए कठिनतम दण्ड विधान की सम्मति दी। किन्तु तीन महान बाद लाड मेयो की स्मृति म बननवाले बहुमूल्य स्मारक क निर्माण को व अपव्यय समझते है।

ⓐ सार सुधानिधि वष १ अक ५ (१७ फरवरी १८७६) पृ० ५२

काबुल के युद्ध से क्या फल हुआ काबुल रूस ने शठता का फल पाया दूसरे इगलण्ड को क्या फल हुआ ? इस प्रश्न क उत्तर म यही कहना पडेगा कि एक तो इनकी स्वाथपरता का परिचय हुआ। दूसरे एक प्रशस्त आमदनी का रास्ता हुआ अब भारतवष को क्या फल हुआ। इसके उत्तर म हम यही कहगे कि भारतवष को क्या फल होना है। ये तो बराबर ही से भारवाही बल है इसको सिवाय बोझ उठाने के और क्या मिलना है। अबीसीनिया की लडाई मे भारत को बोझ उठाना पडा था। इस लडाई म भी भारतवष को ही बोझा उठाना पडेगा। राजा की इच्छा चरिताथ हुई एक प्रशस्त आमदनी का रास्ता हुआ पर बार-बर्दाना सब भारत के सिर लादा गया मरे को मारना और दबे को दबाना मुनासिब नहीं है।

❖ विजयशकर मल्ल प्रतापनारायण ग्र थावली छुची चोट निहाई के माथे' पृ० ६१

मिश्र मे मेहदी स उलझने को भी हिन्दुस्तानी ही झोके गये है। यदि रूसराज कुछ सनके तो भी छुची चोट निहाई के माथे हमी तोप के मुहर होग। हमारे ही देश की लक्ष्मी का हवन होगा। जवाब इसका यह होगा कि तुम्हारी रक्षा के लिए सब होना है। हम कहते हैं कि हमारी ही रक्षा किसलिए की जाती है इसीलिए न कि हम कमाते जाए और आप ले ले के अपना घर भरते जाएं।

एक मूर्ति निर्माण के लिए लाखों रुपये खर्च करने के बदले इसे उपयोगी कामों में खर्च करना व जनता को टैक्स के भार से मुक्त करना उन्हें अधिक उचित प्रतीत होता है। +

व्यापार की दुर्दशा

भारत में ब्रिटिश अर्थ नीति के अनुसार भारत का कच्चा माल तो सस्ते दामों पर इंगलैण्ड में जाना ही था तथा वहाँ से वस्तुएं बन कर आती जो भारत में कई गुने दामों पर बेची जाती किन्तु भारत में भी बड़े बड़े साम्प्रदायिक व्यापारों पर अंग्रेजी व्यापारियों का आधिपत्य था। व्यापार के कुछ क्षेत्रों में एकाधिपत्य के कारण भी भारतीयों का आर्थिक शोषण कम नहीं होता था। कभी २ ऐसा भी होता कि अंग्रेज व्यापारी कुछ क्षेत्रों में सम्पूर्ण फसल कम दामों में जबरदस्ती ही खरीद लेते तथा जब मंडी में दाना भी नहीं रहता तो मनमाने दामों पर धान बेचते। अनेकों बार धान देश से बाहर निर्यात कर दिया जाता और देश को मनुष्य निर्मित अकाल का सामना करना पड़ता। आर्थिक शोषण के इस रूप को भारतेन्दु युग के लेखकों ने अत्यधिक क्षोभ के साथ पहिचाना। 'कष्टानिकष्टतरम् सुधा' × लेख में बालकृष्ण भट्ट ने भारतीय व्यापार की हीन दशा का वर्णन किया है। उनके कथनानुसार देश में थोड़ा बहुत व्यापार है—वह केवल धान के निर्यात का है जो देशवासियों को भूखों मारने का कारण है। कलकत्ता व बम्बई जैसे कुछ शहरों को छोड़ कर शेष सभी स्थानों के व्यापारी जिनके यहां रुपयों की मनमनाहट छाई रहती थी 'मौन साधे बसना बिछाये हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं केवल ब्याज की या गांठ की आमदनी से अमीरी ठाठ बांधे हुए हैं। होली है • लेख में प्रतापनारायण मिश्र देश में कृषि वाणिज्य शिल्प सरकारी नौकरी सभी की दुरवस्था का वर्णन करते हैं 'जो कुछ बचता भी है वह कट के खलिहान में नहीं आ पाता। ऊपर की ऊपर लद जाता है रुजगार व्यवहार में कुछ देखो नहीं पड़ता। जिन बाजारों में अभी १० वर्ष भी नहीं हुए कंचन बरसता था वहाँ अब दुकानें

+ भारतेन्दु कविवचन सुधा जिल्द ३ सख्या १३ (२४ फरवरी १८७३) पृ० १०६

उस पत्थर की मूर्ति व स्तम्भ से तो हम यही जानते कि हिन्दुस्तान की प्रजा को मेयो साहब का नाम सदैव स्मरण रहेगा। यदि ऐसा ही लोगों को करना हो तो सब रुपया एकत्र करके सरकार के कोष में जमा करदें जिसमें टिक्स छूट जाय जिसमें बिचारे दुखी पिसे जाते हैं।

× बालकृष्ण भट्ट 'कष्टातिकष्टतरम् सुधा' भट्ट निबन्धावली भाग २ पृष्ठ १०३

प्रतापनारायण मिश्र होली है ब्राह्मण पृष्ठ ६२

मॉग मॉग होती है।" अंग्रेज व्यापारी किस प्रकार बाजार का सारा माल जबरदस्ती खरीद कर बाद में महंगे दामों पर बेचते तथा मानव निर्मित अकाल को भयंकर बनाने में सहायक होते इसकी ओर बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों 'नाम में नई कल्पना' और 'बोध मनोयोग और मुक्ति' में संकेत किया। *

भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में 'कृषि बढ़ाने का उद्बोधन' एक सम्पादकीय शीर्षक में नील, चाय आदि उद्योगों से अंग्रेजों को लाखों रुपयों के लाभ का उल्लेख किया है।+

गरीबी व महगाई का चित्रण

उपर्युक्त रूप में देश के आर्थिक शोषण के परिणाम स्वरूप भारतीय जनता को गरीबी और गरीबी के कारण होनेवाले सभी कष्टों का कटु अनुभव हुआ। देश की गरीबी व महगाई का इस युग के साहित्यकारों ने करुणाद्र चित्रण किया। भारतेन्दु के होरी के गीतों में देश की दयनीय दशा का सजीव अंकन हुआ है। नया सवद' कविता में प्रतापनारायण मिश्र नोन तेल व लकड़ी के लिए

---

* बालकृष्ण भट्ट नाम में नई कल्पना' भट्ट निबंधावली-भाग १ पृष्ठ ५

हमारे किसान मर मर पच २ करोड़ो मन गेहूं पैदा करें। वह यदि सब का सब हमारे काम में आवे तो चुकाय न चुके पर गेहूँ खेत में रहता है तभी रैली ब्रदर्स के कारिंदे गाव गाव घूम खेत का खेत चुकता कर लेते हैं हम मुंह ताकते रह जाते हैं। रैली ब्रदस के हौसले का अंत तब होगा कि हिन्दुस्तान में एक दाना भी गेहूँ का न रह जाय सब का सब जहाजों में लाद विलायत तथा और मुल्कों में पहुँचा दें।

(अ) बालकृष्ण भट्ट बोध मनोयोग और मुक्ति भट्ट निबंधावली भाग २ पृष्ठ १३

वर्तमान दुर्भिक्ष में कितनों की बन पड़ी है जो कभी अन्न का रोजगार नहीं किये थे वे भी इस समय रोजगारी बन बैठे हैं। सरकार की ओर से बड़ी बड़ी कोशिश करने पर भी कि अन्न सस्ता बिके उनके कारण नहीं बिकने पाता।

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृषि बढ़ाने का उद्बोधन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड १ अंक ४

क्या दुःख का विषय है कि नील इत्यादि चीजों को हमारे देश में उत्पन्न करके अंग्रेज लोग लाखों रुपया पैदा करते हैं और हम लोग खाली मुख ताकते रहते हैं।

जुरि आए फाके-मस्त होली होय रही
घर में भूंजी भाँग नहीं है तौ भी न हिम्मत पस्त
होली होय रही

तरसती हुई तथा अन्न व घी के बदले साग पात पर जीनेवाली प्रजा की भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। +

महगाई और टक्स के कारण मिश्रजी को होली का त्योहार सर्वथा फीका दृष्टिगत होता है। त्योहार मनाना तो दूर की बात है खाने के भी लाले पड़े हैं और जलाने के लिए ईंधन भी एकत्रित करना कठिन है। × 'महापर्व' शीर्षक कविता में उन्होंने देश की दशा का वर्णन करते हुए कहा है कि देश में चौथाई से अधिक

महगी परी न पानी बरसा, बजरउ नाही सस्त
धन सब गया अकिल नाहि आई तो भी मगल वस्त
होली होय रहो
परबस कायर क्रूर आलसी भये पेट-परस्त
सूझत कुछ न बसत माहि ये भे खराब औ खस्त
× × ×
भारत म मची है होरी
धूर उडत सोई अबिर उडावत सबको नयन भरो री
दीन दशा असुमन पिचकारिन बिलार भिजयो री

(भारतेन्दु)

+ शक्ति रही नहीं काहू विधि की पूजन काका कीजे
हा अभाग ! निज देश माहि रही परदेशी समझी ज
कर अब चचा पच हा लक्ष्मी ! जाय विदेश बसी है
नोन तेल लकरीहू के हित नित रहति प्रजा तरसी है
अब सब मानि असक्त हवनहित कहा अन्न घृत पावें
हम तो साग पात सो हा हा जीवन काल बितावें
('नया सवत्' प्रतापनारायण मिश्र)

× महगी और टिकस के मारे सगरी वस्तु अमाली है
कौन भांति त्योहार मनए कस कहिये होली है
× × ×
अब तो चेत करो रे भाई
उपज घटे धरती की दिन दिन नाज नितहि महगाई
कहा खाय त्योहार मनावें भूखे लोग लुगाई
सब धन ढोयो जात विलायत रहो दलिद्दर छाई
अन्न वस्त्र कहं सब जन तरसें होरी कहा स आई
बन कटि गये लकरिया महगी तहू टिकस अधिकाई
जहां इंधन को आफत है तह सब को ढेर जराई
(प्रतापनारायण मिश्र)

मनुष्य का पेट भर खाना भी नहीं मिलता।+ कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में भाग लेने के लिए जब ब्रेडला महोदय इंगलैंड से भारत में आये तो मिश्रजी ने उनके सम्मान में 'ब्रेडला स्वागत' कविता लिखी। यह कविता मिश्र जी के देश प्रेम के भावों की अच्छी प्रतीक है। ब्रेडला के आगमन पर कवि अपने हृदय की प्रसन्नता प्रकट करता है। देश में धन नहीं रहा अतः वह उन पर नयनों के मुक्ताहल (अश्रु) न्यौछावर करता है एवं हृदय-कमल का उपहार भेंट करता है। इंगलैंडवासी भारत के सात समुद्र पार रह कर भारत की वास्तविक दशा से परिचित नहीं हो सकते और न भारत में देशाटन के लिए आनेवाले यूरोपीय यात्री दो चार दिन ठहर कर ही वास्तविक भारत को देख पाते हैं। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास की चौड़ी सड़कों और जगमगाती रोशनी से दूर एक दूसरा भारत है जिसके निवासियों को रहने को मकान, पहिनने को कपड़ा व खाने को भोजन मयस्सर नहीं होता। कवि उसी भारत के दर्शन करने के लिए ब्रेडला को आमंत्रित करता है।× अस्तु भारतेन्दु युग के साहित्यकार विदेशी शासन के द्वारा किये जानेवाले आर्थिक शोषण व देश की आर्थिक हीनावस्था के प्रति पूर्ण सजग थे।

+ चौथाई ते अधिक जन भरि न सकें निज पेट
तेहि पर पुन कलत्र की चिन्ता देत चपेट
निज परजन एकत्र करि करहिं जो रुजगार
दुसह राजकर को परत तिन पर अतुलित भार
('महापर्व' प्रतापनारायण मिश्र)

× अब सब विधि सो सुखित होय कबहू फिर एहो
कछुक काल यह दशा दलिद्र के हित रेहो
तब लखियो जहं रहत एक दिन कंचन बरसत
तहं चौथाई जन रूखी रोटी कहं तरसत
जहं आमन की गुठली अरु बिरछन की छाल
ज्वार चून मंह मेलि लोग परिवारहिं पाले
नोन तेलहु लाकहु पर टिकस लगे जहं
चना चिरौंजी मोल मिले जहं दीन प्रजा कहं
जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं
देशन के हित कछु तत्व कहं कैसेहु नाहीं
कहिए कहां लगि नृपति दबे हैं जहं रिन भारन
जहं तिनकी क्या कथा जो अही रहे सधारन
('ब्रेडला स्वागत' प्रतापनारायण मिश्र)

तत्कालीन युग म यदि एक ओर साम त वग पतनो मुखी था तो दूसरी ओर व्यापारी वग भी देशो नति की भावना से रहित विलासिता म निमग्न था । लाला श्री निवासदास क परीक्षा-गुरू' उपन्यास म मन्नमोहन अपने मित्रो की चाटुकारिता तथा व्यथ की प्रदशन प्रियता के कारण कज मे फस जाता है तथा उस पर मुकदमा होना है और अदालत म ब दी बना लिया जाता है। कि तु ब्रजकिशोर के उद्योग से अ गलत ब द होने तक वह छुडा लिया जाता है। अ त में मदनमोहन का यह कथन ' मैं मन से पस द करता हूँ झूठी भडक दिखाने म कुछ सार नहीं है ।" % उसक हृदय परिवतन को दर्शाता है। उपन्यास क आरम्भ म सौ गागर ब्राइट के यहा जब मदनमोहन अपने साथियो से घिरा हुआ फशन की वस्तुए खरीदता है तब मदनमोहन को इस बात का क्षोभ होता है कि इन कारीगरी की निरयक चीजो के बदले हि दुस्तानी अपनी दौलत वथा खोय देते हैं। (*) ब्रजकिशोर एक स्थल पर ब्रजनाथ से वार्त्तालाप करते समय शिक्षित लोगों के देशो नति के प्रति उदासीन रहने पर आक्षेप करता है 'विद्या की उ नति कला के प्रचार पथ्वी के पैदावार बढाने की नई नइ युक्ति और लाभदायक व्यापारिक बातो पर जसा चाहिये ध्यान नही देते ।" + बालकृष्ण भट्ट के सौ अजान और एक सुजान' उपन्यास का कथानक भी 'परीक्षा गुरू' के समान है तथा उसमे धनी व्यापारिक वग की पतनशीलता का चित्रण मिलता है । सेठ हीरान द के जीवन-काल म ही उसके पुत्र रूपच द की मृत्यु होगई थी। हीराचन्द की मृत्यु के बाद उसके पौत्र ऋद्धिनाथ तथा निधिनाथ न ददास, बुद्धराम, बसता आदि की सगति म पड कर पथभ्रष्ट हो जाते हैं तथा वेश्यागमन सुरापान, द्यूत क्रीडा आदि कुप्रवत्तियो के शिकार होते हैं। अन्त म पचानन की सहायता से कथा का नायक च द्रशेखर उन दोनो का उद्धार करता है तथा न ददास और बुद्धराम को जाली दस्तावेज बनाने के अपराध म कारावास का दड मिलता है। भारते दु-युग के सुधारवादी उपन्यासो मे देश की आर्थिक दुदशा को सुधारने की आकाक्षा पायी जाती है ।

भारते दु युग के लेखको की राजनीतिक व आर्थिक चेतना

विदेशी शासन द्वारा आर्थिक शोपण व स्वत त्रता के अपहरण का प्रतिकार करना आवश्यक था । इसके लिए निष्क्रयता को छोड कर राजनीतिक चेतना का

% श्रीनिवासदास परीक्षा गुरू' (१८८४) पृ० १७५

* वही पृ० ४+वही पृष्ठ ३०

सचार करना युग धर्म बना। भारतेन्दु-युग के प्राय सभी लेखकों ने देश की दुर्दशा के कारणों को बताते हुए उनके सुधार की आकांक्षा की है।

भारतीय व्यापार की हीनावस्था का उल्लेख पोद्द किया गया है। उद्योग धन्धे बढ़ाने के बदले भारतीय व्यापारी केवल ब्याज का धन जमा कर अपनी शान रखते थे। जिनके पास इतनी रकम नहीं थी कि ब्याज से जमा करें उनमें दहेज का धन लेकर रखने की बुरी लत पड़ गई थी। देश म उद्योग धर्मों के विकास के लिए मिश्रजी ने उद्योग धन्धो म धन लगाने की 'कनराष्टक' • कविता तथा 'जरा अब तो आखें खोलिए' ╋ 'विलायत यात्रा' * 'समय का फेर' × प्रभृति निबन्धो म प्रेरणा की। भारतेन्दु ने 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' ॥ म देश म उद्योग धन्धो का विकास करने की प्रेरणा दी। भारतवासियों के उद्योग धन्धो में धन लगाने पर प्रतापनारायण मिश्र क्षोभ प्रकट करते है। 'जरा अब तो आखें खोलिए' निबन्ध म धन को उत्पादन म लगाने की सलाह देते हैं। 'विलायत यात्रा' तथा 'समझदार की मौत है' ╋* निबन्ध म य शिक्षित सर्विस के लिए धन व्यय करने की अपेक्षा उद्योग बढ़ाने को लाभदायक बताते हैं। आधुनिक युग मे उद्योग धधो का विकास मशीनो के अधिकाधिक प्रयोग पर अवलम्बित है। अत भारतेन्दु-युग के लेखको न नि सकोच मशीनो के अधिक तम प्रयोग पर बल दिया। भारतेन्दु ने 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' मे भारत म कल की वस्तुओ के बनने पर ही गरीबी दूर होगी यह अभिमत प्रकट किया। ×× प्रतापनारायण मिश्र ने 'मार मार कहे आओ मामद तो खुदा ही ने बनाया है' निबंध म घरेलू उद्योग धन्धो के नष्ट होने पर क्षोभ प्रकट किया। % विदेशों से आने

• प्रतापनारायण मिश्र 'प्रताप लहरी' पृ० ४४

╋ विजयशकर मल्ल (सम्पादक) प्रतापनारायण ग्रन्थावली प १७

* वही, पृ ५६६

× वही, पृष्ठ २७२

॥ बने वस्तु कल की इत मिट दीनता भेद (भारतेन्दु)

╋* विजयशकर भट्ट प्रतापनारायण ग्रन्थावली पृ ६६

×× कल के बल छन सा धन ल्ते क लोग
निज निज धन सो यन्न है बाटत है दुख सोग
मारकीन मलमल बिना चलत कछु नहीं काम
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम
जानि सकें सब केहु सबहि विविध कला के भेद

बने वस्तु कल की इते मिट दीनता खेद (भारतेन्दु)

% विजय शकर मल्ल (सम्पादक) प्रतापनारायण ग्रन्थावली पृ २३

वाली वस्तुओं के भारत में ही बनाये जाने पर बल दिया तथा अपने पत्रों में इस मत की सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखी।*

देश के उद्योग धंधों के विकास के लिए विदेशी माल का बहिष्कार कर स्वदेशी माल को अपनाना एक अमोघ साधन है। महात्मा गांधी ने भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में इसी अस्त्र का प्रयोग किया था किन्तु महात्मा गांधी द्वारा स्वदेशी आन्दोलन चलाने के प्रायः अर्द्ध शताब्दी पूर्व ही भारतेन्दु ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार के लिए देशवासियों से अपील की थी। अपने 'बलिया में भाषण' में उन्होंने स्वदेशी के प्रचार पर बल दिया। × धार्मिक सुधार के लिए भारतेन्दु ने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। तदीय समाज की सदस्यता का एक नियम यह था कि जहां तक होगा वे देशी पदार्थों का ही व्यवहार करेंगे। भारतेन्दु ने स्वयं भी यथासाध्य इस नियम का पालन किया। वस्तुतः स्वदेशी वस्तुओं के लिए किया गया यह आन्दोलन भावी स्वदेशी आन्दोलन की पूर्व पीठिका था जिसे प्रायः आधी शताब्दी बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में आरम्भ किया।

राजनीतिक चेतना के अभाव में भारतेन्दु युग का साहित्य समाज सुधार

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'सम्पादकीय', हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड १ अंक ४

जब तक यहां के पढ़े लिखे धनी लोग बैठे बैठे ब्याज खाना छोड़ के अपने रुपया को ऐसे रुजगार में न लगाऐंगे जिनका देश में सम्पूर्ण अभाव है जब तक यहां के देशी लोग हरेक रकम की कलें बना के उन सब चीजों को जिसके लिये आजकल हमको विदेशियों का मुंह ताकना पड़ता है यहां न बनायेंगे तब तक हम लोगों की कभी भी उन्नति न होगी।

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया में भाषण' हरिश्चन्द्र चन्द्रिका भाग १ संख्या ३ पृष्ठ १८

दियासलाई जैसी तुच्छ वस्तु भी वहीं विलायत में आती है। जरा अपने ही को देखो तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो अमरीका की बनी है जिस लंकिलाट का तुम्हारा अंगा है वह इंगलैंड का है फरासीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हो। और जरमनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है। यह तो वही मसल हुई कि एक बेफिकर मंगनी का कपड़ा पहिन कर किसी महफिल में गए कपड़े को पहिचान कर एक ने कहा अजी यह अंगा तो फलाने का है दूसरा बोला अजी टोपी भी फलाने की है तो उन्होंने हंसकर जवाब दिया घर की तो मूछैं ही मूछैं हैं हाय अफसोस तुम ऐसे हो गये कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। भाइयों अब तो नींद से चौंको परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो।

अभिव्यक्ति दी। × 'प्रेमघन' ने कांग्रेस के प्रतीक चिह्न 'चरखे' पर कविताएं लिखी जिनमें स्वदेशी प्रचार व स्वराज्य प्राप्ति की कामना मुखरित हुई + एक अन्य कविता में उन्होंने विदेशी कपड़ों की होली जलाने व भारतवासियों में एकता स्थापित करने का उल्लेख किया है। = 'ग्रामों के साथ हमारा कर्तव्य' — निबंध में प्रतापनारायण मिश्र ने राजनैतिक नेताओं का ध्यान नगरों को छोड़ गावों की ओर जाने के प्रति आकर्षित किया। उन्होंने 'धरती माता' ++ निबंध में खेती की उन्नति एवं 'धरती माता की पूजा' निबंध में वनों की रक्षा की आवश्यकता दर्शायी *।

भारतेन्दु युग के लेखकों का राजनीतिक दृष्टिकोण संकुचित नहीं था।

× प्रतापनारायण मिश्र 'ब्रेडला स्वागत' प्रताप लहरी पृ ११७
प अबही लों इंगलिशपुर की बड़ी सभा महं
मन लगाय नहीं सुनत सब हमरी चरचहु कहं
अबही लों हम याही हित सुर सुकृत मनावें
कबहुं कोंसिल महं निज प्रतिनिधि पठवन पावें

+ चल चल चरखा तू दिन रात
कात कात कर सूत मैनचिस्टर को कर दे मात
टेकुआ का सर साध अनुप रघुवर की लेकर तांत
छका दे लंकाशायर का कर बिलम्ब नित घात
तेरे चलने का चरखा सुनि यूरप भी अकुलात
ज्यों ज्यों तू चलता त्यों त्यों आता स्वराज्य नियरात
चल तू जिससे खाय दुखी भर पेट दाल भी भात
सस्ता शुद्ध स्वदेशी खद्दर पहिन छिपावे गात
हिन्दू मुसलिम जैन पारसी ईसाई सब जात
सुखी होंय हिय भरे प्रेमघन सकल भारती भ्रात
(प्रेमघन)

= ज्यों ज्यों चपप चरखा चलन
बसन व्यापारी विदेशी लखि विलखि कर मलन
बहिष्कृत होलिका बीच बसन विदेशी जलन
एकता सांचा सवारि स्वराज्य सिक्का ढलन
(प्रेमघन)

— विजयशंकर मल्ल (सपा) 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली पृ० १६७
++ वही पृष्ठ २६६
* वही पृ २६६

हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश के अतिरिक्त बंगाल, महाराष्ट्र आदि अन्य प्रांतों की चेतना से भी वे अवगत थे तथा उनसे प्रेरणा लिया करते थे। यही नहीं उनके सामने अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण भी रहता था। भारतेन्दु ने 'बलिया म भाषण में देशोन्नति के लिये विदेशों से भी प्रेरणा लेने की अपील की * तत्कालीन युग में रूस ने अफगानिस्तान मे सडक बनानी बनानी प्रारम्भ कर दी जिससे अंग्रेजों को भारत पर रूस के आक्रमण की आशंका होने लगी थी। प्रतापनारायण मिश्र व बालकृष्ण भट्ट प्रभृति लेखकों ने रूस क मन्तव्य का विरोध तो किया ही किन्तु इस अवसर पर आंग्ल शासन के विरुद्ध लिखने में भी नहीं चूके 'सरकार नियत करके मारे डालती है। रूसी भी मारें होंगे।' + बालकृष्ण भट्ट साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़नेवाले देशों की स्वतंत्रता के पक्ष में हिन्दी प्रदीप' लिखा। रूस और रूम के युद्ध के अवसर पर उन्होंने रूम के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए लिखा "रूसी लोग कडी हड्डी के समान हैं जो जार के गले मे उतरते ही गला फाड डालेगी और पेट में पहुंच आतें काट डालेगी।" % बर्मा के बिना किसी प्रतिरोध के अंग्रेजों को आत्म समर्पण कर देने पर भट्टजी ने बर्मा की जनता को उपालम्भ दिया = आयरलैंड के स्वाधीनता संग्राम में भट्टजी की सहानुभूति साम्राज्यवादी अंग्रेजों के विरुद्ध आयरलैंड की जनता के प्रति थी। × अस्तु देश मे राजनीति

---

* हरिश्चन्द्र चन्द्रिका भाग १ संख्या ३ पृष्ठ १८

अमरिकन अंगरेज पारसी आदि तुर्की ताजी सब सरपट दौडे जाते हैं सब के जी में यही है कि पाला हमीं पहले छूवें। इस समय हिन्दू काठियावाडी खाली खडे खडे टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको औरो को जाने दीजिये जापानी टट्टू को हाँकते हुए दौडते देख करके भी लाज नहीं आती।

+ विजयशंकर मल्ल (सपा) प्रतापनारायण ग्रंथा
'समझदार की मौत है' पृ० ६६

% 'हिन्दी प्रदीप' सितम्बर १८७७ पृ० १३

= वही १८८६ पृ० १४

ये ब्रह्मावाले मनुष्य हैं अथवा कुत्ता बिल्ली से भी हीन कोई क्षुद्र पशु हैं जो बिना जरा भी सींग पूछ हिलाये अंग्रेजी शासन के वशीभूत हो गये। हम लोग अपने ही को अति नीच हीन दुर्बल और निःसत्व समझे हुए थे किन्तु ये ब्रह्मा के निवासी हमसे भी अधिक निकृष्टस्थायी मालूम होते हैं।

× वही पृ० ८

आयरलैण्ड वह घोडा नहीं जिस पर इंगलैण्ड सवार होकर अपनी प्रभुता को संग्राम से उसको अपने वश में रक्खे। एक दिन वह सवार को अवश्यमेव पटक कर अपनी पीठ खाली करेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं।

चेतना का क्रमश किन्तु निश्चित विकास हो रहा था।

भारतेन्दु-युग की राजनीतिक विचारधारा म तीन मोड़ दिखाई देते हैं। इस युग के लेखकों ने सब से पहले तो आंग्ल शासन का स्वागत किया क्योंकि इससे शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना हुई। इस विचारधारा का दूसरा मोड़ राजभक्ति व देश भक्ति की सम्मिलित धारा है जब कि साहित्यकार ब्रिटिश शासन की सद्भावना म विश्वास रखते हुए अपने कष्टों व भावनाओं का निवेदन करते हैं। इस विचारधारा का अंतिम मोड़ आंग्ल शासकों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण व दमनपूर्ण नीति के विरोध करने के रूप म दिखाई देता है जिसका आरम्भ भारतेन्दु के समय म ही हो गया था तथा भारतेन्दु युग के अन्त म हिन्दी के साहित्यकारों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रेरणा लेनी आरम्भ की।

भारतेन्दु युग की अर्थ-नीति विदेशी शासन द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के विरोध पर आधारित थी। विदेशी माल पर आयात कर न लगाने भारत वासियों पर टैक्स लगाने, भारत रक्षा के नाम पर विदेशी युद्धों का खर्चा भारत पर लादने तथा देश के प्रमुख व्यवसायों पर आंग्ल व्यापारियों के एकाधिपत्य का इस युग के लेखकों ने विरोध किया। साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के साथ ही उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने तथा कल कारखाने खोल कर उद्योग बढ़ाने के सुझाव रूप म देश की आर्थिक उन्नति का मार्ग बताया।

द्विवेदी युग

राजनीतिक संघर्ष

भारतेन्दु युग म तत्कालीन युग की परिस्थितियों के प्रतिक्रिया स्वरूप देश भक्ति की भावना का विकास हो रहा था। द्विवेदी युग मे राजनीतिक चेतना विचारों तक ही सीमित नही रही वरन् उसने जन आन्दोलनों का रूप ले लिया। अत विदेशी शासन के दमन का चक्र भी अधिक तीव्र हो गया। बग भग आन्दोलन (१६ अक्टूबर १९०५) के समय वदे मातरम् के नारे पर रोक (१ नवम्बर १९०५) लोकमान्य तिलक को छ वर्ष का निर्वासन दण्ड (१९०८) सेडीशन मीटिंग्स एक्ट (१९०६), प्रेस एक्ट (१९१०) के द्वारा यह दमन तीव्रतर रूप ले रहा था। कांग्रेस ने केवल प्रस्ताव पास करने की नीति का परित्याग कर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी आन्दोलन एव राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम को अपनाया। हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया गया। सन् १९१६ मे श्रीमती एनी बेसेंट तथा लोकमान्य तिलक के होम रूल आन्दोलन की धूम थी। दमन की तीव्रता के परिणामस्वरूप कांग्रेस का एक दल वैधानिक सुधारों म विश्वास करता था। माटेग्यू चेम्सफोर्ड योजना (१९१८) के अनुसार भारतीयों को शासन व्यवस्था म कुछ अधिकार दिये गये परन्तु प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१९) की समाप्ति के

पश्चात् भारतवासियों की आशा के विपरीत रोलट एक्ट (१९१९) के रूप में शासकों का दमन चक्र और भी तीव्र हो गया। जलियावाला बाग के हत्याकांड के प्रतिक्रिया स्वरूप देश में सरकार के विरुद्ध असंतोष की लहर सी फैल गई। महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन (१९२०-२२) छेड़ा गया परन्तु असफल रहा। गांधीजी अभी देश के भावी आंदोलन (१९३०-३२) की तैयारी की प्रतीक्षा में ठहरे थे।

इस राजनीतिक उथल-पुथल से हट कर देश में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में एक भिन्न रूप में भी अनुभव किया गया। जिस पाश्चात्य सभ्यता का भारत में आगमन हुआ वह पूंजीवादी सभ्यता थी। भारत पर आर्थिक क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव की कहानी सामन्तवादी व्यवस्था के पूंजीवादी व्यवस्था में बदलने की कहानी है। आंग्ल शासन ने भारत में सामन्तवादी व्यवस्था को नष्ट नहीं किया वरन् किसानों के आर्थिक शोषण के लिये उसे अपने सहायक रूप में कायम रखा। इस प्रकार किसानों का देशी जागीरदारों व विदेशी शासकों द्वारा दुहरा शोषण किया जाने लगा। लगान का बोझ बढ़ जाने से किसान को महाजन से रुपया उधार लेकर उसे चुकाना पड़ता। रुपया चुकाने में असमर्थ होने पर किसान को बेदखल कर दिया जाता। जागीरदार, कारिंदा, महाजनों और पुलिस के शोषण की भट्टी में पिस कर किसान चूर हो रहा था। देश में औद्योगीकरण के साथ पूंजीवादी व्यवस्था पनप रही थी। भारतीय अर्थनीति का प्राचीन आधार घरेलू उद्योग धंधे नष्ट होगये तथा उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होने से पुराने सामाजिक संबंध टूटने लगे। ग्रामीण निवासी के श्रम का गौरव तथा कौटुम्बिकता का स्नेह शांति पूर्ण वातावरण नष्ट हो गये। बदले में पूंजीवादी प्रतिस्पर्द्धा प्रजातन्त्र शासन व्यवस्था के रूप में वैयक्तिक स्वतन्त्रता और श्रमिक वर्ग के आर्थिक शोषण का आरम्भ हुआ। देश में होनेवाले राजनीतिक आन्दोलन में निम्न मध्यमवर्ग ने अधिकतर सहयोग दिया। किसान आंदोलन व श्रमिक आन्दोलन स्वतन्त्र रूप में पनप रहे थे। आर्थिक क्षेत्र में अपने संगठन को अलग रखते हुए किसानों व श्रमिकों ने राजनीतिक आंदोलनों का साथ दिया।

अस्तु आलोच्य-काल में उपर्युक्त राजनीतिक आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप साहित्य में राजनीतिक आंदोलनों की अभिव्यक्ति, हिंदु-मुस्लिम एकता की भावना, जमींदारी प्रथा का विरोध, नवोदित औद्योगिक सभ्यता के प्रभावों आदि की प्रवृत्तियां पाई जाती हैं।

साम्राज्यवाद का विरोध

भारतेंदु-युग की तरह द्विवेदी-युग के लेखकों को भी भारत के आर्थिक शोषण अंग्रेजों की रंग भेद की नीति आदि विषय प्रेरित कर रहे थे।

बालमुकुन्द गुप्त द्वारा निर्मित 'शिव शम्भु के चिट्ठे तथा चिट्ठे और खत' (१६०८) पुस्तकों में सकलित निबंधों में साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण व दमन की तीव्र भर्त्सना की गयी है। 'आइरतमा के रात' (१६०८) में लेखक ने अंग्रेजों के शासक तथा व्यापारी दोनों साथ साथ होने पर व्यंग्य किया है। 'आशा का अन्त' में लेखक भारत को योग्य भूमि समझने के कारण अंग्रेजों के प्रति असन्तोष प्रकट करता है।

आर्थिक शोषण के अतिरिक्त अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी रंग-भेद की नीति भारतीयों के लिए अत्यधिक अपमानजनक थी। इस रंग-भेद की नीति के कारण अंग्रेज शासक भारतीयों से मिलना तक अपनी शान के विरुद्ध समझते थे। बालमुकुन्द गुप्त ने अत्यन्त ही क्षोभ के साथ लिखा कि ब्रजवासियों की तरह प्रजा इप्ण व उद्धव रूपी शासकों से मिलन भी नहीं पाती। जर्मनी के कैसर व रूस के जार जैसे तानाशाह भले ही अपनी प्रजा की बात सुन लें किन्तु अंग्रेज शासक भारतीयों को अपने पास फटकने भी नहीं देते। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' जैसे वैधानिकता में विश्वास करनेवाले लेखक ने भी दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों द्वारा प्रयुक्त होनेवाली 'रंगभेद' की नीति की भर्त्सना की। मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी 'स्वदेश-संगीत' रचना में 'अफ्रीका सत्याग्रह' कविता में रंगभेद की नीति का विरोध किया है।

आंग्ल जाति स्वयं को भारतीयों से श्रेष्ठ समझती थी अत उसे अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के झूठे तरीके भी अपनाने पड़े। अंग्रेजी शासकों ने "थ के प्रदर्शन में अपार धन व्यय किया जो तत्कालीन साहित्यकारों के क्षोभ का कारण बना। बालमुकुन्द गुप्त ने लार्ड कर्जन द्वारा 'विक्टोरिया मेमोरियल हाल तथा दिल्ली दरबार' में किये गये व्यय को 'कर्तव्य' के बदले प्रदर्शन बताया। उन्होंने इस प्रदर्शन की प्रवृत्ति की भर्त्सना की तथा अंग्रेजों से किसी भी प्रकार की आशा को दुराशा मात्र बताया। आलोच्य काल के अधिकांश लेखकों का अंग्रेजों की 'पितृ तुल्य' शासन पद्धति में विश्वास नहीं रहा तथा 'स्वराज्य' के लिए वे विगत युग की अपेक्षा अब अधिक आशावादी बन गये।

बंग भंग आंदोलन की अभिव्यक्ति

भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन की प्रथम महत्वपूर्ण घटना बंग भंग आन्दोलन थी। बंग भंग आन्दोलन का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव प्रतिफलित नहीं हुआ। वस्तुत युग की मूर्धन्य मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के समान अन्य पत्रिकाएं व लेखक राजनीति से प्राय दूर रहते थे अथवा राजभक्ति का पोषण भी करते थे किन्तु बालमुकुन्द गुप्त बंगाल की राजधानी कलकत्ता से 'भारत मित्र' का सम्पादन कर रहे थे। उनकी आंखों के सामने बंग भंग आंदोलन उठ रहा था। उठा ही नहीं इतना शक्तिशाली बन गया कि पांच वर्ष पश्चात् इंग्लैण्ड के सम्राट के राज्यारोहण के अवसर पर किये गये 'दिल्ली दरबार' में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपनी भूल सुधार कर जनता की मांग को स्वीकार करना पड़ा तथा बंगाल के विच्छेद की

आज्ञा वापस ली गई। तब स्वाभाविक था कि बालमुकन्द गुप्त के लेखों मे राजनीतिक आन्दोलन की आकांक्षाएं तरंगायित हुई। बंगाल के विभाजन को उन्होंने बंग-देश पर आरह रखना बतलाया। बंकिम के 'वन्दे मातरम्' गीत की अनुगूंज सम्पूर्ण देश म व्याप्त हो गयी थी। (+)

हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रयत्न

आलोच्य-काल मे स्वातन्त्र्य आन्दोलन की प्रमुख प्रवृत्ति हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना थी। विगत-युग (भारतेन्दु युग, म सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्यकारो में मुस्लिम विरोध की भावना होते हुए भी उन्होंने राजनीति की दृष्टि से हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना को प्रश्रय दिया था।

आलोच्य-काल के हिन्दी साहित्यकारों मे बालमुकुन्द गुप्त ने सब प्रथम हिन्दु मुस्लिम एकता की राजनीतिक आवश्यकता को पहचाना तथा उसे पूर्णतया अंगीकार किया। बालमुकुन्द गुप्त की रचनाओं म मुसलमानों के प्रति कहीं भी विद्वेष की भावना नहीं है। मुसलमानी राज्यकाल मे हिन्दुओं पर अत्याचार हुए इस तथ्य को भुलाया तो नहीं जा सकता था किन्तु, बालमुकुन्द गुप्त को उस सबध में भी मौन ही अभिप्रेत है। ×

(+) बालमुकन्द गुप्त शिव शम्भु के चिट्ठे'

'आपके (लाड कर्जन) एक इशारे से इस देश की शिक्षा पायमाल हो गई स्वाधीनता उड़ गयी। बंग देश के सिर पर आरह रखा गया। यह बंग-विच्छेद बंग का विच्छेद नहीं है। बंग-निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए वरञ्च और युक्त हो गये। जिन्होंने गत १६ अक्तूबर का दृश्य देखा था वह समझ सकते हैं कि बंग-देश या भारतवर्ष मे नहीं पृथ्वी भर में यह अपूर्व दृश्य था। आर्य सन्तान उस दिन अपने प्राचीन वेष में विचरण करती थी। बंग भूमि ऋषि-मुनियों के समय की आर्य भूमि बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्ति ने उसको उस दिन एक राखी में बांध दिया था। बहुत काल के पश्चात् भारत-सन्तान को होश हुआ कि भारत की मिट्टी वन्दना के योग्य है। इसी से वह एक स्वर से 'वन्दे मातरम्' कह कर चिल्ला उठे। बंगाल के टुकड़े नहीं हुए वरन् भारत के अन्यान्य टुकड़े भी बंग देश से आकर चिपट जाते हैं।

(×) बालमुकन्द गुप्त 'शाइस्ताखां का खत'

यह कायदा है कि दूसरी कौम की हुकूमत ही को लोग जुल्म से बढ़कर जुल्म समझते हैं। इससे हिन्दु हमारी हुकूमत को उस जमाने में बुरा समझते हों तो एक मामूली बात है। तो भी मैं तुम्हारे जानने को कहता हूं कि हम

आलोच्य काल में लिखे गये यह ऐतिहासिक आख्यान किस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में आयोजकों की प्रेरणा के साधन बन कर आते हैं यह गुरु गोविन्दसिंह की बन्दा बैरागी के प्रति कही गयी उक्ति में दृष्टव्य है। शिकार करते समय बाण के छोड़े हुए बाण से एक गर्भिणी हरिणी आहत होकर प्राण त्याग देती है। मरती हुई हरिणी की करुणापूर्ण दृष्टि को देख कर बन्दा का हृदय द्रवित हो उठता है एवं आत्मग्लानि से पीड़ित होकर वह संसार से विरक्त हो संन्यासी बनने को तत्पर होता है। तभी गुरु गोविन्दसिंह की उद्बोधक वाणी उसके जीवन मार्ग को बदल देती है। संन्यास लेने के बदले वह देश की जनता पर होनेवाले अत्याचारों का प्रतिकार करने का प्रण लेता है

हरिणी पर तो पड़ी तुम्हारी
करुणा दृष्टि, शोक की वृष्टि
पर जिस पर वह पड़ी हुई थी
पड़ी न उस धरणी पर दृष्टि
वह भी स्वर्गादपि गरीयसी
जननी जन्म भूमि चिरधाम
देखा उसकी ओर न तुमने
था बेचारी का क्या हाल।
देखो अब भी देख रही वह
पड़ी तुम्हारा वह मुह जोह
मुझे उसी की-सी लगती है
उस हरिणी की आंखें ओह

मुझे उबारो मुझे बचाओ
तुम्हें पुकार रही मां भ्रान्त
और पुत्र होकर उसके तुम
खोज रहे हो यह एकान्त !

उपर्युक्त पंक्तियों में अभिव्यंजित देश भक्ति की भावना स्वयं रचनाकार के युग की विह्वल पुकार थी। आत्मोत्सर्ग के लिए ऐतिहासिक आख्यान के माध्यम से देश प्रेमियों को यह आह्वान था। राष्ट्रीय आन्दोलन में हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना के साथ साहित्य में भी वही भावना अधिकाधिक मुखरित होने लगी

मन्दिर में था चांद चमकता मस्जिद में मुरली की तान
मक्का हो चाहे वृन्दावन आपस में होते कुरबान
सूखी रोटी दोनों खाते पीते थे गंगा का जल
मानो मन धोने को पाया, उसने अहा उसी दिन बल

गुरु गोविन्द तुम्हारे बच्चे जब भी तन चुनवाते हैं
पथ से विचलित न हो अहा गोली से मारे जाते हैं

गुरु गोविन्द के बच्चों का जीवित ही दीवार में चुनवाया जाना घटना न होकर शुद्ध प्रतीक बना गया है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की गोलियों के शिकार होने-वाले हिन्दु तथा मुसलमान सत्याग्रही यहा बलिदानी के रूप में देखे गये हैं।

हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना आगे चल कर हरिकृष्ण प्रेमी के मुगलकालीन इतिहास पर आधारित नाटकों मे सब से प्रभावशाली रूप म प्रकट हुई। प्रेमीजी के 'रक्षा बन्धन' (१९३४) में हुमायू के इस कथन म, चलिए महात्मा आपको बाकायदा मेवाड के तख्त पर बठा कर अपने सर से राखी का कज उतार लू। पूरा कज तो उस दिन उतरेगा जब सारी मुस्लिम कौम की बहनें हिन्दु भाइयों के हाथों में बेहिचक राखी बाधने की हिम्मत करेंगी", हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना प्रकट हुई है। प्रेमीजी के स्वप्न भग' (१९४०) नाटक में दारा औरगजेब के विपरीत हिन्दु मुस्लिम एकता का समथक है। दारा की मत्यु के रूप में उस एकता का स्वप्न भी भग हो जाता है।

बग भग आदोलन द्वारा राष्ट्रीय जागृति का जो स्फुलिंग अकुरित हुआ उसे प्रज्वलित न होने देने के उद्देश्य से विदेशी शासन द्वारा राजनीतिक जागृति का दमन किया जा रहा था। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस में नरम व गरम दल के राजनीतिक मतभेद प्रस्तुत थे। यद्यपि जनता में ब्रिटिश राज्य के प्रति असतोष था तथापि नेतागण सब मिला कर 'मिलती जुलती नीति' से ही दशोन्नति की कामना कर रहे थे। इसका प्रभाव तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर भी पडा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिए भेजे गये कुछ राष्ट्रीय गीतो को यह कह कर लौटा दिया कि राजनीतिक स्थिति उपयुक्त नहीं है। + मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'मुसद्दस' के अनुरूप भारत भारती' (१९१२) की रचना क प्रकाशन के सम्बन्ध में द्विवेदीजी द्वारा राजा रामपालसिंह से लेखक की कानून स रक्षा कराने की जुम्मा लेने की माग की गई थी। मैथिलीशरण गुप्त को द्विवेदीजी ने एक अन्य पत्र में लिखा

> कोई बात समय और सरकार के विरुद्ध न रहे। इशारा भी न रहे। कल नया कानून बना है। कानून क्या मार्शल ला जैसी कानन है फासी तक की सजा है। ×

+ महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रावली (स० बजनार्यसिंह विनोद) भारतीय विद्यापीठ काशी पृ ८२

× वही पृष्ठ १३०

परन्तु यह आश्चर्य की बात नही है कि परतन्त्रता के युग में भी राष्ट्र-कवि के द्वारा विदेशी शासन की प्रशंसा की गई है। 'भारत भारती' (१६१२) के सम्बन्ध में गुप्तजी ने लिखा है 'मान लीजिये वह कल की वस्तु थी और बासी हो गयी। मैं यह भी मानता हू कि साधारण रोटी पक्वान की भांति स्थिर नहीं रह सकती। परन्तु एक बार की भूख शान्त करके ही क्या वह कृत कृत्य नही हो जाती" + 'भारत भारती' मे ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा की गयी फिर भी उसमे दबे स्वरो मे निम्न उक्तियो मे ब्रिटिश सत्ता का उपहास भी किया गया

'मि शक्त देख श्रृगाल घायल सिंह पर चढ़ने लगे', बस पास पैसा चाहिये फिर कुछ असुविधा है नही आदि।

कांग्रेस की नम दल नीति का प्रभाव

१६१४ के पश्चात् प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने पर अंग्रेजो ने भारतीयों को राजनीतिक अधिकारों का आश्वासन दिया। इसके बाद हिंदी साहित्य म अंग्रेजो के प्रति जातीय घृणा की भावना नही पाई जाती।

यदि एक ओर ब्रिटिश शासन के दमन को तीव्रता से अनुभव किया जा रहा था तो दूसरी ओर कुछ ऐसे कवि भी थ जो देश की वधानिक प्रगति म विश्वास करते थे। राय देवीप्रसाद पूर्ण वधानिक तरीको से राजनीतिक अधिकारो को प्राप्त करने की विचारधारा के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। उनका कहना था

'मेरे मत से, मेरे क्या बड़े बड़े नीतिवेत्ताओ के मत से एक्सट्रीमिस्ट (गरम) दल की प्रणाली से देश का भला नही हो सकता किन्तु उससे बचा ही राजा और प्रजा म विरोध बढ़ता है।'

एनी बेसेंट के 'ईश्वर सम्राट और देश के लिये' भाव का ही पूर्णजी की निम्न पंक्तियो म अनुवाद हुआ

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म
राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म
सच्ची सहित सुकर्म देश की भक्ति चाहिए

अंग्रेजो से मिल जुल कर चलने की नीति के वे पक्षपाती थे। मिंटो-मार्ले सुधार जिसके द्वारा कौंसिल मे भारतीय सदस्यो की वृद्धि हुई के अवसर पर पूर्णजी ने उसे 'सुखद चांदनी' की उपमा दी। अंग्रेजी राज्य की न्यामतों का बखान करते हुए वे सरकार को बदनाम करनेवालो की भर्त्सना करते है। राय देवीप्रसाद पूर्ण भारत म कल की उन्नति के समर्थक थे। वे तो उन देशी वस्तुओ का उपयोग भी हानिप्रद समझते थे जो कल [illegible] न बनी हो

(+) मैथिलीशरण गुप्त 'साहित्य संदेश' अगस्त १६४१
पृष्ठ ५३५

दियासलाई, एनक, बाजे, मोटरकार
बाईसिकल, करघे दवा रेल तार हथियार
रेल तार हथियार विविध बिजली के आले
धूम्रपोत, हल, पत्र, अमित औजार मसाले
बनें यहा और सर्प नहीं तो सुन लो भाई
दशोपन को अभी लगा दो दियासलाई
कल है बल उपयोग का कल उन्नति की मूल
कल की महिमा भूलना है अति भारी भूल

तथापि यह समझना भूल होगी कि राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' मे देश भक्ति की भावना नहीं थी। उनकी देशभक्ति दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो पर किये जाने वाले अत्याचार के विरुद्ध निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है

'यदि दक्षिण अफ्रीका के गोरों को भारतवर्ष को प्रतिवर्ष कोयला भेजने का गर्व है और उसी के बल पर वे हमारे ऊपर अत्याचार कर रहे हैं तो हमारा भारत सरकार से कहना है कि हमे ऐसा घृणित कोयला दरकार नहीं अपने कोयले से वही गोरे अपना मुंह काला कर लें।"

अस्तु विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध असंतोष बराबर प्रकट किया जा रहा था। 'तिलक' कविता मे जिसे 'एक भारतीय आत्मा' ने तिलक के स्वर्गवास पर लिखा असहयोग आन्दोलन के पूर्व की स्थिति का भारत मा के मुंह से काव्यपूर्ण वर्णन कराया गया है

मैं 'मुंह बन्दी' का हार लिये
'मत लिखो' कठिन कंकण धारे
'भारत रक्षा' के शूलों की
पावों मे बेडी झनकारे
'हथियार न लो' की हथकडियां
रौलट का हिय म घाव लिये
डायर से अपने लाल कटा
कहती थी आंचल लाल किये
यो टूट पडे गे ✝

ये देवत्तमा की स्वार्थी रहे तिलक से भारत मे ही असहयोग आन्दोलन के युग मे बदने का अनुराग करते हैं। एक भारतीय आत्मा' की कविता म देश के

✝ माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' 'हिमकिरीटिनी' सरस्वती प्रकाशन मंदिर, जार्ज टाउन, इलाहाबाद तृतीय संस्करण सं० २००५ पृष्ठ ७९

लिए बलिदान की भावना प्रबल हिलोरें लेती है। 'हिमकिरीटिनी' की सभी कविताओं में देश की परतन्त्रता के कारण संताप व्यक्त है। 'एक भारतीय आत्मा' की राष्ट्रीय कविताएं प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई हैं। अंग्रेजी राज्य में सरकारी नौकरी करते हुए देश भक्ति की बातें करनेवालों के प्रति एक गहरा व्यंग्य निम्न पंक्तियों में है

म्यान में तिर हो
चरण तो चाटता है
भौंक से क्या सिंह
को वह डांटता है
रोटियां खाली लो
साहस खा चुका है
प्राणी हो पर प्राण से
वह जा चुका है ✢

१९२० में असहयोग आन्दोलन के समय एक ओर हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रयत्न सफलीभूत हो गया था यद्यपि बाद में पुनः वैमनस्य बढ़ने लगा, दूसरी ओर महात्मा गांधी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में राजनीतिक चेतना फैल गई। इससे तत्कालीन युग में सत्याग्रही बलिदानियों के अदम्य उत्साह का अंकन किया जाने लगा। भारतेन्दु के साहित्य में राजनीतिक परवशता के विरुद्ध क्षोभ की भावना थी किन्तु द्विवेदी युग में बलिदान के उत्साह और स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा अभिव्यंजित हुई है। रामचरित उपाध्याय एवं 'त्रिशूल' की कविताओं में यह उत्साह प्रभूत है। शत्रु को मारने की नहीं किन्तु सत्य पर मरने की प्रेरणा से इन कविताओं में पुण्य ओज पाया जाता है। बलिदान की यह भावना भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के विशिष्ट अहिंसक रूप का परिणाम थी। गांधीजी के प्रभूत प्रभाव एवं असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर अछूतोद्धार, नारी उत्थान कृषकों की दशा में सुधार आदि प्रवृत्तियां तत्कालीन साहित्य की उपजीव्य बनी।

छायावाद युग

गांधीवाद का सैद्धान्तिक पक्ष

हिन्दी की राष्ट्रीय कविता को सब से अधिक महात्मा गांधी के व्यक्तित्व एवं गांधीवादी विचारधारा ने प्रभावित किया। यद्यपि गांधीवाद व्यापक व्याख्या की अपेक्षा रखता है किन्तु संक्षेप में हम कह सकते हैं कि राजनीति में विश्वस्त वृत्ति (ट्रस्टीशिप), अधिकार प्राप्ति के लिये अहिंसात्मक सत्याग्रह तथा अर्थ नीति की दृष्टि से खादी व चर्खा उसके प्रतीक हैं। एवं इन सब पर एक नैतिक आवरण

✢ माखनलाल चतुर्वेदी, वही पृष्ठ १०४

उसे विशिष्ठ सज्ञा प्रदान करता है । हिन्दी कविता मे हम गाधीवाद का यह सुस्पष्ट रूप पाते हैं ।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य म गाधीवाद का प्रभाव प्रतिफलित हुआ है । बारडोली सत्याग्रह के सम्बन्ध मे उनकी निम्न पक्तिया अहिंसा की गाधीवाद के अनुकूल व्याख्या प्रस्तुत करती हैं

ओ बारडोली ! ओ बारडोली !
ओ भारत की थर्मापोली
नही, नही फिर भी सशस्त्र थी
ग्रीक सनिको की टोली
उठी इसलिए नहीं तू जो बुरा है
उसे नष्ट कर देने को
तुली हुई है किन्तु बुरे को
स्वय भला कर लेने को

ग्रीक स्वातत्र्य-युद्ध थर्मापोली में स्वतन्त्रता के आदश को लेकर लडा गया था । बारडोली का सत्याग्रह अहिंसक था । बुरे को भला बनाने की नीति गाधीजी के हृदय परिवतन सिद्धा त की द्योतक है । अन्यत्र भी गुप्तजी ने पापी पर करुणा परन्तु पाप का प्रतिकार करने की नीति की पुष्टि की है

पापी का उपकार करो हा
पापो का प्रतिकार करो

आग्रह करके सदा सत्य का
जहा कहीं हो शोध करो
डरो कभी न प्रकट करने मे
जो अनुभव हो बोध करो
उत्पीडन अन्याय कही हो
किन्तु विरोधी पर भी अपने
करुणा करो न क्रोध करो

गाधीवादी विचारधारा के अनुसार धनवानो का धन उनके पास गरीबो की थाती रूप म है तथा उन्हें उसका गरीबो के उत्थान के लिये उपयोग करना चाहिये । गांधीजी का राजनीतिक आदश रामराज्य था । गांधीजी के 'रामराज्य' की कल्पना के अनुसार गुप्तजी ने भी राम–राज्य की प्रजा की थाती रूप मे कल्पना की है

राज्य है प्रिये, भोग या भार

रक्तपात हम नहीं करेंगे
भेलेंगे सब स्वयं अहिंसक मरण करेंगे

क्योंकि

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल

सतत विजयिनी बनती है। मानो गांधी-युग में हिंसात्मक विद्रोह पर यह अहिंसात्मक आन्दोलन की विजय घोषणा है। 'उन्मुक्त' का प्रकाशन यद्यपि सन् १६४० में हुआ किन्तु उसकी रचना का आरम्भ प्रथम महायुद्ध के समय ही हो गया था। जब उसका प्रकाशन हुआ उस समय संसार द्वितीय महायुद्ध की लपटों में जल रहा था। यह स्पष्ट हो गया था, हिंसा की विजय केवल कहलाने को है। मैथिली शरण गुप्त ने 'उन्मुक्त' की स्थापना में लिखा

"संसार में इस समय जो हिंसा कांड हो रहा है, जिस प्रकार निरीह नागरिकों की हत्या की जा रही है, और विज्ञान का दुरुपयोग करके जैसा पैशाचिक प्रलय मचाया जा रहा है, उसे देख कर जिसने अपने मारक रोग की उपेक्षा करके उसके विरुद्ध अपने पाठकों की सहानुभूति प्रबुद्ध करने का प्रयत्न किया है, मेरे निकट स्वयं सफलता से उसके उद्योग का मूल्य अधिक है।"

आर्थिक संघर्ष

जमींदार प्रथा का विरोध

साम्राज्यवादी विरोधी भावना के अतिरिक्त आलोच्य काल में दलित वर्ग की भावनाओं की अभिव्यक्ति भी राजनीतिक विचारधारा का अभिन्न अंग थी। भारतेन्दु-युग में आर्थिक शोषण के साम्राज्यवादी पहलू धन के विदेश जाने पर लेखकों ने अपना क्षोभ प्रकट किया था, किन्तु द्विवेदी-युग में लेखकों के सामने शोषण का यह रूप अधिक सुस्पष्ट होकर आया। देश प्रेम का केवल भावात्मक रूप ही नहीं रहा वरन् आर्थिक समस्याओं पर लेखकों की दृष्टि केन्द्रित होने लगी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा "यदि देश भक्ति का अर्थ देश में रहनेवालों की भक्ति करने से है तो देशवासियों में अधिक संख्या किसानों की है। परन्तु देश की उन्नति के लिए अब तक जो प्रयत्न किया गया है और इस समय जो किया जा रहा है उससे कितने का सम्बन्ध किसानों से है? हर साल जो यह कांग्रेस होती है उसने आज तक किसानों पर कितनी भक्ति प्रकट की है?" X किसानों की अवस्था को द्विवेदीजी ने इन शब्दों में दर्शाया है, 'भारतवर्ष में कृषकों की दुरवस्था और निर्धनता के कई कारण हैं। एक तो यहां किसानों में शिक्षा का अभाव है। दूसरे यहाँ की गवर्नमेंट ने देश की कुछ अंशों को छोड़ कर अन्यत्र सभी कहीं भूमि को अपने अधिकार में कर रक्खा है। वही उसकी मालिक बन बैठी है। अतएव उसने भूमि के लगान और मालगुजारी के सम्बन्ध में जो कानून बनाये हैं

X म० प्र० द्विवेदी 'विचार विमर्श' पृ०४०२

वे बहुत ही कड़े हैं। फिर जहां कहीं तल्लुकेदारियां हैं वहां किसानों के सुभीते का कम ताल्लुकेदारों के सुभीते का अधिक ख्याल रक्खा गया है। यही सब कारण है जो किसानों को पनपने नहीं देते।"—

रूस की अक्तूबर १६१७ की क्रान्ति की सफलता ने भी आर्थिक समस्याओं की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। प्रथम विश्व युद्ध के उत्तरकाल में रूसी क्रान्ति की सफलता ने पराधीन देशों की गरीब जनता में नवीन प्रेरणा का संचार किया। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' (१६२२) का नवयुवक किसान पात्र बलराज कहता है

तुम लोग तो ऐसी हंसी उड़ाते हो जैसे काश्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों का ही राज्य है। वह जो चाहते हैं, करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी (बलगेरिया) है। वहां अभी हाल की बात है काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है। और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज्य करती है।"

प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' (१६२२) उपन्यास में किसान और जमींदार की समस्या राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण करती है। लखनपुर गांव जमींदार व किसानों के अधिकार-युद्ध की पृष्ठभूमि है। जमींदार का चपरासी किसानों से घी मांगता है तब सभी तो घी देने को राजी हो जाते हैं परन्तु मनोहर इस अतिरिक्त कर को देने से मना कर देता है। मनोहर का लड़का बलराज इस सम्बन्ध में और भी उग्र विचारों का है। वह इस अतिरिक्त बेगार का विरोध करता है। शोषक वर्ग किसानों की चुनौती पर बौखला उठता है। गांव का मुआयना करने को आनेवाले सरकारी अफसर व उनके अनुयायी सारे गांव पर अत्याचार करते हैं। सुक्खू चौधरी को झूठे जुर्म में फंसा कर जेल भेज दिया जाता है। दुखरन भगत को पुलिस कोड़े लगाती है क्योंकि वह बेगार में टेनिस के लान की घास छीलने से इंकार कर देता है। सारा गांव उस समय भड़क उठता है जब जमींदार का कारिन्दा गौसखां मनोहर की पत्नी को कलंकित व अपमानित करता है। मनोहर कारिन्दे को कत्ल कर देता है और स्वयं आत्म हत्या कर लेता है।

उपन्यास में प्रेमशंकर सुधारक नेता के रूप में चित्रित किया गया है जो कि किसानों को जमींदार के विरुद्ध मोर्चा संगठित करने को प्रेरित करता है। मायाशंकर समाजवादी विचारधारा में विश्वास करता है। वह अपने क्रूर जमींदार चाचा को हटाकर स्वयं कार्य संभालता है। प्रेमचन्द ने जमींदारों का

— महावीर प्रसाद द्विवेदी 'लेखाञ्जली' पृष्ठ ११६

हृदय परिवर्तन दिखाया है। आदर्श कृषि फार्म की स्थापना की जाती है और गांव भर की सुख शांति लौट आती है। प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' में जमींदार-वर्ग का हृदय परिवर्तन कर आदर्शवादी हल प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम (१९२२) व रंगभूमि' (१९२४) में देशी राजाओं की प्रथा को साम्राज्यवाद का पोषक बतलाया। जमींदारी का विरोध साम्राज्यवाद के विरोध के अंग रूप में ही चित्रित किया गया है। जमींदार अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दलाल हैं यह प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर के शब्दों से स्पष्ट है

'आपस में (किसानों में) विरोध क्यों है? दुर्व्यवस्थाओं के कारण जिनकी इस वर्तमान शासन ने सृष्टि की है। परस्पर प्रेम और विश्वास क्यों नहीं? इसलिए कि यह शासन इन सद्भावों को अपने लिए घातक समझता है और उसे पनपने नहीं देता। इस परस्पर विरोध का सबसे दुःखजनक फल क्या है? भूमि का क्रमशः अत्यन्त अल्प भागों में विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि।'

यह जमींदारी देशद्रोह करने के पुरस्कार स्वरूप भी प्रदान की जाती थी। प्रेमाश्रम' (१९२२) में राय कमलानन्द मानशंकर को अपने रियासत प्राप्त करने की कहानी बतलाते हुए कहते हैं कि वास्तव में यह उनकी जायदाद नहीं है। राजद्रोह के समय उनके पिता द्वारा अंग्रेजों को सहायता देने के कारण यह उन्हें प्रदान की गयी थी। प्रेमचन्द देशी राजाओं एवं जमींदारों को 'कठपुतली' रूप में चित्रित करते हैं। विनय राजस्थान में एक ऐसे राजा से मिलता है जो शिवजी का परमभक्त है परन्तु वह शिवजी से भी अधिक अंग्रेज रेजीडेन्ट से डरता है। मायाशंकर के शब्दों में प्रेमशंकर ने निर्भीक रूप में जमींदारी प्रथा को अनुपयोगी ठहराते हुए उसके अन्त की कामना की है

"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की है या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है, इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में ले या इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा की पसीने की कमाई को विलास और विषय भोग में उड़ाए। इस निरंकुश प्राणियों से प्रजा को जितनी जल्द मुक्ति हो उनका भार प्रजा के सिर से जितना ही जल्द दूर हो उतना ही अच्छा है।'

प्रेमचन्द का 'रंगभूमि उपन्यास प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था के नष्ट होने की करुण एवं औद्योगिक सभ्यता के विकास की निर्मम कहानी है। प्रेमचन्द ने औद्यो

गिक सम्यता के दुष्परिणामों को दर्शाया है। जॉन सेवक पाण्डेपुर गाव की एक बजर जमीन पर अपनी सिगरेट की फक्ट्री बनाना चाहता है। यह जमीन अधे भिखारी सूरदास की है जो उसे बेचना नही चाहता। सूरदास की मनोवृत्ति सामन्त-युग के उस ग्रामीण की मनोवृत्ति है जो अपनी जमीन से प्रेम करता है। इस जमीन पर वह अपने पुरखो के लिए स्मारक भी बनाना चाहता है। जमीन गाव के मवेशियो के लिए चारागाह का काम देती है। इसके विपरीत जान सेवक गाव म फक्ट्री खुल जाने पर गाव के निवासियो को आर्थिक-लाभ होने का प्रलोभन देता है। सूरदास इसका तीव्र विरोध करता है और फक्ट्री खुलने पर गाव में फैलने वाली बुराइयो व नतिक पतन की आशका प्रकट करता है। सूरदास क जमीन बचने का विरोध करने पर भी वह उसस छीन ली जाती है और इसम राजकीय अधिकारी जान सवक का पक्ष लेते हैं। अन्त म गाव के गरीबो की झोपडिया भी मिल मजदूरो के मकान बनाने के लिए खाली करवा ली जाती है। सूरदास अपनी झोपडी खाली करने से इ कार कर देता है। तब पुलिस बुलाई जाती है और भीड पर गालिया बरसाई जाती है।

आग्ल साम्राज्यवाद के विरुद्ध गाधीजी ने सत्याग्रह क अस्त्र को अपनाया था। प्रेमचन्द के 'रगभूमि' का नायक अधा भिखारी सूरदास सत्याग्रही वीर के सदृश हमारे सामने आता है। वह अन्याय व अनीति को नही सह सकता अन पाडेपुर गाव की सारी जनता अधे सूरे के साथ है जब कि अग्रेज शासक, भारतीय राजा जमीदार सूरदास के विरोधी स्वार्थी जान सवक का साथ देते हैं। सूरदास 'रगभूमि' का वह खिलाडी है जिसके माथ पर कभी शिकन नही आई, जिसन कभी हिम्मत नही हारी, जिसन कभी कदम पीछे नही हटाया जीता तो प्रसन्न चित्त रहा हारा तो जीतने वालो से कभी कीना नही किया कभी धाधली नही की, प्रतिद्वन्द्वी पर छिप कर चोट नहीं की, सूरदास की हार म भी जीत का स्वर है

'हम हारे तो क्या, मदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, धाधली तो नही की। फिर खेलेंग जरा दम ले लेन दो हार-हार कर तुम्ही से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, अवश्य होगी।'== फिर खेलेंगे जरा दम लेने दो' श ो में १६२० क असहयोग आन्दोलन म असफल होने पर भी उस आशा का स्वर निहित है जिससे देश भविष्य म पुन नय आन्दोलनो के लिए तत्पर हुआ।

कम भमि' में प्रेमचन्द ने राजनीतिक आदालनो को सचेष्ट अभिव्यक्ति की है। अछूतोद्धार, मन्दिर प्रवेश, मजदूरो के लिए मकान बनव न को म्युनिसिपलटी के विरुद्ध आन्दोलन, किसाना की लगान बन्दी का आ दोलन आदि कथा के उपजीव्य हैं। अ तिम आन्दोलन को उपयास म सबसे अधिक उभारा गया है। किसाना

== प्रेमच द 'रगभूमि' भारतीय प्रकाशनालय पृष्ठ ५३२

की दरिद्रता और उत्साह का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। उपन्यास की परिसमाप्ति समझौते के लिए बैठाई गई कमेटी के रूप मे होती है। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचन्द किसानो के संघर्ष का आदर्शवादी हल प्रस्तुत करते हैं। रंगभूमि' का 'सूरदास भावक सत्याग्रही है 'कर्मभूमि' का अमरकान्त आन्दोलनो मे भाग लेने वाला योद्धा है किन्तु गोदान का किसान होरी' यथार्थ जीवन की कठिनाइयो को झेलनेवाला तिल तिल कष्टो से झूझनेवाला निरीह सजीव प्राणी है। इन उपन्यासो मे प्रेमचन्द ने पश्चिमी सभ्यता की देन पूंजीवाद के उस विघटनकारी प्रभाव को दर्शाया है जिससे ग्रामीण सभ्यता नष्ट हो जाती है और किसान नयी सभ्यता मे मजदूर बन कर शोषण की चक्की मे पिसने को विवश हो जाता है।

अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे प्रेमचन्द साम्यवाद की ओर आकर्षित होने लगे थे। महाजनी सभ्यता' निबन्ध मे उन्होंने लिखा—"अब एक नयी सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है जिसने इस नारकीय महाजनवाद या पूंजीवाद की जड़ खोद कर फेंक दी उसके राज्य मे अब एक पूंजीपति लाखो मजदूरो का खून पीकर मोटा नही हो सकता। धन्य है वह सभ्यता जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त कर रही है और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी। यह सभ्यता अमुक देश की समाज-रचना अथवा धर्म मजहब से मेल नही खाती या उस वातावरण के अनुकूल नही है, यह तर्क नितान्त असगत है।' +

प्रगतिवादी युग

सामयिक राजनीति

भारतीय राजनीति मे यदि एक ओर आदर्शपरक गाधीवाद तथा तदनुकूल काग्रेस आन्दोलनो का सार्वभौम प्रभाव था तो दूसरी ओर युग की परिस्थितियों के अनुरूप आर्थिक सकट की अनुभूति ने उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी। सन् १६१७ मे रूसी क्रान्ति की सफलता ने विश्व के सभी देशो के शोषितो मे नवीन आशा का सचार किया। सन् १६२७ मे भारत मे भी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हो गई। देश मे मजदूर आन्दोलन बल पकड़ने लगे। सन् १६३५ के बाद जब कि भारत मे प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई हिन्दी साहित्य मे प्रगतिवादी विचारधारा पनपने लगी।

भारत मे सम-सामयिक राजनीति की प्रमुख प्रवृत्तिया भारत मे आतकवाद गाधीवाद तथा साम्यवाद रही हैं। प्रगतिवादी साहित्य मे प्रथम दो प्रवृत्तिया का खण्डन तथा अन्तिम प्रवृत्ति का पोषण पाया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास-क्रम मे भी इन तीनों प्रवृत्तिया का क्रमागत विकास हुआ।

प्रगतिवादी आतकवाद से हट कर अपनी रचनाओं मे आर्थिक राजनतिक

+ 'हंस' सितम्बर १६३६

प्रश्नों का अधिक महत्त्व देते हैं। यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड' का नायक हरीश आतंकवादी के रूप में अपना राजनैतिक जीवन आरम्भ करता है किन्तु, वह अनुभव करने लगता है कि स्वराज्य प्राप्ति का यह पथ सही नहीं है। इससे जनता का सम्पर्क नहीं रहता। अतः देश की जनता का शोषण समाप्त कर उसके लिए आत्म निर्णय का अधिकार प्राप्त करना स्वराज्य का यह सही रूप प्राप्त नहीं किया जा सकता। आतंकवादी परिणाम के बदले शहादत को ही साध्य मान बैठता है। रूसी-क्रान्ति का उदाहरण देकर हरीश बतलाता है कि वहां भी आतंकवादियों को इसी कारण सफलता नहीं मिल सकी तथा लेनिन ने क्रान्तिकारियों को सर्वसाधारण जनता के प्रश्नों को लेकर जनता में चेतना भरने के लिए कहा था।* उपन्यास समाप्ति के निकट हम आतंकवादी दल को लक्ष्य भ्रष्ट छिन्न भिन्न, उसके नेता 'दादा' को उदासीन तथा साम्यवादी दल के सदस्य के रूप में हरीश को मिल की मजदूरों की हड़ताल सफल कराने के लिए प्रयत्नशील पाते हैं। 'दादा' मानो अपने दल की नहीं सिद्धान्त की भी पराजय मानते हुए कहता है समय बदल गया है कितनी जल्दी! ऐसा जान पड़ता है नदी को पार करने के लिए हमने नाव ठेलनी शुरू की थी परन्तु नाव के नीचे से जल की धारा ही हट गई और हम आ टिके हैं सूखी रेती पर। जल की धारा दूसरी ओर घूम गई है ... हरि ठीक कहता है, बजाय जल की धारा को घुमा कर नाव के नीचे लाने के नाव को ही उस ओर घसीटना चाहिए मेरा मतलब है जनता की जल धारा से।'+ अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास में शेखर के पिता अपने रहस्यमय क्रान्तिकारी जीवन की बातें कहते हुए आतंकवाद को व्यर्थ ठहराते हैं 'इसलिए नहीं कि यह टटीहरी का प्रयास है अधिक इसलिए कि घृणा का प्रचार कभी अच्छा फल नहीं ला सकता।"× शेखर के मन में पिता के अनुभव के विरुद्ध दर्जनों प्रवाद उठते हैं जो उसके, क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के लिए स्वाभाविक ही है पर भविष्य में शेखर अनुभव करता है कि किसी के विरुद्ध लड़ना

---

* यशपाल दादा कामरेड' विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४८ पृ० ६५

रूस में भी पहले स्वतन्त्रता के आंदोलन ने आतंकवादी कार्य का रूप लिया था उस समय रूस में जनता का आतंकवादियों के कार्यों से कोई संबंध नहीं था। लेनिन ने रूस के क्रान्तिकारियों की इस कमजोरी को समझा। उसने क्रान्तिकारियों को अपनी शक्ति राजनीतिक हत्याओं में नष्ट न कर सब साधारण जनता के जीवन के प्रश्नों को लेकर जनता में चेतना और अधिकार की भावना पैदा करने के लिए कहा ।

+ यशपाल, वही पृ० २०५

× अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' भाग २, सरस्वती प्रेस बनारस पृष्ठ १३६

पर्याप्त नहीं है 'किसी के लिए' लड़ना भी जरूरी है और पाठक अनुमान करता है शेखर का विद्रोह भविष्य मे विनाश के लिए नहीं वरन् नव निर्माण के लिए होना चाहिए।

सद्धांतिक दृष्टि से प्रगतिवादियो ने चाहे आतंकवाद का विरोध किया हो किन्तु आतंकवादियो के व्यक्तित्व के प्रति उनमे एक प्रकार की श्रद्धा पायी जाती है और उनके मानवीय गुणो के प्रति आस्था। इसका कारण सम्भवत यह है कि प्रगतिवादियो मे से कुछ यथा यशपाल अज्ञेय आदि स्वय एक समय आतंकवादी रहे हैं। अज्ञेय ने 'कोठरी की बात' कहानी सग्रह मे क्रान्तिकारियो के जीवन चित्रो को बड़े ही कलात्मक व सवेदनपूर्ण ढग से अंकित किया है। 'शेखर एक जीवनी' के दादा और 'दादा कामरेड' के दादा की मानव सहानुभूति की भावनाए व्यापक और विशाल हैं।

गाधीवादी विचारधारा का भी प्रगतिवादी साहित्य मे विरोध पाया जाता है। गाधीवाद के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा व सत्याग्रह हैं जिनका प्रगतिवादियो ने खण्डन किया है तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के मार्ग मे उन्हे बाधक ही बताया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे उपन्यासकार का अहिंसा, सत्याग्रह व हृदय-परिवर्तन मे विश्वास था किन्तु बाद मे उनका इन सिद्धान्तो पर विश्वास उठ गया। यशपाल के 'देशद्रोही' उपन्यास मे शिवनाथ व खन्ना एक जुलूस के पास मे खड़े लोगो पर लाठी व गाली चलते देख कर क्षुब्ध हो उठते हैं—'इससे क्या फायदा!' उनका अहिंसा मे विश्वास नहीं और वे आतंकवादी बन जाते हैं यद्यपि शीघ्र ही उनके आतंकपूर्ण कार्यों का अन्त हो जाता है। अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास मे हिंसा व अहिंसा का व्यापक विवेचन किया गया है। अनुशासन हीनता के दण्ड स्वरूप जब शेखर कालेज के दो विद्यार्थी वालंटियरों को कांग्रेस कैम्प से बाहर निकाल देता है और इस सबध मे शेखर को गुजारा चलाने की सलाह दी जाती है तथा उसके कृत्य (विद्यार्थियों को निकालना) को हिंसा कहा जाता है तो शेखर अहिंसा पर एक हल्का व्यग्य करता है आपके प्रश्न का उत्तर भी हिंसा ही होगा। जेल मे पुन शेखर विद्याभूषण तथा बाबा मदनसिंह के साथ हिंसा व अहिंसा की विवेचना मे उलझता है। विद्याभूषण के मन मे आदर्श के लिए की जाने वाली हिंसा बुरी नहीं वरन् वह धर्म है और आदर्श ? जो भी भावना मानव और मानव के भेद को मिटाने की, उसकी सीमायें और बधनों को अधिकाधिक प्रसारित करने की चेष्टा करती है। इसलिए योरूप मे राष्ट्रीयता के नाम पर होनेवाली हिंसा पाप है क्योंकि वह मानव व मानव के भेद को नहीं मिटाती और देश के अपमान को भुलाने के लिए सी आई डी को पीटकर जेल जाना अहिंसा है। नासूर को काटना हिंसा नहीं क्योंकि उसमे चिकित्सक का स्वार्थ नहीं है। ईश्वर का सत्य कन्ता है। पर हिंसा से होना है क्या ? यह नकारात्मक है। चाहे नकारात्मक हो विद्याभूषण कहता है वह आवश्यक तो है बिना नासूर

करते शुश्रूषा करो ? और मन्मथसिंह अहिंसा को नवीन रूप मे व्याख्या करते हैं। अहिंसा मे भी हिंसा भाव रहता है अन्यथा अहिंसा न-कुछ है। उनके अनुसार, आत्म पीडन व आत्म बलिदान में भी एक प्रकार से रक्तपान निहित है। अहिंसा आत्म-पीडक होने के कारण रक्तपात से पूर्णतया शून्य नही है। तब रक्त जो गिरता है वह हिंसात्मक है या अहिंसात्मक इसकी कसौटी मेरा या दूसरे का रक्त नही हो सकता वरन् इसके लिए सामाजिक कसौटी का होना आवश्यक है। बाबा की दृष्टि म अहिंसा तभी सफल हो सकती है जब कि वह आक्रामक रूप ग्रहण कर ले यथा, सारी दुनिया का बहिष्कार अपना ही बहिष्कार हो जाता है, उसे ब्रिटेन के विरुद्ध केन्द्रित करने पर ही, ब्रिटेन के विरुद्ध आक्रमण का भाव लाने पर ही वह सफल हो सकती है। अत सामाजिक कर्तव्य के पालन के लिए की गयी हिंसा भी अहिंसा ही है। इस प्रकार प्रगतिवादी गाधीवादियों की तरह आततायी के हृदय-परिवर्तन म नही वरन् उसके विरुद्ध आक्रमण भाव म विश्वास रखते हैं। उनके मत मे सद्धान्तिक दृष्टि से अहिंसा एक सुन्दर आदर्श प्रतीत हो सकता है किन्तु वह व्यावहारिक नही है। भारत-भूषण अग्रवाल 'एक व्यग्य' मे लिखते हैं

खाना खाकर कमरे म बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मन हिटलर बेटा
बडा मूर्ख है, जो लडता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी
के कारण क्षण-भगुर ही तो है रे ! यह सब वैभव
धन ! अत लगेगा हाथ न कुछ दो दिन का मेला
लिखू एक खत हो जा गाधीजी का चेला
वे तुमको बतलायेंगे आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता
कुछ भी तो है नही धरा दुनिया के अन्दर
छत पर से पत्नी चिल्लाई'—दौडो बन्दर'+

अहिंसा के समान सत्याग्रह का भाव भी प्रगतिवादियो को मान्य नहीं है। वे अनशन को व्यर्थ ही नहीं वरन् प्रभाव ग्रस्त श्रेणी के लिये धोखे की टट्टी मानते हैं। 'देशद्रोही' उपन्यास म मजदूरो की हडताल के समय कांग्रेसी नेता बद्री बाबू का आमरण अनशन जहा एक ओर अपना प्रभाव बढाने के लिए है वहाँ दूसरी ओर मजदूरो की शक्ति रोकने का भी काम करता है। विशेषत इसलिए कि बद्री बाबू मिल मालिक से दो हजार रुपये मजदूरो की सहायता के नाम पर ले आते हैं और मिल मालिक बद्री बाबू को मजदूरों का नेता मान कर ही समझौता करने के लिए तयार होते हैं। कम्युनिष्ट प्रभाव स पूर्ण मजदूर सभा के नेताओ को वे

+ अज्ञेय (सपा) 'तार सप्तक,' प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली १९४३ पृष्ठ ३६

पच रूप म स्वीकार नही करते। असहयोग भा ।नन श भी प्रगतिवा पू जीपति वग के अधिकारो की रक्षा के लिए मध्यम वग के हाथ म नेतृत्व रखने का साधन समझते हैं।

तत्कालिक राजनीतिक घटनाओं म विचारधाराओं म तीव्र भेद रेखा खीचने वाली महत्वपूर्ण घटना द्वितीय महायुद्ध है। इस युद्ध ने प्रजातन्त्रवादी एव फासिस्ट शक्तियो के बीच सघष का अन्तराष्ट्रीय रूप धारण कर लिया था। युद्ध के समय भारत की स्थिति विचित्र थी। उसके सामने एक ओर तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिवादी राजनीति म फासिस्टवाद या प्रजातन्त्र म से एक को चुनना था तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी ब्रिटेन से अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने की इच्छा थी। राष्ट्रवादियो ने देश की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन छेड दिया किन्तु, प्रगतिवादी साहित्यकार उन राजनैतिक पार्टियो की विचारधाराओं म अधिक प्रभावित थे जो अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से अधिक महत्व देती थी। अज्ञेय के नदी के द्वीप उपन्यास म भुवन गौरा को गहरी वन्ना स पत्र लिखता है जिसम यूरोप म युद्ध के प्रारम्भ को सस्कृति का आह्वान बतलाता हैं यह युद्ध किस लिए लडा जा रहा है सहसा नही कह दिया जा सकता। ठीक स्वाधीनता के लिए ही है यह कह देना भोलापन होगा क्योकि स्वाधीनता के साथ कितने इतर स्वाथ भी तो मिले हुए हैं, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध मे नही तो इस युद्ध मे प्रारम्भ करके हमे सस्कृति के उन मानो के लिए सघष करना है जिनको स्वय हमारी इस सस्कृति ने जोखम में डाल दिया' ।+ यशपाल युद्ध को राजनैतिक दृष्टि स देखते हैं। 'देशद्रोही' म डा० खन्ना जो छद्म वेश मे डा० वर्मा के नाम से कानपुर मे रहता है युद्ध के प्रति साम्यवादी नीति को ही इन शब्दो मे व्यक्त करता है समाजवाद का आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय है। उसकी विरोधी और समथक शक्तिया अन्तर्राष्ट्रीय हैं। भारत के समाजवादी समाजवाद के विरुद्ध या पक्ष मे अन्तर्राष्ट्रीय सघष की उपेक्षा नही कर सकते। भारत शोषित पीडित और पराधीन है। ससार के शोषित, पीडित और पराधीनों की विजय मे उसकी मुक्ति है। इस समय ससार की शोषित जनता का हित मित्र राष्ट्रो के साथ मिल कर जमनी और जापान के नाजीवाद का विरोध करने म है। यह भारत के लिए आत्मरक्षा का प्रश्न है। नाजीवाद की सफलता भारत को सदा के लिए साम्राज्य वादियो का शिकार बना देगी। × युद्धकाल म अगस्त आन्दोलन के अतिरिक्त

+ अज्ञेय–'नदी के द्वीप' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली १९५१ पृष्ठ १०१

× यशपाल 'देश द्रोही' विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा सस्करण १९४६ पृष्ठ १६५

राष्ट्रीय जीवन मे एक नवीन परिस्थिति नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जेल से भाग कर जापान मे आजाद हिन्द फौज बनाने तथा जापान की सहायता से भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयत्न रूप मे मिलती है। स्पष्ट ही प्रगतिवादी फासिस्ट शक्ति जापान के विरोधी और युद्ध मे ब्रिटेन की सहायता के पक्षपाती थे। अत जापान व आजाद हिन्द फौज के भारतीय स्वतन्त्रता में सहायक बनने के भाव के प्रति प्रगतिवादियों ने विरोध प्रकट किया है। बंगाल के अकाल के समय लिखी डा० रामविलास शर्मा की कविता 'गुरुदेव की पुण्यभूमि' में सुभाष व आजाद हिन्द फौज की ओर संकेत करते हुए कवि ने जापान की ओर मुंह जोहने को कायरता बताया है तथा बंगाल की रक्षा की अपील की है

कायर वह जो नेता बनता था चला गया
मिल गया लुटेरों की सेना में, कायर
उस नीच नगूथी को न मिले वह रवि ठाकुर का
प्राणों से भी प्यारा शान्ति निकेतन *

देशद्रोही' में राजाराम के मुख राजनैतिक चर्चा में भारत पर जापानी आक्रमण को निरापद समझने की भूल का डा० खन्ना प्रतिवाद करते है लेकिन यही तो भूल है कि जापान अंग्रेजो से कुश्ती लड़ने की बहादुरी दिखाने के लिए हमारे देश पर आक्रमण कर रहा है? क्या साहब चीन पर जापान ने क्यो आक्रमण किया? इण्डोचाइना कोरिया, मंगोलिया, मंचूरिया वह क्या हड़प गया? सम्पूर्ण एशिया को अपने साम्राज्य में लपटने की महत्वकांक्षा जापान की बहुत पुरानी है।' (ॐ) 'मनुष्य के रूप' में एक स्थल पर यशपाल ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के साथ जापानी अफसर का नृशंस व्यवहार दर्शाया है। अर्दली व धर्मसिंह खाद्य सामग्री लेने के लिए जापानी अफसर के पास जाते है तो एक बोरी में काली मिर्च देख अफसर पूछता है 'क्या काम आती है? यह बताये जाने पर कि खाने के, अफसर चावल की बोरी के बदले काली मिर्च की बोरी ही थोप देता है जिसे न ले जाते बन रहा था न छोड़ते। अस्तु प्रगतिवादी युग की यह सामयिक राजनीति साहित्य में उस व्यापक मार्क्सवादी राजनीतिक आर्थिक आन्दोलन का फल थी जिसकी विवेचना हम आगे 'प्रगतिवाद' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत करेंगे।

---

* अज्ञेय (सपा) तार सप्तक', प्रतीक प्रकाशन दिल्ली १९४३ पृष्ठ ६७
(ॐ) यशपाल, 'देशद्रोही' विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा सस्करण १९४६ पृष्ठ ३०४

पाचवा–अध्याय

छायावाद-रहस्यवाद : काव्य-चेतना का प्रसार

पृष्ठभूमि

भारतीय राजनीति की दृष्टि से दो महायुद्धो के बीच का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस काल म महात्मा गांधी के नेतृत्व मे सन् १६२० और सन् १६३० के अहिंसात्मक आन्दोलन हुए। राजनीतिक अधिकारो की प्राप्ति की दृष्टि से यह आन्दोलन सफल नही कहे जा सकते परन्तु इनसे देश की जनता मे अभूतपूर्व जागृति का सचार हुआ। आन्दोलना की असफलता के कारण निराशा की भावना का व्याप्त होना स्वाभाविक था। सन् १६३० के पश्चात् यह निराशा और भी गहरी हो गयी। एक ओर आन्दोलनों की असफलता के कारण निराशा का वातावरण था तथा दूसरी ओर राजनीति के क्षेत्र म उग्रता के लिये अवसर शेष नही रहा। अत काव्य का अन्तर्मुखी हो जाना स्वाभाविक था। इसी समय विश्व विद्यालयो म अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन को अधिकाधिक स्थान मिलने लगा। अंग्रेजी रोमांटिक काव्य मे व्यक्त मानसिक स्थिति भी बहुत अंशों म हिन्दी के साहित्यकारा की मनोदशा के अनुकूल ठहरी। अत जीवन से असम्पृक्त होकर नवीन परिस्थितियो के अनुकूल छायावादी कविता का प्रेरणा-स्रोत अंग्रेजी रोमांटिक काव्य व अन्य पाश्चात्य विचारधाराएं बनी। +

\+ भगवती चरण वर्मा 'मधुकण' (भूमिका) ओझा बन्धु आश्रम प्रयाग सन् १६३२ पृ० १८

हिन्दी कविता में प्रथम बार भाव परिवर्तन देश की राजनीतिक हलचल के समय देखा गया है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि छायावाद की नींव देश में राजनीतिक जागृति के समय म पडी है। भारतवर्ष की वीरता मे देश भक्ति तथा राष्ट्रीयता का भाव नया है और राजनीतिक जागृति के समय यह भाव पाश्चात्य देशो स लिया गया तथा हिन्दी साहित्य म राजनीतिक कविताएं अन्य पाश्चात्य साहित्यो की राजनीतिक कविताओ के आधार पर लिखी गयीं। इसके बाद भाव परिवर्तन का रास्ता साफ हो गया और राजनीतिक ही नहीं वरन अन्य विषयो की कविताओं स भी नये भाव लिये गये। यह ध्यान में रखना पडेगा कि इस समय तक हिन्दी म कविता लिखनेवालों में अंग्रेजी

छायावादी कविता निकट यथार्थ से हट कर लिखी गई कविता है। जब कलाकार यथार्थ से पराङ मुख होता है तो यह स्वाभाविक है कि वह सौंदर्य स्रष्टा बनेगा, उसकी कल्पना प्रखर हो उठेगी तथा वह प्रकृति में सौन्दर्य के दर्शन करेगा। यथार्थ से पराङ्मुख होने पर यह भी सम्भव है कि सामाजिक चेतना के अभाव में कला स्रष्टा केवल निष्प्राण एवं आदर्शों का अनुकरण मात्र करने लगे। परन्तु कलाकार में जिस सीमा तक सामाजिक असंतोष होगा उस सीमा तक यथार्थ जीवन में क्रान्ति न कर सकने के कारण वह साहित्यिक रूढ़ियों में क्रान्ति करेगा, यह क्रान्ति केवल रूपात्मक न होकर विषयगत भी होगी। परन्तु यथार्थ जगत् की पराजय की छाप उस पर पड़े बिना नहीं रह सकती। इसी दृष्टि से साहित्यकार स्वप्नदृष्टा होता है छायावादी कविता के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं वह आधी यथार्थ और आधी स्वप्न है। वस्तुतः उसके इस विशिष्ट रूप का कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ ही थीं। छायावादी कविता के रूप में भारतीय समाज की आत्मा ने मध्ययुगीन संकीर्णताओं के आबद्ध वातावरण से निकल कर नवीन प्रकाश में उन्मुक्त साँस ली है। यद्यपि यह युग राजनीतिक पराधीनता का युग है परन्तु साहित्य में हम उस जागरण के दर्शन करते हैं जो किसी भी सुषुप्त समाज की जागृति के लिए आवश्यक होता है। श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में "आकाश में मेघ बन होनेवाले क्रान्ति जिस क्रान्ति से उमड़े थे, छायावाद भी ठीक उसी क्रान्ति का पुतला था। जिस क्रान्तिकारी भावना के कारण बाह्य जीवन में राजनीतिक दुरवस्थाओं की अनुभूतियाँ तीव्र होती जा रही थीं, वही भावना छायावाद का रूप धारण कर खड़ी हुई थी और मनुष्य की मनोदशा, विचार और सोचने की प्रणाली में विप्लव की सृष्टि कर रही थी।"

अस्तु, पाश्चात्य प्रभाव की दृष्टि से छायावादी कविता पर आंग्ल रोमांटिक काव्य का प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ संक्षेप में आंग्ल रोमांटिक काव्य की परिस्थितियों एवं विचारों का परिचय देना उचित होगा।

आंग्ल रोमांटिक काव्य

इतिहास

अठारहवीं सदी के मध्य में, विशेष कर फ्रांस जर्मनी और इंग्लैण्ड में यूनानी और यूरोपीय कवियों के आदर्शों पर काव्य रचना की जा रही थी। साहित्य के

पढ़े लिखे लोग कम मिलते थे पर राष्ट्रीयता की लहर ने उन हिन्दी भाषा भाषियों को हिन्दी साहित्य के प्रति अपने कर्तव्य का ध्यान दिला दिया जो अंग्रेजी पढ़ कर हिन्दी को गवाँरों की भाषा समझने लगे थे। अब साहित्य में ऐसे लोगों ने प्रवेश किया जो अंग्रेजी पढ़े थे और जो अंग्रेजी साहित्य से यथेष्ट प्रभावित थे। उन लोगों ने पाश्चात्य भावों को अपना कर उनका समावेश हिन्दी साहित्य में किया और यहीं हम आधुनिक छायावाद की कविता के विकास के मूल तत्व को देखते हैं।

इतिहास मे वह न य श्रेणिक युग (Neo classical Age) था। पर तु इस य क काव्य को श्रेणिक काय बतलाना उचित नही है क्योंकि इसस प्राचीन युग नो कवियो और न य श्रेणिक का य की उपलब्धियो म समानता समझने का भ्रम उत्पन्न हो सकता है। आगस्टन युग (Augustan Age) के रोमीय कवियों ने पेरीक्लीज युग (Pericles Age) के महान् यूनानी दु खान्त नाटककारो के आदर्शों पर अपनी रचनाए लिखी थी। इन रोमीय कवियो का फ्रासिसी कवियो ने अनुकरण किया तथा फ्रास के न य श्रेणिक का य रचयिताओं का इ ग्लण्ड व जमनी के कवि अनुकरण कर रहे थे। इस प्रकार दुहरे तिहरे अनुकरण म मूल की प्रेरणा का अ श भी शेष नही रहा। यूनानी कवियो ने जिस सहज प्रेरणावश काव्य की रचना की थी वह प्रेरणा इन अनुकर्त्ताओं को प्राप्त नहीं थी और न उनकी तरह वे अपने भावो और विचारो की सहज अभिव्यक्ति कर पाते थे। प्रथम श्रेणी के काव्य की सृष्टि के लिए जिस उदात्त भावना व कला-कुशलता की आवश्यकता होती है उसका न य श्रेणिक का य युग मे सवथा अभाव था। प्राचीन यूनानी कवियों की गहन अनुभूति तथा मूर्त्ति विधायिनी कल्पना के अभाव म वे केवल छन्द भाषा और व अलकारो के नीरस व निष्प्राण अनुकरण द्वारा कृत्रिम काव्य सृष्टि कर रहे थे।

विज्ञान व पूजीवाद के उदय के साथ नय नगरो एव नागरिक सभ्यता का निर्माण हो रहा था। विचारो के क्षत्र म हाब्स (Hobbes) ने राजा के ईश्वर प्रदत्त अधिकारों का विरोध किया तथा धार्मिक व्यवस्था के लिए प्राकृतिक विधान को उचित ठहराया। चच का प्रभाव क्षीण होने लगा। लाक (Locke) ने आत्मा की अमरता के बदले विचारो को शारीरिक व भौतिक अनुभवो पर आधारित ठहराया। विज्ञान व भौतिक उन्नति की आशावादिता मे उन परिस्थितियो से अनभिज्ञ जो अपने ग भ म अमेरिका का स्वातत्र्य युद्ध एव 'फ्रासिसी क्रान्ति' को लिए थी नवोदित पू जीपति एव ह्रासो मुख साम त वग भ्रष्टाचार एव अथलोलुपता म लीन थ।

इन परिस्थितियो मे न य श्रेणिक युग Neo Classical Ag के कवियो न नागरिक जीवन को अपने का य का विषय बनाया। नगर का जीवन तथा नगर की समस्याओ की अभिव्यक्ति श्रेष्ठ साहित्य का गुण समझी जाने लगीं। साहित्य मनोरजन की सामग्री मान लिया गया। इस युग की कविता म मौलिकता उदात्त भावना, मूर्त्तिविधायिनी कला आदि के लिए स्थान नहीं था। केवल उक्ति वचित्र्य जिसके लिए स्वाभाविक प्रतिभा की अपेक्षा अभ्यास की आवश्यकता समझी जाती थी काव्य का प्रधान गुण माना गया।

फ्रास न य श्रे णिक का य का के द्र स्थल था। यद्यपि फ्रासिसी राज्य क्रान्ति से पूव रूसो और वाल्तेयर क विचारों तथा उसके पश्चात् साहित्य धारा के रूप म फ्रास म न य श्रे णिक काव्य के आदर्शों क विरोध म रोमाटिक का य धारा प्रवाहित

हुई परन्तु उसका उद्गम ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी में हो गया था जब दक्षिणी फ्रांस में लैटिन भाषा के बदले रोमनिक या रोमांस भाषा में साहित्य रचना होने लगी। अठारहवीं सदी के अंत में जर्मनी में फ्रांस के नव्य श्रेणिक काव्य के विरुद्ध प्रत्यावर्तन हुआ जिसके मूल में जर्मनी में राष्ट्रीय भावना की जागृति थी। उस समय जर्मनी के शिक्षित वर्ग की बोलचाल व साहित्य की भाषा फ्रेंच थी तथा जर्मन भाषा को हेय दृष्टि से देखा जाता था। राष्ट्रीय भावना की जागृति ने जर्मनी में फ्रांस के राजनीतिक व सांस्कृतिक प्रभावों से मुक्त होने की भावना जागृत की।

इंगलैण्ड में यद्यपि नव्य श्रेणिक काव्य के विरुद्ध रोमांटिक आन्दोलन फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो की विचारधारा से अनुप्रेरित होकर आरम्भ हुआ किन्तु, इससे पूर्व के आंग्ल साहित्यकारों शेक्सपीयर (Shakespeare) व स्काट (Scott) की रचनाओं से जर्मन रोमांटिक आन्दोलन ने प्रेरणा ली। इंगलैंड से प्रेरणा लेने में जर्मन रोमांटिक आन्दोलन के मूल में राष्ट्रीय भावना ही प्रधान थी। जर्मन रोमांटिक काव्य में प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रति भी आकर्षण पाया जाता है।

इंगलैण्ड में रोमांटिक काव्य की प्रवृत्तियां वर्ड्सवर्थ व कॉलरिज से पूर्व भी पायी जाती हैं। बर्न्स (Burns) की कविता में शैली की तरह क्रांति की भावना वर्ड्सवर्थ की तरह सरल भाषा का प्रमाण मिलता है। ब्लेक (Blake) के गीतों में वर्ड्सवर्थ के समान शैशव की सरलता के प्रति पवित्र भावना का आभास दिखाई देता है। ग्रे (Gray) की एलेजी (Elegy) में उस अवसाद का स्वर है जो अधिकांश रोमांटिक कविता में मंद शिथिल गूंज लिये व्याप्त है।

अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का आरम्भ सन् १७९८ में वर्ड्सवर्थ व कालरिज के 'लिरिकल बैलड्स' (Lyrical Ballads) के प्रकाशन से माना जाता है जिसमें अठारहवीं सदी के नव्य श्रेणिक काव्य के विरुद्ध विषय व अभिव्यंजना दोनों की दृष्टि से सचेष्ट अलगाव पाया जाता है। वर्ड्सवर्थ एवं कालरिज नवीन रोमांटिक काव्य के प्रारम्भिक कवि थे। शैली, कीट्स व बायरन इनके पश्चात्वर्ती महत्वपूर्ण कवि हैं। वर्ड्सवर्थ ने 'लिरिकल बैलेड्स' में काव्य में काव्य के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये

(१) सामान्य लोगों के जीवन की साधारण घटनाओं और अवस्थाओं का वर्णन।

(२) कविता में बोलचाल की भाषा का प्रयोग।

(३) वर्णन को मनोरंजक बनाने के लिये उसे कल्पना से अनुरंजित करना।

(४) घटनाओं और अवस्थाओं के इन वर्णनों में प्रकृति के आधारभूत नियमों को अभिव्यक्त करना।

(५) विचारों और भावों को सहज उद्रेक के रूप में व्यक्त करना।

इन कविताओं में प्रस्तावित प्रमुख लक्ष्य सामान्य जीवन की घटनाओं और स्थितियों को चुनना और सम्पूर्णतया, जहां तक सम्भव हो वास्तविक जीवन में लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा का प्रयोग करना एवं साथ ही उन पर अद्भुत कल्पना का रंग चढ़ाना जिससे कि साधारण वस्तुएं मन की आंखों के सामने असाधारण रूप में प्रकट हो तथा सब से बढ़ कर इन घटनाओं व स्थितियों में हमारी प्रकृति के मूलभूत स्वरूप को सत्यतापूर्वक उद्घाटित कर उन्हें मनोरंजक बनाना मुख्यतया मन की उद्वेगपूर्ण अवस्था में उद्बुद्ध भावों को गुलम्बद्ध रूप में व्यक्त करना है। +

यह उद्देश्य अठारहवीं सदी के नव्यश्रेण्यवादी काव्य के उद्देश्यों बाह्य सुडौलता बौद्धिकता व नागरिक जीवन की अभिव्यक्ति के उद्देश्यों के विरोध में थे।

रूसो (Rousseau) की विचारधारा प्रकृति दर्शन

काव्य में सामान्य लोगों के जीवन को चित्रित करने की प्रवृत्ति में रूसो (Rousseau) के मानववाद का प्रभाव था। ईसाई मत के अनुसार जब शैतान ने सृष्टा के विरुद्ध विद्रोह किया और एडन के उपवन से आदिम नारी ईव को ईश्वर द्वारा वर्जित फल खाने के लिए प्रेरित किया तथा ईव के कहने से आदिम पुरुष आदम ने भी उसे चक्खा तब ईश्वर ने क्रुद्ध होकर आदम और ईव को एडन के उपवन से निकाल दिया और उन्हें मृत्युलोक के जीवन का अभिशाप दिया। एडन के उपवन से वर्जित फल खाना पहला पाप था और उसी पाप के कारण मनुष्य संसार में जन्म लेता है। ईसाई धर्म के अनुसार मनुष्य केवल चर्च की सहायता

+ Wordsworth Lyrical Ballads

The Principal object then proposed in these poems was to choose incidents and situations from common life and to relate or describe them throughout as far as possible in a selection of Language really used by men and at the same time to throw over them a certain colouring of imagination whereby ordinary things should be presented to the mind in an unusual aspect and further and above all to make these incidents and situations interesting by tracing in them truly though not ostentatiously, the primary laws of our nature chiefly as far as regards the manner in which we associate ideas in a state of excitement

से आन्मि पाप के दोष मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हो सकता है। ईसाई धर्म की इस मा यता क विपरीत रूसो ने घोषित किया कि मनुष्य जन्म से अच्छा होता परन्तु, सामाजिक संस्थायें उसे बुरा बना देती हैं। रूसो के अनुसार बुराई को नष्ट करने का उपाय आधुनिक सभ्यता का परित्याग करना है। मनुष्य प्रकृतत अच्छा होता है और सभ्यता से अछूता मनुष्य अपनी क्षुधा शात करने के बाद शेष प्रकृति व अपने सहयोगियो के साथ शातिपूर्ण समझौता कर लेता है। रूसो ने सोशल कान्ट्रेक्ट (Social contract) पुस्तक म राजा के 'ईश्वर प्रदत्त अधिकार' का विरोध किया। उसके अनुसार मनुष्य जन्म लेने के समय स्वतन्त्र होता है परन्तु वह प्रत्यक स्थान पर बेड़ियों मे जकड़ा है। मशीन युग की सभ्यता और आधुनिक शहरी जीवन के प्रति यह एक प्रतिक्रिया थी। साहित्य म इसका प्रभाव प्रकृति प्रेम, शैशव के आदर्शीकरण, शहरी सभ्यता से दूर रहनेवाले ग्रामीणो के प्रति सहानुभूति आदि रूपो म दिखाई दता है। प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण वृहत्तर प्राकृतिक दमन का ही अग था जिसने आधुनिक सश्लिष्ट सभ्यता की बुराइयों से दूर प्रकृति के सम्पर्क म अकृत्रिम जीवन व्यतीत करने की लालसा उत्पन्न की। रूसो के 'द कन्फेशन आव फेथ आव द सोवियार्ड विकार (The confession of faith of a savoyard Vicar) का नायक विकार अपने कार्यों मे बुद्धि की अपेक्षा भावना से अधिक सचालित होता है। अग्रेजी रोमाटिक कविता पर रूसो के इन विचारो का प्रभाव पाया जाता है' जैसा कि लिरिकल बैलेड्स (Lyrical Ballads) से नइ त वडसवथ क उपरोक्त अश से प्रकट होता है अग्रेजी रोमाटिक कवियो का प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण है। वे प्रकृत जीवन क पक्षपाती हैं तथा प्रकृति उन्हे दिव्य सन्देश देती है। शिशु जीवन व ग्रामीण जीवन के प्रति उन्हें विशेष प्रेम है तथा वे उसमे पवित्र जीवन की झाकी पाते हैं।

फ्रांसिसी क्रांति की प्रतिक्रिया

रोमाटिक कवि, रूसो की विचारधारा के अतिरिक्त स्वय फ्रांसिसी क्रान्ति से भी प्रभावित हुए थे। वडसवथ व कालरिज दोनों ने आरम्भ मे क्रान्ति का स्वागत किया। परतु क्रान्तिकाल म हिंसा क रक्तपात की अति ने उन्हें क्रान्ति से विमुख कर दिया। क्रान्ति की हिंसात्मक परिणति से क्षुब्ध होकर वर्ड्सवथ ने प्रकृति चित्रण मे तथा कॉलरिज ने अपनी कविता में अलौकिक तत्व का समावेश कर क्रान्ति सम्बन्धी अपने स्वप्ना और निराशा का भुला दिया परन्तु शेली क्रान्ति का महान् गायक था। गिलेटीन' (Guillotine) से हुई हत्याओं को शेली साधारण समझता हो यह बात नहीं थी और न समीपस्थ दुघटना के बाद उसे महान् भविष्य निर्माण की ही आशा थी। तथापि उसकी कल्पना स्थूल न होकर अत्यधिक स्वप्निल (airy) थी। वह वास्तविक घटना की अपेक्षा विचारों से प्रेरित होता था। क्रान्ति की वास्तविक घटना का जसे उसके लिए अस्तित्व ही नहीं

की भावना में वह एक नवीन आदर्श लोक की कल्पना करता था। इसी के आदर्शवाद को प्लेटोनिज्म (Platonism) की संज्ञा दी गई है। उसका विद्रोह शास्त्रीय विचारों पर आधारित है जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से सम्बन्धित नहीं। शैली सौन्दर्य प्रेमी था। उसके अनुसार कविता जगत के पदार्थों के आवरण को हटा देती है जिससे समीपस्थ पदार्थ को छू कर मनुष्य सौन्दर्य का पान करने लगता है।×

प्रवृत्तियां

मानवतावादी विद्रोह

'प्रोमेथियस अनबाउन्ड' में शैली ने जिस कल्पना लोक का निर्माण किया है उसमें प्रेम ही मनुष्य पर शासन करनेवाली शक्ति है। कवि ने मानवता को प्रेम के द्वारा राज्य में पुनर्जीवित होते हुए दर्शाया है। धरती का कण कण पुलकायमान हो उठता है व सभी व्यक्ति हर्ष से उल्लसित हो उठते हैं। शैली ने "मास्क आव एनार्की" (Mask of Anarchy) में श्रमिकों पर किए जानेवाले अत्याचारों का अधिक यथार्थ व शक्तिशाली शब्दों में विरोध किया है तथा जीवन संघर्ष के लिए उन्हें तत्पर होने का उद्बोधन दिया है।

सौन्दर्य

अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में कीट्स (Keats) में सौन्दर्य प्रेम की भावना सबसे अधिक मुखर है। उसकी दृष्टि में सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य। (Beauty is truth, truth Beauty) सुन्दर वस्तु चिर आनन्ददायिनी है। उसकी मधुरता सदैव बढ़ती है वह कभी नष्ट नहीं होती Thing of beauty is a joy for ever Its loveliness increases it will never pass into nothingness

कीट्स ग्रीक कला के सौन्दर्य एवं इटली के मध्ययुगीन कला वैभव से अत्यधिक प्रेरित हुआ था। क्लासिकल सौन्दर्य भावना जहां बाह्य सुडौलता पर केन्द्रित थी वहां रोमान्टिक सौन्दर्य भावना मिश्रित है। कवि की आत्मा अन्तर्जगत् के आलोक में पार्थिव सीमाओं से परे जिन सौन्दर्य मूर्तियों का दर्शन करती है वे सहज उद्रेक से उसके हृदय में जागृत होती हैं तथा पूर्वकालिक सम्बन्ध सूत्रों एवं स्मृतियों को जगाती हैं। वर्डसवर्थ व शैली की कविता में जहां सौन्दर्य की सूक्ष्म व अपार्थिव व्यंजना हुई है वहां कीट्स की कविताओं में रंगीनी यौवन व उल्लास के साथ ऐन्द्रिय चित्रण की प्रधानता है।

× Shelley Preface to Prometheus Unbound

Poetry lifts the veil from the hidden beauty of the world and makes familiar objects to be as if they were not familiar

अवसाद

रोमांटिक कवि मूलत स्वप्न द्रष्टा है। किन्तु यथार्थ जगत् मे स्वप्न भग होने पर उसे निराशा होती है। इसी कारण रोमांटिक कवियों मे मद अवसाद की भावना पायी जाती है। यह निराशा वडसवथ की 'लूसी, शेली की स्टन्जाज रिटन इन डिजेक्शन' ओड टु द स्काई लाक', कीटस की ओड टू मेलनकली', 'टू नाइटगल' टेनीसन की 'लाटस ईटर्स' आदि कविताओं मे व्यक्त हुई है।

कल्पना-प्रेम

रोमांटिक कवियो की एक अन्य प्रवृत्ति अलौकिक तत्व अथवा परियों व अप्सराओं का वर्णन करना है। इस सम्ब ध म कालरिज के नाम का पहले उल्लेख किया जा चुका है। स्विनबन (Swinburn) को एटलण्टा इन कलीडोन' Atlanta in Calydon) तथा कीट्स की 'ला बल डेम सा मर्सी आदि कविताओं का भी इसी सम्बन्ध म उल्लेख किया जा सकता है। रोमांटिक कवियो म सुदूर के प्रति प्रेम पाया जाता है तथा वे उसे अपनी कल्पना से रग कर मनोरम रूप मे देखते हैं।

छायावादी कविता एव रोमांटिक काव्य मे समानतायें

हम देख चुके हैं नव्य श्रेणिक काव्य की परम्परा का विरोध, प्रकृति चित्रण, आदर्शात्मक विद्रोह, सौन्दयवाद, मद अवसाद, अलौकिक तत्व तथा अतीत का काल्पनिक मनोरम चित्रण अ ग्रेजी रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। प्राय यही विशेषताए छायावादी काव्य की भी हैं। आलोच्य काल की हिन्दी कविता पर अ ग्रेजी रोमांटिसिज्म के प्रभाव के दो कारण थे। प्रथमत असहयोग आन्दोलन की असफलता के कारण यथार्थ जीवन की समस्याओं से हट कर हिन्दी कविता अन्तमु खी हो गयी। बाह्य परिस्थितियों म क्रान्ति के अभाव म कवियो ने भाव-लोक म क्रान्ति की। द्वितीय, इस युग मे पाश्चात्य सभ्यता के अधिकाधिक सम्पक व विश्व विद्यालयो मे अ ग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप अ ग्रेजी साहित्य से भी भारतीय साहित्यकारो का सम्पक हुआ। उस समय के विश्व विद्यालयो के पाठ्य क्रम में अ ग्रेजी रोमांटिक कवियों का विशेष स्थान था जो आज भी है अत उनके विचारो का नवोदित साहित्यकारो पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था। इनके अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी था कि अ ग्रेजी रोमांटिक काव्य का विकास नव्य श्रेणिक काव्य की परम्परा के विरोध मे हुआ था। छायावादी कविता म भी द्विवेदी युगीन काव्य आदर्शों तथा रीतिकालीन काव्य आदर्शों का विरोध किया गया रीतिकाल के स्थूल शृ गार जो कहीं कहीं अश्लील वर्णन की सीमा को छून लगता है का इस युग म विरोध किया गया। इसी प्रकार, द्विवेदी-युग की अतिशय नैतिकता और यथातथ्य वर्णनात्मकता का भी विरोध हुआ। भाव क्षेत्र म इस विद्रोह के साथ काव्य के बाह्य रूप विधान मे भी क्रांति हुई। इस प्रकार, अ ग्रेजी रोमांटिक

कविता और छायावादी कविता की प्रवृत्तियाँ परस्पर अनुरूप हैं। अंग्रेजी रोमांटिक कविता ने नव्य-क्लासिकवाद की परम्परागत नियमबद्धता तथा धनोन्मुखी सामन्तवादी व नवोदित स्वार्थनिष्ठ पूँजीवादी समाज की संकीर्णताओं का विरोध किया तथा कवि की वैयक्तिक अनुभूति एवं कल्पना विलास के द्वार मुक्त कर दिये। छायावादी कविता भी व्यक्तित्व प्रधान काव्य है जिसने रीतिकाल तक चली आने वाली संस्कृत की ह्रासयुगीन साहित्यिक मान्यताओं का विरोध किया तथा द्विवेदीयुगीन अतिशय नैतिकता की संकीर्णता के विरुद्ध नवीन सौन्दर्य चेतना के द्वार खोल दिये। तथापि अंग्रेजी रोमांटिक कविता और हिन्दी छायावादी कविता में कुछ आधारभूत भेद भी हैं। अंग्रेजी रोमांटिक कविता एक स्वतन्त्र देश की कविता है जब कि छायावादी कविता विदेशी साम्राज्यवाद के शोषण में पिसने वाली पराजित जनता की वाणी है। यदि अंग्रेजी रोमांटिक कविता ने समता स्वतन्त्रता और बंधुत्व का नारा देनेवाली फ्रांसीसी क्रांति की सफलता से प्रेरित होकर नये स्वप्न देखे तो छायावादी कविता की पृष्ठभूमि में देश के असफल राष्ट्रीय आन्दोलनों की स्मृति थी। यही नहीं, अंग्रेजी रोमांटिक कविता के रचना काल में विज्ञान का ध्वंसात्मक रूप प्रकट नहीं हुआ था परन्तु छायावादी कविता की भूमिका में प्रथम विश्वयुद्ध की दुःखपूर्ण स्मृति भी थी तथा युद्ध के उपरान्त भारत में उपस्थित होनेवाले घोर आर्थिक संकटों का कटु अनुभव था। इसके परिणाम स्वरूप छायावादी कविता में अवसाद और वेदना का रंग अधिक गहरा है तथा उसके स्वप्न अस्पष्ट और धूमिल हैं। छायावादी कविता का अंग्रेजी रोमांटिक काव्य से भेद बतलाते हुए डा० नगेन्द्र का कथन है "वहाँ (इंग्लैण्ड) के रोमानी काव्य का आधार अपेक्षाकृत अधिक निश्चित और ठोस था, उसकी दुनिया अधिक मूर्त थी उसकी आशा और स्वप्न अधिक निश्चित और स्पष्ट थे, उसकी अनुभूति अधिक तीक्ष्ण थी। छायावाद की तरह वह निश्चय ही कम अन्तर्मुखी व वायवी था।" × अस्तु, रोमांटिक व छायावादी कवियों की मानसिक स्थिति भिन्न थी पर उनकी चेतना समान थी। छायावादी कविता पर रोमांटिक कविता का प्रभाव इतना गहरा है कि वह प्रायः उसकी छाया सी, अनुवर्तिनी प्रतीत होती है। स्वयं छायावादी कवियों ने अपनी कविता पर अंग्रेजी रोमांटिक कविता का प्रभाव मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने लिखा है 'पल्लव काल में मैं उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कवियों मुख्यतः शेली वर्डसवर्थ कीटस और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौंदर्य बोध और मध्य

× डा० नगेन्द्र 'विचार और अनुभूति' गौतम बुक डिपो दिल्ली दूसरा संस्करण, पृष्ठ–५८

वर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है।"+ महादेवीजी छायावादी कविता को पाश्चात्य साहित्य व बंगाल की नवीन काव्य धारा से प्रभावित मानती हैं 'यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्य धारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।' इलाचन्द्र जोशी रामकुमार वर्मा, बच्चन प्रभृति छायावादी कवियों ने भी अंग्रेजी रोमांटिक कविता व अन्य पाश्चात्य साहित्यकारों का प्रभाव स्वीकार किया है।

प्रारम्भिक स्वच्छन्दवाद

पश्चिम के सम्पर्क से भारत की दृढ़ बाह्य विधानों के बंधनों को विशृंखल करने में लीन रही जब कि उसकी आत्मा पाश्चात्य सभ्यता के रंग की चमकता का संस्पर्श कर चमक उठी। स्वच्छन्दवाद की प्रवृत्ति इसी चाह की द्योतक है। बंधी हुई प्रणाली पर चलनेवाली काव्यधारा का विरोध, प्रकृति प्रेम और कल्पनाशीलता स्वच्छन्दवादी धारा की प्रमुख उर्मियां हैं जिनकी हिल्लोल और कम्पन आलोच्य काल में मन्द मंथर सुनाई पड़ती हैं।

भारतेन्दु-साहित्य में हम नवीन विषयों का समावेश अवश्य पाते हैं किन्तु, यह विषय बहिर्मुख हैं और उनमें "सबसे ऊंचा स्वर देश भक्ति की वाणी का है।" द्विवेदी-युग की कविता पर भी सामाजिक प्रभावों की प्रधानता है किन्तु इस काल में कवि मानस की अन्तर्भूमियों में हम उस रस-धारा के उद्वेलन का प्रथम परिचय पाते हैं जो भावी युग में (छायावाद) सम्पूर्ण काव्य-क्षेत्र को आप्लावित कर देती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने १९०१ में 'सरस्वती' का सम्पादन आरम्भ किया तथा इसी वर्ष 'सरस्वती' में विद्यानाथ मिश्र के कवि कर्त्तव्य विषयक दो लेख प्रकाशित हुए जो हिन्दी में सर्वप्रथम स्वच्छन्दवाद की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। कवि कर्त्तव्य लेख में प्रकट किए गए विचारों की वर्ड्सवर्थ (Words worth) के 'लिरिकल बलैड्स (Lyrical Ballads) से समानता पायी जाती है। जिस प्रकार 'लिरिकल बलैड्स" आंग्ल रोमांटिक आंदोलन का मैनीफेस्टो" कहा जा सकता है उसी प्रकार 'कवि-कर्त्तव्य हिन्दी कविता में स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति के आगमन का अग्रदूत है। इस लेख द्वारा हिन्दी में पहली बार पहचाना गया कि "गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। कविता का लक्षण जहां कहीं पाया जाय, चाहे वह गद्य में हो या पद्य में कविता है।' स्पष्ट ही काव्य की बंधी हुई प्रणाली से यह भिन्न स्वर है। रीतिकालीन शृंगारिकता का विरोध साधारण जीवन से नये विषयों को अपनाना भाव पक्ष की प्रधानता प्रकृति चित्रण तथा

+ सुमित्रानन्दन पंत 'आधुनिक कवि' २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृष्ठ-१३

कल्पना की प्रधानता एवं भाषा व छन्द के प्रयोग के संबंध में इस लेख में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'यमुना के किनारे केलि-कौतूहल के अद्भुत वर्णन' के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए लेखक 'चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य' आदि के विषय अपनाने की प्रेरणा देता है। लेखक का यह कथन 'कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए' वर्ड्सवर्थ की काव्य परिभाषा (Spontaneous overflow of powerful feelings) का छायानुवाद प्रतीत होता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'कवि और कविता' लेख में स्वच्छन्दतावाद के उपर्युक्त तत्वों को अपनाया। तुक, अनुप्रास आदि को द्विवेदी जी कविता का केवल 'वस्त्राभरण' मानते हैं। उनके अनुसार कवि में जितनी अधिक कल्पना शक्ति होगी उतनी ही अच्छी वह कविता लिख सकेगा। वे इस लेख में कविता में प्रकृति-वर्णन व मानव-स्वभाव के अध्ययन पर भी बल देते हैं और कविता में बोलचाल की भाषा के प्रयोग के समर्थक हैं। कहना न होगा कि बोलचाल की भाषा में कविता लिखने का विचार उन्होंने आंग्ल रोमांटिक काव्य के प्रवर्तक वर्ड्सवर्थ से ही ग्रहण किया। वर्ड्सवर्थ तो अपनी श्रेष्ठ कविताओं में इस सिद्धान्त को नहीं निभा पाया था पर द्विवेदीयुगीन अधिकांश कविता इस सिद्धान्त का पालन करने से शुष्क गद्यात्मक ही बन गयी। फिर भी बहुत कुछ कविता द्विवेदी जी के प्रभाव से बाहर भी लिखी गयी जिसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति 'प्रकृति' और 'प्रेम' इन दो विषयों में प्रधानतया व्यक्त होती है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति वर्णन एवं प्रेम वर्णन के नवीन रूप का सूत्रपात श्रीधर पाठक द्वारा किया गया आंग्ल रोमांटिक काव्य के अनुवादक के रूप में पाठक जी का प्रमुखतम स्थान था और यह स्वाभाविक ही है कि हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के वे प्रवर्तक बने।

प्रकृति

श्रीधर पाठक की कविताओं में प्रकृति का सुन्दर दृश्य विधान एवं विभिन्न रूपों में चित्रण मिलता है। टामसन (Thompson) की 'सीज़न्स (Seasons)' कविता का उनके ऋतु वर्णन की कविताओं पर विशेष प्रभाव दिखाई देता है। टामसन के प्रकृति चित्रण में यथातथ्य दृश्य विधान, प्रकृति के सुन्दर व भयंकर दोनों रूपों का वर्णन एवं पीडितों के प्रति सहानुभूति की विशेषतायें मिलती हैं। पीडितों के प्रति सहानुभूति की भावना गोल्डस्मिथ के प्रकृति काव्य में भी पायी जाती है जिसका श्रीधर पाठक की कविताओं पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था। पाठक जी ने अपनी मेघागमन कविता में वर्षा का वर्णन करते हुए वर्षा के आनन्ददायक व भयकर दोनों रूपों को चित्रित किया है। रीतिकालीन कविता में वर्षा का चित्रण प्रायः विरहिणी की वेदना के

उद्दीपन रूप में लिया जाता था किन्तु 'मेघागमन' मे प्रकृति की भयकर पृष्ठभूमि मे बाल विधवा का भय प्रकम्पित रूप दर्शाया गया है।+

'घन विजय' कविता म पाठक जी ने दुर्भिक्ष की अवस्था का वर्णन करते हुए बादल से जल बरसा कर सतप्त प्राणियो का दु ख हरने की प्रार्थना की है। पाठक जी के प्रकृति वर्णन के इस रूप मे आग्ल रोमाटिक काव्य के प्रभाव के साथ समाज सुधार व देश भक्ति की भावना का प्रभाव भी स्पष्ट है। हिन्दी कविता म प्रकृति के प्राय मनोहर रूप का ही वर्णन किया जाता था, आग्ल रोमाटिक काव्य के प्रभाव से प्रकृति के भयकर रूप का भी वर्णन किया जाने लगा। रामचन्द्र शुक्ल 'हृदय का मधुभार' कविता मे बाल्यकाल की स्मृतियों का वर्णन करते हुए मिर्जापुर के विंध्य पर्वत में घूमने का वर्णन करते हैं तब पहाड़ो व जगलों का दृश्य चित्रित सा हो जाता है। कवि का एक साथी उस पार्वत्य प्रदेश के बीच स्थित एक एकाकी पेड़ के नीचे पहुँचता है। वहा वह पहले से बैठ हुए हाँपते कुत्ते को दूर कर स्वय अपने लिए जगह करता है इस पर कवि मनुष्य और प्रकृति के स्वभाव की तुलना करते हुए कहता है कि मनुष्य कितना स्वार्थ परायण है जब कि प्रकृति सबके लिए समान रूप से उदार हृदया है। शुक्ल जी के एडविन आर्नाल्ड (Adwin Arnold) के 'लाइट आव एशिया' (Light of Asia) के अनुवाद 'बुद्ध चरित' में प्रकृति के आनन्ददायक व भयकर दोना रूपो का चित्रण किया है। बुद्ध के हृदय में राक्षसो द्वारा भय उत्पन्न कराने के उद्देश्य से बुद्ध चरित म प्रकृति का भयकर रूप चित्रित किया गया है।

स्वच्छन्दतावादी कविता में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। यह प्रवृत्ति छायावादी कविता म और भी अधिक विकसित रूप म मिलती है जो आग्ल रोमाटिक काव्य के प्रभाव को दर्शाता है। श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुषमा' कविता म हिन्दी मे सर्व प्रथम प्रकृति के मानवीकरण का रूप मिलता है।=

+ श्रीधर पाठक 'मेघागमन'

अँधियारी रात हाथ न दिखात
बिन नाथ बाल विधवा डरात

= श्रीधर पाठक 'काश्मीर सुषमा'

प्रकृति यहा एकान्त बैठि निज रूप सवारति
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति
विमल अम्बु सर मुकुरन महं मुख बिम्ब निहारति
अपनी छवि प मोहि आपहि तन मन वारति
सजति सजावति, सरसति हरसति, दरसति प्यारी
बिहरती विविध विलास भरी जोवन के मद सानि

पाठक जी की 'स्वर्गीय वीणा' कविता म प्रकृति विश्व-सचालक परोक्ष सत्ता की ओर रहस्यपूर्ण सकेत प्रदान करती है। *

प्रकृति वर्णन का उपयु क्त स्वरूप आगे रामाटिक काव्य मे प्रकृति चित्रण क अनुरूप है। छायावादी कविता मे यह रूप और भी स्पष्ट रूप चित्रित हुआ है। नवीन कविता मे प्रकृति चित्रण के सबन्ध म यह स्मरणीय है कि यह मध्ययुगीन कविता की तरह सुना सुनाया अथवा पोथी ज्ञान पर आधारित नहीं है वरन् कवि के सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है। बालमुकुन्द गुप्त की भैस का स्वर्ग कविता म गाँव के दृश्य का यथार्थ चित्रण मिलता है। +

आगे की छायावादी कविता म इस प्रकार क यथार्थ चित्रणों का अभाव है। छायावादी कविता मे प्रकृति चित्रण यद्यपि सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है किन्तु

ललकति पुलकति निरखति थिरकति बनि ठाने
मधुर मजु छवि पु ज छटा छिटकाति बन कुञ्जन
चितवति रिझवति हसति डसति मुसिक्याति, हरति मन
यह सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भातिन

* श्रीधर पाठक "स्वर्गीय वीणा"
कहीं प स्वर्गीय कोई बाला सुमजु वीणा बजा रही है
सुरो के सगीत की सी कसी सुरीली गु जार आ रही है
भरे गगन म है जितने तारे हुए हैं मदमस्त गत पे सारे
समस्त ब्रह्माण्ड भर को माना दो उगलियो पर नचा रही है

\+ बालमुकुन्द गुप्त "भैसे का स्वर्ग"
कोसों तक का जगल है और हरी घास लहराती है
हरियाली ही दीख पडे है दृष्ट जहा तक जाती है
कहीं लगा है झडवरी और कही लगी है ज्वार
कही खडा है मोठ बाजरा कहीं घनी सी ज्वार
कहीं पे सरसो की क्यारी है कही कपास के खेत बने
जिसमे निकलें मना बिनौल अथवा पडियो खली बने
मू ग मोठ की पडी पतारन और चने का खार
कही पडे चोन क डठल कहीं उन्द का यार
कही सकडो मन भूसा है कही पे रक्खी सानी है
कच्चे तालाबो म आधा कीचड आधा पानी है
धरी है वा भीग दान स भरी सकडा नाद
करते हैं भसे और भसें उछल कूद और पाद

वह कल्पना से अनुरंजित है। अन्त में नवयुग में प्रकृति-वर्णन के प्रति कवियों के आकर्षण का कारण मात्र रोमांटिक काव्य से सम्पर्क के अतिरिक्त यह भी जान पड़ता है कि आंग्ल साम्राज्य की स्थापना एवं औद्योगिक विकास के फलस्वरूप नागरिक सभ्यता का प्रसार होने लगा था तथा गांवों का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्टप्राय हो गया था। प्रेमघन, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक प्रभृति साहित्यकारों ने नगरों के आबाद होने एवं गांवों के उजड़ने के तथ्य का क्षोभपूर्वक वर्णन किया है। +

प्रेम

इस युग की कविता में प्रेम की भावना में स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। प्रेम का जो रूप लौकिक जीवन में आत्मसात् नहीं हो पाता वह कवि की कल्पना में मुखर हो उठता है एवं वह प्रेम की आदर्शात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। रीतिकाल में प्रेम शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन व स्थूल शृंगारिक भावना में सीमित था। द्विवेदी काल में रीतिकालीन शृंगारिकता का विरोध किया गया। मदन मोहन मालवीय ने शृंगारिकता में डूबे साहित्यकारों को देश की

\+ कहां गए वह गाव मनोहर परम सुहाने (प्रेमघन 'जीरणपद")
धनी जनों की तथा विषय सुख दप भरी अभिलाषा पर
हरे भरे सुठि ग्राम गय उठ वसुधा से कितने नस कर (श्रीधर पाठक)
कालाकांकर का स्मरण हुए बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा
स्वप्न की भांति वह पन्द्रह सोलह साल का बीता हुआ जमाना याद आता है। वहां न लम्बी चौड़ी सड़कें थीं न आकाश से बातें करने वाली ऊंची ऊंची इमारतें थी। न घोड़ा गाड़ियों की भड़ भड़ थी न मार्ग चलते भीड़ में मज्जर और गाड़ियों के पेट में आकर दब मरने का भय था। न वहां कदम कदम पर लुभाने वाली या तबीयत बिगाड़ने वाली चीजें थी। न रोशनी थी न कल-कारखानों और चिमनियों का दम घोटने वाला कड़वा धुआं था, न सड़कों पर कूड़े कचड़े के ढेर थे न गलियां बदबू से सड़ती थी। राजा साहब की अलमारी के सिवा वहां कहीं एक बोतल तक न दिखाई देती थी बाजारी स्त्रियों और बदचलन पुरुषों से वह भूमि एकदम पाक थी। कालाकांकर भूलने की वस्तु नहीं है। वह छोटा-सा रम्य स्थान सचमुच स्वर्ग का टुकड़ा था। उस समय उस स्थान का हृदय में इतना आदर न था। आज कलकत्ता में वह सब बातें एक एक कर याद आती हैं पर क्या वह सब फिर मिल सकती हैं ?

दुदशा की ओर ध्यान दिलाया। × मिश्र बन्धुओ ने शृ गारिक विषयो के प्रति अरुचि दर्शाते हुए काव्य की बधी प्रणाली का विरोध कर सस्कृत व बगला म प्रेरणा लेने की आवश्यकता बतलायी। +

गोविन्ददास ने रीतिकालीन शृ गारी कवि पद्माकर व मतिराम को भुलाकर आंग्ल रोमाटिक कवियों को आदश मानने की प्रेरणा दी। = अस्तु, द्विवेदी-युगीन कविता म शृ गारिकता का विरोध किया गया। तथापि इस युग की कविता म नैतिक वजनाओ के रहते हुए कही कही सभोग चित्र उभर आय हैं परन्तु युग की स्वच्छ दवादी धारा म प्रेम का उदात्तकृत रूप पाया जाता है।

× मदनमोहन मालवीय 'काव्य-कला', प्रथम किरण (१८८५ ई) पृ १००

भारत चारहुँ ओर दु ख भोगत बीतिगे वष हजारन
ध्यान रसिक दियो चहिये दुख कौन उपाय सो होय निवारन
सो सब दूरि रहे मकरन्द सबै इन बातन मे किहि कारन
होय सो होय इहा नहिं भूलबो राधिका रानी कदम्ब की डारन

+ मिश्रबन्धु—

दस अ ग लखी कविता सकल किन्तु भरी शृ गार रस
शृ गार छोड कविता मिली नही बहुत सुन्दर सरस
करो प्राकृतिक पाठ लिये बरणिन मुद भारी
यथा सस्कृत मध्य कहे कवियो ने भारी
मैकल मधुसूदन दत्त ने मेघनाद वध ज्यो कहा
बकिम, रमेश ने ग्रन्थ रच सदा लोकहित ज्यो चहा

= गोविन्ददास 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' प्रथम खण्ड अक २०

गुप्ता पर खडिता पर तो आपको सहस्रो सवये मिल जायेंगे पर मानव जीवन पर मानव जीवन के गूढ रहस्या पर, प्रेम पर प्रतिमा इत्यादिक पर आपको कुछ भी नही मिलेगा अग्रेजी कविता को देखो वहां आपको गुप्ता व विदग्धायें न मिलेंगी। वहा आपको दादरो व दूतियो को दौड धूप न मिलेगी। वहा मिलेगी आपको 'गुल्ल के फूल की सहज शोभा' पर कविता वहां मिलेगी आपको जन्म भूमि के अनुराग', 'जीवन के रहस्य, व 'सन्तोष के सुख' पर कविता। अत हमे इस समय पद्माकर व मतिराम को भूल कर वडसवथ ब्राउनिंग' 'काऊपर व टनीसन को ही अपना आदश बनाना चाहिये। नायिका-भेद के गुलदस्ते अब बासी पड गये हैं, उनम सुगन्ध नही रही उनमे शोभा नहीं रही।

आलोच्य-काल मे शारीरिक विलास से युक्त प्रेम के उदात्त रूप की अभिव्यंजना मिलती है। गोल्डस्मिथ (Goldsmith के हरमिट (Hermit) का श्रीधर पाठक ने अनुवाद किया। यह अनुवाद अत्यधिक लोकप्रिय रचना थी। उसमे मौलिक ग्रन्थ सा ही हृदय को प्रभावित करने वाला गुण था। 'एकान्तवासी योगी' का नायक एडविन निर्धन है किन्तु नायिका आन्जेला उसके गुणों को ही धन मानती है। इस काव्य मे मनोवैज्ञानिकता का भी सुन्दर समावेश हुआ है। आन्जेला एडविन से प्रेम करती है तथा नारी सुलभ लज्जा व आत्म-सम्मान की भावना से वह उस प्रेम को छुपाती ही नहीं प्रत्युत एडविन के प्रति विरक्ति भी दर्शाती है। एडविन अपने प्रेम को असफल समझ कर वैरागी बन जाता है। आन्जेला को पश्चात्ताप होता है तथा वह योगिन की तरह अपने प्रेमी की खोज मे वन वन भटकती है। अन्त में उनका मिलन होता है तथा वे दोनों सुखपूर्वक रहते हैं।

'एकान्तवासी योगी' से प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी मे प्रेमकथात्मक काव्य लिखे गये जिनमे जयशंकर प्रसाद का 'प्रेम पथिक' रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' व 'पथिक' प्रमुख हैं। द्विवेदी युग के अन्य प्रबन्धों, जो पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानकों को लेकर लिखे गए हैं के विपरीत, इन प्रबन्धों मे नूतन कथा प्रसगो की उद्भावना की प्रवृत्ति मिलती है जो इन कवियों की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। एकान्तवासी योगी' के प्रभाव को प्रसाद के 'प्रेम पथिक' के कथानक मे भी देखा जा सकता है। आनन्द नगर का वासी पथिक एक दिन तापस जीवन व्यतीत करने वाली चमेली की कुटिया में आता है। कुञ्ज मे बैठी हुई चमेली जब उसे अपनी कथा सुनाती है तो सहसा उसे ज्ञात होता है कि उसका श्रोता पथिक अन्य कोई नही उसका बाल्यकाल का प्रेमी ही है जिसके साथ उसका परिणय न हो पाने के कारण ही उसने तपस्विनी जीवन अपनाया था। किन्तु अब वासना छोड़ कर विश्व प्रेम मे ही अपने प्रेम को लीन करने का वह अनुरोध करती है। +

प्रेम का यह उदात्तीकरण (Sublimation) रामनरेश त्रिपाठी के खण्ड काव्यों मे राष्ट्र प्रेम व लोक सेवा का पक्ष लेकर प्रकट हुआ है। सीधी राजनीति से इन खण्ड काव्यों का कोई सबध नही है किन्तु काल्पनिक कथा प्रसगों के बीच देश प्रेम की भावना का सुन्दर समावेश हुआ है। उनके 'स्वप्न' खण्ड काव्य का

+ जयशङ्कर प्रसाद "प्रेम-पथिक"

पथिक प्रेम की राह अनोखी सभल सभल कर चलना है
घनी छाह है जो ऊपर तो नीचे काटे बिछे हुए
प्रेम यज्ञ मे स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का सुख पावोगे

नायक बसंत वीर हृदय है। उसके देश पर विदेशी आक्रान्ताओं का आक्रमण होता है तब देश की रक्षा करने के बदले वह अपनी पत्नी की गोद में मुंह छिपा कर दुबका रहना चाहता है। अन्तत उसकी पत्नी ही युद्ध क्षेत्र में जाती है। पर वह युद्ध क्षेत्र से छद्म वेश में लौट कर अपने पति के पास आकर अपनी ही मृत्यु का समाचार देती है तथा बसंत को देश रक्षा के लिए स्वातन्त्र्य युद्ध में भाग लेने को प्रेरित करती है। बसंत का अपनी प्रेयसी के प्रति प्रेम देश प्रेम का रूप ले लेता है एवं वह युद्ध क्षेत्र में जाकर शत्रु से युद्ध कर देश को मुक्ति दिलाने में सफल होता है। इसी प्रकार त्रिपाठी जी के 'पथिक' व 'मिलन' के नायक अपनी पत्नी से प्रेम करते हैं किन्तु उनका प्रेम क्रमश प्रकृति राष्ट्र व विश्व प्रेम में पर्यवसित हो जाता है।+

यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आरम्भिक स्वच्छन्दवादी कविता यद्यपि द्विवेदी युग में रची गयी थी किन्तु वह उस युग की केवल एक प्रवृत्ति थी। यही नहीं आरम्भिक स्वच्छन्दवादी कविता स्वयं द्विवेदी जी के प्रभाव से मुक्त होकर लिखी गई थी। द्विवेदी युग की अधिकांश एवं महत्वपूर्ण काव्य रचनाएं इतिवृत्तात्मक हैं। उनमें बाह्य वर्णन की प्रधानता पायी जाती है तथा वे सामाजिक उद्देश्यपूर्ण रचनाएं हैं। यद्यपि स्वयं द्विवेदी जी ने स्वच्छन्दवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का निरूपण किया किन्तु उनके द्वारा स्वच्छन्दवाद का विकास नहीं हुआ। यहां तक कि श्रीधर पाठक द्वारा प्रवर्तित स्वच्छन्दवाद की धारा द्विवेदी जी के प्रभाव में लिखी गई रचनाओं के बाहुल्य एवं महत्व के कारण अवरुद्ध हो गई। आगे चल कर जिस छायावादी कविता में आरम्भिक स्वच्छन्दवाद का विकास हुआ उसे द्विवेदीयुगीन काव्य रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करना पड़ा।

द्विवेदी युगीन काव्य रूढ़ियों के प्रति विद्रोह काव्य की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति

द्विवेदी युग में कविता किसी आख्यान को लेकर लिखी जाती थी। कवि उस आख्यान के माध्यम से कुछ उपदेश भी देना चाहता था। शृंगार वर्णन यद्यपि द्विवेदी-युग की प्रधान प्रवृत्ति नहीं थी परंतु कवि जहां सौन्दर्य वर्णन करता वहां स्थूल ससीम चित्र उभर आते थे। काव्य पद्धति और काव्य रूप भी सीमित ही थे। कवि शास्त्र सम्मत महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं छोटे आख्यान-काव्यों को

+ रामनरेश त्रिपाठी 'मिलन'
जन जन में प्रेमी को दिखती
है प्रियतम की कान्ति
इससे उसे लोक सेवा में
मिलती है अति शान्ति

संस्कृत वृत्तो मे रचना कर सतुष्ट हो जाता था। सीमित विषय एव अभिव्यजना के सीमित प्रकारो में आबद्ध कविता कृत्रिमता का रूप धारण कर चुकी थी। असहयोग आन्दोलन की असफलता से जन्य राजनीतिक पराजय की कटु अनुभूति ने कवि को अन्तर्मुखी बनने की प्रेरणा दी। कवि जिस मध्यम वर्ग का प्राणी था उसकी सामाजिक स्थिति दयनीय थी। किन्तु उसमे किसी प्रकार परिवर्तन लाना उसके लिए सम्भव नहीं था। अत उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी बन गई। इस समय आंग्ल रोमांटिक कवियो से प्रेरणा लेकर कवि ने भाव-जगत् में नया परिवर्तन उपस्थित किया।

यह भाव परिवर्तन द्विवेदी युग के बाह्य वर्णन के विपरीत अन्तर्जगत् के भावों की अभिव्यक्ति, नवीन सौन्दर्य चेतना एव अभिव्यजना के नवीन प्रकारों के रूप मे प्रतिफलित हुआ।

छायावाद का प्रवर्त्तन द्विवेदी-युग की मूर्धन्य पत्रिका सरस्वती' से न होकर नवीन मासिक पत्रिका 'इन्दु' से हुआ जिसमे नवीन काव्य धारा के प्रवर्त्तक जयशकर प्रसाद ने लिखा 'साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नही होता।" प्रसाद जी के अनुसार 'कविता के क्षेत्र मे पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी मे उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।" प्रसाद जी ने साहित्य की व्याख्या द्विवेदी-युग के धार्मिक सामाजिक सुधार की आकांक्षा के विपरीत की है। महादेवी जी भी प्राचीन काव्य आदर्शों के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप मे छायावाद का उद्‌भव मानती है।×

छायावादी कवियो की सौन्दर्य दृष्टि अन्तर्मुखी है। प्रत्येक युग सौन्दर्य के नवीन रूपा का निर्माण करता है। जिस युग के सौन्दर्य रूपों मे नवीनता का अधिक समावेश होता है, सौन्दर्य चेतना की दृष्टि से वह युग उतना ही समृद्ध समझा जाता है। सौन्दर्य चित्रण पूर्वयुगीन आदर्शों के अनुकरण पर होने लगता है तब उसमे कृत्रिमता का समावेश हो जाता है। रीति काल का सौन्दर्य चित्रण ह्रास युगीन संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त नारी सौन्दर्य के उपमानों और कवि रूढियो पर आधारित था। द्विवेदी-युग की सौन्दर्य भावना मे मौलिक अन्तर दृष्टिगत नहो

× महादेवी वर्मा 'यामा' पृ० ११

उसके (छायावाद) जन्म से प्रथम कविता के बधन सीमा तक पहुच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द मे चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।

होता। बाह्य आकार का स्थूल चित्रण ही उस युग में सौन्दर्य का पर्याय बना रहा। अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों ने अपने पूर्ववर्ती नव्य-श्रेण्य काव्य युग की सौन्दर्य भावना के विरुद्ध जो केवल बाह्य वर्णन तक सीमित थी विद्रोह किया उसी प्रकार छायावादी काव्य में बाह्य आकार के स्थूल सौन्दर्य चित्रण के प्रति विद्रोह पाया जाता है। यह कवि सौन्दर्य का दर्शन केवल चर्म चक्षु से नहीं, चर्म चक्षु के साथ मन की दृष्टि से करते हैं। सत्य की जिज्ञासा लिए वे अपने मन के भीतर की अरूप छवियों को प्रकृति व नारी की विविध सौन्दर्य कल्पनाओं में यत्र तत्र छिटका देते हैं। छायावादी कविता में अन्तर्मुखी सौन्दर्य-चेतना प्रकृति व नारी के सौन्दर्य अंकन के रूप में व्यक्त हुई है। प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण के साथ छायावादी कवियों ने प्रकृति में अनेक मानवीय भावों का आरोपण किया है। नारी सौन्दर्य के चित्रण में शरीरज सौन्दर्य वर्णन की अपेक्षा अन्तर्मुखी भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है।

छायावादी कविता में द्विवेदीयुगीन काव्य रूढ़ियों से भिन्न काव्य रूपों को अपनाया गया है। छायावादी कवि सहज अभिव्यक्ति को कला का प्रधान गुण मानते हैं। प्राचीन काव्य परिपाटी के पक्षपातियों ने आरम्भ में छायावादी कवियों पर रस छंद, भाषा आदि की अज्ञानता का आक्षेप किया था। पंत ने गुंजन में मेरा बसा गान गीत में इन आक्षेपों का उत्तर देते हुए बताया है कि अवश्य, इन बातों का उसे ध्यान ही नहीं रहता—प्रत्युत उसके तो प्राण स्वयं ही गीतों में फूट पड़ते हैं।*

द्विवेदी-युग की प्रबन्ध काव्य पद्धति, जिसमें आख्यान वस्तु, चरित्र सृष्टि व विचार गाम्भीर्य की प्रधानता थी से भिन्न छायावादी काव्य पद्धति गीतिपूर्ण है जो कवि के भावात्मक दृष्टिकोण के अधिक उपयुक्त है। इस युग के महाकाव्य कामायनी में भी कथातत्व गतिशील नहीं है और उसकी शैली गीतात्मक है। प्रसाद का 'आँसू', पंत की 'ग्रंथि' आदि अन्य बहुत कम प्रबन्ध-काव्य इस युग में लिखे गये। अधिकांश छायावादी कविता की स्वतन्त्र गीतों के रूप में रचना हुई है। अतः छायावादी कविता में गीति काव्य की सभी विशेषताएं पायी जाती हैं। छन्द एवं अलंकारों की प्राचीन परिपाटी का छायावादी कविता में विरोध पाया जाता है। पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में रीतिकालीन छन्द व अलंकारों की परम्परा [redacted] विरोध किया। निराला ने रीतिकालीन विचार भूमि से नवीन

---

* सुमित्रानन्दन पंत : गुंजन, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद संवत् २००६ पृष्ठ १०६

गान ही में रे मेरे प्राण
अखिल प्राणों में मेरे गान

काव्य की स्वतन्त्रता का सम्बन्ध मुक्त छन्द के साथ जोड दिया। उनके अनुसार भावो की मुक्ति के लिये छन्दो की मुक्ति आवश्यक है। उन्होने लिखा—"मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना।" 'प्रगल्भ प्रेम' कविता मे निराला ने कविता-प्रेयसी के लिए छन्दो की राह को सकीर्ण बतलाया है तथा वे उससे बंधनमय छदो की छोटी राह को छोड कर अपने हृदय-कमल में आने के लिए आमन्त्रित करते हैं। ● नये आकाश में कवि विहग नये स्वर का आलाप छेड़ता है। (२)

अस्तु, छायावादी कविता मे द्विवेदीयुगीन काव्य रूढियो के प्रति भाव एव अभिव्यजना दोनों दृष्टि से विद्रोह पाया जाता है। इस विद्रोह के मूल में पाश्चात्य प्रभाव की प्रेरणा थी। जहा तक काव्य के अन्तर्मुखी होने का प्रश्न है युग की परिस्थितिया ही प्रधानतया इसके लिए उत्तरदायी थी। परन्तु, नवीन सौन्दर्य चेतना आग्ल रोमांटिक काव्य के प्रभाव का परिणाम थी तथा अभिव्यजना के स्वरूप पर बहुत अंशों मे बगला के माध्यम से फ्रांसिसी प्रतीकवाद का प्रभाव प्रतिफलित हुआ।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। उसमे प्रकृति चित्रो की अत्यधिक प्रचुरता है तथा पूर्वयुगीन हिन्दी कविता मे प्रकृति वर्णन से भिन्न रूप म प्रकृति चित्रण का विकास हुआ है।

हम देख चुके हैं कि आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रकृति वर्णन का सूत्रपात श्रीधर पाठक द्वारा किया गया। श्रीधर पाठक गोल्डस्मिथ व टामसन के प्रकृति

● सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला 'अनामिका', भारती भडार, इलाहाबाद सवत् १६६५ प १४

आज नही है मुझे और कुछ चाह
अर्घ विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये छोड कर बधनमय छन्दो की छोटी राह !
गजगामिनी पथ तेरा सकीर्ण कटकाकीर्ण
कैसे होगी उसम पार ?

(२) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 'गीतिका',
भारती भडार, इलाहबाद स० १६६५
नव गति नव लय, ताल छन्द नव
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव पर नव स्वर दे !

वर्णन से प्रभावित हुए थे। द्विवेदी युग में प्रकृति-वर्णन की प्रवृत्ति का अधिक विकास नहीं हुआ था। द्विवेदी जी के प्रभाव से पौराणिक आख्यान काव्यों का प्रचार हुआ जिनमें पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति के यथातथ्य अथवा अलंकारिक वर्णनों को ही स्थान मिल सका। छायावादी कवियों ने अंग्रेजी रोमांटिक कविता का अध्ययन किया एवं उनके प्रकृति चित्रण से प्रभावित हुए। अतः उनकी कविता में प्रकृति सौन्दर्य चित्रण की ओर भी वृद्धि हुई है।

प्रकृति से प्रेरणा

छायावादी कवि प्रायः प्रकृति से अनुप्रेरित हुए हैं। पंतजी को कविता करने की प्रेरणा प्रकृति निरीक्षण से मिली।+ उनकी वीणा और पल्लव काल की कविताओं में प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं का आकर्षक वर्णन मिलता है। पंतजी को प्रकृति का सुन्दर रूप ही आकृष्ट करता है।== वे प्रकृति को अपने से अलग सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखते हैं। × महादेवी जी प्रकृति की अनेक रूपता में एकता के दर्शन करती हैं तथा उसे अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान करती हैं।*

\+ सुमित्रानन्दन पंत आधुनिक कवि २ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत २००५ पृष्ठ १

कविता करने की प्रेरणा मुझे प्रकृति से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल को है।

== सुमित्रानन्दन पंत वही पृष्ठ ३

साधारणतया प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे लुभाया है प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचता है। यदि मैं संघर्षप्रिय अथवा निराशावादी होता तो 'Nature red in tooth and claw वाला कठोर रूप जो विज्ञान का सत्य है मुझे अपनी ओर आकर्षित करता।

× सुमित्रानन्दन पंत वही, पृष्ठ ३

प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है।

* महादेवी वर्मा

जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके समीप हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।

प्रकृति सजीव सत्ता के रूप मे

छायावादी कवि प्रकृति को स्वतत्र सजीव सत्ता के रूप मे देखता है। छायावादी कविता का प्रारम्भ प्रसादजी की 'झरना' काव्य पुस्तक से माना गया है। प्रसादजी झरना को चेतनाहीन जलप्रवाह मात्र नही मानते वरन् उसके मधुर कल कल नाद मे वे छिपी हुई गहरी बात सुनते हैं।+ उनकी विषाद" कविता मे झरना किसी व्यथा से विकल होकर बिलखता ठुकराता फिरता है यह विषाद मानव विषाद की परछाहो मात्र नही है वरन् स्वय निर्झर के विषाद के रूप म प्रकट हुआ है।* प्रसाद जी किरण' का अलकारपूर्ण वर्णन करते हुए उससे सुमनो को खिला कर सोया बसत जगाने की प्रार्थना करते हैं। किरण किसी के अनुराग मे रगी हुई धरा पर प्रार्थना सदृश आती है। वह मौन सगीत से पूर्ण है। न जाने किस अज्ञात विश्व की वेदना दूती-सी आई है। वह पृथ्वी और स्वर्ग को जोड कर उनमे सम्बन्ध स्थापित करती है। कदाचित् पृथ्वी का शोक हर लेगी। माना वह ऊषा सुन्दरी के कनक वलय से विकीर्ण हुई है तथा उसके घर का सकेत कर रही है। परन्तु वह जसे ऊषा के प्रेम निकेत का सकेत करती है। कवि उससे सुमनो को खिला कर मधु बसत जगाने की प्रार्थना करता है।X यहा कवि प्रकृति को अपने मन के भावों से अनुरजित

\+ जयशकर प्रसाद 'झरना" पृष्ठ १
मनोहर झरना
कठिन गिरि कहा विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी

* निर्झर कौन बहुत बल खाकर बिलखाता ठुकराता फिरता
खोज रहा है स्थान धरा मे अपने ही चरणो मे गिरता
किसी हृदय का यह विषाद है छेडो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौडाओ करुणा का विश्रान्त चरण है (वही पृष्ठ १७)

X किरण तुम क्यो बिखरी हो आज रगी हो तुम किसके अनुराग ?
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन, मिलाती हो उससे भूलोक
जोडती हो कैसा सबध बना दोगी क्या विरज विशोक ?
सुदिन मणि वलय विभूषित उषा सुन्दरी के धर का सकेत
कर रही हो तुम किसको मधुर किसे दिखलाती प्रेम निकेत
चपला ! ठहरो कुछ लो विश्राम चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार जगे फिर सोया वहा बसत !

(प्रसाद किरण)

करके देखता है ।

पतजी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं । 'मोह' कविता मे वे प्रकृति के सौंदय मे
इतने अधिक खो जाते हैं कि उहे नारी-सौंदय आकृष्ट नही कर पाता । प्रकृति
से सम्बध तोड कर वे बाला के बाल-जाल' मे अपनी भावो को नही उलझाना
चाहते ।+ अभी तो कवि का बाल-हृदय चिडियाँ बादल, इद्रधनुष ओस-तारे,
नदी-झरने ऊषा-सध्या आदि म ही लीन रहता है । कवि की काव्य-
कल्पना समवयस्का बाल प्रकृति के गले म बाहे डाल कर विहार-सी करती प्रतीत
होती है । पतजी प्रकृति को मा के रूप मे देखते है तथा स्वय बालिका का रूप
अपना कर उसकी गोद मे सोने की कल्पना करते हैं ।• उनकी प्रथम रश्मि
कविता मे बाल-सुलभ जिज्ञासा सुदर रूप म व्यक्त हुई है । प्रात काल के समय
पक्षी चहचहा उठते हैं । कवि के मन म सहसा यह भाव जागृत होता है कि अरुण
की प्रथम रश्मि के आने का विहगिनी को किस प्रकार पता चला । अभी तो वह
स्वप्न नीड मे सोई हुई थी । नीड के बाहर जुगनू प्रहरी अपने पखो के सुख म
झूमते हुए द्वार पर घूम रहे थे । अनग से सुदर रूपवाले यह पक्षी चद्रकिरणो
की डोर से पृथ्वी पर उतर कर नवीन कलियो के मुख का चूम उहे मुस्कराना
सिखा रहे थे । स्नेह रिक्त तारो के दीपक जल रहे थे और तरु के पात निस्पद थ ।
पथ्वी पर स्वप्न विचर रहे थ तथा चारो ओर अ धेरा था । तब सूय की प्रथम
रश्मि का पथ्वी पर आगमन हुआ । कवि के मन मे जिज्ञासा का भाव उत्पन होता
है कि बाल विहगिनी को सूय रश्मि के आने का किस प्रकार पता चला और वह
जग कर कब उसका स्वागत-गान गाने लगी ।×

\+ सुमित्रान न पत आधुनिक कवि २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुथ
सस्करण सवत २००६ पष्ठ १

छोड द्रुमों की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया
बाल तेरे बाल जाल मे कसे उलझा दू लोचन ।
छोड अभी से इस जग को

• सुमित्रानन्दन पत पल्लविनी पष्ठ २७ ।

मां सबसे छोटी होऊ
तेरी गोदी म सोऊ

× सुमित्रान दन पत "आधुनिक कवि" २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, चतुर्थ
सस्करण सवत् २००६ पष्ठ ३

प्रथम रश्मि का आना रगिणि
कस तू ने पहचाना ?
कहा, कहा हे बाल विहगिन।
पाया तू ने यह गाना ?

प्रकृति के प्रति कौतूहल और जिज्ञासा की भावना पन्त की कविताओं में राशि राशि पायी जाती है। प्रकृति के दृश्यों को देख कर वे उसमें चेतना का अनुभव करते हैं। 'पर्वत-प्रदेश में पावस' कविता में वे पर्वत का एक दीर्घकाय चेतना स्वरूप देखते हैं जो अपने ही पैरों तले पड़े ताल रूपी दर्पण में सहस्र सुमनों के दृग फाड़ कर अपना महाकार देखता है। ×

पाश्चात्य प्रभाव से पहले की हिन्दी कविता के प्रकृति वर्णन से छायावादी कविता का यह स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन सर्वथा भिन्न है। पाश्चात्य प्रभाव से पहले की कविता में प्रकृति का प्राय उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है। मनुष्य के दुःख में प्रकृति दुःखी चित्रित की गयी है और उसके सुख में आह्लाद दायक। अधिक से अधिक प्रकृति का यथातथ्य वर्णन किया गया है। परन्तु प्रकृति की मनुष्य के दुःख सुख से अलग स्वयं स्वतन्त्र सत्ता है, वह सजीव है और मनुष्य की तरह स्वयं भी अनुभव कर सकती है, यह विचार अंग्रेजी रोमांटिक कवियों की देन है। वर्ड्सवर्थ ने एक स्थल पर लिखा है And it is my faith that every flower enjoys the air it breathes

पंतजी भी 'लहरों का गीत' में लहरों को अपने ही सुख में लीन देखते हैं

अपने ही सुख में चिर चंचल
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल

इसी प्रकार निरालाजी 'बादल राग' में छोटे छोटे पौधों में चेतना का आरोप करते हैं। वे हंसते हैं और बादल को बरसने के लिए बुलाते हैं। वर्ड्सवर्थ की तरह हम यहां प्रकृति के बीच मानव-व्यापारों की छाया पाते हैं। +

× आधुनिक कवि २ पंत पृष्ठ ३।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पड़ा ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल।

+ निराला 'बादल राग'
हंसते हैं छोटे पौधे लघु भार
शस्य अपार

पतजी की 'बादल' 'एक तारा' और 'नौका विहार' कवितायें स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन के सुन्दर उदाहरण हैं। डा० नगेन्द्र ने पंत के 'बादल' की शैली के 'क्लाउड' (Cloud) से तुलना करते हुए कहा है कि 'बादल' की अधिकांश कल्पनाएं शैली के 'क्लाउड' से प्रभावित हैं। वे 'क्लाउड' की कल्पनाओं से मिलती हैं। 'बादल' की रचना मे पंत शेली से प्रभावित हुए हैं। इन दोनों कविताओं मे यह भिन्नता है कि जहां शैली ने बादल के भयंकर रूप का भी चित्रण किया है वहां पंत उसके कोमल व रमणीय रूप की ओर आकर्षित हुए हैं। पंत के 'बादल' 'धूम धुआरे' और 'विकरारे' होकर भी 'मदनराज के वीर बहादर' ही हैं। शैली के बादल की तरह वे विद्रोह का घोष नहीं करते। यदि कभी अचानक भूतों का विकट महाकार प्रकट करने उनकी हंसी कड़कती है और संसार थर्राने लगता है तो दूसरे ही क्षण वे कवि की कल्पना मे अत्यन्त स्निग्ध रूप धारण कर लेते हैं। वे परियों के बच्चों की तरह सीपी से सुन्दर पंखों को पसार कर चन्द्र किरण रूपी इन्दु करों को पकड़ धवल ज्योत्सना के समुद्र में तरने लगते हैं। कवि ने शांत वातावरण का ही चित्रण किया है।+

'एक तारा' म भी कवि ने संध्या के शान्त वातावरण का चित्रण किया है। नीरव संध्या म सारा ग्राम-प्रान्त मौन हुआ हुआ है। पत्तों के शिथिल होठों पर वन का सारा मर्मर वीणा के तारों के मौन हो जानेवाले संगीत की तरह सो गया है। पक्षियों का कलरव शान्त हो गया और गोधूलि भी नहीं दिखायी देती। झींगुरों का स्वर तीर की तरह वातावरण की शान्ति को चीर देता है। संध्या की स्वर्णिमा नष्ट हो गयी है जैसे होठों की लालिमा तीखी ठंड से डर कर नीली पड़ जाय। पेड़ के शिखर से सूर्य-किरण का विहग न जाने किस ओर किस गुहा-नीड़ म

हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
मुझे बुलाते

\+ सुमित्रानन्दन पंत "आधुनिक कवि २ हि० सा० साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृष्ठ संख्या २४

फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप से पंख पसार
समुद्र परते शुचि ज्योत्सना म
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार

उड गया है और तरु वन पर स्वप्नो से भरा नीला कोमल अँधेरा छा गया है। उस अन्धकार मे एक नक्षत्र ज्योतित हो रहा है।

'एक तारा' म प्रकृति के स्थिर सौंदय का वर्णन है परन्तु 'नौका विहार' मे प्रकृति के चल सौन्य का भी चित्रण हुआ है। कवि धवल ज्योत्सना मे स्नात गगा तट के शान्त वातावरण को चित्रित करता है। पालों के पख खोल कर हसिनी की तरह नाव चल पडती है। नाव चलने पर पानी म पडनेवाली नभ की परछाही हिल उठती है जसे नभ के ओर छोर हिल पडे हो। कवि ने नाव के बीच धार मे जाने और तट पर लगने का सूक्ष्म चित्रण किया है।

प्रकृति का मानव मन पर प्रभाव

पत की एक तारा' और 'नौका विहार' कविताएँ सुन्दर दृश्य चित्र उपस्थित करती हैं पर तु उनकी एक अन्य विशेषता है प्रकृति का मानव मन पर प्रभाव डालना। फ्रासिसी दार्शनिक रूसो (Jean Jacques Rousseau) ने प्रकृति के सम्पर्क म रहनेवाले मनुष्यो पर प्रकृति के सुखद प्रभाव का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। अग्रेजी रोमाटिक कवि वर्डसवर्थ रूसो की विचारधारा से प्रभावित हुए थे। वे प्रकृति को पवित्र भावो को जगाने वाली सत्ता मानते हैं

Well pleased to recognize in Nature,
And the language of the sense
The anchor of my present thoughts
The guide the guardian of my heart,
And the soul of my moral being

पतजी 'एक तारा' और "नौका विहार' कविताओ मे प्रकृति के मानव मन पर पडनेवाले प्रभाव को व्यक्त करते हैं। कवि "एक तारा' के रूप म नील नभ को रजत सीप सदृश आकाक्षा का दीप लिये देखता है। मानो नभ अपनी आत्मा के स्वरूप को ढूढ रहा है। कवि मानव के जीवन के सम्बन्ध में विचार करने लगता है।

क्या उसकी आत्मा का चिर धन
स्थिर, अपलक नयनो का चिन्तन ?
क्या खोज रहा वह अपनापन !
दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन लगता यह निखिल विश्व निर्जन
वह निष्फल इच्छा से निर्धन
आकाक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बधन विवेक
चिर आकाक्षा से ही थर थर उद्वेलित रे अहरह सागर

नाचती लहर पर हहर लहर ! +

"नौका विहार' म प्रकृति के साहचर्य से कवि के मन म कुछ विचार प्रालोड़ित हो उठा है तथा प्रकृति के शाश्वत रूप का ज्ञान कर उसे सृष्टि जीवन की शाश्वतता का ज्ञान होता है जिसकी प्रभा म वह अपना अस्तित्व तक भूल जाता है।×

निराला की 'नर्गिस' कविता म 'नर्गिस' की सुगंध पाकर कवि का चिन्तनशील मन पृथ्वी पर ही स्वर्ग अनुभव करता लगता है।(A) सखी बसन्त आया' गीत म उन्होंने वसन्त के आगमन पर वन म छा जानेवाले हर्ष का वर्णन किया है।[Δ]

\+ सुमित्रानन्दन पंत 'गुञ्जन' भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद सवत २००६ पृष्ठ ८५

× सुमित्रानन्दन पंत वही पृष्ठ १०४
क्या क्यों लगती है नाव पार
उर मे प्रालोड़ित शत विचार
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जग का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत सगम
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास
शाश्वत लघु लहरों का विलास
हे जगजीवन के कर्णधार ! चिर जन्म मरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका विहार
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व-दान !

(A) निराला 'अनामिका' भारती भडार, इलाहाबाद स० १९९५ पृष्ठ १८८
'स्वर्ग झुक आवे यदि धरा पर तो सुन्दर
या कि यदि धरा उड़े स्वर्ग पर तो सुघर ?"
वही हवा नर्गिस की छा गई सुगंध
धन्य स्वर्ग यही, कह किये मैंने दृग बन्द

[Δ] सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" गीतिका भारती भंडार इलाहाबाद, तृतीय संस्करण संवत २००५ पृष्ठ ५

वड्सवथ 'डेफोडिल्स' (Daffodils) कविता म जिस प्रकार वन-श्री को नहीं भूलते और यह उनके उदास मन या अवकाश क्षणो म स्मृति म सजग हो उठती है, निराला को भी वन-श्री नही भूलती। +

महादेवी जी की कविता म प्रकृति परोक्ष प्रियतम की प्रणय स्मृतियों से रगी हुई है। प्रात सौन्दय का स्वतत्र वणन करत हुए वे लिखती हैं कि प्रात कालीन किरण अरुण बाण की तरह पृथ्वी के शरीर मे चुभ जाती है। सौरभ क केशों को फैला कर समीर परियां विहार करती हैं। तितलियों के नव कुमार भूम भूम कर भीगी केसर का मद पीते हैं। नींद मधुर स्वप्नों के पखों को फैला कर क्षितिज के पार उड जाती है तथा आखो के कज कोषों म विस्मृति का खुमार छा जाता है। हृदय का चतुर चितेरा स्मृति के प्रात को आसू और हास से रग कर अकित कर देता है। × प्रसाद जी की 'कामायनी म प्रकृति-वणन का अत्यधिक समृद्ध रूप मिलता है। प्रकृति मानवीय क्रियाओ की पृष्ठभूमि स्वरूप चित्रित की गयी है तो वही प्रकृति ही मानवीय भावनाओं की प्रतीक बन गयी है। मनु के मन म आशा का सचार होने से पहले प्रकृति अपने कल्याणकारी रूप मे चित्रित की गयी है। * काम' सग मे वसत का वणन यौवन के प्रतीक रूप म किया गया है। जीवन-वन म रजनी के पिछले पहरो मे मधुमय वसत का आगमन किशोरावस्था के पश्चात् यौवन क आगमन का सूचक है। प्रसाद जी ने प्रकृति का मानव भावों से अनुरजित और कहीं पर यथाथ किन्तु अलकारिक वणन किया है। आशा सग और रहस्य सग मे हिमालय के वणन म यह भेद स्पष्ट है। प्रथम वणन म प्रकृति के श्लिष्ट चित्र का उपस्थित करत हुए कवि ने स्वग के प्रतीक आकाश और पृथ्वी की तुलना की है तथा पृथ्वी प्रभावमय

+ निराला वही पृष्ठ १०१
रही आज मन म
वह शोभा जो देखी थी वन मे

× महादेवी वर्मा आधुनिक कवि १ हिंदी साहित्य सम्मलन, प्रयाग चतुथ सस्करण सवत २००६ पृष्ठ २४

* जयशकर प्रसाद 'कामायनी' भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद अष्टम सस्करण सवत २०१० पष्ठ २३
ऊषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी, जल मे अतर्निहित हुई

आकाश को हिमालय के रूप में संसार के मानदण्ड और वैभव को बतलाती है।+ पर द्वितीय में हिमालय के सौन्दर्य का अलंकारिक वर्णन किया गया है।× वर्ड्सवर्थ के काव्य की तरह 'कामायनी' में प्रकृति मानव को संदेश देती है। श्रद्धा विगत स्मृतियों में भूले मनु को कर्म क्षेत्र में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरणा देती है।•

प्रकृति से शिक्षा ग्रहण

अंग्रेजी रोमांटिक काव्य में प्रकृति चित्रण की एक विशेषता प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करना भी है। वर्ड्सवर्थ की दृष्टि में सत्य और असत्य का जो ज्ञान प्रकृति के साहचर्य से प्राप्त होता है वह मानव समाज के बड़े बड़े ज्ञानी और पंडित भी नहीं दे सकते

One impulse from the vernal wood,
Can teach you more of man
Of moral evil and of Good,
Than all the sages can

\+ वह अनन्त नीलिमा व्योम की
जड़ता-सी जो शांत रही
दूर दूर ऊँचे से ऊँचे
निज अभाव में भ्रान्त रही
उसे दिखाती जगती का सुख
हँसी, और उल्लास अजान
मानो तुंग तरंग विश्व की
हिमगिरि की वह सुघर उठान (वही पृ० ३०)

× नीचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहने
कुंजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने
प्रवहमान थे निम्न देश में
शीतल शत शत निर्झर ऐसे
महाश्वेत गजराज गंड से
बिखरीं मधु-धारायें जैसे (वही पृ० २५८)

• अवतरण प्रसंग वही पृष्ठ ५५
प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल
पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनन्द
किये है परिवर्तन में टेक

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने की प्रवृत्ति सर्वथा पश्चिम की देन नहीं है। तुलसी की कविता में भी प्रकृति का उपदेशात्मक रूप पाया जाता है। अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के प्रभाव स्वरूप प्रकृति-चित्रण ने इस रूप में और भी सौंदर्य प्रकट हुआ। तुलसी की तरह छायावादी कवि उपदेश के लिए प्रकृति से केवल उदाहरण नहीं ढूंढते वरन् वे प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करते हैं। इस प्रकार, पंत कहते हैं

वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुस्काना
मैं सीख न पाया अब तक
दुख से सुख को अपनाना। +

दिन के प्रकाश में जो सत्य प्रकट नहीं होता उसे महादेवी प्रकृति की वस्तुओं में पाती हैं। × 'टु ए स्काई लार्क' में शेली 'स्काई लार्क' से अपने को गीतों की मधुरता प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता है

Teach us sprite or bird
What sweet thoughts are thine,
I have never heard
Praise of love or wine
That panted forth a flood of rapture so divine
Teach me half the gladness,
That thine brain must know
Such harmonious madness,
From my lips would flow
The world should listen then as I am
listening now ? •

+ सुमित्रानन्दन पंत 'गुंजन' भारती भंडार लीडर प्रेस,
इलाहाबाद संवत २००६ पृष्ठ २२

× महादेवी वर्मा

यह बताया झर सुमन ने
यह बताया मूक तृण ने
वह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकों ने
सत्य जो दिव कह न पाया था अमिट संदेश में

• P B Shelley : To a skylark An Anthology of famous English and American poetry The Mod Lib, New York, 1945 Pp 253

भौतिकवाद की देन है जिसकी उन्नति विज्ञान के विध्वंसकारी प्रभाव के कारण छायावादियों को आकर्षित नहीं कर सकी । तथापि छायावादी कविता में प्रकृति के उग्र रूप का कुछ स्थलों में चित्रण हुआ है । हम देख चुके हैं, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति के उग्र रूप के चित्रण का आरम्भ श्रीधर पाठक द्वारा किया गया जो कि इस रूप में प्रकृति-वर्णन करने के लिए टामसन के प्रकृति चित्रण से प्रभावित हुए थे । छायावादी कविता में प्रकृति के उग्र रूप का अधिक ऊर्जापूर्ण चित्रण हुआ । 'कामायनी' में देव सृष्टि के प्रलय के वर्णन में तथा मनु की इड़ा पर अधिकार करने की कामना को व्यक्त करने में प्रकृति का रौद्र रूप चित्रित किया गया है ।# पंत ने भी 'परिवर्तन' कविता में प्रकृति के भयंकर रूप को चित्रित किया है । परन्तु यह कविता चिन्तन प्रधान होने के कारण स्वभावतया इसमें प्रकृति के कोमल व भयंकर दोनों रूपों का समावेश हो गया है । नरेन्द्र ने 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' कविता में मध्याह्न को सर्प के रूप में देखा जो धरती की छाती पर कुण्डली मारे बैठा है तथा लू के रूप में वह विषभरी भयावह फूत्कार करता है जो महाशून्य में महानाश के पहाड़ के सदृश ठहर जाती है ।•

प्रकृति के माध्यम से ऐतिहासिक अनुषंगों की उद्भावना

इतिहास के ज्ञान ने छायावादी कविता में प्रकृति चित्रण की एक नवीन प्रवृत्ति को जन्म दिया । इससे पूर्व भारतेन्दु की कविता में भी ऐतिहासिक नामों का उल्लेख कर भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण करने की प्रवृत्ति मिलती है । परन्तु छायावादी कविता में प्रकृति की वस्तुएं ऐतिहासिक अनुषंगों को जगाती हैं तथा कवि सुदूर अतीत में अपना भूला हुआ गान पाता है ।× इस प्रकार, निराला

\# जयशंकर प्रसाद 'कामायनी', भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं० २०१० पृष्ठ १४ तथा पृष्ठ १८५ ।

• नरेन्द्र 'पलाश वन' भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सन् १९४६ पृष्ठ ७१ ।

× सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' परिमल, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, पृष्ठ ७६

कठिन शृंखला बजा बजा कर
गाता हूं अतीत के गान
मुझ भूले पर उस अतीत का
क्या ऐसा ही होगा ध्यान ?
शिशु पाते हैं माताओं के वक्षस्थल पर भूला गान
माताएं भी पातीं शिशु के अधरों पर अपनी मुस्कान

'यमुना के प्रति' में यमुना की लहरों में अतीत का गान सुनते हैं ।* दिनकर के 'रेणुका' काव्य संग्रह की प्रायः सभी कविताओं में प्रकृति की वस्तुएं इतिहास की स्मृतियों को जगाती हैं । 'हिमालय' कविता में कवि देश की वर्तमान दशा की ओर निहारने के लिए उससे प्रार्थना करता है और इस पर दुःख प्रकट करता है कि देश का अतीत गौरव शेष हो गया है । ऐतिहासिक अनुषंगों को जगाने की प्रकृति के सम्बन्ध में स्वाभाविक रूप से अंग्रेजी लेखक वाल्टर स्काट की ओर ध्यान चला जाता है जिसके उपन्यासों में प्रकृति की वस्तुएं प्राचीन युग की कथाओं को कहती हुई चित्रित की गयी हैं ।

प्रकृति का मानवीकरण

छायावादी कविता में प्रकृति चित्रण के रूप में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है । अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में कोट्स शेली विलवर्थ प्रभृति कवियों ने प्रकृति की वस्तुओं को सबोधित करके जो गीत (Odes) लिखे हैं उनमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया था । प्रकृति के मानवीकरण की यह प्रवृत्ति छायावादी कवियों में भी पायी जाती है । प्रसादजी की 'निर्झर', किरण तथा पंत की 'बादल' छाया आदि सबोध गीतियों से हम पीछे उदाहरण दे चुके हैं जिनमें प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति मिलती है । सबोध गीतियों के अतिरिक्त अन्य काव्य रूपों में भी प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण मिलता है ।

कामायनी के 'आशा' सर्ग में रजनी एक प्रेमिका के रूप में समीर के मिस झाँकती सी अपने प्रेमी से मिलने के लिए जाती है । प्रेम में उन्मत्त वह झिलमिला उठती है तथा उसके प्रेमोन्माद से तुहिन कण व फेनिल लहरों में उत्पात मच जाता है । चांदनी के घूंघट को उठा मन में प्रणय स्मृतियां जगाये वह पथ भ्रान्त सी बढ़ी जा रही है । उस समय उसे सुधि नहीं रहती और उसके अंचल से तारों की मणिराजियां बिखर पड़ती हैं । उसके कहीं फटे हुए नीले वसनों से अंगों का यौवन झांक उठता है तथा अकिंचन संसार उसके सौन्दर्य को निहार कर निहाल हो जाता है । अनन्त ऐश्वर्य की स्वामिनी होते हुए भी अपने प्रेमी के वियोग में वह विकल हो उठी है । वह हृदय के उन घावों को टटोल

---

* सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' वही, पृष्ठ १६ ।
यमुने तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान

रही है जो प्रणय स्मृति के रूप में हृदय स्थल म बसे हैं। ✖ प्रसादजी 'लहर' मे प्रकृति के दृश्य चित्रो का मानवीकरण के रूप म चित्रण करते हैं। वे 'बीती विभावरी जाग री' गीत में सौन्दर्य की प्रतिमा को जगाने के लिये ऊषा और लता को नारी रूप में अ कित करते हैं जो पनघट से जल भरने की नारी सुलभ क्रिया म लीन है।

पत भी प्रकृति को नारी रूप में देखते हैं। हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि अपनी आरम्भिक कविताओं म पत प्रकृति के लिये 'मां' शब्द का संबोधन प्रयोग में लाते हैं तथा स्वय उसकी गोद म बालिका बन कर खेलने म आनन्द अनुभव करते हैं। गु जन म 'चांदनी' का उन्होंने नारी रूप मे वर्णन किया है। + चादनी कभी शशि मुख को करतल पर धरे एकाकिनी बठी है कभी वह सरिता के पुलिन पर सो जाती है। स्तब्ध समीरण उसकी सांसें तथा लघु लहरों की गति हृदय का स्पदन बन जाती है। अपने ही सौन्दय की छाया म छिप कर वह कभी शिखर पर खडी हो जाती है तथा सागर की लहर लहर पर उसकी सुन्दर छवि थिरकने लगती है। वह कभी दुलहन सी प्रतीत होती है मानो दिन की आभा दुलहन बन आयी है और आकाश सेज पर सोते हुए लाज से मर मर जाती है। पत ने 'सध्या' का भी अप्सरा के रूप मे मनोरम चित्रण किया है। सध्याकालीन स्वर्णाभा के रूप मे उसका स्वर्णांचल लहराता है। सुनहले केशों का फलाये वह मथर गति से व्योम से धरा की ओर बढती है। खग कुल का रव ही उसकी नूपुर ध्वनि है तथा सीपी से बादलों के पखो को पसार कर पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है।

निराला की जूह की कली प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण है। 'जूही की कली' मे कवि नायिका का भाव आरोपित करता है जिसका हृदय अपने प्रेमी पवन की स्मृतियो मे लीन है। सहसा दक्षिण दिशा से नायक पवन प्रेमान्ध बना आता है तथा पल्लव पय क पर सोई हुई नायिका कली के कपोलो को चूम कर उसे झकझोरता है एव रस लूटता है। 'शेफालिका' मे भी *निराला ने इसी प्रकार प्रकृति के वासनामय सौन्दय का चित्रण किया है।* 'सध्या-सुन्दरी' म परी के सदृश आकाश से उतरती हुई सध्या को कवि नारी रूप

✖ जयशकर प्रसाद "कामायनी" भारती भडार लीडर प्रेस इलाहाबाद अष्टम सस्करण सवत २०१० पृष्ठ ३६

• सुमित्रानन्दन पत 'गु जन' भारती भडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद सवत् २००६ पृष्ठ ८७

नीले नभ के शतदल पर, वह बठी शारद हासिनी
मृदु करतल पर शशि मुख धर नीरव अनिमिष, एकाकिनी

म देखता है। उसके काले बालों की वेणी मे लगा हुआ तारा हसता प्रतीत होता है तथा वह नीरवता सखी के कधो पर बाहें डाले गम्भीर बनी अम्बर-पथ से छाया-सी अवतीर्ण होती है।+

महादेवी ने भी 'वसत रजनी' का सुन्दरी के रूप मे वर्णन किया है। वे रजनी को तारका की नवीन वेणी बांधे चन्द्रमा का शीषफूल पहिने और चन्द्रिका का घूघट डाले क्षितिज से उतरने को आमन्त्रित करती हैं। उसकी चितवन से तारों के रूप मे सुन्दर मोती बिखर पडते हैं तथा धरा पुलकित हो उठती है। *

\+ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' पुल 'परिमल', गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ पृष्ठ १३५
दिवसावसान का समय
मघमय आसमान से उतर रही है
वह सध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे, धीरे धीरे
तिमिरांचल म चचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर है दोनों उसके अधर
कि तु गम्भीर—नहीं है उनमे हास विलास
हसता है तो केवल तारा एक
गु था हुआ उन घु घराले काले काले बालों से
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक
अलसता की सी लता
किन्तु, कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कधे पर बाहें डाल
छांह-सी अम्बर पथ सी चली।

* महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' १. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ सस्करण सवत २००६ पृष्ठ ४८
धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी
तारकमय नव वेणी बन्धन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित घन अवगुण्ठन
मुक्ताफल अभिराम बिछादे
चितवन से अपनी !

'रूपसि तेरा घन केश पाश' गीत मे महादेवी प्रकृति को अप्सरा के रूप म देखती हैं।* लय गीत मंदिर गति ताल भ्रमर गीत मे प्रकृति के विराट् रूप को अप्सरा के रूप मे समर्पित किया गया है। प्रकृति सुन्दरी आलोक और अधकार के श्वेत व श्याम वस्त्र पहिने हुए है। समुद्र के गर्जन मे उसकी मजीर बज उठती है, झझा के वेग म अलकों के जाल बिखरे पडते हैं, बादलो की ध्वनि म किंकिणी नाद सुनाई पडता है। सूर्य और चन्द्र हिलते हुए कुण्डल हैं तारो की माग जडी हैं, चपला के रूप मे उसका विभ्रम प्रकट होता है, इन्द्र धनुष के रूप म मुस्कान तथा हिमकण श्रम बिन्दुओ को प्रकट करते हैं। इस प्रकार वह सुन्दर नृत्य मे लीन है। 'पलाश वन' मे नरेन्द्र आषाढ़ के आगमन का वर्णन जामुनी रग की पाग बाधे हुए आनेवाले पुरुष के रूप मे करते हैं। ×

प्रकृति के साहचर्य मे सरल जीवन

उपरोक्त रूपो म प्रकृति चित्रण के साथ छायावादी कविता मे प्रकृति के साहचर्य मे रहनेवाले लोगो के सरल जीवन का सौन्दर्य भी व्यक्त किया गया है। वर्ड्सवर्थ ने अपनी अनेक कविताओ म प्रकृति के वातावरण म रहनेवाले लोगो के जीवन म प्रकृति के प्रेम तथा उनके सुख दु,खो का गान किया है। इस प्रकार की वर्ड्सवर्थ की एक कविता 'द सोलिटरी रीपर' (The Solitary Reaper) है जिसमे कवि एकाकी 'कृषक बाला' को घास काटने और मधुर गीत गाते हुए देखता है। उस गीत की भाषा कवि नही समझ पाता पर तु वह कल्पना करता है कि वह कदाचित् किन्ही पुरानी अवसाद पूर्ण घटनाओ की कथा गा रही है। पतजी की

---

* रूपसि तेरा घन केश पाश
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश पाश
सौरभ भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अजन सा दुकूल
चल अचल से झर झर झरते
पथ म जुगनू से स्वर्ण फूल
दीपक सा देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास (वही पृष्ठ ५५)

× नरेन्द्र पलाश वन भारतीय भण्डार, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण सन् १९४६ पृष्ठ ६२
पकी जामुन के रग की पाग
बाँधता आया लो आषाढ

'कृषक बाला' कविता वड्सवथ की "सोलिटरी रीपर' से प्रभावित जान पड़ती है। वड्सवथ रीपर को देख कर कहते हैं।

Behold her single in the field
Yon solitary Highland lass
Reaping and singing by herself •

पंत की 'कृषक-बाला' भी एकाकी संगीत मे लीन श्रम निरत है

उस सोधे जीवन का श्रम
हेम हास से शोभित है नव
पके धान की थाली में
कटनी के घुंघुर रुन झुन
(बज बज कर गाते मृदु गुन)
केवल श्रोता के साथी हैं
इस ऊषा की लाली में

'रीपर' के संगीत को सुन कर वड्सवथ जिज्ञासापूर्ण प्रश्न करते हैं

Will no one tell me what she sings
Perhaps the plaintive numbers flow
For old unhappy far off things
And battles long ago
Or is it some more humble lay
Familiar matter of today
Some natural sorrow loss or pain
that has been or may b. again +

पंत कृषक बाला के गान म सुदूर अतीत की स्मृतियां व युद्ध गाथा की परिकल्पना नहीं करते वरन् वतमान भारतीय जीवन की स्वाभाविक छाया देखते हैं

सास ननद भय भूख अजय
शान्ति अलस औ श्रम अतिशय
तथा कास के नव गहनों से

• Wordsworth William An anthology of famous Englyh and American poetry, The Mod Lib,, New York 1945 P P 197

+ वही, पृष्ठ १६८

Agnes) में यौवन और उन्माद के साथ ही वह सौन्दर्य की सूक्ष्म व आत्मिक व्यंजना करता है

She knelt so pure a thing so free from mortal taint

नारी के प्रति यह पवित्रता की भावना छायावादी कवियों में भी पायी जाती है। निराला नारी के प्राण को स्नेह से निर्मित और अमृतमय शुद्ध ज्ञानस्वरूप देखते हैं जो अपने स्पर्श से मृत्यु को भी सुन्दर बना देती है।× पन्त पृथ्वी पर नारी हृदय के भीतर स्वर्ग के दर्शन करते हैं। आंसू की बालिका के सौन्दर्य में वे स्वर्गिक पावनता का अनुभव करते हैं

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि
त्रिवेणी की लहरों का गान।=

नारी के बाह्य सौन्दर्य के रूप में उसके आन्तरिक सौन्दर्य का ही व्यक्तिकरण हुआ है। प्रसाद की 'कामायनी' में श्रद्धा 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार' है अथवा पन्त की ज्योत्स्ना का सौन्दर्य 'मन की सुधि तन पर उतर आई' के रूप में व्यक्त हुआ है। छायावादी कविता की नारी हृदय सत्ता के सौन्दर्य से मण्डित होने के कारण रीतिकालीन नारी की तरह वासना की छलना मात्र नहीं है।

नारी सौन्दर्य वर्णन में प्रकृति से उपमानों का प्रयोग

रीतिकाल एवं द्विवेदी-युग में नारी के बाह्य-सौन्दर्य का वर्णन निश्चित उपमानों की गणना से कर दिया जाता था। नख से शिख तक नारी के अंगों के लिए निश्चित उपमान थे तथा नारी-सौन्दर्य वर्णन के लिए कवि की मौलिक उद्भावना का कोई अवसर नहीं था। छायावादी कविता में नारी-सौन्दर्य वर्णन

× सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' गीतिका' भारती भण्डार, इलाहाबाद तृतीय संस्करण संवत् २००५ पृष्ठ ७१

तुम्हारे सुन्दरी कर सुन्दर
मिलाये हुए वर अमर
मनावृत मुकुल स्नेह के प्राण
अमृत ही अमृत ज्ञान ही ज्ञान
मृत्यु को अपने ही कर म्लान
कर दिया तुमने प्रिया सुघर

= सुमित्रानन्दन पंत आधुनिक कवि २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत् २००६ पृष्ठ ११

म प्रकति स उपमान ग्रहण करने की प्रवत्ति पाई जाती है। आग्ल रोमांटिक कवियो में नारी सौ दय का वणन प्रकृति से उपमान लेकर करने की प्रवृत्ति व्यापक रूप मे थी। सस्कृत में कालिदास ने भी प्रकृति मे उपमाए चुन कर नारी सौ दय का वणन किया है। अत छायावादी कविता म यह प्रवत्ति सवथा नवीन नही है तथापि आंग्ल रोमांटिक कविता के प्रभाव स छायावादी कविता में यह प्रवत्ति और भी विकसित हुई।

प्रसादजी की 'कामायनी' में चित्रित श्रद्धा फूलो से भरी हुई लता अथवा चादनी से लिपटे हुए श्याम बादल के सदृश प्रतीत होती है = और सौन्दय के अनुरूप उसकी लम्बी काया दर्शायी गई है। वह गाधार देश के नीले रोमवाल चम का आवरण पहने है जिसम स उसके अधखुले अ गो का सौन्दय दिखाई देता है। कवि इसकी मघ रूपी वन मे गुलाबी रग के बिजली के प्रस्फुटित पुष्प से उपमा देता है। + निश्चय ही सौन्दय चित्रण के लिए यह उपमान रीतिकालीन कवियों की दृष्टि मे कल्पनातीत प्रतीत होते हैं। कभी कभी प्रसादजी की उपमायें मिल्टन की उपमाओ (Miltonic Similles) का स्मरण दिलाती हैं जिसम वण्य विषय से कवि की कल्पना बहुत दूर चली जाती है। श्रद्धा के मुख पर आई हुई मुस्कान का प्रसा जो ने सूक्ष्म चित्रण किया है किसी फूलो के वन म मन्द हवा के चलने स सौरभ साकार रूप धारण करले-उसका शरीर मकरन्द के परमाणुओ स बना हो एव मधु के आधार पर स्थित हो सौरभ के उस साकार रूप पर मन की साध से युक्त चन्द्रिका टिटक रही हो वसी उसकी मुस्कान प्रतीत हो रही थी मानो हसी की विकल उन्मत्त प्रतिच्छाया अबाध क्रीडा म लीन स्वय प्रेम। == स्पष्ट ही मुस्कान क चित्रण मे उसका बाह्य रूप रग तो गौण हो गया है-प्रधान हो उठी है कवि-कल्पना और कोमल भावना।

= जयशकर प्रसाद 'कामायनी' भारती भडार लीडर प्रेस इलाहाबाद, अष्टम सस्करण सवत २०१० पष्ठ ४०

मील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अ ग
खिला हो ज्यो बिजली क फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रग

+ वही पष्ठ ४८

कुसुम कानन अ चल में मद पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर, खडा हो ले मधु का आधार
और पडती हो उस पर शुभ्र नवल मधु राका मन की साध
हसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब मधुरिमा खेला सदृश अबाध

एक भिन्न मानसिक अवस्था मे वर्ड्सवथ ने 'मेरी क्वीन आव स्काटस'

अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में वर्ड्सवर्थ ने भावी ने नारी सौन्दर्य चित्रण में प्रकृति के उपमानों और अन्य भावों को नारी के भावों के रूप में मूर्त रूप प्रदान किया है। नारी सौन्दर्य चित्रण में पंतजी इन कवियों से प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। वर्ड्सवर्थ ने 'द वर्जिन' (The Vergin) कविता में नारी-सौन्दर्य की प्रकृति की वस्तुओं से तुलना करते हैं।

Purer than foam on central ocean tost Brighter than eastern skies at daybreak strewn

With fancied roses, than the unblemished moon

Before her wane beings on heavens to blue coast

'भावी पत्नी के प्रति' कविता में पंत ने नारी-सौन्दर्य के चित्रण के लिए प्रकृति से उपमान चुने हैं

अरुण अधरों की पल्लव प्रात
मोतियों सा हिलता हिम हास
इन्द्रधनुषी-पट से ढक गात
बाल-विद्युत का पावस लास
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास
तुम्हारी-छवि का कर अनुमान +

वर्ड्सवर्थ की थ्री ईयर्स शी ग्रयू' (Three years she grew) कविता में जिस प्रकार प्रकृति 'लूसी' के अंगों को सौन्दर्य प्रदान करती है उसी प्रकार पंत की 'भावी पत्नी' का शृंगार स्वयं प्रकृति करती है। वर्ड्सवर्थ लिखते हैं

The floating clouds their state shall lend,
To her , for her the willow bend,

(Marry queen of scotts) की मुस्कान का चित्रण किया है। प्रकृति के व्यापारों को उपमान रूप में चित्रित करने की प्रवृति समान रूप से पायी जाती है

And like a star (that from a heavy cloud of pine tree foli age poised in air forth darts when a soft summer gate at evening parts

The gloom that did its loveliness enshroud)
She smiled

The world s classics ; Selected poems of Wordsworth Press unive rsity 1950 Pp 348

+ सुमित्रानंदन पंत गुंजन लीडर प्रेस, इलाहाबाद संवत २००६ पृ ४१

Nor shall she fail to see,
Even in the motions of the storm
Grace that shall mould the maiden's form
By silent sympathy
The stars of midnight shall be dear,
To her and she shall lean her ear,
In many a secret place
Where rivulets dance their wayward round
And beauty born of murmuring sound
Shall pass into her face

इसी प्रकार पंत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में प्रकृति नारी अंगों को सौंदर्य प्रदान करती है। आंखों की सुंदरता का वर्णन करते हुए पंत लिखते हैं

प्रथम स्वर्ण किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जलजात
नील व्योम ने ढल अज्ञात
उन्हें नीलिमा की अवदात

...

आकुल लहरों ने तत्काल
उनमें चंचलता दी डाल
नील नलिन सी हैं व आंख। =

इस प्रकार पंत की कविता में प्रकृति नारी को सौंदर्य प्रदान करती है। किन्तु इसके विपरीत कभी प्रकृति ही नारी अंगो से सौंदर्य ग्रहण करती है। + पंत कभी नारी सौंदर्य चित्रण के लिए अमूर्त भावों को ही नारी अंगों में मूर्त

= वही पृष्ठ ४१

+ स्वर्ण कलियों की रुचि सुकुमार
चुरा चम्पक तुम से मधुमास
तुम्हारी शुचि स्मिति से साभार
भ्रमर को मान द क्यों पास

... ...

लालिमा भर फूलों में प्राण
सीखती लाजवती मृदु लाज
माधवी करती झुक सम्मान
देख तुम मे मधु के सब साज (वही, पृष्ठ ५७)

रूप द देते हैं । 'उच्छ्वास' की बालिका के सौन्दर्य चित्रण में अमूर्त्त भावों के मूर्त रूप, सूक्ष्म चित्रण तथा चित्रोपमता का सुन्दर समन्वय हुआ है । 'सरलपन' का मन तथा 'निरालेपन' को आभूषण कहने में अमूर्त भाव की मूर्तता प्रकट होती है । 'अधरों के लचीले गान' को प्रस्फुटित शजव व मन की शिथिलता को दूर करते खींचा गया तनाव एवं मुस्कान का छिपी सी पी सी चित्रित करने में सूक्ष्म भाव की व्यंजना हुई है । अंतिम पंक्तियों में मुस्कान का अपनी सजीली सखी वाणी का हाथ पकड़े प्रकट होने में चित्र सा खिंच जाता है ।X

ऐन्द्रिय सौन्दर्य का चित्रण

छायावादी काव्य में नारी के ऐन्द्रिय सौन्दर्य चित्र भी मिलते हैं । इन ऐन्द्रिय चित्रों में नारी के बाह्य-सौन्दर्य का स्थूल वर्णन मात्र नहीं वरन् इनमें सूक्ष्म भावों की भी अभिव्यंजना हुई है । अंग्रेजी रोमाटिक कवियों में सम्भवत कीट्स के ऐन्द्रिय चित्रण का छायावादी काव्य के ऐन्द्रिय चित्रण पर प्रभाव पड़ा है । कीट्स की द इव आव सेंट एगनीज' कविता में एक लावण्यमयी युवती की कथा है जो सेंट एगनीज की रात्रि में एक किले में बन्दिनी बना दी गयी थी । जिस रात्रि को नव-प्रेमिकाएं अपने प्रेमियों के मन के स्वप्न चित्र सजोती उस रात्रि को मेडलेना का प्रेमी भी मडलेना के कक्ष में पहुंच जाता है जहां वह निद्रा में मग्न थी । जब वह निद्रा से जगती है तो अपने प्रेमी को पाकर उल्लास से भर उठती है

Full on this casement shone the wintry moon
And threw warm glues on Madeline s fair breast

X सुमित्रानन्दन पन्त 'आधुनिक कवि' २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृष्ठ ६

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन ही था आभूषण
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन
सुरीले ढीले अधरों बीच
अधूरा उसके लचका गान
विकच बचपन को मन को खींच
उचित बन जाता था उपमान
छिपी-सी पी-सी मृदु मुस्कान
छिपा-सी खिली सखी-सी साथ
उसी की उपमा हो बन गिरा का धार थी कर हाथ

As down she knelt for heaven s grace and boon
Rcse bloom fell on her hands together prest

पत 'भावी पत्नी के प्रति' कविता मे अपनी प्रेयसी से प्रथम मिलन की कल्पना करत हुए लिखते है

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकम्पित मृदु उर पुलकित गात
सशकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप
जडित-पद नमित पलक दगपात
जब पास आ न सकोगी प्राण
मधुरता मे सी मरी अजान
लाज की छुई मुई सी म्लान +

प्रकृति के प्रागन मे युगल प्रेमियो का मिलन देख कर कवि अपनी प्रेयसी से मिलन कामना करते हुए उससे एक रूप हो जाना चाहता है। × इसी तरह निराला की कविता मे भी नारी सौदय के ऐन्द्रिय चित्र पाये जाते हैं। यथा

नयनो का नयनों से बधन
कापे थर थर युग तन •

प्रेम-देवता व अप्सरा के विस्मय रूप का चित्रण

आग्ल रोमाटिक कविता की एक अन्य प्रवृत्ति देवता और परियों के आश्चय-लोक का चित्रण करना है। छायावादी कवि आग्ल रोमाटिक काव्य की इस प्रवत्ति से भी प्रभावित हुए हैं।

पत की 'अनग कविता कीटस की 'ओड टु साइके' (Ode to Psyche) कविता से प्रभावित प्रतीत होती है। 'ओड टु साइके' में पश्चिम के प्रेम देवता 'क्यूपिड' (Cupid) और 'अनग म भारतीय प्रेम देवता कामदेव का वणन है। कीटस सहसा पख युक्त साइके का दशन कर आश्चय चकित हो जाते हैं, कवि को लगता है जस वह स्वप्न देख रहा है

Surely I dreamt today or did I see thee
winged Psyche with awakened eyes ?

\+ सुमित्रानन्दन पत गुञ्जन भारती भडार, इलाहाबाद सवत २००६ पृष्ठ ४३

× वही पष्ठ २१

• सूयकान्त त्रिपाठी निराला' गीतिका, भारती भडार, इलाहाबाद तृतीय सस्करण सवत २००५ पृष्ठ ६६

पंत का 'प्रनग' भी स्वप्नवत सहमा व्यस्त हो उठता है

स्मृति से विस्मय से धुम सहमा
विश्व स्वप्न से तिल प्रजान

दोनों कविताओं में प्रेम के प्रभाव से युग्म प्रमियों के प्रेमालिंगन का चित्रण किया गया है। 'साइके' में पंत युवक कयुपिड प्रेमी रूप में चित्रित किया गया है तथा उसकी प्रेयसी स्वयं उसकी मानस रूप है

They lay calm breathing in the bedded grass
Their arms embraced and their pinions too
Their lips touched not but had not bade adieu
As if disjoined by soft handed slumber and
Ready still past kisses to out number
At tender eye down of aurorean love
The winged boy I knew
But who wast thou
O happy happy dove ?
His psyche true

इसी प्रकार पंत भी सृष्टि म प्रेम व्यापार के दर्शन करते हैं एवं यह प्रेम लोक अपनी ही छवि पर स्वयं विस्मय विमुग्ध है

अगणित बाहें बढ़ा उदधि ने
इन्दु करों से आलिंगन
बदले विपुल चटुल लहरों ने
तारों से फेनिल चुम्बन
अपनी ही छवि से विस्मित हो
जगती के अपलक लोचन
सुमनों के पलकों पर सुख से
करने लगे सलिल लोचन

कीटस प्रेम के आगमन के लिये अपने हृदय के वातायन खुले रखते हैं

And there shall be for thee all soft delight
That shadowy thought can win
A bright torch and a casement ope at night
To let the warm love in

पंत 'प्रनग से विश्वकामिनी की छवि के दर्शन कराने के लिये प्रार्थना करते हैं

ए असीम सौन्द्य राशि मे
हृत्कम्पन से अन्तर्धान
विश्व कामिनी की पावन छवि
मुझे दिखाओ करुणावान !

कीटस की 'ओड टू साइके' कविता से भाव साम्य मिलने पर भी अनग की मूर्त्ति-कल्पना भारतीय प्रेम-देवता कामदेव के अनुरूप चित्रित की गई है जिससे 'अनग' कविता भावानुवाद म प्रतीत होकर मौलिक सौदय चित्रण का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

इलाचन्द जोशी की विजनवती' कविता कीटस की 'ला वेल डेम सा मर्सी' (La belle dame sans merci) कविता मे प्रभावित हुई है जिसमें कवि सौ दयमयी नारी की खोज मे भटकता है । 'ला वेल डेम मर्सी' के नायक नाइट' की विकलता का कारण यह है कि उसने एक सौन्दर्यमयी नारी के दशन किये थे वह अब उसे नहीं दिखलाई देती । नाइट अपनी प्रेयसी के प्रथम सौंदय दशन का वर्णन करता है

I met a lady in the medas,
Full beautiful–a fairy's child,
Her hair was jong her foot was light
and her eyes were wild ×

'विजनवती' का कवि भी अपनी प्रेयसी के एकाकीपन सघन वाला व उत्सुक आखों का चित्रण करता है

बठी थी वह स्तब्ध विपिन म
एकाकी, चिन्तित, अनजान
किस चिर परदेशी का मन म
करती हुई न जाने ध्यान !
उछल उछल पडता था उसके
अग अग स नव–यौवन
बिखरे पडते थे पीछे से
उसके कु चित केश–सघन
झूम झूम पडती थी आखें
पर उत्सुकता से थीं पूरा

× John Keats An Anthology of famous English and American poetry the Modern Library, New York P p 260

उसकी वह विह्वल उत्सुकता
करती थी मम हृदय-विचूर्ण

'ला बेल डेम मर्सी' मे नाइट' की प्रिया उसे क्लिफिनग्रोट (Clifingrot) ले जाती है जहा वे प्रेमलाप म मग्न हो जाते हैं। ला बेल डेम मर्सी नाइट को सहला कर सुला देती है। स्वप्न में नाइट अनेक नृप राजकुमार और योद्धाओं को क्षुधित व विवश देखता है जो उससे कहते हैं कि 'ला बेल डेम मर्सी ने उन पर जादू कर लिया है। स्वप्न से जग कर नाइट स्वय को एकाकी पाता है और प्रिया की खोज म व्यथित भटकने लगता है

I saw their starved lips in the gloom
with horried warning gaped wide
And I awoke and found me here
On the cold hill side
and this is why I sojourn here
Alone and palely loitering
Though the sedge is withered from the lake
And no birds sing (+)

इसी प्रकार, विजनवती से मिलने पर कवि उसे अपने घर साथ ले आता है पर उसका मन न लगने पर वह उसके साथ सागर तट पर जाता है और फिर विजनवती के साथ उसके प्रारम्भिक 'गिरि निकुञ्ज के निभृत नीड' मे पहुच जाता है। वहा कवि को अपने घर के दीपक की याद आने लगती है इससे विजनवती उदास सी हो जाती है और एक दिन सहसा अन्तर्धान हो जाती है। विजनवती के अन्तर्धान होने पर कवि नाइट की तरह व्यथित हो उठता है

वह अदृश्य हो गई अचानक छोड गई अपना अवसाद
भ्रान्त चकित-सा रहा ताकता मैं वन में होकर उन्माद
अपनी इच्छा की बलि देकर किया प्रकृतिमय अपना प्राण
अलसित अकर्मण्य हो बैठा उस पर्वत वन म म्रियमाण
सब से प्रकृति खिलाती है नित मेरे मन म नव नव रग
करता हू मैं उन्हें ग्रहण अब मौन भाव से हो निःसग।

पत की अप्सरा कविता रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' कविता से प्रभावित हुई है जो स्वय स्विनबर्न (Swinburn) की 'एटलेण्टा इन केलिडोन (Atlanta in

---

+ वही पृष्ठ २६१

Calydon) से प्रभावित है। उवशी 'स्विनबन' की 'एटलेण्टा इन केलिडोन' मे चित्रित योरुपीय कामना की देवी "एफ्रोडाइट" के सदृश सौन्दय व वेदना की देवी है। यदि एफ्रोडाइट का जन्म 'हसी और आंसू के बीज से होता है तो उवशी' दाहिने हाथ में अमृत पात्र व बाये मे विष-भाड लिये सागर को मथित कर उदित होती है। × इसके विपरीत पत की अप्सरा वेदना रहित शुद्ध सौन्दय की मूत रूप है। स्विनबन की एफ्रोडाइट 'वसत के पुष्प सी मूलहीन उदित होती है उसी प्रकार रवीन्द्र की 'उवशी' भी। + पत भी 'अप्सरा' का जन्म पद्म के समान बत लाते हैं जो जल में विकसित होता है।

लिली प्रथम सौन्द्य पद्म सी
तुम जग मे नवजात ++

पत की अप्सरा' रवीन्द्रनाथ की 'उवशी' की तरह अपनी ही इच्छा में स्वाधीन है। (आपनाते आपनि विकशि) एव प्रत्येक युग म नवीन रूप धारण कर प्रकट होती है। जिस प्रकार 'उवशी न माता है न कन्या, न वधू (नहो माता, नहो कन्या) नहो वधू, वरन् कवि की मानस कल्पना है उसी प्रकार अप्सरा' भी नखिल कल्पनामयी' है। वह शशव मे शिशु के मुख में अगूठा डाल कर उसे स्तन दान देती है और यौवन मे प्रेयसी के अभिराम अगो से लिपटी दिखलाई देती है। 'एफ्रोडाइट की नृत्य मुद्रा का आभास सूय के चक्र के प्रकाश म उसके सौन्दय की प्रतिच्छाया तथा हवा म बिकीण सौन्दय की लपटो के वणन म मिलता है

But thee
Who shall discern and declare
In the uttermost ends of the seas

× आदिम वसत प्राते उठेछिनो मंथित सागरे
डान हाथ सुधापात्र विषभांड लिये वाम करे—रवीन्द्रनाथ

\+ What hast thou to do being born
Mother when winds were at ease
As a flower of the spring time of corn
A flower of the foam of the seas—Swinburn
वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि
कव तुमि उठिले उवशी ? —रवीन्द्रनाथ

++ सुमित्रानन्दन पत "गुजन" भारती भडार, इलाहाबाद सवत २००६ पृष्ठ ६८

The light of thine eyelids and hair
The light of the bosom as fire
Betw en the wheel of the sun
And the flying flames of the air

इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी" का समुद्र की लहरों के मध्य नृत्य चित्रित किया गया है। छद म समुद्र की लहरें नाच उठती हैं तथा कमल क सिर पर पृथ्वी का आंचल कांप उठता है स्तनहार से तारे छिटक पड़ते है। X पत की 'अप्सरा' समुद्र के बदले इन्द्र सभा म नृत्यलीन है

इन्द्रलोक म पुलक नृत्य तुम
करती लघुपद मार !
तड़ित चकित चितवन से चचल
कर सुर-सभा अपार
नग्न देह मे सतरग सुर धनु
छायापट सुकुमार
खोस नील नभ की वेणी म
इदु कुद द्युति स्फार। *

'एफ्रोडेटा के सौ दय का तेज असह्य है। रवीन्द्र की 'उर्वशी' के सौदय के प्रभाव से मुनियो का ध्यान टूट जाता है

मुनिगण ध्यान भाङि देय पदे तपस्यार फल
तोमार कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवन चचल
अकस्मात पुरुषेर बक्षोमझे चित्त आत्महारा
नाचे रक्तधारा

(मुनियों का ध्यान टूट जाता है और व अपनी तपस्या का फल तुम्हारे चरणो म सौंपते हैं तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चचल हो जाता है, सहसा पुरुष के हृदय म चित्त अपन को खो देता है उसके शरीर मे रक्त की धारा नाच उठती है।)

पत की अप्सरा भी सुर नर मुनियो को प्रभावित करती है
तुम सुर नर मुनि ईप्सित अप्सरि

X छन्दे छन्द नाचि उठे सिन्धुमाझे तरगेर दल
शस्यशीर्ष शिहरिया काँपि उठे धरार अचल
..
तव स्तनहार हते दिगम्बर खसि पड़े तारा—रवीन्द्रनाथ

* सुमित्रानन्दन पत "गुजन, भारती भण्डार लीडर प्रेस इलाहाबाद सवत २००६ पृष्ठ ६४

त्रिभुवन भर में लीन। +

वेदना की देवी के रूप में एफ्रोडेटा मनुष्यों के बीच संघर्ष, निराशा और मसताप की जननी है। स्विनबर्न उस को कृपा दृष्टि रखने के लिये प्रार्थना करते हैं

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire,

The dividing of friend against friend
The serving of brother and brother,
Wilt thou utterly bring to an end,
Have mercy mother

रवीन्द्र की 'उवर्शी' जगत् की अश्रुधारा से स्नात कान्तिमयी है तथा उसके पद चिह्न त्रिलोक के हृदय के रक्त से अंकित हैं। • पंत की 'अप्सरा' वेदना के साम्राज्य की नहीं विहेरती वरन् अपने चचल अंचल तथा मुस्कराते आनन से भावी स्वर्ण विहान का संदेश देती है

चचल अंचल में फहरा कर
भावी स्वर्ण विहान
स्मित आनन में नव प्रकाश से
दीपित नव दिनमान ! ×

पंत की 'अप्सरा' में रवीन्द्रनाथ की नारी का अतीन्द्रीय रूप ❖ व्यक्त हुआ है

तुम अद्दश्य अस्पृश्य अप्सरि !
निज सुख म तल्लीन। ++

\+ सुमित्रानन्दन पंत 'गुंजन' भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं० २००६ पृष्ठ ६६

• जगतेर अश्रुधारे धौत तब तनुर तनिमा
त्रिलोकेर हृदि रक्ते आंका तवो चरण शोणिम—रवीन्द्रनाथ

× सुमित्रानंदन पंत 'गुंजन भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद संवत २००६ पृष्ठ ६८

❖ You are one half woman and one half dream
Rabindranath in Gardiner LIX

\+ सुमित्रानन्दन पंत "गुंजन', भारती भण्डार इलाहाबाद संवत् २००६ पृष्ठ १००

फ्रांसिसी प्रतीकवाद का प्रभाव

छायावाद की भूमिका में योरुप का एक और साहित्यिक आन्दोलन था फ्रांसिसी प्रतीकवाद। फ्रांसिसी प्रतीकवाद का छायावादी कविता पर प्रभाव बंगाली कविता के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर आयरिश कवि डब्लू बी यीट्स की कविताओं से प्रभावित हुए थे तथा यीट्स के व्यक्तिगत सम्पर्क में भी आए थे। यीट्स प्रसिद्ध फ्रांसिसी प्रतीकवादी कवि मलार्मे से प्रभावित हुए और उन्होंने आंग्ल कविता में फ्रांसिसी प्रतीकवाद से प्रेरित होकर कविताएं लिखी थीं।

प्रतीकवाद व्याख्या

फ्रांस में यद्यपि "स्वतन्त्रता, समता व बन्धुत्व" के नारे के साथ क्रांति का सूत्रपात हुआ था परन्तु नेपोलियन के उदय के साथ क्रांति का प्रारम्भ भुला दिया गया तथा फ्रांस में सैनिक राज्य की स्थापना हो गयी। सन् १८७० में पराजयजन्य के वातावरण के बीच फ्रांस में तीसरे गणतन्त्र राज्य की स्थापना हुई और वास्तविक प्रजातन्त्रात्मक शासन पद्धति का प्रारम्भ हुआ। किन्तु फ्रांस पर जर्मनी के आक्रमण एवं नेपोलियन तृतीय की कायरता के कारण पहले से फैली हुई निराशा की भावना का अन्त नहीं हुआ था। समाज स्पष्टतः दो विरोधी वर्गों में बंट गया। एक ओर अभिजात वर्ग धर्म व पुरोहितवाद (Clericalism) को आश्रय दे रहा था, दूसरी ओर साधारण जनता पुरोहितवाद का विरोध कर रही थी। साहित्य में यह विरोधी प्रवत्तियां प्रकृतवाद व प्रतीकवाद के आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुईं। प्रकृतवाद धर्म का विरोधी था तथा उसने आगस्त काम्त (August Comte), लित्रे (Littre) तेन (Taine) रेने (Renon) आदि निरीश्वरवादी विचारकों से प्रेरणा ली। प्रकृतवाद के विरुद्ध फ्रांस में प्रतीकवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। जहां प्रकृतवादी फ्रांस के भौतिकवादी दार्शनिकों से प्रेरित थे वहां प्रतीकवादियों ने इसके विपरीत काण्ट फिख्ते, हेगेल शोपेनहार आदि जर्मन आदर्शवादियों से प्रेरणा ली। फ्रांस में प्रतीकवादी आन्दोलन के मुख्य प्रमुख कवि बोद्लेयर (Bandelaire) १८२१ ६७ वर्लेन (Verlaine) १८४४ ९६ मलार्मे (Mellerme) १८४२-१८९८ रैम्बू (Rimband) १८५४-९१ आदि रेनिये वहेरेन (Verhaeren) गस्ताफ कान (Gustave kahn), क्लादेल (Claudel), प्रूस्त (Proust), वालेरी (Valery) १८७१ १९४५ आदि थे।

प्रतीकवादी कवियों ने शास्त्रीय कविता की बौद्धिकता और रोमांटिक कविता की भावना दोनों का तिरस्कार किया। उनके अनुसार क्लासिकल और रोमांटिक कविता में बुद्धि और कल्पना का अंश प्रधान रहता है। जिस भाषा का यह कवि प्रयोग करते हैं उसमें पाठकों अथवा श्रोताओं को शब्दार्थ समझने से भाव स्पष्ट होते हैं और उसी से वे प्रभावित होते हैं। प्रतीकवादियों के अनुसार कविता का उद्देश्य विवेक (शब्दों के अर्थ) द्वारा भावों को जागृत करने के बदले भावना के

माध्यम से भावों को जागृत करना होता है। भावों को जगाने में शब्दों के अर्थ उतने समर्थ नहीं हो सकते जितने संकेत (प्रतीक) या चिह्न। कविता का अर्थ जानने का प्रयत्न करना भी उचित नहीं है। कविता लिखते समय कवि के हृदय में जो अनुभूति जागृत होती है उसे सांगीतिक संकेतों द्वारा पाठक को स्वयं अनुभव करना चाहिए।

प्रतीकवादियों के अनुसार कविता का लक्ष्य शुद्ध भाव को जगाना है। यह भाव पार्थिव-जगत् से निरपेक्ष तथा आध्यात्मिक है। इस भाव को जगाने के लिए मलार्मे ने संगीत का आश्रय लिया। जिस प्रकार संगीत की विभिन्न लयों के सम्मिलन में कुछ लौटनेवाले सुर होते हैं जो कभी पहले और कभी बाद में अदा किये जाते हैं और मध्य में विभिन्न सुरों में कभी कोई सुर उठता या बन्द हो जाता है तथा इन सबके योग से संगीत अपना पूर्ण प्रभाव डालता है उसी प्रकार कवि के भावावेश में कुछ लौटनेवाले सुर' निसृत होते हैं एवं सम्पूर्ण कविता उन सुरों के आध्यात्मिक प्रभाव को व्यक्त करती है व बीच में उठने व गिरनेवाले सुर आध्यात्मिक उड़ान और लौकिक जगत् के अवरोधों की अनुभूति जगाते हैं। यह संगीत तर्क पर आधारित न होकर आन्तरिक लय का अनुवर्तन करता है। अभ्यासजन्य कौशल द्वारा यह उत्पन्न नहीं किया जा सकता। जुगनू की तरह अनायास ही इसकी उद्भावना होती है। इस संगीतात्मक विशेषता के कारण प्रतीकवादी कविता में पदों का क्रम बदलने से उसका संगीतात्मक योग ही नष्ट हो जाता है तथा उसका काव्य रूप भी नष्ट हो जाता है। शब्दों की ध्वनि, गूंज व प्रतीकात्मक भावमयता के आधार पर मलार्मे ने विशिष्ट शब्दों में नवीन अर्थ भर दिये। वालरी भी कविता के अर्थ को संगीत पर न्योछावर कर देता है। उसके अनुसार शब्द की ध्वनि ही उसका अर्थ है। कविता में संगीत के महत्व के कारण उसकी अभिव्यञ्जना के रूपों में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। बोद्लेयर ने 'पेती पोएम आ प्रोज' लिख कर छन्द के बंधन को तोड़ा। गस्ताफ कान ने वर्लेन, रम्बू व मलार्मे के पथ पर चल कर काव्य-परम्परा के सभी नियमों को तोड़ दिया। इस प्रकार, वेर लिब्र' मुक्त छन्द का प्रयोग होने लगा। गस्ताफ कान कविता का नियम केवल आन्तरिक संगीत मानता है जो कवि के भावावेश पर आधारित है। मलार्मे सभी कलाओं की भाषा में सांगीतिकता की कल्पना करता है। उसके अनुसार भाषा ही नहीं वरन् स्थापत्य, चित्र व नृत्य मुद्राओं में भी सांगीतिक लय होता है। जर्मन लेखक वाग्नेर ने गीति-नाट्य की रचना कर नृत्य व संगीत कला का सम्मिलन किया। वाग्नेर का शिष्य फ्रेंच लेखक विजेवा कला में संगीत, चित्र व भाव का सश्लिष्ट रूप आवश्यक मानता है। प्रतीकवादियों द्वारा सांगीतिकता को महत्व देने से कला प्रकार में महत्वपूर्ण उन्नति हुई। किन्तु, उनके प्रतीक केवल आध्यात्मिक अनुभूति को जागृत करने के

साधन थे। सभी प्रतीकवादी कवि उच्च साधनात्मक धरातल पर नहीं थे। अत प्रतीकवादी कविता म अस्पष्टता व वास्तविक जीवन म अलगाव आ गया जिसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। यह प्रतिक्रिया प्रथम महायुद्ध के पश्चात् के साहित्यिक आन्दोलनो मे प्रकट हुई।

सागीतिकता एव चित्रात्मकता

छायावादी कविता का युग गीतिकाव्य का युग है तथा छायावादी कविता मे वे सभी विशेषताए पायी जाती हैं जो गीतिकाव्य की विशेषताए हैं—कोमल कान्त पदावली, सागीतिकता, मानसिक स्थिति विशेष का व्यक्तीकरण एव प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति। छायावादी कविता पर फ्रांसिसी प्रतीकवाद का प्रभाव बगला काव्य के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। विशेष कर निराला जिनके काव्य की प्रमुख विशेषता लय तथा जिन्होने हिन्दी मे बेर लिब्र—मुक्त छन्द का प्रवतन किया बगाल म बहुत समय तक रहे और वे नवीन बगला काव्य व पाश्चात्य सगीत से प्रभावित हुए। प्रतीकवादियों की तरह शब्दो से नवीन अथ ध्वनित करने की प्रवृत्ति पत म भी पायी जाती है। छदो के बधनो का विरोध करने पर भी निराला उसके लिए प्रवाह को आवश्यक मानते हैं जो उसके सगीत-तत्व की रक्षा करता है। + पत कविता मे सस्वर शब्दो के प्रयोग के पक्षपाती हैं। 'पल्लव और गुजन की कविताओं में उन्होने सगीतात्मक सुरो का विशेष ध्यान रखा है। महादेवीजी के गीतो म लोकगीतों के सगीत का प्रभाव मिलता है। 'प्राण प्रिय पिक नाम रे कह !' और प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली' जसे गीतो म लोक गीतो की मधुरता स्पष्ट है। × डा० रामकुमार वर्मा कविता म अन्द की रक्षा आवश्यक

\+ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' परिमल' (भूमिका) गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।
मुक्त छन्द का समथक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छद सिद्ध करता है और उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति।

× महादेवी वर्मा 'यामा' पृष्ठ २०
शशव से ही मैं गीतों के सस्कार में पली हू। मा का भाव भरी गीताजलिया घर में जन्म आदि शुभ अवसरो पर गाई जाने वाली गीत कथाए, परिचारको के ऋतु-पव आदि म सबध रखने वाले लोकगीत कलाविदो का ध्वनि सगीत, प्राचीन नाल और सौन्दय द्रष्टाओ के बेद छद, माधुय भरे सस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षो में सुने सहज ग्रामगीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकषण रहा है मेरे गीत आध्यात्म के अमूत आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।

समझते हैं। =

छायावादी कवि चित्र भाषा के प्रयोग के भी पक्षपाती हैं। पंत का मत है कि जिस सौंदर्य का उनकी आँखें दर्शन करती हैं उसे उनके हाथ शब्दों में चित्रित कर सकें। पंत जी और महादेवी जी परोक्ष सत्ता के लिये भी चित्रकार का प्रतीक प्रयुक्त करते हैं। * प्रसाद, पंत महादेवी आदि की कविता में चित्र भाषा के प्रयोग का बाहुल्य है। शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग के कारण भाषा में चित्रात्मकता का गुण सहज ही आ गया है।

पंत भावों को सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त करनेवाले और सस्वर शब्दों तथा चित्र भाषा के प्रयोग के पक्षपाती हैं। 'पल्लव' की भूमिका में वे पवि पवन आदि शब्दों के सूक्ष्म भेद स्थापित करते हैं। काव्य, चित्र और संगीत के सम्बन्ध को स्थापित करते हुए वे लिखते हैं 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता होती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें जो झंकार में चित्र चित्र में झंकार हो, जिनका भाव संगीत विद्युत धारा की तरह रोम रोम प्रवाहित कर सके, जिनका सौरभ सूँघते ही साँसों द्वारा अन्दर पैठ कर हृदयाकाश में समा जाय, जिनका रस मदिरा की फेन राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारों ओर

= रामकुमार वर्मा 'आधुनिक कवि' ३ हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वितीय संस्करण सन् १६३६ पृष्ठ १५।

आधुनिक समय में कवि छन्द को कविता का बंधन मानते हैं। मुक्तवृत्ति में अपनी भावनाओं को उड़ेल कर निर्द्वन्द रूप से कविता लिखे चले जाते हैं। यह स्वतन्त्रता उन्हें भावों के प्रकाशन में स्वच्छन्दता भले ही प्रदान करे किन्तु, वह कविता के नादात्मक रूप की उसके नसर्गिक सौंदर्य की उपेक्षा करती है। कविता की विशेषता तो इसी में है कि वह नियमों के अन्तर्गत रहती हुई भी उनसे परे हो जाती है—यदि कविता नियम रहित हो जाय तो वह अपनी उच्छृंखलता में सौंदर्य का ही विनाश करती है और बिना सौंदर्य के स्वतन्त्रता केवल विशृंखलता में परिवर्तित होगी।

* सुमित्रानन्दन पंत "पल्लविनी" (बालापन) पृष्ठ २५
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि' १, हिंदी साहित्य सम्मेलन चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृष्ठ ६४।

कमल दल पर किरण अङ्कित,
चित्र क्या हूँ मैं चितेरे

मोतियों की झलक की तरह झूलने लगे अपने छत्ते में न समा कर मधु की तरह टपकने लगे, प्रौढ़ निशीथ की तारावली की तरह जिनकी दीपावली अपनी मौन जड़ता के अन्धकार को भेद कर अपने ही भावों की ज्योति में दमक उठे, जिनका प्रत्येक चरण प्रियंगु की डाल की तरह अपने ही सौन्दर्य के स्पर्श से रोमांचित रहे, जापान की द्वीपमालिका की तरह जिनकी छोटी छोटी पंक्तियाँ अपने अन्तस्तल में सुलगी ज्वालामुखी को न दबा सकने के कारण अनंत श्वासोच्छ्वासों के भूकम्प में कांपती रहे।" य० उद्धरण स्वयं ही गद्य में भी नवीन उपमाओं चित्र एवं लय के द्वारा संगीत की सीमाओं को छूने के लिये उन्मुख प्रतीत होता है। पंतजी हिन्दी के संगीत को संस्कृत के संगीत से भिन्न मानते हैं 'संस्कृत का संगीत जिस तरह हिल्लोलाकार मालोपमा से प्रवाहित होता है उस तरह हिन्दी का नहीं। वह लोल लहरों का चंचल कलरव बाल झंकारों का छेकानुप्रास है।' "गुंजन" की भूमिका में भी उन्होंने अपने काव्य की सांगीतिकता की ओर इंगित किया है 'मेंहदी में इसरे वर्ण पर स्वरपात मधुर लगता है प्रिय प्रियाह्लाद से 'प्रिय प्रिय प्राह्लाद' अच्छा लगता है। पल्लव की कविताओं में मुझे 'सा' के बाहुल्य ने लुभाया था, यथा—'अध निद्रित सा विस्मृत सा न जाग्रत सा न विमूर्छित सा' इत्यादि। गुंजन में 'रे' हो गया, यह उन्नति का क्रम संगीत प्रेमी पाठकों को खटकेगा नहीं ऐसा मुझे विश्वास है। × निराला जी बत्तीस वर्ष तक बंगाल में रहे तथा बंगाल उत्तर भारत में सर्व प्रथम पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आया था और उसने सर्वाधिक पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण किया। निरालाजी के व्यक्तित्व पर भी बंगाल के वातावरण का प्रभाव पड़ा। आधुनिक संस्कारों के कारण उन्हें हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों खटकने लगे। पर पाश्चात्य संगीत से प्रभावित होते हुए भी निराला भारतीय संगीत की मौलिकता के पक्षपाती हैं क्योंकि उनके अनुसार अंग्रेजी संगीत अंग्रेजी हृदय में ही भाव जगा सकता है। डी० एल० राय व रवीन्द्रनाथ की तरह वे स्वर मैत्री भारतीय ही रखना चाहते हैं। अंग्रेजी संगीत से प्रभावित होने के ये मानी नहीं कि उसकी हूबहू नकल की गयी। अंग्रेजी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के कानों की कभी तृप्ति होगी, यह संदिग्ध है। कारण भारतीय संगीत की स्वर मैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं वे अंग्रेजी संगीत में लगते हैं। उनमें अंग्रेजी (मेरा अंग्रेजी शब्द से मतलब पश्चिमी से है) हृदय में ही भाव पैदा होता है अस्तु अंग्रेजी संगीत के नाम से जो कुछ किया गया उसे हम अंग्रेजी संगीत का ढंग कह सकते हैं। स्वर मैत्री हिंदुस्तानी ही रही।"+ महादेवी

× सुमित्रानन्दन पंत 'गुंजन', भारती भण्डार, इलाहाबाद, पाँचवा संस्करण संवत् २००६ भूमिका।

+ सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 'गीतिका', भारती भण्डार इलाहाबाद तृतीय संस्करण संवत २००५ पृष्ठ ४

जो फ्रांसिसी प्रतीकवादी मलार्मे की तरह संगीत को तर्कबुद्धि के परे इंद्रियातीत सत्य की प्रत्यक्षोपलब्धि का साधन मानती हैं। वे कहती हैं—"गेयता में ज्ञान का क्या स्थान है यह भी प्रश्न है। बुद्धि के तर्कक्रम से जिस ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है उसका भार गीत नहीं सम्भाल सकता, पर तर्क से परे इंद्रियों की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा अनायास ही जिस सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती है उसकी अभिव्यक्ति में गद्य स्वर सामंजस्य का विशेष महत्व रहा है।' अंग्रेजी कवि ब्लेक की तरह महादेवी जी स्वयं एक चित्रकार हैं। यामा और दीपशिखा के चित्र उनके गीतों को एक मूर्त पीठिका प्रदान करते हैं। महादेवी के अनुसार हृदय में उठनेवाली अनुभूतियां छायारूपिणी हैं तथा कवि-कर्म उन पर मानव-संवेदना का रंग चढ़ा कर उन्हें शब्दों में चित्रित करने में है। 'इन छायाचित्रों को बनाने के लिये और भी कुशल चितेरों की आवश्यकता होती है कारण वह चित्र छूने या चर्म चक्षु से देखने की वस्तु नहीं। यदि वे मानव-हृदय में छिपी हुई एकता के आधार पर इसकी संवेदना का रंग चढ़ा कर न बनाये जायं तो वे प्रेतात्मा के समान लगें या नहीं इसमें मुझे कुछ ही सन्देह है।'+ प्रतीकवादियों की तरह वे सभी कलाओं की एकता में विश्वास करती हैं तथा कलाओं के सम्मिश्रण की पक्षपातिनी हैं। नृत्य को एक प्रकार का अभिनीत गीत मानती हैं तथा गीत को शब्द चित्र।

अस्तु, छायावादी कविता की अभिव्यंजना प्रणाली पर बंगला के माध्यम से फ्रांसीसी प्रतीकवाद का प्रभाव प्रतिफलित हुआ। प्राचीन काव्य रूढ़ियों के प्रति छायावादी कविता में जो प्रतिक्रिया पाई जाती है उसमें मुक्त छन्द, संगीतात्मकता शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग एवं चित्रोपमता की प्रवृत्ति प्रधान हैं तथा इस प्रवृत्ति के मूल में प्रतीकवाद का परोक्ष प्रभाव पाया जाता है।

मद अवसाद और निराशावाद

रोमांटिक कविता में स्वभावतः मद अवसाद की भावना पायी जाती है क्योंकि रोमांटिक कवि मूलतः स्वप्नद्रष्टा होता है और जब वह स्थूल यथार्थ की ओर दृष्टि डालता है तो उसके सामने वास्तविकता का चित्र स्वप्न के सदृश कोमल और मधुर न होकर कठोर व कटु जान पड़ता है। मानव स्वभाव की प्रकृति है कि किसे अपने स्वप्न के टूटने पर दुःख न होगा। इसी कारण छायावादी कविता में भी अवसाद की भावना पायी जाती है। छायावादी कविता में दुःख का रंग गहरा होने का कारण आध्यात्मिक दृष्टिकोण वैयक्तिक निराश भावना और राष्ट्रीय आन्दोलनों के पराजय की अनुभूति है। इनमें से परोक्ष रूप में अंतिम कारण ही प्रथम दोनों कारणों को प्रश्रय देने वाला है। छायावादी कविता में आरम्भ में मद अवसाद के कारण पलायन और वेदना-प्रेम की भावना पायी जाती है परन्तु

+ महादेवी 'यामा' पृष्ठ ४

आगे चलकर दुःख की अनुभूति गहरी और तिक्त होने लगती है और निराशा का भाव अधिक व्यापक रूप में फैल जाता है।

डा० शम्भुनाथ पाण्डेय के अनुसार 'आधुनिक हिंदी-काव्य में भी पाश्चात्य निराशावाद की क्षीण अभिव्यक्ति केवल उन कवियों की रचनाओं में मिलती है जो पाश्चात्य विचारों से प्रभावित हैं अन्यथा आधुनिक हिन्दी काव्य का निराशावाद आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थितयों का परिणाम है।" + पाश्चात्य निराशावाद के प्रभाव की दृष्टि से जर्मन दार्शनिक शोपेनहार के निराशावाद आंग्ल रोमांटिक काव्य के मद अवसाद एवं अंग्रेजी के माध्यम से फारस के कवि उमर खयाम के नियतिवाद की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

शोपेनहार (Schopenhauer) (१७७०—१८३१) का दर्शन दुःखवादी है। इसका कारण उसके द्वारा इच्छा शक्ति या तृष्णा (will) की कल्पना है। वह सृष्टि के नियन्त्रण में तृष्णा का महत्वपूर्ण स्थान मानता है। उसके अनुसार शरीर के रूप में जो दृश्यमान है वह वस्तुतः व्यक्ति की तृष्णा है। यह तृष्णा सभी दुःखों का कारण है और ज्ञान के प्रसरणशीलता के साथ दुःखों को मात्रा बढ़ जाती है। तृष्णा' का कोई लक्ष्य नहीं होता जिसे प्राप्त करने पर संतोष मिल सके। जिस प्रकार साबुन के पानी के बुदबुदे को पूर्णतया यह जानते हुए भी कि वह फूट जायेगा वह जब तक और जितना बड़ा हो सके हम फुलाते जाते हैं उसी प्रकार यद्यपि अन्त में मृत्यु विजयिनी होती है फिर भी हम निरर्थक कामों में उलझे रहते हैं। आनन्द नामक कोई वस्तु नहीं है क्योंकि इच्छा के अतृप्त रहने पर पीड़ा होती है और उसके पूर्ण हो जाने पर तुष्टि मात्र। × शोपेनहार दुःख के विमोचन का उपाय इच्छा शक्ति के पूर्ण विसर्जन में देखता है। इससे दृश्यमान वस्तुओं का, जो केवल इच्छा शक्ति के बाह्य-रूप हैं, अस्तित्व लोप हो जाता है तथा शून्य मात्र शेष रह जाता है। जिस प्रकार बालक

\+ डा० शम्भुनाथ पाण्डेय आधुनिक हिन्दी कविता में निराशावाद पृ० ४१'

× Bertrand Russel History of Western Philosophy Pp 784

Will has no fixed end which if achieved would bring contentment Although death must conquer in the end we pursue our futile purposes as we blow out a soap-bubble as long and as large as possible although we know perfectly well that it will burst There is no such thing as happiness for an unfullfilled wish causes pain and attainment brings only satiety

अंधेरे मे डरते हैं शून्य के प्रति इस प्रकार की भय की भावना का परित्याग कर देना चाहिए। छायावादी कवियों मे महादेवी वर्मा की कविता मे बुद्ध की करुणा की छाया है परन्तु, विसर्जन ही है कर्णाधार वही पहुँचा देगा उस पार' जैसी पंक्तियां शोपेनहार के विचार-दर्शन के अधिक निकट हैं। शोपेनहार के मत मे मनुष्य मनुष्य मे भेद दृश्यमान जगत् के कारण दिखाई देता है। इच्छा शक्ति के विसर्जन करने पर प्राणी के सामने से भ्रम का पर्दा हट जाता है और व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व की वेदना को अंगीकार कर लेता है। उसको यह अन्तर्दृष्टि प्रेम के द्वारा मिलती है जिसकी करुणा भावना के रूप मे अभिव्यक्ति होती है। महादेवी वर्मा भी कहती हैं 'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र मे बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे हमे मनुष्यता की पहली सीढ़ी पर भी न पहुंचा सकें किन्तु हमारा एक बूंद आंसू जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख को सबको बाँट कर। विश्व जीवन मे अपने जीवन को विश्व वेदना मे अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र म मिल जाता है कवि का मोक्ष है।' (A) अस्तु, चाहे छायावादी कवियो ने शोपेनहार के दर्शन का प्रत्यक्षत अध्ययन न किया हो परन्तु सम्भवत वातावरण के प्रभाव से उन्होंने इन विचारो को अपनाया हो जिन्हे बनाने मे अन्य पाश्चात्य विचारधाराओं के साथ शोपेनहार के दर्शन का भी कुछ योगदान अवश्य था।

शोपेनहार के विचारो का आंग्ल कवियों पर भी प्रभाव पाया जाता है। बायरन (१७८८-१८२४) 'यूथनेसिया' (Yuthanasia) शीर्षक कविता मे संसार को दुःख पूर्ण मानता है एवं कल्पना करता है कि क्या ही ■ दा होता इस दुःखमय संसार का अस्तित्व ही न होता। इसी प्रकार 'चाइल्ड हैरल्डस पिलग्रिमेज' शीर्षक कविता म वह जीवन को पाप का अमिट धब्बा कहकर उसके नित्य प्रति के भौतिक दुःखों एवं उन मानसिक कष्टों के प्रति जिनसे आत्मा छटपटाती है क्षोभ प्रकट करता है। उन्नीसवी शती मे विज्ञान की उन्नति ने सदियों के बद्धमूल धार्मिक विश्वासो को हिला दिया जिससे कवियों के मन मे एक संदेहाकुलता पाई जाती है। मैथ्यू आरनोल्ड ने अपनी 'डोवर बीच' (Dover Beach) शीर्षक कविता मे धार्मिक विश्वासों के टूटने पर दुःख प्रकट किया है। इसी तरह टेनीसन ने इन मेमोरियम' (In Memoriam) म ईश्वर के प्रति हिलते हुए विश्वास को दुःख के साथ व्यक्त किया है। 'ई हाउसमन टामस हार्डी जेम्स टामस आर एल स्टीव सन प्रभृति कवियों और उपन्यासकारो ने भाग्य की विडम्बना को अपनी रचनाओं मे दर्शाया है—तथा उनके पात्र दुःखी रहने मे ही एक प्रकार के गौरव का अनुभव करते हैं।

(A) महादेवी वर्मा 'यामा' पृष्ठ ११

में भौतिक जीवन की सीमाओं और कमजोरियों के लिए स्थान नहीं है। वहा के पक्षी मृत्यु का नाम सुन हसते हैं और वहा सर्वत्र कमनीय प्रकाश छाया रहता है। × कहना न होगा, इस पार से परे उस अनित्य सौन्दर्य से भरे कल्पना लोक का निर्माण भौतिक जीवन की परिस्थितियों के प्रति असतोष एव निराशा के कारण ही हुआ है।

छायावादी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति दुःख को महिमान्वित करना है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि भौतिक जीवन की परिस्थितियों में जब व्यक्ति अपने मनोनुकूल परिवर्तन नहीं ला पाता तब अपनी वर्तमान परिस्थितियों को ही वह सुख पूर्ण मानने लगता है। इस प्रकार की आत्म प्रवचना द्वारा व्यक्ति को दुःख की अनुभूति से छुटकारा मिल जाता है। छायावादी कवियों ने दुःख को जीवन के सत्य के रूप में अपनाने के साथ ही उसे स्पृहणीय मानकर महिमान्वित किया है।

दुःख को महिमान्वित कर प्रसाद और पन्त ने जीवन में सुख और दुःख के समान अनुपात की कामना की है। प्रसाद दुःख को ईश्वरीय वरदान मानते हैं। उनका कथन है कि यदि मनुष्य को केवल सुख भाग का ही अधिकार मिले तो वह इस कारण से ऊब जाएगा और जिस प्रकार शात समुद्र अचानक ज्वार के रूप में उमड आता है और उसकी नीली लहरों की मणियाँ व्याकुल भटकने लगती हैं उसी प्रकार जीवन व्यथित हो उठेगा और समुद्र की विद्युत मणियों की तरह सुख का कहीं पता भी नहीं लगेगा। महादेवी की दृष्टि में दुःख सारे ससार को एक सूत्र में बाधने वाला है। वे उस पीडा की सीमा को पा लेती हैं जहां दुःख चिर सुख बन जाता है। + पन्त के काव्य में विफल प्रेम की निराशा का स्वर स्पष्ट है। "ग्रथि

× महादेवी वर्मा, 'आधुनिक कवि' १ हि० सा० साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण सवत् २००६ पृष्ठ १३

> सुना था मैंने इसके पार
> बसा है सोने का ससार
> जहाँ के हसते विहग ललाम
> मृत्यु छाया का सुनकर नाम
> पुष्प में है अनन्त मुस्कान
> त्याग का है मारुत में गान
> सभी में है स्वर्गीय विलास
> वही कोमल कमनीय प्रकाश

+ है पीडा की सीमा यह
> दुःख का चिर सुख हो जाना। (महादेवी)

में प्रेम का अत असफलता में होता है पर कवि उस वेदना को विकल सगीत म बदल कर उस पर मुग्ध हो जाता है और वेदना के लोक मे ही सुख मानने लगता है ।* 'परिवतन कविता म भी दु ख के अभाव मे सुख को निस्सार बनाया गया है । X पत दु ख को "मानव आत्मा का मधुर भोजन" बताते हैं ।% दु ख को महिमान्वित करने के मूल मे छायावादी कवियो की दु खात्मक अनुभूति एव निराशा ही है जिसे भुलाने का वे निष्फल प्रयास करते हैं । इस प्रयास की निष्फलता इसी से प्रकट है कि सभी छायावादी कवियों ने अपने मन की वेदना को प्रकट किया है।

परवर्त्ती छायावादी कविता म निराशा की भावना अधिक गहरी दिखाई देती है । अब कवि न तो 'उस पार' के कल्पना लोक को बना कर आत्म भुलावा देता है और न वेदना को महिमान्वित ही कर पाता है । कठोर सत्य को भुलाने वह कभी 'मधु' का प्रतीक अपनाता है , कभी निराशा व अवसाद के गहरे रग में डूब कर मत्यु कामना करने लगता है अथवा कभी पराजय भावना से क्षुब्ध हो सम्पूर्ण सृष्टि के ध्वस की कामना करता है ।

उन्नीसवीं शती उत्तरार्द्ध में फारस के कवि उमर खयाम की कुछ चुनी हुई रूबाइयो का फिटजराल्ड ने अग्रेजी मे अनुवाद किया । हिन्दी में भी खयाम की रूबाइयों के फिटजराल्ड के अनुवाद से कुछ कवियो ने अनुवाद किये जिनमे बच्चन का अनुवाद सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ । बच्चन खैयाम की विचारधारा से प्रभावित भी हुए । बच्चन की कविता मे यह प्रभाव अग्रेजी के माध्यम से आया है ।

---

* सुमित्रानन्दन पत "पल्लविनी" पृष्ठ १३७
  वेदना के ही सुरीले हाथ से
  है बना यह विश्व, इसका परम पद
  वेदना का ही मनोहर रूप है
  वेदना का ही स्वतत्र विनोद है
  आज मैं सब भाति सुख सम्पन्न हू
  वेदना के इस मनोरम विपिन में

X बिना दु ख के सब सुख निस्सार
  बिना आसू के जीवन भार
  दीन दुर्बल है रे ससार
  इसी से दया, क्षमा और प्यार (पत)

% दु ख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन
  दु ख के तम को खा-खाकर भरती प्रकाश से वह मन
  आसू की आखो से मिल भर ही आते हैं लोचन (पत)

घोर निराशा के क्षणों में निराशा को भुनाने के लिए मनुष्य प्रायः भोगवाद की ओर झुक जाता है या अपने आपको भाग्य के समर्पित कर देता है। खयाम की रुबाइयों में भोगवाद एवं भाग्यवाद दोनों की प्रवृत्ति पाई जाती है।

निकोलस का कथन है कि खयाम ने निराशा को मन स्थित को हँसी में भुलाने का प्रयत्न किया है परन्तु परिणाम सन्देह उसकी निराशा का उघाड़ देने वाला हुआ है। अत्यधिक सुख की प्रतीति में घोर निराशा व्यक्त हो ही जाती है। भाग्य के विरुद्ध विद्रोह करने के बदले वह उसके प्रति आत्म समर्पण कर देता है। सुन्दर भविष्य की झलक को पकड़ने में असमर्थ होकर वह आज क्षण में सुख को जी लेना चाहता है चाहे यह सुख कितना ही क्षणिक और महत्वहीन हो *

अस्तु बच्चन की कविता में निराशा का स्वर गहरा है। उनके काव्य में मदिरा एक प्रतीक है जिसके द्वारा कवि-जीवन के दुःखों को भुला देना चाहता है। जीवन की कठिनाइयों ने ही कवि को मधु का प्रतीक अपनाने के लिए प्रेरित किया है। +

---

* Edward Fitzerald Rubaiyat of Omar Kheyyam of Naishepur Preface by Nicolas pub Shushil Gupta 1943 P p 17

He crossed that darker mood with much of Olivierle Basselin Homour Anyway the result is sad enough Saddest perhaps when most ostentatiously merry, anyway fitter to more sorrow than anger towards the old Tentmaker, who after vainly endeavouring to unshake his steps from Destiny and to catch some authentic Glimpse of To morrow fell back upon to day (Which has out lasted so many to morrows) as the only ground got to stand upon however momentarily slipping from under his feet

+ बच्चन मधुकलश

किन्तु जब पवत पड़ा था
शीश पर मैं सह न पाया
जब उठा हो भार जीवन
तब लगाया होंठ प्याला
देख भीगे होंठ मेरे
और कुछ सन्देह मत कर
रक्त मेरे ही हृदय का
है लगा मेरे अधर में।

बच्चन की 'मधुशाला', 'मधुबाला' आदि कृतियों में ऊपर से दिखलाई देनेवाले उल्लास की कलई उनकी पीछे की 'निशा निमन्त्रण', 'एकांत संगीत' आदि रचनाओं में खुल गयी है और निराशा व अवसाद का भाव अनावृत हो गया है। इस निराशा के भाव को कवि की व्यक्तिगत जीवन की निराशाओं ने ही अत्यधिक उद्दीप्त किया है। यहां तक कि सिगमण्ड फ्रायड के कथन This meaningless rattling of Clay' की तरह कवि स्वयं सृष्टा की असफलता की ओर व्यंग्य करता है एवं स्वयं मृत्यु-कामना करने लगता है। ×

नरेन्द्र की कविता में भी व्यक्तिगत जीवन की असफलताओं और विरह की अनुभूति से मिश्रित निराशा भावना पायी जाती है। + अंचल के काव्य में वासना और चिर तृष्णा की ज्वाला सुलगती है तथापि उनकी कविता में निराशा के स्वर भी उभर आते हैं। # नवीन अपनी कविता के राष्ट्रीय आन्दोलन की पराजय की घोर वास्तविकता स्वीकार करते हैं।•

———

× बच्चन

अब मत मेरा निर्माण करो'
मिट्टी दीन कितनी हाय'
दुर्बल मिट्टी की हाथी
'आओ सो जाए मर जाए

+ नरेन्द्र प्रवासी के गीत' भारती भंडार इलाहाबाद, तृतीय संस्करण संवत् २००२ पृष्ठ २३

नादान विवश नासमझ हृदय
मैं मान करूं भी तो किस पर
मेरी वह मायाविन न रही
अभिमान करूं भी तो किस पर

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' 'अपराजिता'
मैं एकाकी विरही उदास
खेता जीवन नैया निराश

• बालकृष्ण शर्मा नवीन 'पराजय गीत
विजय नहीं, रण की प्रांगण की
धूल बटोरे लाया हूं
हिय के घावों या वर्मों के
चिथड़ों को ले आया हूँ
टूटे अस्त्र धूल माथे पर
हा कैसा मैं वीर हुआ
आज खड्ग की धार कुण्ठिता
है खाली तूणीर हुआ!

इस निराशा के परिणामस्वरूप परवर्ती छायावादी कविता में प्रचलित नैतिक मान्यताओं का विरोध पाया जाता है—⊕ एवं नवीन भगवतीचरण वर्मा, हरिकृष्ण 'प्रेमी' आदि की कविताओं में सृष्टि की ध्वंस-कामना की गयी है। × युग की परिस्थितियों एवं वैयक्तिक जीवन की निराशाओं की यह अंतिम परिणति भयंकर दिखाई देती है। यहां पर यह संकेत करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् योरुप के साहित्यिक क्षेत्र में फ्रांसीसी प्रतीकवाद की प्रतिक्रिया में डाडावाद (डाडा सम्प्रदाय स्थापना ज़ूरिख में १९१६, फ्रांस में १९१६-१९२३) का जन्म हुआ जिसमें प्रचलित मान्यताओं के प्रति अविश्वास प्रकट किया गया एवं वह पूर्ण ध्वंसात्मक था। हिन्दी की परवर्ती छायावादी कविता में भी यही नकारात्मक दृष्टिकोण मिलता है यद्यपि दुस्साहसी कला प्रयोग इसमें नहीं हुए जो परवर्ती नयी कविता में अब कभी कभी दिखाई देते हैं। डाडावाद की तरह हिन्दी कविता में भी इस नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव बहुत कम समय रहा।

⊕ बच्चन 'मधुकलश

र त से सीधी गई है
राह मन्दिर मस्जिद की
किन्तु रखना चाहता मैं
पांव मधु-सिंचित डगर में'

× कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल जाए (नवीन)
गगन पर घिरो मण्डलाकार
अवनि पर गिरो वज्र सम आज
गरज कर भरो रुद्र हुंकार
यहां पर करो नाश का साज
मचे ताण्डव नृत्य फिर आज
बुलाले महाकाल निज ब्याज
नष्ट भ्रष्ट प्रासाद पड़े हो जल प्लावित संसार
शून्य कर रहा हो पागल सी लहरों का अभिसार
नीचे जल हो ऊपर जल हो ए जल के उद्गार'
बरसो बरसो अरे सघन घन महाप्रलय की धार'
(भगवतीचरण वर्मा)

तुम लपटों की पहनो साड़ी
मैं भी ओढ़ू लाल दुशाला (प्रेमी)

रहस्यवाद

छायावादी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति रहस्यवादी भावना है। महादेवी लिखती हैं 'यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगला की नवीन काव्य धारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।"+ श्री नामवर सिंह ने अपनी 'छायावाद-युग' पुस्तक में इस युग की रहस्यवादी कविता का रहस्यवाद की भारतीय परम्परा से सम्बन्ध स्थापित किया है। यह तो स्पष्ट है कि निराला की कविता में वेदान्त का प्रसाद पर शैव-मत और बौद्ध दर्शन का तथा महादेवी के रहस्यवाद पर उपनिषदों और बुद्ध के दुखवाद का प्रभाव पड़ा है। परन्तु आधुनिक रहस्यवाद और प्राचीन रहस्यवाद में वस्तुत गहरा भेद पाया जाता है। यह भेद जीवन के प्रति दृष्टिकोण का है। प्राचीन रहस्यवादी सांसारिकता को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधक समझता था अत उसके लिए यह संसार त्याज्य था तथा वह अपनी एकान्त साधना में लीन रहता था परन्तु आधुनिक रहस्यवादी सृष्टि में व्यक्त सौन्दर्य के दर्शन करता है। दूसरे, छायावादी कविता वैयक्तिकता प्रधान काव्य है अत इस की रहस्य भावना में आत्मा और परमात्मा के मिलन में भी आत्मा के व्यक्तित्व का लोप नहीं होता वरन् आत्मा मिलन की अनुभूति के आनन्द को सचेतन रूप के व्यक्त करती है। हिन्दी का प्राचीन रहस्यवाद साम्प्रदायिक है आधुनिक रहस्यवादी कविता में साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है। प्राचीन कवियों के रहस्यवादी भावों की अभिव्यक्ति की भूमिका में आध्यात्मिक साधना थी परन्तु हिन्दी के आधुनिक रहस्यवादी कवियों में कोई भी आध्यात्मिक साधना के लिए प्रसिद्ध नहीं है। कवियों ने लौकिक रति भावना का आरोप भी रहस्यवादी पक्ष में किया है।

हिन्दी की रहस्यवादी कविता पर सर्वाधिक प्रभाव ठाकुर रवीन्द्रनाथ टगोर की कविताओं का पड़ा। रवीन्द्रनाथ की कविता विविध पाश्चात्य प्रभावों को लिये हुए थी तथा उनकी भाव धारा उनके समकालीन पाश्चात्य साहित्यकारों के अनुरूप थी * परन्तु, रवीन्द्रनाथ एक महान् प्रतिभा थे जिनमें पूर्व व पश्चिम का अपूर्व समन्वय हुआ। उन्होंने अपनी कविता में वैष्णव कवियों, कालिदास,

---

+ महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण, संवत २००६ पृष्ठ ५०

* Alex Aronson 'Rabindranath through Western Eyes', Kitabistan, Allahabad Pp 92

Certain it is however, that Rabindranath's poetry could have been expected to fit in extra-ordinarily well not only with

कबीर तथा उपनिषदों की परम्परा को नवीन रूप में पुनर्जीवित किया। रवीन्द्रनाथ के अनुकरण पर ही परवर्ती छायावादी कविता पर उपनिषदों आदि का प्रभाव अधिक गहरा होने लगा तथा बाद में उसका सम्बन्ध भारतीय परम्परा से जोड़ दिया गया। सन् १९१४ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'गीताञ्जलि' पर 'नोबुल पुरस्कार' मिला जिससे रवीन्द्रनाथ की रहस्यवादी कविताओं की ओर हिन्दी कवियों का भी आकर्षण बढ़ा। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जब रवीन्द्रनाथ 'गीतांजलि' के गीतों की रचना कर रहे थे पश्चिम में हेगेल का आध्यात्म दर्शन अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा था। रवीन्द्रनाथ ने स्वयं हेगेलीय दर्शन का अध्ययन किया था तथा उनकी रहस्यवादी रचनाओं पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से हिन्दी कविता में आध्यात्मिकता के 'आधुनिक रूप' की स्थापना हुई। रवीन्द्र ईसाई सन्तों के नीरववाद से भी प्रभावित हुए तथा उनकी कविता में बाइबल के स्वर्गिक दूल्हे व दुलहन का भाव पाया जाता है। ✕ यद्यपि आत्मा और परमात्मा के पति-पत्नी भाव का भारतीय साहित्य एवं हिन्दी में यह सर्वथा नवीन प्रयोग नहीं है तथापि

---

the Jewelled raptures' of Francis Thomp on but also with the dreaming fairy land of W B Yeats with the Irish folk lore of A E George Russell even with the intricate and eccentric symbolism of Ezra Pound and T S Eliot's detached poetry of unrest and doubt In Germany Werfel Hugo V Hoffmannstal, Rainer Maria, Rilke and Stefan George in an idiom singularly like his own In France Verlain Baudelaire, Rimband and in more recent times Paul Valery Materlinck and a host of others had opened the eyes of the French reading public to the impenetrable darkness of the human soul the mysteries of birth growth and decay, the inimitable characteristic of individual existence Rabindarnath should have been one of them a contemporary in the best sense of the term part of the great European Literature which he too as going to shape for the better or for the worse

✕ Priyaranjan Sen Western Influence in Bengali Literature, Saraswati Library, Calcutta, Second Edition 1947 Pp 257 The image of the bridegroom and the parable of talents are sometimes to be found in Rabinda Nath's poems

दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक रूप में स्मृति, विरह, मिलन-सुख आदि की व्यापक अभिव्यंजना के द्वारा ईसाई सता के रहस्यवाद का प्रभाव लक्षित होता है। रवीन्द्र के रहस्यवाद पर आंग्ल रोमांटिक कवियों का प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ। बालक में स्वर्गिक भावना एवं सर्वात्मवाद के रूप में आंग्ल रोमांटिक कविता का हिन्दी में छायावादी कवियों ने भी अध्ययन किया था अतः उन पर यह प्रभाव रवीन्द्र के माध्यम से प्रतिफलित न होकर सीधा पड़ा है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी कविता की रहस्यवादी धारा प्रारम्भ में रवीन्द्रनाथ से प्रभावित हुई किन्तु आगे चल कर स्वतन्त्र रूप में पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण करने लगी।

हैगलीय अध्यात्मवाद

हेगल (Hegel) ने चर्च की नियमबद्ध धार्मिकता के बदले सूक्ष्म आध्यात्मिक चिंतन को प्रश्रय दिया। हेगल के अनुसार 'परमभाव' (Absolute) लोकोत्तर न होकर स्वयं विश्व की प्राणभूत सत्ता है। हेगल परिवर्तनशील विश्व को शंकराचार्य की तरह विकृति नहीं मानता वरन् परमभाव के व्यक्तिकरण का आवश्यक माध्यम मानता है।

परम भाव (Absolute) विश्व की प्राणभूत सत्ता

आधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा पर हेगलियन अध्यात्मवाद का प्रभाव दिखाई देता है। कबीर व जायसी के रहस्यवाद में हम सांसारिकता को ईश्वर प्राप्ति में बाधा स्वरूप पाते हैं। उनका ईश्वर निर्गुण ब्रह्म है। संसार केवल विकृति है अतः वह ब्रह्म के स्वरूप को पहचानने में बाधा पहुँचाता है। परिवर्तनशील और नामरूपात्मक दृश्य जिसका इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है सत्य नहीं है। इसके विपरीत हेगलियन अध्यात्मवाद में परिवर्तन को ही नित्य सत्य माना गया है। हेगल की दृष्टि में परमभाव' (absolute) विश्व की प्राणभूत सत्ता है, लोकोत्तर नहीं।

१

हेगल के अनुसार अपने पूर्ण रूप में ज्ञान तीन रूपों में व्यक्त होता है। उसका प्रारम्भ चक्षुरिन्द्रियों द्वारा होता है जिसमें केवल वस्तु की प्रतीति होती है। इन्द्रियों की संशयात्मक प्रतिक्रिया से वह पूर्णतया आन्तरिक बन जाता है। अन्त में वह उस स्थिति में पहुँच जाता है जिसे हम आत्मज्ञान कह सकते हैं, जिसमें वस्तु व विषयी का भेद नहीं रहता। इस प्रकार आत्म ज्ञान की अवस्था ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति है। हेगल के अध्यात्मवादी दर्शन में यही सर्वोच्च ज्ञान दशा कही जायेगी क्योंकि सर्वोच्च ज्ञान परम (Absolute) में ही लीन होता

है और परम चूँकि पूर्ण है अतः उसके लिए अपने से बाहर जानने को कुछ शेष नहीं रहता । =

पंत की 'परिवर्तन' कविता हेगेलियन अध्यात्मवादी भावना से प्रभावित प्रतीत होती है। इस कविता में 'परिवर्तन' जिसकी हम हेगल के परम भाव से समानता बतला सकते हैं, अखिल सृष्टि में व्याप्त तथा चिरंतन है। × 'परिवर्तन' में 'प्रेम' की व्याख्या भी हेगल के 'सच्चे ज्ञान' के रूप में हुई है। ज्ञान का सच्चा स्वरूप हृदय में प्रगट बन कर प्रेमोद्गार के रूप में व्यक्त होता है—बाह्य सत्य

= Bertrand Russell History of Western Philosophical Thought II p 760
Knowledge as a whole has its triadic movement It begins with sense perception in which there is only awareness of the object Then through sceptical criticism of the sense it becomes purely subjective At least it reaches the stages of self knowledge in which subject and object are no more distinct Thus self-consciousness is the highest form of know ledge This of course must be the case in Hegel's system for the highest kind of knowledge must be possessed by the Absolute and as the Absolute is the whole there is nothing outside itself for it to know

× पन्त 'परिवर्तन'
विलासस्थल यह विश्वमंच तुम नायक नटवर
प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर !
शत सहस्र रवि शशि असंख्य ग्रह उपग्रह उडुगण
जलते बुझते हैं स्फुलिंग से तुमसे तत्क्षण
अचिर विश्व में अखिल दिशावधि
कर्म, वचन, मन
तुम्हीं चिरन्तन
अहे विवर्तन हीन विवर्तन !

आंतरिक भाव से रंग कर भावनामय हो उठता है वही सच्चा ज्ञान है। आत्म ज्ञान की पूर्ण स्थिति। इसी अनुभूति से सृष्टि आनन्दमयी प्रतीत होती है। ×

'कामायनी' में प्रसादजी जगत् को अद्वैतवाद के अनुसार मिथ्या नहीं मानते वरन् नाना परिवर्तनों से पूर्ण जगत् को सत्य मानने की उनकी भावना हेगेलियन अध्यात्मवाद के अनुरूप है यद्यपि यह सत्य है कि शैवागमों के अनुसार विश्व में चैतन्य के अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है किन्तु परिवर्तन की सत्यता में स्पष्ट विश्वास व्यक्त करना तथा वैयक्तिक साधना के बदले सामाजिक दर्शन के रूप में उसे अंगीकार करना आधुनिक विचारधारा के प्रभाव को प्रकट करता है। महाचिति' सजग सी होकर आनन्दमयी क्रीड़ाएं करती सृष्टि के रूप में व्यक्त होती है। * परिवर्तनमय जगत् की नित्यता हेगेलीय दर्शन के अनुरूप प्रतीत होती है। –

प्रसाद जी के आनन्दवाद के अनुसार जड़ व चेतन में एक ही चेतना विलसती है। इसी प्रकार रामकुमार वर्मा के 'मेरी गति है वहां जहां गीत में विराट चेतन जगत् के रूप में जगता है तथा अचित प्रकृति के रूप में सोता है। +

× सुमित्रानन्दन पन्त आधुनिक कवि २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग चतुर्थ संस्करण, संवत २००६ पृष्ठ ४१
वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार
स्वरों में ध्वनित मधुर सुकुमार
सत्य ही प्रेमोद्गार
दिव्य सौन्दर्य, स्नेह साकार
भावनामय संसार

* जयशंकर प्रसाद 'कामयनी' भारती भंडार, लीडर प्रेस,
इलाहाबाद अष्टम संस्करण संवत २०१० पृष्ठ ५३

– वही, पृष्ठ २४२
चिति का स्वरूप यह नित्य जगत्
यह रूप बदलता है शत शत
कर विरह मिलन मय नृत्य निरत
उल्लास पूर्ण आनन्द सतत

+ रामकुमार वर्मा, आधुनिक कवि ३. हिन्दी साहित्य
सम्मेलन प्रयाग द्वितीय संस्करण संवत २००३ पृष्ठ १०४
जाग रहा चित्त सोता है
अचित प्रकृति बारम्बार

हेगलीय अध्यात्मवाद के अनुसार परिवर्तनमय जगत् की नित्यता सत्य उद्भासित होने से आधुनिक रहस्यवाद में भारतीय विचार के पुनर्जन्म सिद्धांत की नवीन रूप में अभिव्यक्ति हुई है। गीता में भी आत्मा के अजर व अमर रूप की प्रतिष्ठा हुई है तथा मृत्यु के रूप वह केवल पुराने वस्त्रों को छोड़ कर नये वस्त्र धारण करती है परन्तु हेगलीय दर्शन में काल (Time) की अनन्तता का भाव जीवन की क्षणिकता और मृत्यु को नवीन सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है। जीवन और मृत्यु एक अनन्त काल जलधि की लहरें हैं। 'परिवर्तन' में पंत मृत्यु और जीवन को बालक के सोने और जागने के रूप में देखते हैं उसके बीच में काल का व्यवधान नहीं, काल निरन्तर है। ×

इसी प्रकार प्रसाद जी की 'कामायनी' से अधीर मनु मृत्यु के अंक का हिमानी सा शीतल अनुभव करता है। उसे मृत्यु अनन्त में लहर सी प्रतीत होती है तथा काल जलधि की हलचल को व्यक्त करती है। आकाश के नीले बादलों में जिस प्रकार क्षण भर के लिए बिजली प्रकट होकर उसी में समा जाती है उसी प्रकार जीवन काल का क्षुद्र अंश है जो मृत्यु के रूप में अनन्त में लीन हो जाता है। + महादेवी जी के एक गीत 'तू धूल भरा ही आया' में मानव की मृत्यु की गोद में बालक के रूप में चित्रित किया गया है। संसार में जब मनुष्य रूपी बालक के अंग विषाद से धंकित हो जाते हैं, व्यथा के शूलों से उसके पैर साथ छोड़ जाते हैं, हृदय का स्वर्ण क्षार बन कर सांसों में उड़ जाता है स्वप्न भी साथ छोड़ देते हैं केवल पुराने परिधान ही शेष रह जाते हैं तब मृत्यु मां के रूप में अंचल से संकेत देकर उसे अपने पास बुला लेती है। वह उसके तन की धूल का झाड़ पोंछ कर नवीन वस्त्रों से उसे सज्जित करके संसार में खेलने के लिए पुनः भेज देती है। =

× पंत परिवर्तन
एक बचपन ही में अनजान जागते सोते हम दिन रात
वृद्ध बालक फिर एक प्रभात देखता नव्य स्वप्न अज्ञात
मूँद प्राचीन मरण खोल नूतन जीवन

+ जयशंकर प्रसाद 'कामायनी', भारती भण्डार लीडर प्रेस इलाहाबाद अष्टम संस्करण संवत २०१० पृष्ठ ११८

= महादेवी
जिस दिन लौटा तू चकित थकित सा उन्मन
करुणा से उसके भर भर आये लोचन
नूतन प्रभात में अक्षय गति का वर दे
तन सजल घटा-सा तड़ित छटा-सा उर दे
हंस तुझे खेलने फिर जग में पहुंचाया
तू धूल भरा जब आया
ओ चंचल जीवन बाल ! मृत्यु जननी ने अंक लगाया !

मृत्यु का ऐसा मोहक चित्र प्राचीन रहस्यवादी काव्य मे नही मिलता। प्राचीन रहस्यवादी काव्य मे मत्यु का चित्रण जीवन की निस्सारता सिद्ध करने के लिए किया गया है किन्तु आधुनिक रहस्यवा ी काव्यधारा मे वह क्षणिक जीवन व अनन्त काल की एकता को सिद्ध करती है। महादेवी मत्यु को प्राणो के अनिम पाहुन' के मोहक रूप मे प्रस्तुत करती हैं। निराला भी मत्यु को मुक्ति के रूप मे चित्रित करत हैं। +

अत आधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा म परम सत्य परिवतनमय जगत् की प्राणभूत सत्ता है जिससे जगत् आनन्दमय प्रतीत होता है। मत्यु या विवतन अन त काल जलधि की लहरो के सहश है जो उसकी हलचल या सौ "य व्यक्त करती हैं। आधुनिक रहस्यवाद साम्प्रदायिक नही है। वह एक सामा य आध्यात्मिक अनुभूति का रूप है।

आंग्ल रोमांटिक काव्य का प्रभाव

बालक मे स्वागक भावना

आधुनिक रहस्यवादी हिन्दी का य म अग्रेजी रोमाटिक कवियों के प्रभाव से बालक के सरल जीवन मे पवित्रता और स्वर्गिक ज्ञान की भावना का विकास हुआ है। अग्रेजी रोमाटिक कविता के प्रभाव से रवीन्द्रनाथ ने भी अपनी रहस्यवादी कविताओं मे बालक की भावना को चित्रित किया। 'वेन आई ब्रिंग टायज टु यू माई ब्वॉय' गीत मे उन्होंने लिखा है कि जब कवि बालक के लिये खिलौने लेकर आता है तो उसे प्रतीत होता है आकाश म इन्द्र धनुष व प्रकृति के अ य दृश्यों के रूप में ईश्वर ने मनुष्य बालक के लिये खिलौने रचे हैं। वर्ड्सवर्थ 'ओड टु द इटीमशन्स आव इममोर्टेलटी (Ode to the intimations of Immortality) कविता मे बालक को गम्भीर दार्शनिक के रूप म चित्रित करते हैं। बालक का बाह्य स्वरूप उसके गम्भीर मन का परिचय नही देता तथापि वह अ धो के बीच सच्चा द्रष्टा है जो किसी की न सुन कर मौन अनन्त गहराई से देखता है तथा उन सत्यों को पहचानता है जिन्हे जीवन पय त खोज कर भी प्रौढ नही जान पाते

> Thou whose exterior semblance doth belie
> Thy soul's immensity
> Thou best philosopher who yet dost keep,
> Thy heritage, thou eye among the blind

+ निराला
मुक्ति हू मैं मृत्यु में
आई हुई न डरो।

That deaf and silent readt'st the eternal deep
Haunted for ever by the eternal mind,
Mighty prophet seer blest
On whom those truths do rest
which we are toiling all our lives to find
In darkness lost the darkness of the grave ⊿

पंत जी भी बालक को गूढ़ गहन, अज्ञात, निरुपम बतलाते हैं

कौन तुम गूढ़ गहन अज्ञात
अहे निरुपम नवजात

वर्ड्सवर्थ के अनुसार बालक स्वर्गिक वातावरण में रहता है (Heaven lies before us in our infancy), हमारा इहलोक का जन्म एक निद्रा और भुलावा है। बालक स्वर्ग के समीप होता है परन्तु उस पर सांसारिक जीवन की छाया पड़ने पर वह स्वर्गिकता को भूल जाता है

Our brith is but a sleep and forgetting
Our soul rises with us our life's star
Hath had elsewhere its setting
And cometh from afar
Not in entire forgetfulness

And by the vision splendid
Is on his way attended

At length the Man perceives it lie away
And fade into the light of common day ×

पंतजी की 'बालापन' कविता भी इसी प्रकार शैशव की स्वर्गिक भावना को प्रकट करती है। कवि ब्रह्म रूपी चित्रकार से यौवन के अंचल में पवित्र बचपन को पुनः चित्रित करने की प्रार्थना करता है। वह बालक के क्रन्दन में सृष्टा की वीणा की झंकार की ध्वनि सुनता है

जब कि कल्पना की तन्त्री में
खेल रहे थे तुम करतार

⊿ Wordsworth: William An anthology of Famous English and American Poetry The Mod Lib New York 1945 P p 203

× Ibid, P p 201

तुम्ह याद होगी उससे जो
निकली थी स्फुट झंकार
एक बालिका के क्रन्दन में
ध्वनित हुई थी बन साकार।+

जीवन के प्रथम क्षण के इस रुदन का भाव ही शैशव में गूंजता रहता है किंतु यौवन का आगमन, फूल से ओस बिंदु की तरह शैशव के पवित्र भाव को छीन लेता है। पंत बालक के अधरों पर अतीत का मृदु हास देखते हैं जो संसार की अनवरत निद्रा का उपहास करता है। यह अतीत स्मृति स्वर्गिक है और संसार की अनवरत निद्रा स्वर्गिक भावना को भुला कर प्रकृति से उदासीन कृत्रिम जीवन व्यतीत करना है। जिस प्रकार उषा पृथ्वी के कण कण को स्वर्णाभ बना देती है तथा चन्द्र किरणों से जल शुभ्र दिखाई देता है उसी प्रकार बाल हृदय की उमंगों में स्वर्गीय दीप्ति दिखाई देती है।

वर्डसवर्थ की तरह ब्लेक ने भी अपने काव्य में बालक में पवित्र व स्वर्गिक भावना का आरोप किया है। ब्लेक बालक को कौतूहल पूर्ण दृष्टि से सौंदर्यपूर्ण सृष्टि को देखते हैं। वे बालक के रूप में एक क्षण में अनंतता का अनुभव करते हैं। बाल स्वभाव का चित्रण करते हुए वे स्वयं बालक बन जाते हैं और उसके आदेशों का पालन करते हुए आनंद अनुभव करते हैं।× पंत की 'वीणा' में

+ सुमित्रानंदन पंत 'पल्लविनी' पृष्ठ २५।

× ब्लेक (Blake) की निम्नलिखित कविता बाल हृदय के साथ उनके तादात्म्य को दर्शाती है। सुमित्रानंदन पंत की कविता में भी इस प्रकार के बाल सुलभ भाव पाये जाते हैं। पंत स्वयं 'बालिका की दृष्टि से जगत् को देखते हैं।

Piping down the Valleys wild
Piping songs of pleasure glee
On a cloud I saw a child
And he laughing said to me
'Pipe a song about a lamb ?"
So I piped with merry cheer
"Piper pipe that song again"
So I piped he wept to hear
'Piper sit thee down and write"
In a book that all may read
So he vanished from my sight
And I plucked a hollow reed
And I made a rural pen
And I stained the water clear
And I wrote my happy songs
Every child may joy to hear

सकलित अनेक कविताओं मे बाल सुलभ जिज्ञासा की अभिव्यक्ति हुई है। 'प्रतर' 'निवेदन', 'काला बादल', 'कृष्ण', 'अ मोडा म विवेकानन्द' प्रभृति कविताए बाल्य जीवन की प्रकृति व शाश्वत भाव से समीपता तथा जिज्ञासा को प्रकट करती हैं। बालक प्रकृति म ब्रह्म की ही छाया देखता है। ×

ससार के सुख दुखों से बालक का जीवन परे है। वह अपनी स्वर्गिकता मे ही लीन रहता है। +

अस्तु, अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के प्रभाव से आधुनिक हिन्दी रहस्यवादी काव्य म पतजी की कविता म बालक कौतविकता व स्वर्गिकता की भावना का आरोप मिलता है।

सर्वात्मवाद दर्शन

छायावादी कविता म प्रकृति वर्णन के प्राचुर्य का हम पीछे वर्णन कर चुके हैं। आलोच्य काल के कवियों ने रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को साधन रूप म अपनाया है। इसी दृष्टि से छायावाद का दार्शनिक आधार सर्वात्मवाद माना जाता है। कवि प्रकृति को केवल सजीव सत्ता के रूप म ही नहीं देखता वरन् वह प्रकृति के कण कण म परोक्ष सत्ता का सकेत पाता है। 'सर्वात्मवाद' वह दृष्टिकोण है जिसमे हम सभी पदार्थों को ईश्वर स्वरूप देखते हैं अथवा ईश्वर को सभी पदार्थों म व्याप्त पाते हैं। किन्तु, यह विचारधारा ईश्वर से पार्थिव जगत् की ओर अथवा पार्थिव जगत् से ईश्वर की ओर प्रवहमान हो सकती है। अत सर्वात्मवाद दो रूप धारण कर लेता है। यदि वह धार्मिक विश्वास अथवा दार्शनिक चिन्तन मे आरम्भ होता है तथा ईश्वर को अनादि म शाश्वत

× सुमित्रानन्दन पत 'पल्लविनी'

मां, वह दिन कब आयगा
मैं तेरी छवि दखूगी
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है

सत्य के रूप में ग्रहण करता है तब सीमाबद्ध व नश्वर जगत् ईश्वरीय सत्ता में खो जाता है तथा शाश्वत सत्ता के सम्मुख जगत् भ्रम रूप में भासित होने लगता है। सर्वात्मवाद जब वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाता है अथवा काव्य दृष्टि से सृष्टि के नियमों में एकसूत्रता का भान कराता है तब अपार्थिव सत्ता पार्थिव जगत् के सत्य में लीन हो जाती है। सर्वात्मवाद का पहला रूप कवि के आध्यात्मिक विश्वास को प्रकट करता है जब कि उसका दूसरा रूप सृष्टि के नियमों की एकसूत्रता के लिए नाम मात्र है जिसकी अनेक रूपात्मक सत्ता ही यथार्थ निरीक्षण व कल्पना की दृष्टि से सत्य दिखाई देती है।" X इस प्रकार, अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में इस प्र व ब्लेक आध्यात्मिक सत्ता पर विश्वास करने पर तथा शेली अनीश्वरवादी होने पर दोनों ही सर्वात्मवादी हैं। छायावादी कवियों में यद्यपि पंत ईश्वरवादी हैं किन्तु उनकी रहस्य दृष्टि प्रकृति के व्यापारों में व्यक्त होनेवाली आत्मा की ओर ही प्रसारित होती है। प्रकृति में यद्यपि पंत परोक्ष सत्ता का संकेत पाते हैं और परमार्थिक ज्ञानोदय को प्रकृति की सभी विभूतियों से श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु प्रकृति के व्यक्त प्रसार में ही वे आनन्दमग्न प्रतीत होते हैं। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा भी है, 'पंतजी की स्वाभाविक रहस्य भावना को प्रसाद और महादेवी वर्मा की साम्प्रदायिक रहस्य भावना से भिन्न समझना चाहिए। रहस्यात्मकता की अपेक्षा कवि में दार्शनिक प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। + इस दृष्टि से पंत में

X Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 9 & 10 P p 609

Pantheism is the view that all is God, and that God is all but, since thought may move either from God to all or from all to God, it can assume two forms If it begins with religious belief or the Philosophical faith in God as *infinite and eternal* reality, then the finite and temporal world is swallowed up in God and the world is(looked upon as)an illusion in comparision with God as reality If it begins with the scientific conceptions or the *poetic* vision of the world as unity then the God is lost in the world The first is theistic and the second atheistic for in the first, if inconsistently, there still survives as a rule a vague apprehension of God as theism concieves Him and in the Second (*it is*) but a name for the unity of the world, the multiplicity of which alone is real for observation and imagination

+ रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास" पृष्ठ ७०६

सर्वात्मवाद का दूसरा रूप ही प्रमुख है। वे आध्यात्मिक मुक्ति के कठिन साधनात्मक बन्धन की अपेक्षा सहज मुक्ति के मधुर क्षण में ही आनन्द अनुभव करते हैं। यह सहज मुक्ति का आनन्द जगत् के व्यक्त प्रसार के बीच परोक्ष सत्ता का आभास पाकर अनुभव होता है। वे अन्तर्मुखी होकर रहस्यानुभूति की गहराइयों में लीन होने के बदले परम सत्ता के व्यक्त आभास में ही सौन्दर्य दर्शन करते हैं। अतः कवि पुलिन पर बैठ कर ही निश्छल जल में लीन मोतीवाली मछली की जी भर छवि देखना चाहता है। ×

पूर्णतः रहस्यवादी कवि प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक मानता है। ब्रह्म प्रकृति की प्राणभूत सत्ता है अवश्य पर प्रकृति की सभी शक्तियाँ उस सत्ता की खोज में लीन रहती हैं तथा सिर नीचा किये उसकी शक्ति स्वीकार करती हैं। == महादेवीजी के रहस्यवाद में अज्ञात भाव तो है पर आत्मा ब्रह्म की खोज में लीन रहना मात्र मानने को ही खोजने का प्रयत्न है। ♣ "कामायनी" में मनु चाँदनी सदृश प्रकृति के अवगुण्ठन को हटा कर उसके परे आनन्द भरे असीम का दर्शन करना चाहता है। * महादेवीजी प्रकृति के बन्धनों को तोड़ने के लिये उत्सुक हैं।— निरालाजी भी पार्थिव जगत् के अन्धकार से परे सत्य को जानने के लिये उत्सुक हैं— "कौन तम के पार रे कह।" अस्तु इन उदाहरणों

× सुनता हूँ इस निश्छल जल में रहती मछली मोतीवाली
पर मुझे डूबने का भय है भाती तट की चल जल माली
आएगी मेरे पुलिनों पर वह मोती की मछली सुन्दर
लहरों को तट पर बैठा देखूँगा उसकी छवि जी भर" (पंत)

== जयशंकर प्रसाद 'कामायनी" भारती भण्डार, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण संवत् २०११ पृष्ठ २६

♣ महादेवी वर्मा
निठुर क्या फैला दिया यह उलझनों का जाल
आप अपने को जहाँ सब ढूँढते बेहाल

* जयशंकर प्रसाद "कामायनी" पृष्ठ ६८
चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं, अवगुण्ठन आज सँवरता सा
जिसमें अनन्त कल्लोल भरा लहरों में मस्त विचरता सा

— महादेवी वर्मा
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है
जा रहे जिस पन्थ से युग कल्प उसका छोर क्या है।
क्यों मुझे प्राचीर बन कर आज मेरे श्वास घेरे।

से प्रतीत होता है कि प्रकृति ब्रह्म से मिलन में बाधक है। किन्तु, आधुनिक रहस्यवादी कवियों ने प्रकृति को अत्यन्त सहानुभूति की दृष्टि से देखा है। इसका कारण यह है कि प्रकृति प्रायः उनकी साधना का अंग बन कर प्रस्तुत होती है। इस दृष्टि से आधुनिक रहस्यवादी काव्य धारा में प्रकृति चित्रण के रूप में रहस्यवाद का नवीन विकास हुआ है। इसे हम पश्चिम के सर्वात्मवाद दर्शन व उपनिषदों के रहस्यवाद का सम्मिलित प्रभाव ही कह सकते हैं जो हिन्दी में रवीन्द्रनाथ की कविताओं के प्रभाव स्वरूप प्रतिफलित हुआ किन्तु उसका विकास स्वतन्त्र रूप से ही हुआ।

प्रकृति आधुनिक रहस्यवादी कवि की साधना का अंग बन कर उस परोक्ष सत्ता का संकेत देती है। प्रकृति की व्यष्टिगत सत्ता में समष्टिगत चेतना का अनुभव कर कवि सहज मुग्ध हो जाता है तथा यह मौग्ध्य भाव जिज्ञासा में परिणत हो जाता है।◪

आधुनिक रहस्यवादी काव्य में प्रकृति केवल परोक्ष सत्ता का संकेत ही नहीं देती वरन् वह स्वयं भी साधिका बन जाती है और परोक्ष सत्ता से अद्वैतता प्राप्त करने के लिये साधना रत दिखाई देती है। प्रसाद समस्त प्रकृति को ब्रह्म की खोज में मग्न देखते हैं।● महादेवीजी 'शेफाली' को सकुचाते, लजाते और खिलते हुए देखती हैं तथा उसके उस पर सात्विको' को लक्ष्य कर कहती हैं मानो वह अपने प्रियतम से मिलने को आतुर है।+ इसी प्रकार निरालाजी 'सूखी डाल' कविता में 'डाल' को पार्वती का प्रतीक मानते हैं जो शिव को प्राप्त करने के लिए तपस्या में लीन है। × अद्वैतता प्राप्त करने की साधना में लीन प्रकृति से, आधुनिक रहस्यवादी

◪ सुमित्रानन्दन पंत

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन मुग्ध किसके बल

● जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' पृ० २६

महानील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते हैं सन्धान

+ महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृ० १६

पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर भर

× सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' गीतिका भारती भण्डार इलाहाबाद, तृतीय संस्करण संवत २००५ पृ० १६

कवि सहज ही तादात्म्य अनुभव करने लगता है । तादात्म्य अनुभव करने के साथ ही रहस्यवादी कवि प्रकृति को भूल ही भावों में रमा पाता है । प्रसाद जी भावों का अपनी ज्वालामयी जलन के स्फुलिंग के रूप में देखते हैं जो 'महा-मिलन' के चिह्न रूप अवशिष्ट हैं । महादेवी सांध्य गगन में अपने ही भावों को बिखरा पाती हैं । ×

ईसाई संतों का रहस्यवाद

आधुनिक कविता में आध्यात्मिकता के आरोप का एक अन्य स्रोत ईसाई संतों की रहस्यवादी भावना है । योरूपीय रोमांटिक प्रतिवर्तन की पृष्ठभूमि में ईसाई संतों की रहस्यवादी साधना थी । रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'ईसाई संतों के छायाभास तथा योरूपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएं छायावाद कही जाने लगीं ।" + डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है 'यह कहना तो ठीक नहीं कि छायावादी कवि ईसाई संतों के नीरवतावाद से प्रत्यक्षतः प्रभावित थे परन्तु यह सत्य है कि योरूप के पुनर्जागरण के समय मध्य-युग के ईसाई संतों की रहस्यवादी साधना ने उसी श्रेणी के एक प्रौढ़ आध्यात्मिक नीरवतावाद को जन्म दिया था जो भारतीय पुनर्जागरण के समय दिखाई पड़ा । उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा था और उस काल के साहित्य से छन-कर वह प्रभाव बंगला व हिन्दी के आधुनिक साहित्य में आया था । बंगला में जो उसका विरोध हुआ और हिन्दी में तो हुआ ही ।' ●

जयशंकर प्रसाद 'आंसू' भारती भण्डार इलाहाबाद प्रथम संस्करण संवत २००६ पृष्ठ ६

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महा मिलन के

× महादेवी वर्मा आधुनिक कवि १ हि सा स प्रयाग सं च २००६ पृष्ठ० ८७

फलते हैं साध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले

+ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास' नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तेरहवां संस्करण सं २०१८ पृष्ठ ६३७

● डा हजारी प्रसाद "छायावाद की प्रेरणा-भूमि" लेख 'अवंतिका,' छायावाद-अंक पृष्ठ २११

रहस्यवाद की भावना मूलत सामी मजहबो की देन है । यहूदी, ईसाई आदि मजहबों के अनुसार हाल, मूर्छा या उन्माद की अवस्था से इलहाम के रूप मे ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति होती है । सत बर्नर्ड (St Bernard) ने उन्माद की अवस्था मे होनेवाली ज्ञान की उपलब्धि के विषय मे कहा है कि आत्मा के हर्षोन्माद की अवस्था में क्षण मात्र के लिए विद्युत प्रकाश के सदृश परम तेज ईश्वर से आविर्भूत होकर ज्योतिविकिरण सा उसमे प्रविष्ट होता है। उस समय उसकी चकाचौंध को मद करने के लिए अथवा उसे दूसरों के लिए प्रेषणीय बनाने के लिए वह दिव्य, पार्थिव जगत् के रूपो के समान, जो उससे भिन्न होते हैं, भासित होने लगता है । वह परम शुद्ध व ज्योतिर्मान किरण अपने मन्द-से रूप में सह्य बन जाती है तथा उसे दूसरों के प्रति निवेदित करना अधिक सरल हो जाता है। तुरीयावस्था मे प्रतीकों के रूप में होने वाला यह छायाभास (Phantastma)ही ईसाई रहस्यवादियों द्वारा उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान है इस आध्यात्मिक ज्ञान को ईसाई रहस्यवादियों ने बाइबल के प्रतीकों से व्यक्त किया है जिसमें परमात्मा और आत्मा के सम्बन्ध को व्यक्त करने पति और पत्नी का प्रतीक मुख्यतया अपनाया गया है । सेंट जान (St John) आध्यात्मिक जागृति के लिए आत्मा की 'घोर अंधेरी रात' को आवश्यक बतलाते हैं । जिस प्रकार भौतिक प्रयोग में प्रकाश की अधिकता अन्धकार में परिणत हो जाती है उसी प्रकार रहस्यानुभूति के क्षणो मे आत्मा अन्धकार का अनुभव करती है। इसका कारण ईश्वर का जिज्ञासु आत्मा में अपने को विलय करना नहीं है वरन् आत्मा उसके ज्योतिमय स्वरूप के दिव्य दर्शन का भार वहन करने में अपने को असमर्थ पाती है। यह घनीभूत अन्धकार की रात्रि वह वेदना है जो आत्मा और विश्वात्मा के प्रेम मिलन के लिये उद्दीपन का सचार करती है । जब सभी सम्भव प्रयत्नों से बहिर्मानव अन्तर्मुखी बन जाता है तब ईश्वर नग्न रूप मे शुद्ध आत्मा की गहराइयो मे उतरता है और उससे तादात्म्य करता है । सत बर्नर्ड (St Bernard) ने ईश्वर को स्वर्गीय दुल्हा और आत्मा को दुलहन के रूप मे चित्रित किया है । सत टेरेसा और सेन्ट जुआन ड ला क्रूज

---

* St Bernard quoted in Encyclopaedia of Religion and ethics 'Mysticism'

When something from God has momentarily and as it were with the swiftness of a flash of light shades its rays upon the mind in the ecastasy of Spirit,immediately whether for the tampering of this great radiance or for the sake of imparting it to others they present themselves certain imaginary likeness of lowerings suited to the meanings which have been infused from

ने ईश्वर समागम की इस अवस्था का विश्लेषण करते हुए बताया है कि स्मृति आदि तत्वों व शक्तिशाली साधनों से आत्मा की शक्ति नीरव बन जाती है। तब उस पर अन्धरात्रि की घनीभूत काली छाया पड़ने लगती है और वेदना की घनीभूत रात्रि में ईश्वर आक्रमण करता है तथा आत्मा का उद्धार करता है। आत्मा अपने प्रेमी ईश्वर के लिए भाव विह्वल रहती है तथा प्रिया रूपिणी आत्मा को प्राप्त करने के लिये ईश्वर भी उद्यत हो जाता है। परन्तु, हिन्दी की आधुनिक कविता की रहस्यवादी धारा पर रवीन्द्रनाथ टगोर की रहस्यवादी कविताओं के माध्यम से ईसाई रहस्यवादियों के दाम्पत्य प्रेम प्रतीकों के रूप में प्रभाव प्रतिफलित हुआ।

ईसाई रहस्यवादियों की तरह आधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा में दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है। छायावादी कवियों ने आत्मा और परमात्मा के मधुर सम्बन्ध को अत्यन्त रमणीय कल्पनाओं के द्वारा व्यक्त किया है। जीव और ब्रह्म का अंग अंगी सबंध निराला की 'तुम और मैं' कविता में व्यंजित हुआ है। = महादेवी जी भी इस प्रणय सम्बन्ध को चन्द्रबिम्ब रश्मि, समुद्र और लहर ऋतुराज–मधुश्री, चित्र रेखा, राग-स्वर, काया-छाया आदि के रूप में अभिन्न बतलाती हैं तथा प्रियतम प्रेयसी के प्रणय सम्बन्ध को एक अभिनय मानती हैं। ≠ पतजी की 'छाया' कविता में दाम्पत्य प्रेम की भावना मिलती है। वे तरु और छाया के सम्बन्ध के रूप में ब्रह्म व आत्मा के सबध की समानता देखते हैं तथा विरह दुःख से समान रूप से व्यथित परस्पर गले में बाहें डाल कर प्रिय मिलन की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। प्रसाद जी के 'आँसू' काव्य व निज

---

above by means of which that most and brilliant ray is in a manner shaded and both become bearable to the soul itself and more capable to be communicated

= सूयका त त्रिपाठी 'निराला

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा

तुम नन्दन वन घन विटप और मैं सुख शीतल तल शाखा

तुम प्राण और मैं काया तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म

मैं मनोमोहिनी माया

≠ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुथ सस्करण सवत २००६ पृष्ठ ५७

चित्रित तू मैं हू रेखाक्रम, मधुर राग तू मैं स्वर सगम

काया छाया मे रहस्यमय, प्रियतम प्रेयसी का अभिनय क्या ?

प्रलयों के अंधकार में तुम कैसे छुपे आओगे' गीत में दाम्पत्य प्रेम प्रतीक की व्यंजना हुई है ।

रहस्यवादी कवि की भावना अज्ञात प्रियतम की आराधना में अनवरत लीन रहती है । उसका जन्म ही प्रियतम से बिछोह का कारण बन जाता है और इस विरह दुःख का अनुभव करते हुए उसकी आत्मा प्रणय पात्र की खोज में भटकती रहती है । उसकी इस खोज में प्रेम की नाना अनुभूतियां सजग हो उठती हैं । जन्म जन्मान्तर में यह खोज चलती रहती है । + अनन्त के पथ पर चलती हुई विरहिणी आत्मा अंत में अपनी सांसारिक सीमाओं को तोड़कर स्वयं ही असीम, जिसकी खोज उसका लक्ष्य था का रूप बन जाती है । एक सच्चे रहस्यवादी की आत्मा सांसारिक परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर असीम का स्पर्श करती प्रतीत होती है । महादेवी जी की कविता में यह सत्य हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा के कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक स्पष्ट रूप में प्रकट होता है । श्री रायकृष्णदास लिखते हैं 'कवि की (महादेवी की) आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भांति अपने प्रियतम का स्मरण करती है । उसकी दृष्टि में विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है । इस प्रतिबिम्ब जगत् को देख कर कवि का हृदय उसके सलोने बिम्ब के लिए ललक उठा है । उसी एक का स्मरण, चिन्तन एवं उससे तादात्म्य होने की उत्कण्ठा महादेवी जी की कविता का प्राण है" # जिस प्रकार अंग्रेजी रोमांटिक कवि वर्डसवर्थ सांसारिक जीवन को निद्रा या भूल मानता है उसी प्रकार महादेवी इस जीवन को 'चिर सुन्दर' से वियोग का कारण मानती हैं

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास । ф

इसी से वे मिलन सुख के गीत गाने में अपने को असमर्थ पाती हैं • अतः जीवन उनके लिए वेदना, करुणा और आंसुओं की गाथा बन जाता है ।

+ महादेवी आधुनिक कवि १ साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृष्ठ ३६

दूर है अपना लक्ष्य महान्
एक जीवन पग एक समान

रायकृष्णदास 'नीरजा' की भूमिका

ф महादेवी 'आधुनिक कवि' १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृष्ठ ३२

• वही पृष्ठ ३२,

जन्म ही उसे विरह की रात
सुनावे क्या वह मिलन प्रभात ?

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात 卐

कवियत्री की चिर विरहिणी आत्मा आसुओं के मिस किसी का प्यार उंडेलती हुई तथा पलकों में किसी का सुकुमार सपना लिए प्रणय की अनवरत आराधना में लीन है। स्मृति ही उसका सम्बल है। प्रिय मिलन की स्मृति अभी वह भूली नहीं है। प्रकृति में वह उस मिलन के शेष चिह्नों को देख रही है। अत उस मिलन को असत्य या स्वप्न समझनेवालों से वह कहती है कि वह स्वप्न नहीं था अभी तक फूलों में उसके आसू और उसका हास भरा है। + महादेवी जी विरहिणी आत्मा अपने चिर सुन्दर की मिलन बेला में अलस कर सो जाती है और कीस्वप्न में प्रियतम अपनी मुस्कान (ओठों पर) आंक कर चला जाता है। रहस्यवादी कवि की अनुभूति अलस यामिनी में सोयी उस प्रणयिनी के सदृश होती है जिसे उसका प्रेमी स्वप्न में आकर जगा दे पर जगने पर कोई दिखाई न दे तथा प्रेमी के स्पर्श सुख की स्मृति में वह युगों-युगों तक लीन रहे। × महादेवी जी की कविता म अज्ञात प्रियतम से मिलन के लिए आतुर विरहिणी का स्वर शत शत गीतों में फूट पड़ता है। कभी वे उस अज्ञात प्रियतम का पथ देखती रात बिता देती हैं और कभी सोचती हैं प्रिय सुधि भूल गये और पथ से अपरिचित वह स्वयं आये भी तो कहां, व कभी विरहातुर होकर पपीहे से 'पी' का पता पूछने लगती है। = और कभी प्राण पिक से 'पी' का नाम सुनाने के लिए अनुरोध करती हैं। * कभी मम

卐 वही, पृष्ठ ५१

\+ वही पृष्ठ २
कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों म
मेरे आंसू उनके हास

× वही, पृष्ठ ८८
कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने
याद में उन अंगुलियों की
है मुझे अब युग बिताने

= महादेवी, 'यामा' पृष्ठ २१६
रे पपीहा पी कहां !

* महादेवी आधुनिक कवि १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुर्थ संस्करण संवत २००६ पृष्ठ ६८
प्राण पिक प्रिय नाम रे कह !

की मुस्कान में उन्हें प्रियतम का आगमन सकेत दिखाई देता है ± और शून्य नभ की मुस्कान में उन्हें प्रियतम के आह्वान का स्वर गूंजता सुनाई देता है। कभी वे प्रियतम से अभिसार के लिए दूर देश को जाने के लिए तत्पर होती हैं। और कभी अन्धकारमय रात्रि में स्वयं प्रियतम ही अभिसार के लिए आतुर हो उठता है। तब वे नभ के तारा-दीपों को बुझ जाने का सकेत करती हैं।∓ रहस्यवादी कवि के लिए आध्यात्मिक विरह की अनुभूति अत्यधिक प्रिय होती है क्योंकि इससे उसके हृदय में प्रियतम की सुधि प्रतिक्षण बनी रहती है। कबीर उस हृदय को मसान के समान बतलाते हैं जिसमें आध्यात्मिक विरह की आग न सुलगती हो। महादेवी जी की कविता में विरह साधना साधन न रह कर साध्य सी बन गयी है। जिस प्रकार कृष्ण के वियोग में चिर विरहिणी राधा राधा न रह कर विरही माद में स्वयं कृष्ण ही बन जाती है उसी प्रकार महादेवी जी को विरह की आराधना स्वयं आराध्यमय बना देती है।≠ फिर भी उनकी कविता में मिलन की अमिट आकांक्षा का आभास अवश्य मिलता है और मिलन वेला में वे प्रियतम की आरती उतारने के लिए उत्कंठित हो उठती हैं। ∰ इस प्रकार महादेवी जी की कविता में स्मृति, स्वप्न, सकेत, अभिसार, विरह आकुलता मिलन उत्कण्ठा आदि प्रेम की नाना अनुभूतियों का परिचय मिलता है।

परन्तु महादेवीजी रहस्यानुभूति की विशिष्टता है वेदना प्रेम तथा व्यक्तित्व चेतना। महादेवी जी को पीड़ा अत्यधिक प्रिय है इसका कारण यही नहीं है कि वह प्रिय की दी हुई है + वरन् इसलिए कि दुःख उनके निकट सम्पूर्ण सृष्टि को

± मुस्काता सकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं? (वही, पृष्ठ ६५)

∓ करुणामय को भाता है
तम के परदे में आना
हे नभ की दीपावलियों
तुम पल भर को बुझ जाना (वही, पृष्ठ १६)

≠ आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा (वही, पृष्ठ ८३)

∰ प्रणत लौ की आरती ले
धूम लेखा स्वर्ण अक्षत नील कुमकुम वारती ले
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह उज्जवल भारती ले
मिल अरे बढ़ आ रहे यदि प्रलय झंझावात (वही पृ० १०४)

\+ इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब पीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का (वही, पृष्ठ ७)

एकसूत्र मे बांधनेवाला तथा प्रिय की स्मृति को निरन्तर जगाये रखनेवाला है। ज्ञानमार्गियो की तरह महादेवी जी ब्रह्म का निवास अन्तर मे मानती हैं पर जिस प्रकार ज्ञानमार्गी इन पर माया का आवरण मानते हैं महादेवीजी प्रियतम को दुःख के अवगुण्ठन से छुप कर मानस मे बसने का आह्वान करती हैं। वे प्रियतम को ढूंढने के मिस कण कण की पीडा से परिचित होना चाहती हैं।% वे उस 'अमरों के लोक' को भी ठुकरा देती हैं जिसमे वेदना और अवसाद नहीं है।= प्रेम की पीडा से भरी हुई साधना मे ही कवियत्री रहती हैं। अज्ञात प्रेमी के लिए यह पीडा ही तो उस प्रेमी को महत्व प्रदान करती है। इसके सम्मुख मिलन सुख महत्वहीन है।• इस प्रकार, महादेवीजी की कविता म पीडा एक व्यापक भाव है जो सम्पूर्ण सृष्टि को एकसूत्र म बांधती है तथा इसी के सहारे कवियित्री की विरहिणी आत्मा आध्यात्मिक प्रेम के मार्ग पर अग्रसर होती है। महादेवीजी ने कहा भी है, 'मुझे दुःख के दोनो रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के सवेदनशील हृदय को सारे ससार से अविच्छिन्न सबध में बांध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बधन म पडे हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'

महादेवीजी की रहस्यानुभूति की दूसरी विशेषता है व्यक्तित्व चेतना। छायावादी काव्य अन्तर्मुखी व आत्म केन्द्रित है अत उसमे व्यक्तिक भावना की प्रधानता है। महादेवी जी की कविता मे यह वैयक्तिक भावना व्यक्तित्व चेतना के रूप में व्यक्त हुई है। वे अपने व्यक्तित्व को खोकर प्रियतम से मिलन नही

% तुम मानस में बस जाओ
छुप दुःख के अवगुण्ठन से
मैं तुम्हें ढूंढने के मिस
परिचित हो लू कण कण से (वही पृष्ठ २८)

= क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार (वही, पृष्ठ २३)

• चिन्ता क्या है हे निमम
बुझ जाये दीपक मेरा
हो जायेगा तेरा ही
पीडा का राज्य अंधेरा (वही, पृष्ठ ७)

चाहतीं ।+ यही कारण है कि वे मिलन से भी विरह वेदना को अधिक प्रेम करती हैं ।× मुक्ति या मिलन की कामना महादेवीजी के काव्य में अलभ्य है वे ब्रह्म को कलि और जीव को उसकी सौरभ के सदृश मानती हैं जो लौट कर कलि मे नहीं जाती फिर भी कलि से उसका सम्बन्ध अटूट है ।= पतंग जल कर दीपकमय हो जाता है विरहाकुल राधा तन्मय होकर स्वयं कृष्ण बन जाती है उसी प्रकार महादेवी विरह वेदना में स्वयं खोकर प्रिय को पा जाती हैं ।⊂ विरह की रात उनके लिए मिलन का प्रात बन जाती है ।— अत उनकी कविता मे मिलन की आकांक्षा प्रायः व्यक्त नही हुई है। यदी नही जहां मिलन स्थल के आने का भ्रम पैदा होता है वे चौंक उठती हैं और चाहती हैं कि क्षितिज की तरह वह स्थल और दूर चला जाय। वे वियोग के पल रोते हुए बिता देना चाहती हैं पर संयोग

\+ मिलन मन्दिर में उठा दू
जो सुमुख से सजल गुण्ठन
मैं मिटू प्रिय म मिटा ज्यो तप्त सिकता में सलिल कण
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं (वही, पृष्ठ ६२)

× मिलन का मत नाम ले रे
मैं विरह मे चिर हूँ (वही, पृष्ठ ८८)

= वह सौरभ हू मैं जो उड़ कर
कलिका म लौट नहीं पाता
पर कलिका के ही भाते प्रिय जिसको अग न सौरभ जाना
(वही, पृष्ठ ७१)

⊂ पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में
कौन तुम मेरे हृदय म ? (वही पृष्ठ ११)

— गू जता उर में न जाने
दूर का संगीत सा क्या
आज निज को खो मुझे
खोया मिला विपरीत सा क्या।
क्या नहा आई विरह निशि
मिलन मधु दिन के उदय म (वही पृष्ठ ५२)

के समय बुझ जाना चाहती हैं जिससे मिलन का अवसर चला जाय। × यद्यपि प्रियतम से दूरी उन्हें रंगमय प्रतीत होती है क्योंकि जब तक यह दूरी है तभी तक यह सृष्टि की चिन्मय क्रीड़ा चलती रहेगी। फिर भी दूर रह कर जलने से उनका मन नहीं मानता इसे स्वयं महादेवी जी ने स्वीकार किया है • अतः वह अभिमानिनी प्रेमिका अपना निजत्व देकर प्रियतम से मिलना तो नहीं चाहती पर यह अवश्य चाहती है कि वे निरन्तर उसकी आराधना में दीपक की तरह जलती रहें और एक दिन प्रियतम आकर अपनी फूंक से उस दीपक को बुझा दे तो उसकी राख ही प्रियतम को पता दे = अथवा जैसी कि जायसी की नागमती की आकांक्षा है वह अपने शरीर को जला कर राख कर देना चाहती है और पवन से कहती है कि उस राख को उड़ा कर प्रियतम के पथ पर गिरा दे जिससे शायद वह प्रियतम के पावों का स्पर्श पा सके उसी प्रकार महादेवी अपने हृदय को तिल तिल जलाकर राख बना देना चाहती हैं और उस विभूति में पद चिह्न बनाने के लिए प्रियतम का आह्वान करती हैं। + इतना होने पर भी यदि प्रियतम स्वयं ही आकर पथ में मिल जायें तब विश्वात्मा की प्रिया को अपने प्रिय से मिलना ही होगा। प्रलय झंझावात का रूप धर कर आनेवाले प्रियतम में आत्मा रूपी दीपक को घुल जाना होगा। महादेवी जी की कविता में इस मिलन का भी आभास मिलता है।

× इस अचल क्षितिज रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हो फीके (वही, पृष्ठ २६)
चाहूं वियोग पल रोते
संयोग समय छिप जाऊं (वही पृष्ठ २६)

• रंगमय है व दूरी
छू तुम्हें रह जायगी यह
चिन्मय क्रीड़ा अधूरी
दूर रह कर जलना पर मन न मेरा मानता है
(वही, पृष्ठ ६४)

= दीप सी युग युग जलूं वह सुभग इतना बता दे।
फूंक से उसकी बुझूं तब क्षार ही मेरा पता दे
(वही, पृष्ठ ६२)

+ नित जलता रहने दो तिल तिल
उसकी विभूति में फिर आकर
अपने पद चिह्न बना जाना (वही, पृष्ठ ७१)

निरालाजी के बहुत से गीत दाम्पत्य प्रेम-प्रतीक रूप में रहस्यपूर्ण अनुभूति से सज्जित हैं। 'रूखी डाल' में पार्वती का आरोप कर वे उसे वसंत शिव की साधना में रत देखते हैं। यहां शिव ब्रह्म के व पार्वती आत्मा की प्रतीक बन जाती है। 'बादल में आये जीवन धन' गीत में आत्मा को प्रोषितपतिका के रूप में चित्रित किया गया है। बादलों की वर्षा हृदय में प्रेमांकुर जगाती है। शैवलिनी जाकर जलधि से मिल जाती है। तब आत्मा का विरह उद्दीप्त हो जाता है और वह विश्वात्मा से जिससे उसने रूप-स्पर्श रस गंध शब्द प्राप्त किये हैं मिलने के लिए आतुर हो जाती है। ⚠ 'अस्ताचल रवि, जल छलछल छवि' गीत में रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि मिलती है। संध्या समय बहनेवाली पवन पुरानी सुधियों की कहानी कहती है। उस अवसर पर दूर नदी में एक नौका बहती जा रही है जिसमें आत्मा रूपी अभिसारिका बैठी है। उसकी आँखों में प्रियतम का ध्यान और मन में प्राणधन का चिन्तन है। + 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले' गीत में रात्रि के अंधेरे में विश्वात्मा और आत्मा के प्रगाढ़ मिलन का संकेत मिलता है। माया रूपी प्रात आलोक के फैलने पर आत्मा और ब्रह्म का अलग ज्ञान होता है और उनमें भेद दिखाई देने लगता है। माया का आलोक भेद बुद्धि उपजानेवाला है। इस संसार में सभी एक दूसरे द्वारा छले हुए चलते हैं। आत्मा अपने प्रणयी विश्वात्मा को रोक रखना चाहती है। अतः ईसाई रहस्यवादियों की तरह कवि मिलन की अंधेरी रात का आह्वान करता है। × 'गीतिका' के अनेक गीतों में निरालाजी के काव्य की यह रहस्यात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट है। विरहिणी आत्मा विश्वात्मा के विरह में आंसू

⚠ सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 'गीतिका', भारती भंडार इलाहाबाद, तृतीय संस्करण संवत २००५ पृष्ठ १५

बरस गई जलधार विश्व सब
शैवलिनी पा गई जलधि निज
मुक्त हुए आ स्नेह के क्षितिज
रूप स्पर्श रस गंध शब्द धन

\+ ऊपर शोभित मेघ छत्र सित
नीचे अमित नील जल लोभित
ध्यान नयन मन चिन्त्य प्राणधन
किया शेष कर रवि ने अर्पण (वही, पृष्ठ ६८)

× हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जाओगे चले
कैसी थी रात बन्धु थे गले गले
फूटा आलोक
परिचय परिचय पर जग गया भेद, शोक (वही पृ ६६)

बहाती है। = कभी वह यह अनुभव करती है कि वह मायावर तो सभी आत्माओं को प्रेम करता है। % कभी कवि जीवन व प्रकृति के संकेतों से आध्यात्मिक मिलन का स्वर देखता है। +

पतजी की कविताओं म वात्सल्य प्रेम के प्रतीक की ईसाई रहस्यवादी भावना अधिक नहीं पायी जाती। पतजी का मन विशेष रूप से प्रकृति के दृश्य रूपों के चित्रण मे ही रमता है। तथापि कुछ प्रसंगों म उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की भावना को भी व्यंजित किया है। उनकी 'छाया' कविता का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं जिसमें छाया को अपने प्रियतम अन्धकार से मिलने के लिए आतुर दर्शाया गया है और इसी प्रकार कवि की विरहिणी आत्मा चिर सत्‌ प्रियतम मे अन्तर्धान होने के लिए व्याकुल है। पतजी की मानव संबधी आध्यात्मिक भावना का विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि वे जीवन को स्वर्गिक ज्योति से वियोग मानते हैं। कभी कभी उनकी कविता में आत्मा विरहिणी प्रेयसी का रूप धारण कर लेती है और अनन्त प्रियतम के विरह में आंसू बहाने लगती है।

रामकुमार वर्मा की अनेक कविताओं म भी आध्यात्मिक प्रेम की भावना पायी जाती है। वियोगिनी यह विरह की रात गीत म वियोगिनी आत्मा के लिए जीवन ही विरह बना है और अज्ञात प्रियतम से मिलन के क्षणों की कोई स्पष्ट याद

= वे गये दु:ख भर
वारिद झर झर झर झर (वही पृ ६२)
प्राण घन को स्मरण करते
नयन झरते नयन झरते (वही पृ ५२)

% चाहते हो किसको सुन्दर
तुम्हारी अपनी, कौन अपर (पृष्ठ ६०)

+ सुवासना उठी प्रिया
आनत नयना
भवन दीप जला रही
आरती उतार (वही पृ १०२)
कैसी बजी बीन
सजी मैं दिन दीन ?
मलिन मन दिवस-निशि तू क्यों रही क्षीण (वही पृ १०४)
खुलती मेरी शैफाली हसती री डाली डाली
मुदी जब जग ने आंखें खोली री इसने पाखें
उड़ने को नभ को तारे, उपवन की परियां आली (वही पृ १०६)

भी नहीं आ पाती । + फिर भी प्रियतम की स्मृति को लिए वह अभिलाषा जगाये है ।× प्रिय विरह का दंश उसे रह रह कर चुभता है । प्रियतम उसे भूल गये हैं तो वह क्या गीत गाये । = प्रेम-मिलन की बात उसे स्वप्न सी प्रतीत होती है । (ॐ) परन्तु, इस विरह की घोर [redacted] धेरी रात्रि में भी उसे प्रियतम का संकेत दिखाई दे जाता है । ◣ कभी कवि व दावन के रास-रंग के रूप में आत्मा व अनात प्रियतम के साथ अभिसार का स्मरण करता है । — कभी वह परोक्ष सत्ता के ज्योति चित्र प्रस्तुत करता है जिसका क्रीडा-स्थल छोटा-सा संसार न होकर महाविश्व है । √ रामकुमार वर्मा की कविता में आत्मा अनन्त के पथ की यात्रा में लीन है । अनात प्रियतम से मिलन ही इस यात्रा का अन्त सूचित करता है । इस अनात प्रियतम को उन्होंने प्रिय व प्रिया दोनों नामों से सम्बोधित किया है । वर्मा जी ने अपनी कविता में आध्यात्मिक मिलन के आह्लाद को व्यक्त किया है । % उनकी रहस्यवादी

\+ रामकुमार वर्मा 'आधुनिक कवि ३, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग द्वितीय संस्करण संवत २००३ पृष्ठ १८
कब मिले थे वे-मुझे क्या है न कुछ भी याद

× दूर बसे हो, केवल स्मृति ही आकर यहां बसी है
प्राणों के कण कण में तुमने पीडा यहां कसी है
अभिलाषा तरु में विकसित हो
दो दिन में मुर्झाऊं ? (वही पृष्ठ ७)
भूल कर भी तुम न आये (वही, पृष्ठ १३)

= प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊं (वही, पृष्ठ ११)

(ॐ) देव मैं अब भी हूँ अनात
एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम मिलन की बात (वही पृष्ठ १३)

◣ रजनी के विस्तृत नभ को मैं दृग में भर लेता
एक एक तारे को कितने भाव युक्त कर देता
उसी समय मधोत एक आता वातायन द्वारा
मैं क्या समझूं मुझे मिला संकेत तुम्हारा (वही, [redacted] १२)

— वही, पृष्ठ ६०

√ वही पृष्ठ १०४

% जब तुम आये हो एक बार
तब मैंने जाना है जीवन बन गया मिलन का एक द्वार (वही, पृ १२)
मैं तुमसे मिल गया प्रिय
यह है जीवन का अन्त
इसी मिलन का गीत कोकिले
गा जीवन पर्यन्त (वही, पृष्ठ ४७)

महाती है। = कभी वह यह अनुभव करती है कि वह मायावर तो सभी आत्माओं को प्रेम करता है। % कभी कवि जीवन व प्रकृति म सकेतों स आध्यात्मिक मिलन का स्वर देखता है। +

पतजी की कविताओ म दम्पत्य प्रेम के प्रतीक की ईसाई रहस्यवादी भावना अधिक नहीं प यी जाती। पतजी का मन विशेष रूप से प्रकृति क दृश्य रूपों के चित्रण मे ही रमता है। तथापि कुछ स्थलो म उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की भावना को भी व्यजित किया है। उनकी 'छाया' कविता का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं जिसमें छाया को अपने प्रियतम अन्धकार से मिलने के लिए आतुर दर्शाया गया है और इसी प्रकार कवि की विरहिणी आत्मा चिर तन प्रियतम म अन्तर्ग न होने के लिए व्याकुल है। पतजी की बालक सबधी आध्यात्मिक भावना का विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि वे जीवन को स्वर्गिक ज्योति से वियोग मानते हैं। कभी कभी उनकी कविता मे आत्मा विरहिणी प्रेयसी का रूप धारण कर लेती है और अनन्त प्रियतम के विरह म आसू बहाने लगती है।

रामकुमार वर्मा की अनेक कविताओ म भी आध्यात्मिक प्रेम की भावना पायी जाती है। वियोगिनी यह विरह की रात गीत मे वियोगिनी आत्मा के लिए जीवन ही विरह बना है और अज्ञात प्रियतम से मिलन के क्षणो की कोई स्पष्ट याद

= वे गये दु ख भर
वारिद झर झर झर झर
प्राण धन को स्मरण करते (वही प ६२)
नयन झरते नयन झरते (वही प ५२)

% चाहते हो किसको सुन्दर
तुम्हारी अपनी, कौन अपर (पृष्ठ ६०)

+ सुवासना उड़ी प्रिया
आनत नयना
भवन दीप जला रही
आरती उतार
कसी बजी बीन (वही प १०२)
सजी मैं दिन दीन ?
मलिन मन दिवस–निशि तू क्यो रही क्षीण (वही प १०४)
खुलती मेरी शफाली हसती री ड ली डाली
मुदी जब जग ने आंखें खोली री हसने पाखें
उड़ने को नभ को तारे उपवन की परिया आली (वही पृ १०६)

भी नहीं आ पाती। + फिर भी प्रियतम की स्मृति को लिए वह अभिलाषा जगाये है। × प्रिय विरह का देश उसे रह रह कर चुभता है। प्रियतम उसे भूल गए हैं तो वह क्या गीत गाये। = प्रेम-मिलन की बात उसे स्वप्न सी प्रतीत होती है। (ॐ) परन्तु, इस विरह की घोर अँधेरी रात्रि में भी उसे प्रियतम का संकेत दिखाई दे जाता है। ◪ कभी कवि वृंदावन के रास-रंग के रूप में आत्मा व अनात प्रियतम के साथ अभिसार का स्मरण करता है। — कभी वह परोक्ष सत्ता के ज्योति चित्र प्रस्तुत करता है जिसका क्रीडा-स्थल छोटा सा संसार न होकर महाविश्व है। ✓ रामकुमार वर्मा की कविता में आत्मा अनन्त के पथ की यात्रा में लीन है। अनात प्रियतम से मिलन ही इस यात्रा का अन्त सूचित करता है। इस अनात प्रियतम को उन्होंने प्रिय व प्रिया दोनों नामों से सम्बोधित किया है। वर्मा जी ने अपनी कविता में आध्यात्मिक मिलन के आह्लाद को व्यक्त किया है। % उनकी रहस्यवादी

\+ रामकुमार वर्मा आधुनिक कवि ३, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वितीय संस्करण संवत २००३ पृष्ठ १८
कब मिले थे वे-तुझे क्या है न कुछ भी याद

× दूर बसे हो, केवल स्मृति ही आकर यहां बसी है
प्राणों के कण कण में तुमने पीड़ा यहां कसी है
अभिलाषा तरु में विकसित हो
दो दिन में मुर्झाऊं ? (वही पृष्ठ ७)
भूल कर भी तुम न आये (वही, पृष्ठ १३)

= प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊं (वही, पृष्ठ ११)

(ॐ) देव मैं अब भी हूँ अनात
एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम मिलन की बात (वही, पृष्ठ १३)

◪ रजनी के विस्तृत नभ को मैं दृग में भर लेता
एक एक तारे को कितने भाव युक्त कर देता
उसी समय खद्योत एक आता वातायन द्वारा
मैं क्या समझूं मुझे मिला संकेत तुम्हारा (वही, पृ १२)

— वही, पृष्ठ ६०

✓ वही पृष्ठ १०४

% जब तुम आये हो एक बार
तब मैंने जाना है जीवन बन गया मिलन का एक द्वार (वही, पृ १२)
मैं तुमसे मिल गया प्रिये
यह है जीवन का अन्त
इसी मिलन का गीत कोकिले
गा जीवन पर्यन्त (वही, पृष्ठ ५७)

कविताओं में आधुनिक रहस्यवाद को व्यक्तित्व चेतना की प्रवृति भी पायी जाती है। व्यक्तित्व का अभिज्ञान रहते हुए आध्यात्मिक मिलन की आनन्दानुभूति ही उनके अनुसार रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है। अत उनके एक गीत 'एक दीपक कण हूँ' में आत्मा और परमात्मा के मिलन का दीपक और सूय की ज्योति के मिलन के सदृश बताया गया है, दीपक का प्रकाश सूय की ज्योति मे लीन हो जाता है तथापि दीपक का अस्तित्व नष्ट नही होता। —

अस्तु आधुनिक युग की रहस्यवादी कविता में हृगेलीय अध्यात्मवाद के अनुसार ब्रह्म (Absolute) को विश्व की प्राणभूत सत्ता माना गया है तथा काल (Time) की अन तता के दशन कर मृत्यु को कमनीय रूप म चित्रित किया गया

— कबीर के रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए इवेलिन अन्डर हिल (Evelyn Under Hill) लिखती हैं The soul's union with him (Kabir) is a love union, mutual inhabitation that essentially dual istic relation which all mystical religions express, not a self mergence which leaves no place for personality This external distinction, the mysterious union in separa teness of God and soul is a necessary doctrine of all sane mysticism, for no scheme which fails to find a place for it can represent more than a fragment of that soul's inter course with the spiritual world

Rabindra nath Tagore 'Poems of Kabir' भूमिका लेखिका—(Evelyn Under Hill 49)

डा रामकुमार वर्मा भी रहस्य साधना मे अनन्त मिलन के अवसर पर प्रिय रूपिणी आत्मा के व्यक्तित्व की अलग सत्ता म विश्वास करते हैं। उन्होने 'कबीर का रहस्यवाद' पुस्तक मे लिखा है : "अद्वैतवाद व रहस्यवाद मे कुछ भिन्नता है। अद्वैत वाद मे मिलाप की भावना का ज्ञान भी नही रहता रहस्यवाद म यह मिलाप एक उल्लास की तरग बन कर आत्मा म जाग्रत रहता है।—व्यक्तित्व का अभिज्ञान रहते हुए इस मिलाप की अनुभूति ही रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है।" सूय व दीपक के रूपक में स्वय उनके काव्य म आत्मा रूपी किरण के व्यक्तित्व की रक्षा का भाव स्पष्ट है,

नव प्रभा लेकर चला हूँ
पर जलन के साथ हूँ मैं
सिद्धि पाकर भी तुम्हारी
साधना का ज्वलित क्षण हूँ

है। काल की अनन्तता की अभिव्यक्ति मे भारतीय दर्शन के पुनर्जन्म सिद्धान्त का भी समावेश हुआ है। आंग्ल रोमांटिक काव्य के प्रभाव स्वरूप प्राकृतिक रहस्यवादी कविता मे बालक के प्रति स्वर्गिक भावना का विकास हुआ है। सर्वात्मवादी दर्शन के प्रभाव-स्वरूप प्रकृति परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करती है एव स्वय भी परोक्ष सत्ता से मिलने की साधना मे लीन है। ईसाई मतों के रहस्यवाद के प्रभाव स्वरूप प्रियतम और प्रेयसी के प्रतीक रूप मे प्रेम की अनेक अनुभूतियों का चित्रण किया गया है—किन्तु, आध्यात्मिक अनुभूति के बदले प्राय लौकिक प्रेम भावना का भारी पुट भी हुआ है। इस युग की कविता मूलत वैयक्तिक कविता है अत आत्मा के परोक्ष सत्ता से मिलन मे भी कवि की व्यक्तित्व चेतना बनी रहती है।

अभिव्यजनावाद

हिन्दी साहित्य मे आलोच्य-काल मे चलने वाले अनेक वादों मे 'अभिव्यजनावाद' की अत्यधिक चर्चा रही। क्योंकि अभिव्यजनावाद कल्पना को प्रधानता देता है जो छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता है। 'अभिव्यजनावाद' के प्रवर्तक इटली के दार्शनिक बेनेडेटो क्रोचे थे।

क्रोचे ने अपनी पुस्तक 'मानस दर्शन' (Philosophy of the spirit or mind) में अपने दार्शनिक विचारो को प्रकट किया है। यह पुस्तक सौन्दर्य शास्त्र (Aesthetic as the science of expression) तर्कशास्त्र (Logic as the science of pure concept), व्यवहार दर्शन (History, its theory and practice) प्रभृति जिल्दों में प्रकाशित हुई है। क्रोचे के मत मे मन से अलग सत्य का कोई अस्तित्व नही है। उनका कला सिद्धान्त जिसे 'अभिव्यजनावाद' की संज्ञा दी जाती है वस्तु और रूप में कोई अन्तर स्वीकार नहीं करता।

क्रोचे सत्ता को मानस व्यापार रूप मानते है। द्रव्य (matter) स्वरूपहीन होता है। मन एक साचे की तरह है जो कि द्रव्य को आकार प्रदान करता है। रूपहीन द्रव्य के मानव मन के समक्ष उपस्थित होने पर मानस व्यापार आरम्भ होता है। अरूप द्रव्य साचेवाले मन से तादात्म्य ग्रहण कर साकार रूप धारण करता है। मानस-व्यापार द्वारा द्रव्य को जो सुसम्पूर्ण रूप मिलता है क्रोचे उसे ही सत्ता के नाम से अभिहित करते है। अत क्रोचे के मत मे दृश्य जगत् की कोई सत्ता नहीं है। मन की प्रक्रिया ही दृश्य जगत् को स्वरूप प्रदान करती है। यह मानस व्यापार एक आध्यात्मिक प्रक्रिया (spiritual activity) है परन्तु, इस मानस व्यापार के लिए द्रव्य की सदैव आवश्यकता बनी रहती है। क्रोचे का कथन है 'तथापि बिना द्रव्य के हमारी आध्यात्मिक प्रक्रिया अपने भाव रूप को सुसम्पूर्ण आकार प्रदान करने मे असमर्थ रहती है।' * इस तरह क्रोचे आदर्शवादी होते हुए भी जगत् और पदार्थ को मिथ्या या माया नहीं मानते।

B Croce Aesthetics' Pp 9

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ज्ञान, इच्छा और संकल्प मानस व्यापार हैं। क्रोचे मन के दो व्यापार मानते हैं—ज्ञान और क्रिया। क्रिया के अन्तर्गत इच्छा और संकल्प दोनों हैं। क्रोचे के मत में ज्ञान मन का प्रथम मुख्य व्यापार है। मन की जीवनी शक्ति क्रिया के रूप में प्रकट होती है। क्रिया का आधार ज्ञान है। इस ज्ञान के दो स्वरूप हैं—स्वयं प्रकाश्य और प्रमा। स्वयं प्रकाश्य ज्ञान कल्पना जन्य तथा व्यक्ति का होता है और मूर्ति विधान करता है, प्रमा या तार्किक ज्ञान बुद्धि द्वारा परिचालित होता है व्यक्तियों के परस्पर संबंध का ज्ञान है तथा विचारों का सृजन करता है। कला का संबंध स्वयं प्रकाश्य से है। मन पर प्रतिफलित होनेवाली दृश्य वस्तुओं की अनुभूति अनेक रूपों में हो सकती है। कभी यह मात्र संवेदन (Sensation) बन कर रह जाते हैं। दृश्य वस्तुओं का इन्द्रिय संवेदन के रूप में प्रतिबिम्बित होना मन की निष्क्रियता प्रकट करता है। कलाकार का मन निष्क्रिय मन नहीं है। मन की सक्रियता की अवस्था में दृश्य जगत का जो प्रभाव उस पर प्रतिबिम्ब रूप में पड़ता है उसी की अभिव्यंजना कला है। क्रोचे के कला सिद्धान्त में कल्पना तत्व की प्रधानता है। अतः स्वाभाविक है कि कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा मन वस्तुओं का स्वरूप गढ़ता है।

"कला क्या है?' क्रोचे के शब्दों में, 'मैं अत्यन्त संक्षेप में और सरल शब्दों में कहूं तो कला दर्शन या स्वयं प्रकाश्य है। कलाकार एक बिम्ब या स्वप्न को गढ़ता है और वे जो उसकी कला का आस्वादन करते हैं अपनी दृष्टि को उस ओर केन्द्रित करते हैं जिधर कलाकार इंगित करता है। उस छिद्र के माध्यम से देखते हैं जिसे उसने खोल दिया है और स्वयं अपने में उस मूर्ति को पुनः गढ़ते हैं।' *

क्रोचे स्वयंप्रकाश्य और कलात्मक तथ्य भी अभिन्न मानते हैं। प्रत्येक स्वयं प्रकाश्य अनिवार्यतः अभिव्यंजित होता है। कला अनुभूति की अभिव्यंजना है और स्वयंप्रकाश्य भी वही है। अतः दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। कलाकार और साधारण प्राणी के स्वयंप्रकाश्य में विशेष अन्तर नहीं होता। बात यह है कि कुछ लोगों में आत्मा की विशेष संश्लिष्ट दशाओं में अभिव्यंजना करने की अधिक योग्यता और अधिक प्रवृत्ति होती है।' + इन्हें हम कलाकार के नाम से पुकारते

---

* E F Carrit Philosophies of Beauty' Croce quoted Pp 22

What is art? I shall reply in the briefest and simplest terms, that art is vision or intution The artist produces an image or dream and those who appreciate this art turn their eyes in the direction he has indicated look through the loop holes which he has opened and reproduce in themselves that image

\+ B Croce : Aesthetics Pp 22

Certain men have a greater aptitude and more frequent inclination to express fully certain complex states of the soul

है। क्रोचे के अनुसार हममें से प्रत्येक व्यक्ति कुछ अंशों में कवि, चित्रकार आदि है। प्रायः कहा जाता है कवि बनते नहीं पैदा होते हैं परन्तु, वस्तुतः सत्य यह है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति जन्म से कवि होता है। हाँ, कुछ जन्म से ही महान् कवि होते हैं, कुछ साधारण परन्तु हमारी जाति का प्रत्येक प्राणी जन्मजात कवि अवश्य होता है और इसी कारण हम कलाकार के मानसिक जगत् से तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ हो पाते हैं।

किसी रचना के कविता कहलाने के लिए उसमें दो बातें अवश्य होंगी—प्रथम वह भावना जो उसमें व्याप्त है और द्वितीय बिम्बों का संश्लिष्ट रूप जो उस कविता के द्वारा हमारे सामने प्रकट होता है। क्रोचे का कथन है कि यह दोनों तत्व अलग अलग नहीं हैं। भाव कविता में सदैव मूर्त रूप में प्रकट होते हैं। अतः कविता न भावना है, न मूर्त रूप, न दोनों का संयोग ही वरन् वह भावों का चिंतित स्वरूप (contemplation of feelings) अथवा शुद्ध स्वयं प्रकाश्य (pure intution) है—शुद्ध अर्थात् सत्यासत्य और इतिहास के मापदण्ड से परे। क्रोचे के मत में कवि के लिए विषय चुनने की बात हास्यास्पद है। यदि वह चुन सकता है तो उन्हीं विषयों से जो अभ्यन्तर में पहले ही अभिव्यंजित हो चुके हैं। अतः क्रोचे के अनुसार कला रूप केवल रूप मात्र है—'Form and nothing but form' कला के मूल्यांकन के समय हमें यह देखना चाहिए कि अमुक रचना शुद्ध स्वयं प्रकाश्य है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त जो तत्व उस रचना में पाये जाएँगे वे चाहे अन्य दृष्टिकोण से कितने ही महत्वपूर्ण हों पर कला की दृष्टि से रसायनिक यौगिक (compound) में मिले हुए बाह्य पदार्थों के समान होंगे जो अनिवार्य न होकर अप्रासंगिक हैं।

क्रोचे का मत है कि स्वयं प्रकाश्य की स्थिति अनिवार्यतः अभिव्यंजना के रूप में ही होती है। 'आत्मा इसी रूप में आत्मा है कि वह शरीर भी है इच्छा इसी रूप में इच्छा है कि उसमें हाथ-पैर हिलते हैं या कार्य होता है। इसी तरह, स्वयं प्रकाश्य भी इसी रूप में स्वयं प्रकाश्य है कि इसी कार्य में वह अभिव्यंजना भी होता है। एक मूर्ति जो अभिव्यंजित नहीं होती अर्थात् जो वाणी संगीत, रेखा चित्र, मूर्ति या शिल्प नहीं है—वाणी जो कम से कम स्वयं को कही गयी है गीत जो कम से कम अपने ही सीने में गूंज उठा है, रेखा और रंग जो कल्पना में देखे गए हैं और जिनसे सम्पूर्ण आत्मा और जीव रंग गए हैं, ऐसी मूर्ति है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं।" +

+ *Encyclopaedia Brittanica B Croce Aesthetic* Pp 226
The soul is a soul in so for as it is a body, the will is only a will in so far as it moves arms and legs, or in action intution is only intution in so far as it is in that very act express

कला विज्ञान के क्षेत्र में स्वयं प्रकाश्य और अभिव्यंजना की अभिन्नता स्पष्ट है। क्रोचे का मत है कि अपने मूल रूप में यह समस्या वही है जो ज्ञान के क्षेत्र व अन्य विभागों में प्रकट होती है— आभ्यंतर और बाह्यांतर की' पदार्थ और मन की आत्मा और शरीर की इच्छा और कार्य की और इस समस्या को इस तरह रखने में दार्शनिकों को एक तीसरी शक्ति 'ईश्वर' की स्थापना करनी पड़ी है। कला विज्ञान इस प्रकार द्वैत भावना को दूर करके आध्यात्मिक जीवन की एकता को स्थापित करता है तथा परमवाद (Absolute spiritualism) की ओर उन्मुख करता है।

स्पष्ट है क्रोचे अभिव्यंजनावाद को अभ्यंतर मानते हैं। उनका कथन है कि जहाँ कवि ने कविता को शब्दों में अभिव्यंजित कर अपने प्रति निवेदन कर दिया वहाँ कविता पूर्ण हो गई। जब वह लिखने बैठता है या दूसरों को सुनाने लगता है तो वह कला के क्षेत्र से बाहर व्यवहार के क्षेत्र में चला जाता है। वास्तव में टेक्नीक कला का अन्तरंग नहीं है। कला और टेक्नीक के विभेद को भुलाना विशेषतः उन नपुंसक कलाकारों को प्रिय लगता है जो बाह्य पदार्थों और उपायों तथा नए अन्वेषणों के द्वारा उस शक्ति को पाने की आशा करते हैं जो उनकी सामर्थ्य के बाहर होती है।" +

अभिव्यंग्य तथ्य सदा व्यक्तिगत होते हैं अतः उनकी तुलना नहीं की जा सकती। अवश्य अभिव्यंजना कम या अधिक सफल होती है परन्तु तथाकथित आधुनिक आलोचना के मान इस सम्बन्ध में लागू नहीं किए जा सकते। क्रोचे के मतानुसार कला एक और अविभाज्य है। कविता की एक भी पंक्ति में संगीत चित्र मूर्ति और शिल्प कला के सभी गुण मिल सकते हैं। यदि शब्दों रेखाओं

---

ion An image that does not express that is not speech song drawing, painting sculpture, architecture, speech at least murmured to oneself song at least echoing within one's own breast line and colour seen in imagination and colouring with its own tint the whole soul and organism is an image that does not exist

+ Ibid Pp 266

The confusion between art and technique is especially beloved by those impotent artists who hope to obtain from Political things and practical devices and inventions the help which their strength does not enable them to give themselves

रगा आदि के मिलन को ही कला कहा जाय तो सम्पूर्ण अनुपातों मे उनके सम्मिलन के पश्चात् एक दिन कला का अन्त सुनिश्चित है। अतः बाह्य अभिधानों के आधार पर कला का विभाजन अनुचित है। इसी तरह भावनाओं के आधार पर कला का त्रास, कामद, स्वच्छन्दवादी शास्त्रीय आदि के रूप में किया गया विभाजन भी ठीक नहीं है। कला अनुभूति मात्र नहीं है। दृश्य वस्तुओं के प्रति कलाकार के मन की प्रतिक्रिया इन्द्रिय संवेदन के रूप में नहीं होती।

क्रोचे का अरस्तू के रेचन सिद्धान्त (Catharsis) में विश्वास है। कविता के द्वारा कवि अपने भावों का अभिव्यक्त करके एक प्रकार की शान्ति का अनुभव करता है। भावों का चित्रित स्वरूप आत्मा के व्यापकतर क्षेत्र को आच्छादित कर लेता है। भावना की क्षणिकता के बदले उसमें एक प्रकार की अनन्तता आ जाती है।

क्रोचे के मत में कला का कोई इतिहास नहीं हो सकता। विज्ञान का इतिहास सम्भव है क्योंकि उसमें वस्तुओं के सबंध का ज्ञान संचय होता है परन्तु कला वृत्ति स्वयं अपने आप में एक सृष्टि है। अतः यह कहना निरर्थक है कि आदिम काल की रचनाओं में कला उन्नत नहीं है। अन्तर केवल यही है कि आज का स्वयं प्रकाश्य गत युग के स्वयं प्रकाश्य से भिन्न है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उन्नत भी हो। कलाकृतियों को सामाजिक पृष्ठभूमि में रख कर उनका मूल्यांकन करना उचित नहीं। कला के इतिहास में जहां तक हो सके वैयक्तिकता को प्रधानता देना आवश्यक है। कलाकृति एक सृष्टि है व्याख्या नहीं प्रतीक है विवरण नहीं। अतः मूल्यांकन का एक ही उपाय है। हमें स्वयं कलाकार के दृष्टिकोण को अपना कर पुनः उस क्रिया को घटित करना चाहिए। क्रोचे का कथन है कि निर्णयात्मक क्रिया और सृजन क्रिया में कोई भेद नहीं है। मोक्ष और दर्शन अन्तर एक हैं। "दान्ते पर निर्णय देने के पहले हमें अपने आप को दान्ते के स्तर पर उठाना होगा।"()

सौंदर्यानुभूति के सम्बन्ध में क्रोचे का कथन है कि सौन्दर्य का बुद्धि या नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं। अभिव्यंजना ही सौंदर्य है असफल अभिव्यंजना अभिव्यंजना ही नहीं है। अभिव्यंजना या तो होगी है या नहीं। अतः अभिव्यंजना ही सौंदर्य है। सौन्दर्य परिवेश में न होकर मानसिक कल्पना का प्रत्यक्षीकरण है। "आंखें जो भिन्न रूप देखती हैं वास्तव में वह मन है जो विभिन्न रूपों में अनुभव, कल्पना और इच्छा करता है प्रकृति उस व्यक्ति के लिए

() Croce Aesthetics' Pp 119
To judge Dante we must raise ourselves to his level

ही सुन्दर है जो कलाकार की दृष्टि से उसे देखता है। जीव विज्ञान और वनस्पति शास्त्र के जानकार सुन्दर जीवों और पुष्पों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते तथा प्रकृति का जो स्वरूप कल्पना की सहायता के बिना हमारे सामने आता है उसमें कुछ भी सौन्दर्य नहीं होता — प्राकृतिक सौन्दर्य के सामने मनुष्य जलाशय के पास ठीक पौराणिक चरित्र नार्सिसस के समान है। +

क्रोचे के मत में कला मन की सक्रिय आध्यात्मिक चेष्टा है। इस कहा जाता है कि उसका यह सिद्धान्त कला-विषय के प्रति उसे संकीर्ण होकर 'कला कला के लिए' सिद्धान्त को मान्यता देता है। परन्तु वस्तुतः यह कथन भ्रामक है। क्योंकि, क्रोचे के अनुसार जगत् की सत्ता मानस-व्यापार रूप ही है। स्वयंप्रकाश्य ज्ञान का प्रथम तथा मुख्य व्यापार है उसके बिना प्रमा या तार्किक ज्ञान सम्भव नहीं है। परन्तु विभिन्न मानसिक क्रियाओं को हम एक दूसरे से असम्बद्ध रूप में कल्पना नहीं कर सकते। पक्षी गाने के लिए गाता है परन्तु उसके इस संगीत में उसका सम्पूर्ण जीवन और निजत्व प्रवृत्ति प्रवृत्ति और आवश्यकता सम्पूर्ण स्वभाव प्रकट होता है। इसी तरह मनुष्य को भी गाना है तो उसे कलाकार होने के साथ सम्पूर्ण मनुष्य भी होना पड़ेगा। दर्शन नीति कला सम्बन्धी अनुभव एक दूसरे से पृथक नहीं किए जा सकते। 'इतिहास उन छोटे मन छोटे दिमाग और तुच्छ आत्माओं को नहीं जानता जो महान् कवि हुए हों और न किसी शिल्पी ही ने ? वरन् बर्बर आत्मगतवादी की तरह ऐसे लोग इस क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं जिनका कि अखिल मानवीय परम्परा में

+ E F Carrit 'Philosophies of Beauty' Pp 244

Eyes which see differently are in fact the mind which feels and dreams and desires differently Nature is only beautiful for the man who sees it with the eyes of an artist, that zoologists and botonists know nothing of animals and flowers and that natural beauty is revealed to us without the aid of imagination nothing in nature is beautiful man faced with natural beauty is exactly the mythical Narcissus at the pool

(नर्सीसस एक सुन्दर बालक था जो झरने के पास खेलते हुए पानी में अपनी परछाहीं देख कर उस पर मोहित हो गया। उसने समझा कि पानी में एक सुन्दर बालक है। नार्सीसस ने उसे बुलाने की बहुत चेष्टा की किन्तु जब वह न आया तो झरने के पास ही उसकी चिन्ता करते हुए उसने अपने प्राण त्याग दिए।)

साथ सबध न रहा हो ।"+ अत क्रोचे के अनुसार 'शुद्ध कला या कला कला के लिए' माननेवाले जो व्यक्ति जीवन की कठिनाइयो के प्रति अपनी आखें मूद लेते हैं कभी महान् स्रष्टा नही हो सकते ।

पुन क्रोचे के कला सिद्धान्त पर नैतिकता के प्रति उपेक्षाशील होने का आक्षेप लगाया जाता है तथा यह भी कहा जाता है कि उसमे हृदय के भावो के लिए समुचित स्थान नहीं क्रोचे के मत म कला अनुभूति की अभिव्यजना नही वरन् अनुभूति के चिंतित स्वरूप की अभिव्यजना है। अत क्रोचे के अनुसार कला में भावो का स्थान है पर एक विशिष्ट रूप मे, कला और नीति के सबध म यही कहा जा सकता है कि कला के द्वारा उपदेश दिए जाने की बात तो क्या पूर्व और क्या पश्चिम दोनों जगह सदियो पुरानी पड गई है। क्रोचे के मत मे शेक्सपियर के नाटकों के सबध मे नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न उठाना वैसे ही है जसे रेखागणित के त्रिभुज को नीति या अनीतिपूर्ण कहना। फिर भी कला और नीति मे सबध स्थापित करनेवाले सिद्धात म वे कुछ तथ्य पाते हैं। उनका कथन है कि कला चाहे नीति के मापदण्ड से मुक्त हो किन्तु कलाकार मनुष्य होने के नाते उससे मुक्त नहीं है। स्वय कलाकार का कर्म जो यद्यपि नैतिकता का बन्धन स्वीकार नहीं कर सकता एक पवित्र कर्म है। इसके प्रति धार्मिक कृत्य की तरह उसे सच्चा बने रहना चाहिए। मनुष्य का व्यक्तित्व नैतिकता के बिना अपनी पूर्णता नही पाता। इसी तरह, कलाकार के मन म भी सूक्ष्म नैतिक चेतना व्याप्त होती है। इसका आशय यह नही कि कलाकार मात्र बौद्धिक प्राणी होता है या बहुत पवित्र आचरण रखनेवाला व्यक्ति। पर त अवश्य उसके मन मे व्यापक नीति की सूक्ष्म चेतना होती है। अपने व्यक्तिगत जीवन म कलाकार चाहे साहस न दिखला सक बल्कि कायरता भी प्रकट कर दे परन्तु अवश्य उसका मन साहस की महत्ता को जानता है। प्राय कला की प्रेरणा उन तत्वो से नहीं मिलती जो कलाकार के व्यक्तिगत जीवन म निहित होते हैं वरन् उनसे मिलती है जिनकी कभी वह स्वय अनुभव करता है। अस्तु हम देखते है कि अभिव्यजनावाद वाग्वैचित्र्य मात्र नही है, जीवन के उच्च आदर्श उसम निहित है और वह कलात्मक अनुभूति की निरपेक्ष स्वतत्र सत्ता स्थापित करता है।

\+ B Crose 'My Philosophy' Pp 134
Small hearts small brains, small souls, who have been great poets, are to be not found in history and will not make their way by violence like some invader not only foreign but barbarious who has no link of common humanity with the past

योरूप में अभिव्यंजनावाद ने कलात्मक अनुभूति के महत्व को पुनः स्थापित किया जो पूर्वयुगीन महान् दार्शनिक हेगेल के द्वारा निम्न कोटि के ज्ञान के रूप में विस्थापित हो चुका था।

अभिव्यंजनावाद के उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यह समझना कठिन नहीं है कि छायावादी कवियों अथवा छायावाद के पक्षधर समीक्षकों द्वारा इस काव्य-दर्शन की प्रशंसा क्यों स्वाभाविक है। सौंदर्य बोध के लिए अभिव्यंजनावाद कल्पना शक्ति को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानता है। मन एक सांचे के समान है जिसमें द्रव्य ढलता है और कल्पना मन की वह शक्ति है जो द्रव्य को रूप प्रदान करती। कल्पना की अतिरंजना के कारण जब शैली की विचित्रता काव्य का प्रधान गुण मानी जाने लगी इस सिद्धान्त का विरोध भी हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अभिव्यंजनावाद का विरोध किया। जैसा कि बाबू गुलाबराय ने लिखा है "आचार्य शुक्ल जी ने अपनी दो पुस्तकों द्वारा (काव्य में रहस्यवाद और इन्दौर सम्मेलन का भाषण) अभिव्यंजनावाद के विरुद्ध बाण-वर्षा की है किन्तु उनके तीक्ष्ण शर क्रोचे का तो स्पर्श ही कर पाये हैं शायद उसके थोड़ीघाट खरांट भी आ गयी हो किन्तु उससे वास्तव में मर्मभेद तो क्रोचे के अभक्त अनुयायियों का ही हुआ है।"

शुक्लजी ने अभिव्यंजनावाद को वाग्वैचित्र्य ही ठहराया है। वे लिखते हैं। अभिव्यंजनावादियों के अनुसार जिस रूप में अभिव्यंजना होती है उससे भिन्न अर्थ प्राप्ति का विचार कला में अनावश्यक है अभिव्यंजनावाद अनुभूति या प्रभाव का विचार छोड़ वाग्वैचित्र्य को पकड़ कर चला है, पर वाग्वैचित्र्य का हृदय की गम्भीर वृत्तियों से कोई संबंध नहीं। वह केवल कौतूहल उत्पन्न करना है।' हिंदी साहित्य का इतिहास' में भी उन्होंने लिखा है "अभिव्यंजनावाद भी कलावादकी तरह काव्य का लक्ष्य बेलबूटे की नक्काशी वाला सौंदर्य मान कर चला है, जिसका मार्मिकता या भावुकता से कोई संबंध नहीं। और कलाओं को छोड़ यदि हम काव्य ही को लें तो इस अभिव्यंजनावाद को वाग्वैचित्र्यवाद ही कह सकते हैं और इसे अपने यहां के पुराने वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान मान सकते हैं।"*

शुक्लजी ने यद्यपि छायावादी कविता में काव्य-शैली के विकास को स्वीकार किया है- इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण भाषा की वक्रता विरोध चमत्कार कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी' तथापि उनके मत में "अभिव्यंजनावाद के

---

* रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, आठवां संस्करण सं० २००६ पृ ५७२

प्रभावस्वरूप काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा व अप्रस्तुत योजना की प्रधानता हुई द्वितीयत शैली की विचित्रता की ओर कवियों का ध्यान केन्द्रित होने के कारण नाना अर्थ-भूमियों में काव्य का प्रसार न हो सका एवं तृतीयत 'कला-कला के लिए' उद्घोष करनेवाले योरूपीय साहित्य में प्रगीत का य की प्रधानता होने के कारण छायावादी कवि गीति-काव्य लिखने में ही लीन रहे तथा प्रबन्ध-काव्यों की रचना से प्राय विमुख रहे।" जहां तक छायावादी कविता पर इन आक्षेपों का प्रश्न है वे उचित जान पड़ते हैं। किन्तु, अभिव्यंजनावाद को वाग्वैचित्र्यवाद अथवा वक्रोक्तिवाद ठहराना उसके साथ अन्याय है। वक्रोक्तिवाद भारतीय साहित्यिक परम्परा का चमत्कारिक सिद्धान्त है जिसमें रचना को दृष्टिगत रख कर काव्य के समस्त उपादानों का विवेचन किया जाता है। उक्ति वाक्रय को वह काव्य का प्रधान गुण मानता है। किन्तु अभिव्यंजनावाद, जैसा हम देख चुके हैं, यूरोपीय सौन्दर्य शास्त्र का महत्वपूर्ण कलात्मक पक्ष है एवं वह कला सिद्धान्त की एक नवीन दार्शनिक पीठिका प्रदान करता है। अभिव्यंजनावाद व्यक्तिवादी है एवं व्यक्ति के स्वयं प्रकाश्य अथवा कल्पना-मूर्तियों को ही कला की सत्ता प्रदान करता है। इस प्रकार दोनों का भेद स्पष्ट है। शुक्लजी ने अभिव्यंजनावाद को वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान कहा, उसमें स्वयं शुक्ल जी व अन्य आलोचकों ने विलायती शब्द की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया और अभिव्यंजनावाद को वक्रोक्तिवाद के ही समकक्ष बिठा दिया, यह उचित नहीं हुआ।

क्रोचे वक्रोक्तिवादी नहीं हैं और न वे अलंकारवादी हैं। सौन्दर्य-बोध के सम्बन्ध में शुक्लजी क्रोचे का अभिमत निम्न लिखित शब्दों में प्रकट करते हैं

'सौन्दर्य से उसका तात्पर्य केवल अभिव्यंजना के सौन्दर्य से है, उक्ति के सौन्दर्य से किसी प्रस्तुत वस्तु के सौन्दर्य से नहीं। किसी वास्तविक या प्रस्तुत वस्तु में सौन्दर्य कहां? क्रोचे तो कल्पना की सहायता के बिना प्रकृति में कहीं सौन्दर्य नहीं मानते। जो कुछ सौन्दर्य होता है वह केवल अभिव्यंजना के उक्ति-स्वरूप में। यदि सुन्दर कही जा सकती है तो उक्ति ही असुन्दर कही जा सकती है तो उक्ति ही। इस मौके पर अपने पुराने कवि केशवदास जी याद आ गये, जो कह गये हैं कि "देखे मुख भावे, अनदेखई कमल चन्द ताते मुख मुखे सखी, कमलो न चन्दरी" केशवदासजी को भी कमल इत्यादि देखने में भी अच्छे या सुन्दर नहीं लगते थे। हां जब वे उपमा उत्प्रेक्षापूर्ण किसी काव्योक्ति में समन्वित होकर आते थे तब वे सुन्दर दिखाई पड़ने लगते थे।'

शुक्लजी के उपरोक्त कथन से प्रतीत होता है कि अभिव्यंजनावाद सौन्दर्य की वस्तुगत स्थिति की नितान्त उपेक्षा करता है। रामनरेश वर्मा ने भी अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्ति और अभिव्यंजना' में लिखा है 'क्रोचे न

कला को वस्तु जगत् से हटा कर जो सवथा मानस व्यापार म पयवसित किया वह कहा तक सगत है इसे विद्वान ही विचार करें।"*

अवश्य ही, क्रोचे ने वस्तु को गौण तथा कल्पना को अधिक महत्व दिया है कि तु, क्रोचे की दृष्टि म भी कल्पना नितान्त निराधार नहीं होती। उसने भी कल्पना का आधार वस्तु को ही माना है 'प्राकृतिक सौन्दय कलात्मक पुनरचना के लिए उत्तेजना मात्र है जो पूव रचना की मान्यता को स्वय सिद्ध करती है। कल्पना द्वारा पूव कलात्मक स्वय प्रकाश्यों के अभाव मे प्रकृति किसी प्रकार की उत्तेजना देने मे सवथा असमथ रहती है।' क्रोचे के अनुसार रूप मे ही वस्तु की स्थिति रहती है यदि इन कलात्मक सृष्टियों के विषय को मैं प्रकट करना चाहू तो उनके रूप की पुनरुक्ति किये बिना मैं उनका वणन नहीं कर सकता जिनम विषय अवस्थित रहता है।" + फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि क्रोचे वस्तु अथवा वस्तुगत सौन्दय की नितान्त उपेक्षा करता है।

अभिव्यजनावाद पर काव्य का लक्ष्य बेलबूटेवाली नक्काशी का सौन्दय' आरोपित कर उसम अप्रस्तुत विधान व अलकारिक प्रदशन का आकषण भी घोषित किया गया है किन्तु, जसा कि शुक्लजी स्वीकार करते हैं क्रोचे अलकारों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते। क्रोचे काव्य का लक्ष्य यथाथ अभिव्यक्ति मानते हैं। चमत्कार नहीं। शुक्लजी तथा 'काव्य म अभिव्यजना के रचयिता सुधाशुजी के मत में अलकार व अलकाय का भेद नहीं मिट सकता। अत अभिव्यजना अविभाज्य नहीं है। कुछ हो, वक्रोक्ति और अलकार वणन से अभिव्यजना भिन्न है यह सुधाशुजी के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट है

"वक्रोक्तिवाद की प्रकृति अलकार की ओर विशेष तत्पर दिखाई देती है, लेकिन अभिव्यजनावाद का बाह्य रूप से अलकार के साथ कोई सबध नहीं है। अलकार अनुगामी होकर अभिव्यजना के पीछे चल सकता है वक्रोक्तिवाद की भाँति सहगामी होकर नहीं। अभिव्यजनावाद म वक्रतापूण उक्तियों का तो मान है ही, साथ ही स्वभावोक्तियों के लिए भी उसमे यथेष्ट स्थान है। जिस उक्ति से किसी दृश्य का मनोरम बिम्ब ग्रहण हो वह वक्रताहीन रहने पर भी अभिव्यजनावाद की चीज है।'

---

* रामनिवास वर्मा 'वक्रोक्ति और अभिव्यजना,' ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस १९५१ पृष्ठ १७७

+ Philosophy of Croce PP 74
Should I wish it to express the matter of these works of art I cannot do so except by repeating forms of them in which alone the matter exists

शुक्लजी द्वारा अभिव्यञ्जनावाद पर एक आरोप यह भी लगाया गया है कि उसका हृदय की गम्भीर वृत्तियों से कोई सबंध नही है वह केवल कौतूहल उत्पन्न करता है हम पहले लिखे चुके हैं कि अभिव्यञ्जनावाद भावना या अनुभूति की उपेक्षा नही करता। क्रोचे के अनुसार कला अनुभूति की अभिव्यञ्जना नहीं वरन् भावो का चिन्तित स्वरूप है । क्षणिक भावना की अभिव्यक्ति के बदले अनन्त चिन्तन को वह अधिक महत्व देता है। उसके अनुसार श्रव्य वह भावात्मकता है जो सौन्दर्यात्मक ढग से मानस व्यापार से निजृम्भित न की गयी हो। यह मानस व्यापार भावना का चिन्तित स्वरूप प्रकट करता है।

यह निर्विवाद है कि अभिव्यञ्जनावाद ने कला क क्षेत्र मे कल्पना को अत्यधिक महत्व दिया है। छायावादी कविता म कल्पना विलास को लक्षित करके ही शुक्लजी ने प्रधानतया उसका विरोध किया। रामनरेश वर्मा के अनुसार मानवी-करण विशेषण विपयय एव नाद सौन्दय को छायावादी कविता के कलात्मक सौ य को व्यजित करते हैं वक्रोक्ति म समाहित हो जाते हैं, इसी से अभिव्यञ्जनावाद को वक्रोक्तिवादसे अनुरूपित करने का भ्रम होता है। शुक्लजी ने कल्पना विलास के विरोध म लिखा है

"रहस्य भावना और अभिव्यञ्जना पद्धति पर ही प्रधान लक्ष्य हो जाने और काव्य को केवल कल्पना की सृष्टि कहने का चलन हो जाने से भावानुभूति तक कल्पित होने लगी। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है उस प्रकार अनेक प्रकार की विचित्र भावानुभूतियो की कल्पना भी बहुत कुछ होने लगी। काव्य की प्रकृति तो यह है कि वस्तु योजना चाहे लोकोत्तर हो पर भावानुभूति का स्वरूप सच्चा अर्थात् स्वाभाविक वासना जन्य हो। भावानुभूति का स्वरूप भी यदि कल्पित होगा तो हृदय से उसका सबध क्या रहेगा ? भावानुभूति भी यदि ऐसी होगी जसी नहीं हुआ करती तो सफाई (Sincerty) कहा रहेगी ?" +

अभि यञ्जनावाद का एकान्तिक प्रभाव छायावादी कवियो म ढू ढना समुचित नहीं है क्योंकि वह कला क क्षेत्र मे दार्शनिक पीठिका प्रस्तुत करने वाला मतवाद मात्र है। कि तु छायावादी कवियों में उसके अशक्त अनुयायियों के कल्पना विलास व अमूर्तता को रोकने के लिए शुक्लजी द्वारा अभि यञ्जनावाद का विरोध लाभ कर ही सिद्ध हुआ शुक्ल जी का यह विरोध काव्य मे अमूर्तता को छोड उसे यथार्थ की भूमि पर ला का ही प्रयत्न था।

+ रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ८ वा सस्करण स० २००६ पृष्ठ ६६८

छठा अध्याय

प्रगतिवाद : साम्यवाद का साहित्यिक प्रतिरूप

छायावाद की अमूर्त उपासना के विरोध में स्थूल देह की भूख जब अपना अधिकार मांगने लगी तब हिन्दी साहित्य में नवीन विचारधारा प्रगतिवाद का जन्म हुआ जिस पर एक ओर देश की परिस्थिति एवं दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा।

सिद्धान्त

एक शताब्दी पहले कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था की मृत्यु का शंख बजा कर संसार के मजदूरों को सर्वहारा क्रान्ति के लिए आमंत्रित किया था। विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियां उस क्रांति को सफल बनाने के लिए आज भी संलग्न हैं। मार्क्सवाद विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियों का वह घोषित सिद्धांत है जिसके आधार पर वे अपनी राजनीतिक आर्थिक व सांस्कृतिक योजनाओं को निर्मित कर सर्वहारा क्रांति की सफलता के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। मार्क्सवाद केवल एक राजनीतिक अथवा आर्थिक कार्यक्रम नहीं है, वह एक सर्वव्यापी विशिष्ट जीवन दर्शन है जिसका विकास एवं प्रतिपादन इन सब दिनों मार्क्सवादी विचारकों द्वारा होता रहा है। कला के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले मार्क्सवाद के आधार पर प्रतिपादित समाज शास्त्र के सिद्धान्त का अवलोकन करें क्योंकि मार्क्सवाद 'शुद्ध कला" का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता वह कला के क्षेत्र में 'प्रगतिशील" अथवा 'प्रतिक्रियावादी' का सामाजिक मापदण्ड स्थापित करता है और उसी आधार पर कला को श्रेष्ठ अथवा हीन उद्घोषित करता है। कला के क्षेत्र में मनुष्य केवल कला सृजन अथवा कला के आस्वादन के क्षणों में ही रहता है। कला का मूल्यांकन करने के लिए कला के क्षेत्र से बाहर अर्थात् सामाजिक जीवन के बीच। समाजशास्त्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों, यथा भौतिक विज्ञान, नृतत्व शास्त्र, इतिहास, दर्शन आदि के निष्कर्षों का उचित उपयोग कर समाज की प्रगति के नियमों को निर्धारित करता है। अतः कला समीक्षक के लिए समाज शास्त्र के सुदृढ़ आधार की आवश्यकता रहती है। मार्क्सवाद के अनुसार ऐतिहासिक भौतिकवाद समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कला के मूल्यांकन का सही आधार है।

मार्क्स का कथन है कि अस्तित्व ही हमारी चेतना का आधार है (Being determines consciousness)। चेतना मनुष्य के अस्तित्व का निर्माण नहीं करती वरन् उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का नियामक होता है। पदार्थ जगत् का अस्तित्व अपने में स्वतन्त्र व निर्पेक्ष है परन्तु हमारी चेतना का मूलाधार वस्तु जगत् है। यह अस्तित्व मूलतः आर्थिक अस्तित्व है। वर्ग-संघर्ष आर्थिक ढांचे की मूल भित्ति है। समाज का भौतिक विकास जब उस सीमा पर पहुंच जाता है जहां उत्पादन के तत्कालीन संबंध सामाजिक प्रगति के वाहक नहीं रह पाते तब तत्कालीन उत्पादन संबंध तथा उत्पादन शक्तियों में संघर्ष उत्पन्न होता है जिसके परिणाम स्वरूप उच्चतर हल की उपलब्धि होती है एवं समाज के विकास का क्रम अबाध बना रहता है। समाज का आर्थिक ढांचा बदलने पर विचारों के जगत् में भी परिवर्तन होता है एवं विरोधी तत्वों का संघर्ष संस्कृति के विभिन्न रूपों में झलकने लगता है। कलाकार का कर्तव्य है कि वह सामाजिक संघर्ष को समझ कर विकासमान शक्तियों को सहारा दे तथा समाज को विकास के पथ पर अग्रसर करे।

मार्क्सवाद के अनुसार अब तक के मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। आदिम साम्यवाद, दास प्रथा, सामंतवाद एवं पूंजीवाद क्रमशः विकास की सरणियां हैं।

मनुष्यों का एक झुंड जो ऊंच-नीच के भेद को नहीं जानता। आखेट ही इस समुदाय के प्राणियों के जीविकोपार्जन का साधन है। यह प्राणी-समुदाय मिल कर ही शिकार करता है और मिल कर ही उसका उपभोग। आदिम साम्यवाद के इस युग में मनुष्य और प्रकृति के साथ मनुष्य और मनुष्य का संघर्ष भी प्रारम्भ हुआ। मनुष्यों का एक यूथ दूसरे यूथ पर आक्रमण करता है। विजयी वर्ग विजेता को बन्दी बना लेता है तथा दास और प्रभु का नया आर्थिक सम्बन्ध स्थापित होता है। एक सुदीर्घ काल तक यही प्रथा चलती है। इस बीच उत्पादन के साधनों में विकास होता है। प्रभु वर्ग को नासमझ दासों के बदले दक्ष कारीगरों की आवश्यकता होती है जो सुचारु रूप से कार्य कर सकें। उत्पादन के साधनों में होनेवाले विकास के साथ दास-वर्ग की चेतना ■ भी विकास होता है। वह अपनी स्थिति से विद्रोह करता है और एक नये सामाजिक सम्बन्ध की स्थापना होती है। यह व्यवस्था सामन्तवाद है। सामंत युग में उत्पादन के साधनों का और अधिक विकास होता है यहां तक कि सामन्त और भृत्य का सम्बन्ध सामाजिक विकास के लिए बाधक सिद्ध होने लगता है। यन्त्रात्मक आविष्कारों—कल-कारखानों के परिणाम स्वरूप उत्पादन के साधनों में एक प्रकार से क्रान्ति होती है। अमेरिका भारत और चीन की खोजों से नये बाजार खुलते हैं। फलतः सामंत युग के सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन उपस्थित होता है एवं नवीन समाज व्यवस्था पूंजीवाद की स्थापना होती है। पूंजीवाद उन सामन्ती बन्धनों को विच्छिन्न कर देता है जिसके कारण मनुष्य-मनुष्य का संबंध

स्वाभाविकतया ऊँच नीच का समझा जाता है। व्यापारिक स्वतन्त्रता के कारण पूँजीवादी व्यवस्था उस सर्वहारा वर्ग को जन्म देती है जिसके पास खोने के लिए अपने गुलामी के बंधनों के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। अपने अन्तर्विरोध के कारण पूँजीवाद भी वर्तमान युग में सामाजिक विकास का रोड़ा बन गया है। अतः आज का युग धर्म वर्गहीन समाज की स्थापना है और सर्वहारा वर्ग उस क्रान्ति का अग्रदूत है।

मार्क्स सर्वहारा क्रान्ति की सफलता के पूर्व इतिहास को प्राग् ऐतिहासिक काल मानता है। एक समाज विशेष को हम किस आधार पर दूसरे समाज से अधिक विकसित मान सकते हैं, सामाजिक प्रगति का मापदण्ड क्या है? विकासवाद के अनुसार जीवन संघर्ष में उसी जीव समूह (Species) को जीने का अवसर मिलता है जो अपने विरोधी परिवेश की बलि पर अपनी अधिकाधिक संख्या जीवित रख सके। मानव समाज में यह संघर्ष जैविक (Biological) न होकर आर्थिक धरातल पर होता है। मनुष्य प्रकृति से संघर्ष कर विकासमान होता है। मानव समाज का विकास मनुष्य के आन्तरिक गुणों के विकास पर निर्भर नहीं है वरन् उत्पादन प्रणाली के समुन्नत होने पर है। वह समाज व्यवस्था अधिक विकसित कही जाएगी जिसमें मनुष्य के भौतिक विकास की अधिकाधिक सामग्री उपलब्ध हो। सर्वहारा क्रान्ति मानव सभ्यता के विकास की पूर्व आवश्यकता है क्योंकि सर्वहारा क्रान्ति वर्ग विभक्त समाज का अन्त कर देती है। उत्पादन के साधन किसी एक वर्ग के हाथ में नहीं रहते। सम्पूर्ण समाज का उस पर सामूहिक अधिकार होता है। उत्पादन लाभ के लिए न होकर उपभोग के लिए होता है। अतः पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज की भौतिक उन्नति का अवरुद्ध रहनेवाला मार्ग सहज ही खुल जाता है।

मार्क्स ने जिस नये समाज की कल्पना की एवं रूस व चीन में उसका जो रूप प्रकट हुआ उसमें काफी भिन्नता है। प्रयोग में आने पर सिद्धान्तों का वही रूप कब बना रह पाया है? किन्तु मार्क्स के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह निरा विवेचक नहीं था, समाज को बदलने की उसकी उत्कट लालसा थी। "दार्शनिकों ने जगत् की केवल व्याख्या की है पर बात है उसको बदलने की" (*Philosophers have only interpreted the world, the thing however is to change it*) मार्क्स का यह कथन ही उसके जीवन दर्शन का मूल प्रेरक है।

साहित्य में वर्ग-भावना की अभिव्यक्ति

साहित्यिक एवं कलात्मक कृतियों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि हम समाज की भौतिक प्रगति और तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ग संघर्षों की

पृष्ठभूमि में उसका अवलोकन करें। कला के प्रति यह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण मार्क्स और एंगल्स के समय से मार्क्सवादियों द्वारा अविच्छिन्न अपनाया गया है।

यह स्वाभाविक है कि आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन होने पर भी विचारों के क्षेत्र में परिवर्तन अपेक्षतया कुछ देरी से स्पष्ट होते हैं। ग्रीक सभ्यता के युग में जब कबीलों का समाज धीरे धीरे पनप रहा था और स्वामी व दास प्रथा व नया सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो रहा था उस युग के साहित्य में आदिम साम्यवाद के युग की भावना परिलक्षित होती है जैसे कोई पुरानी स्मृति हमारे मन में घूम घूम जाती है। ग्रीक साहित्य में डेडलस के पुत्र आइकेरस की कथा का वर्णन है जो अपने मोम के परों से आसमान में उड़ता चला जाता है और अन्त में सूर्य के पास पहुंचने पर उसके पर पिघल जाते हैं और वह गिर कर मर जाता है। स्पष्ट ही यह प्रकृति से मानव के संघर्ष की कहानी है। ग्रीक साहित्य में दुखान्त नाटकों का जन्म युग की परिवर्तनशीलता एवं संक्रान्ति का द्योतक है। समाज में मातृ-सत्ता का स्थान पितृ सत्ता ने ले लिया था अतः ऐथेना देवी का न्याय मातृ हत्यारे पुत्र के पक्ष में होना है। सेफोक्लीज के नाटकों में दासों की यातना का चित्रण है तो सामन्ती युग की कविता में योद्धाओं के रोमांस का। सामन्तवाद के पतन के समय 'डानक्वीजोट' जैसी रचना लिखी गई जिसमें सामन्त युग के 'विजयी-वीर" तथा सामन्ती धारणाओं की खिल्ली उड़ाई गयी है। पूंजीवाद के उदय के साथ वालतेयर व लिंकन व्यक्ति की स्वतन्त्रता का राग अलापते हैं। सर्वहारा की वर्ग चेतना के साथ "प्रगतिशील' कहे जानेवाले साहित्य का उदय होता है। लुई, आरागो, अप्टन सिंक्लेयर, हावर्ड फास्ट, पाब्लो नेरुदा जे बी प्रीस्टले प्रभृति साहित्यकारों की रचनाओं में सर्वहारा वर्ग की शक्ति और चेतना का आभास मिलता है।

मार्क्स के अनुसार जो लिखित साहित्य हमारे पास पहुँचा है वह वर्ग विभक्त समाज की उपज है अतः उस पर समाज के वर्ग भेद की छाप है। लेनिन समस्त साहित्य को शासक वर्ग की विचारधारा का प्रतिपादक मानता है। मार्क्सवादियों का कथन है कि आदिम साम्यवाद के युग में साहित्य युग की सामूहिक भावना को अभिव्यक्त करता था किन्तु उत्पादन के साधनों के विकसित होने से श्रम विभाजन हुआ एवं समाज वर्गों में बट गया तब जिन वर्गों के हाथ में राजसत्ता थी उन्हीं पर प्रकृति से संघर्ष कर समाज को विकासमान करने का उत्तरदायित्व पड़ा। साहित्य जिसकी अलग सत्ता स्थापित हो चली थी अब सत्ताधारी वर्ग के प्रभाव में आगया और उसी वर्ग की भावनाओं को अभिव्यक्त करने लगा।

मार्क्सवाद विचारों की निरपेक्ष सत्ता स्वीकार नहीं करता। विचारों का आधार अन्ततः आर्थिक होता है। मार्क्स जब कहता है (Being determines consciousness) अस्तित्व हमारी चेतना का विधायक है तब अस्तित्व से उसका

आशय समाज के आर्थिक सम्बन्धों से है। एंगल्स धर्म, दर्शन, कला आदि संस्कृति के तत्वों को "आकाशचारी विचारों" की संज्ञा देता है तथा उसके मतानुसार उन पर आर्थिक परिस्थितियों का 'स्पष्ट और सीधा' प्रभाव न पड़ कर "प्रभावदार ढंग" से पड़ता है 'मैं निर्विवाद रूप से इस बात को मानता हूँ कि अन्य क्षेत्रों की भांति विचारों के क्षेत्र में भी आर्थिक विकास का सब प्रधान हाथ रहता है। हां यह आवश्यक है कि यह प्रभाव विचार जगत् के अपने नियमों और उसकी अपनी मर्यादा के अनुसार ही पड़ता है।"

तब क्या साहित्य का प्रयोजन शोषक वर्ग के हितों की रक्षा करना है? शायद मार्क्स उत्तर देता—जी, अब तक के साहित्य ने यही किया है। परन्तु कोई कारण नहीं कि साहित्य इसी लक्ष्य को पूरा करने के काम में लाया जाता रहे। यदि पूंजीपति वर्ग साहित्य के द्वारा अपने हितों की रक्षा करने के लिए सचेष्ट रहता है तो हम सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा करने के लिये साहित्य को उपयोग में ला सकते हैं। अतः मार्क्सवादियों के अनुसार वर्तमान युग में वही साहित्य श्रेष्ठ समझा जायेगा 'जिसमें जनता का सीना उभरता हुआ नजर आये।' साहित्य का आधार अन्ततः आर्थिक है। किन्तु प्रत्येक साहित्यकार आज के शासक वर्ग (पूंजीपति वर्ग) का पोषक हो यह आवश्यक नहीं क्योंकि आज समाज स्पष्टतः सर्वहारा और पूंजीपति वर्गों में बटा है। यह लेखक की वर्ग सहानुभूति पर निर्भर करता है कि वह किस वर्ग के हितों का पोषक है। अतः पूंजीवादी वर्ग में उत्पन्न होकर भी लेखक सर्वहारा वर्ग की इच्छा आकांक्षाओं को अपने साहित्य में पुरजोर तरजीह दे सकता है तथा सर्वहारा वर्ग में उत्पन्न लेखक भी पुरानी सड़ी गली पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति सम्मान रख सकता है।

साहित्य दलगत राजनीति के प्रचार का साधन

साहित्य को वर्ग भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम मानने से राजनीति से उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध हो जाता है। अतः मार्क्सवादियों के अनुसार साहित्य सर्वहारा वर्ग के प्रोपेगेन्डा का साधन बन कर 'पार्टी साहित्य' का रूप धारण कर लेता है। कहा जाता है कि आज के विक्षिप्त राजनीतिक वातावरण ने हमें पूर्वग्रही (Prejudiced) बना दिया है। इधर के कम्युनिस्ट लेखकों का नारा "पार्टी साहित्य" रहा है अतः इसी विचार का हम मार्क्स पर भी आरोप कर देते हैं। अन्यथा मार्क्स पार्टी साहित्य में विश्वास नहीं करता। वह मनुष्य को ही साहित्य का केन्द्र मानता है। किन्तु यह कथन सत्य नहीं है। फैयलिग्राथ के साथ मार्क्स के पत्र व्यवहार से स्पष्ट है कि मार्क्स 'पार्टी साहित्य' को अत्यधिक महत्व देता है। फैयलिग्राथ ने उसे लिखा 'स्वभावतया प्रत्येक कवि स्वतन्त्रता प्रेमी होता है। और मैं भी स्वतन्त्रता का इच्छुक हूं। पार्टी भी एक पिंजरा है और गीत चाहे वे पार्टी के लिए ही गाए जायें पिंजरे में रहने की अपेक्षा उससे बाहर रह कर ही अच्छे गाये

जा सकते हैं। इसके प्रत्युत्तर में मार्क्स ने यही अभिमत प्रकट किया कि पार्टी से अलग होने का अर्थ पिंजरे से निकल कर स्वच्छन्द गीत गाना नहीं वरन् तथा कथित व्यक्ति स्वातन्त्र्य के भुलावे में पूंजीवादी व्यवस्था को प्रश्रय देना है। down with non party writers पार्टी से विलग लेखकों की क्षय! कहनेवाले लेनिन के लिए पार्टी साहित्य का कितना अधिक महत्व है यह स्पष्ट ही है। 'पार्टी सगठन और पार्टी साहित्य' निबंध में लेनिन ने लिखा

'पार्टी साहित्य के सिद्धान्त का क्या आशय है? केवल यही नहीं कि सम्पूर्णतया सर्वहारा-वर्ग के स्वार्थों से भिन्न वह किसी व्यक्ति अथवा दल की स्वार्थ पूर्ति का साधन नहीं बन सकता पार्टी साहित्य की रचना न करनेवाले लेखकों की क्षय हो। अतिमानुषिक साहित्यकारों की क्षय हो। साहित्य सर्वहारा-वर्ग के सम्पूर्ण रूप में एक लक्ष्य का अन्तरंग भाग बनना चाहिए-उस सम्पूर्ण सामाजिक सगठन की इकाई का अंग जो सजग नेतृत्व से सचालित सम्पूर्ण मजदूर-वर्ग की प्रगति का प्रतीक है। साहित्य संगठित, नियोजित एक रूप, सामाजिक प्रजातान्त्रिक दल के कार्यक्रम का अन्तर्निहित भाग होना चाहिये।" ×

अस्तु मार्क्स व लेनिन द्वारा पार्टी साहित्य का महत्व दर्शाते हुए भी कलाकार के स्वतन्त्र स्वभाव के कारण पार्टी के आदेशानुसार साहित्य रचना में अधिक सफलता नहीं मिली। आज पार्टी साहित्य का नारा उग्र रूप में नहीं है। साहित्य में 'संयुक्त मोर्चे' की बात सुनाई पड़ती है मानव जीवन को व्यापक दृष्टि से देखने का आग्रह भी किया जाता है किन्तु उसके मूल में साहित्य का आधार आर्थिक ही माना जाता है और सयुक्त मोर्चे के बीच का हिस्सा (Nucleus) पार्टी-लेखकों को ही

× Lenin on "Party Organization and party literature" quoted in 'Lenin on Art and Literature" by A V Lunacharsky Oriental Publishing House Benares 1943

What does this prin iple of party literature consist of? Not only in that for, the socialist proletariat literature cannot be a means of private gain to persons or groups at all, apart from the entire proletarian cause Down with nonparty writers Down with literate superman Literature must become a part of the proletarian cause as a whole Part and and parcel' of a single whole, of the entire social mechanism set in motion by the whole concious vangurad of the entire working class Literature must become an integral part of an organi ed planned united social democratic party work

समझा जाता है। गार्की के इस कथन का आदर किया जाता है। मानव हमारा देवता है। मानव से बड़ा कोई सत्य नहीं,' रेल्फ फाक्स ने अपनी पुस्तक 'नावेल एण्ड द पीपुल" (Novel and the people)में मानव को साहित्य का केन्द्र घोषित किया है किंतु, वहीं लिखता है क्रांतिकारी लेखक सदा पार्टी लेखक होता है। इससे मतलब यह नहीं कि वह नित्य प्रतिदिन की समस्याओं पर पार्टी के नारे लागू किया करता है वरन् वह पार्टी को चेतना का समर्थन देने के लिए नयी चेतना का साहित्य सृजन करता है।" अवश्य यह कथन साधारण सकीर्णताओं से परे है तथापि सिद्धांत रूप में पार्टी के निर्णयों को सर्वोपरी मानने पर साहित्य का सेवक गम्भा हुए बिना नहीं रह सकता। रूसी क्रान्ति के पश्चात् रूस में लेखकों की एक संस्था आर० ए० पी० पी० (R A P P) बनायी गया जिसका उद्देश्य पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिए साहित्य सृजन करना था। वह साहित्य इतने घटिया स्तर का था कि अंत में आर० ए० पी० पी० संस्था को ही तोड़ देना पड़ा।

पार्टी साहित्य के अतिरिक्त अन्य साहित्य का भी मार्क्स वादियों की दृष्टि में कम महत्व नहीं। क्या लेखक वर्ग-संघर्ष के स्वरूप को स्पष्ट समझ कर ही श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर सकता है-ऐसी रचना जिसे मार्क्सवादी आलोचक श्रेष्ठ मानें। फ्रांसिसी उपन्यासकार बालजाक की दृष्टि के संबंध में मार्क्स ने कहा था सामाजिक संबंधों को समझने में बालजाक की दृष्टि अत्यन्त पैनी है। इसी संबंध में एंगेल्स का कथन है बालजाक ने जिस वास्तविकता का वर्णन किया है वह लेखक के अपने दृष्टिकोण से निरपेक्ष होकर वर्णित हो सकती है।' यद्यपि बालजाक के राजनीतिक विचार प्रतिक्रियावादी थे पर वह अभिजात वर्ग के अवश्यम्भावी पतन के प्रति सजग था अतः उसकी क्षणिक सहानुभूति ही उसे अभिजात वर्ग के पतन का चित्रण करने के लिए प्रेरित करती है। प्राचीन युग के लेखकों तथा अर्वाचीन लेखकों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि उस युग में इतिहास अनजाने बन रहा था, परन्तु आज मनुष्य स्वयं इतिहास बना रहा है। अन्य वर्गों के ऐतिहासिक महत्व को समझे बिना दूसरे शब्दों में पार्टी की विचारधारा का अनुगमन किये बिना आज प्रगतिशील साहित्य का सृजन सम्भव नहीं है।

कला की प्रेरणा सामूहिक भाव

कला का स्वरूप क्या है, उसकी मूल प्रेरणा क्या है मार्क्सवाद इस प्रश्न का सीधा सामना नहीं करता। वह कला को स्वतन्त्रता प्राप्ति का अस्त्र मानता है।

अत विगत युग की कला को सामाजिक संघर्षों की पृष्ठभूमि में रख कर उसकी व्याख्या करते हुए कलाकार के प्रगतिशील या प्रतिक्रियावादी होने का निर्णय करता है। मार्क्सवादियों के लिए कला साधन है साध्य नहीं। वह किसी सृजनात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति नही है। हमारी अन्तप्रवृत्तियां भी बदलती हैं। काडवेल का कथन है " कला हमारी अन्तप्रवृत्तियों को परिवेश के अनुकूल बनाती है और ऐसा करने म अन्तप्रवृत्तियों को ही बदल देती है।"

मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के क्रिया कलाप अन्तप्रवृत्तियो की प्रेरणा पर आधारित होते हैं। पृथ्वी के कम्पायमान होने के अवसर पर हम अन्तप्रवृत्ति से प्रेरित होकर आत्म रक्षा के काय में प्रवृत्त होते हैं। कुछ काय ऐसे भी होते हैं जिनके प्रति हमारी तत्काल सहज प्रतिक्रिया नही होती। श्रम ऐसा ही काय है। प्रतिक्रिया का जब प्रत्यक्ष या तात्कालिक कारण नहीं होता, सुषुप्त कारण होता ही है तब ऐसे "सामूहिक भाव" (Collective Emotion) की उत्पत्ति की आवश्यकता होती है जिससे प्रेरित होकर हम उस काय म प्रवृत्त हो। यह कार्य हमारी जविक (Biological) आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले नहीं होते वरन् उनमें आर्थिक उद्देश्य ही प्रधान होता है। कला इस प्रकार के 'सामूहिक भाव" की उत्पत्ति म सहायक होती है। काडवेल के अनुसार आदिम साम्यवाद के युग म खेती के उत्सव पर कविता सामूहिक रूप मे गायी जाती थी। इस सगीत और नृत्य के अवसर पर खेती का तात्कालिक श्रम भूल सा जाता था और श्रमिकों के सामने छायालोक सा उद्भासित होने लगता कि वे कल्पना लोक म देखते, खेत लहलहा रहे हैं। 'सामूहिक भाव' के प्रभाव से श्रम का बोझ हल्का हो जाता। सगीत के मौन होने पर बिना बोया हुआ खेत मनुष्य के लिए एक विशेष अर्थ रखता है और श्रमिक अधिक उत्साह के साथ अपने कार्यों मे प्रवृत्त हो जाता। अकेले मे जब वह इन गीतो को गुनगुनाता तब अपने भावों को सामूहिक छाया चित्रो से आन्दोलित पाता। सूर्योदय या गुलाब उसके हृदय मे उन भावो और अनुभवों को पुनर्जीवित करते जिनका कोटि-कोटि प्राणियो ने पूर्व अनुभव किया था। उसके यह अनुभव अत प्रेरित नहीं होते अत व्यक्तिगत नही कहे जा सकते।

अधिकाधिक श्रम विभाजन के साथ कविता का वास्तविक जीवन से सबध-विच्छेद हो जाता है और कला श्रम की विरोधिनी जान पडती है, बठे ठाले का काम होती है। कवि एकाकी व्यक्ति होता है। श्रम विभाजन के साथ समाज मे वर्ग-विभाजन होता है। कला उस शासक वर्ग के विचारों की वाहक बन जाती है जो कलाकार के लिए निकम्मेपन की स्थिति उत्पन्न करता है। कला श्रम से भिन्न वस्तु हो जाती है और उसका दुष्परिणाम कलाकार और समाज दोनों को उठाना पड रहा है तथा उसका निराकरण वर्गहीन समाज की स्थापना से ही सम्भव है।

प्रारम्भिक युग की कविता सामाजिक कर्म की पूर्ति में सहायक होती है । कृषि उत्सव की कविता अन्न के दानों या कृषि श्रम का तात्त्विक विवरण नहीं देती वरन् समाज का उस कर्म से जीवित, भावमय, सामाजिक संश्लिष्ट संबंध स्थापित करती है । कविता के महत्व को समझने के लिए उसके आदिम रूप की कल्पना करनी होगी जब वह श्रम के साथ गाई जाती थी । कविता शब्दों का अर्थ नहीं है वरन उसका महत्व ' सामूहिक भाव" के उत्पन्न करने में है, उसके सामाजिक उपयोग में ।

कुछ आलोचकों द्वारा मनोविज्ञानिक आधार पर ' साधारणीकरण" के भारतीय साहित्यिक सिद्धान्त को काडवेल के ' सामूहिक भाव ' के सिद्धान्त के अनुरूप बतलाया गया है । यह उचित नहीं है । साधारणीकरण यद्यपि व्यक्ति की भाव धारा को सामाजिक पक्ष प्रदान करता है इस दृष्टि से कि व्यक्ति के भाव उस धरातल पर पहुँचें कि वे सबके ही मर्म पर होते व व्यक्ति के हृदयगत भाव ही हैं । "सामूहिक भाव" वह सामाजिक भाव है जो व्यक्ति की सहज वृत्ति से प्रेरित नहीं होता, उसे उत्पन्न करने के लिए किसी विराट आयोजन के द्वारा विभ्रम उपस्थित करना आवश्यक होता है ।

सौन्दर्यगत मान श्रम और सौन्दर्य का संयोग

मार्क्सवाद के अनुसार सौन्दर्य और सत्य के वास्तविक स्वरूप का निर्णय सामाजिक चेतना से सम्पन्न मनुष्य ही करता है । सौन्दर्य व्यक्ति की चेतना का उज्ज्वल वरदान नहीं है । किसी वस्तु को छूकर हम ताप का अनुभव होता है उसी प्रकार किसी सुन्दर वस्तु को देखने पर हमें सुन्दरता का भान होता है । अत सौन्दर्य परिवेश में व्याप्त है । तथापि सौन्दर्य का अनुभव करनेवाले मनुष्य की अनुपस्थिति में किसी वस्तु के सुन्दर होने की कल्पना नहीं की जा सकती । सौन्दर्य के मान बदलते रहते हैं । अज्ञात मानव अशिक्षित मत प्रवृत्तियों का दास अपरिवर्तनीय होता है । मनुष्य केवल सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित होता है या बदलनेवाले सौन्दर्य मानों का आधार समाज है । समाज प्रकृति पर विजय प्राप्त करके प्रगतिगामी होता है । सौन्दर्य सत्य से अलग नहीं है। सत्य और सौन्दर्य स्वतः साध्य न होकर सामाजिक प्रगति के साधन हैं । सभ्यता के प्रारम्भ में सत्य और सौन्दर्य का समागम स्पष्ट है । उस युग में श्रम की प्रक्रिया के साथ ही सत्य और सुन्दर जुड़े हैं । श्रम सत्य है किन्तु साथ ही आनन्ददायक अवसर भी है । श्रम के साथ ही नृत्य का आयोजन है । बुर्जुआ संस्कृति ने विलास के आनन्द को और आनन्द ने सत्य को नष्ट कर दिया है । सत्य अब सुन्दर नहीं है क्योंकि बुर्जुआ सभ्यता में सत्य का अर्थ नग्नता और जंगलीपन है । उसी तरह सौन्दर्य सत्य नहीं है क्योंकि सुन्दरता का अर्थ आज काल्पनिकता हो गया है । वर्गहीन समाज में ही श्रम की प्रक्रिया के साथ सत्य और सुन्दर का संयोग सम्भव है । यह [illegible] कि

वर्गहीन समाज में श्रम को घृणित समझे जाने के बदले श्रमिक वर्ग के उत्पादन को सौन्दर्य पूर्ण समझा जाने लगेगा।

कला की विवेचना करते हुए अब तक हम विषय के संबंध में ही विचार करते रहे हैं यह उचित ही था। मार्क्सवादियों का कला के संविधायक पहलू की ओर ही अधिक ध्यान रहा है। किन्तु, कला के रूप विधान की ओर वे उदासीन हों यह कथन सत्य नहीं है। ग्रीक साहित्य के संबंध में मार्क्स का सुझाव है कि हम यह समझना चाहिए कि हमें आज भी वह साहित्य सुन्दर क्यों लगता है। जैसा कि लेनिन ने कहा है हमें प्राचीन का त्याग केवल मात्र इसलिए नहीं कर देना चाहिए कि वह प्राचीन है जो कुछ सुन्दर है-नया या प्राचीन उसका संग्रह अपेक्षित है। लेखक कहता था है यह तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु, वह कहता किस रूप में है यह भी उपेक्षणीय नहीं। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार रचना की श्रेष्ठता का निरूपण करते समय उसकी सत्यानुभूति उसकी रूप योजना शैली और प्रौढ़ता, वाक्य-रचना शब्द प्रयोग आदि अनेक दूसरी कसौटियों पर उसे कसना आवश्यक है, और प्रगतिवादी इन सब कसौटियों पर किसी भी काव्य या साहित्य कृति का कसना आवश्यक समझते हैं, इनके महत्व को जानते हैं यद्यपि आज के संक्रमण काल में वे साहित्य के संविधायक पहलू के दृष्टिकोण से विवेचन करना अधिक आवश्यक समझते हैं। उनके मत में "रूप और विषय-वस्तु का सम्बन्ध अभिन्न और अन्योन्याश्रित है।" +

वर्ग-विभक्त समाज में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से कला का लक्ष्य वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। किन्तु, जब वर्गहीन समाज की स्थापना हो जाएगी तब साहित्य का सृजन किस उद्देश्य से होगा? मार्क्सवादियों के लिए शान्ति शायद कहीं नहीं है चाहे संघर्ष के लिए संघर्ष उनका उद्देश्य न भी हो। वर्गहीन समाज की स्थापना के बाद भी संघर्ष के लिए स्थान तो रहेगा ही मानव समाज का संघर्ष प्रकृति से और उसके लिए समाज के सामूहिक भाव" को जगाने की आवश्यकता होगी। तब शायद मार्क्सवादी कला की कलात्मकता की ओर भी ध्यान देंगे।

इतिहास

रूसी-क्रांति से पूर्व

प्रगतिवाद की संक्षिप्त पूर्व-पीठिका यों है फ्रांसीसी क्रांति ने जिस प्रकार योरुप में रोमांटिक साहित्य को जन्म दिया उसी प्रकार रूसी क्रांति के गर्भ से प्रगतिशील साहित्य का उद्‌भव हुआ। क्रांति के पूर्व १९ वीं सदी के अन्त में योरुपीय साहित्य की पतनोन्मुखी प्रवृत्ति का रूसी साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव था। रूसी

\+ डा० रामविलास शर्मा 'प्रगति और परम्परा" किताब महल, इलाहबाद १९४८ पृष्ठ ५६

चूल्हे पर गर्म की हुई फांसीसी शोरवे" के सदृश इस युग की कविता सेक्स की तृष्णा, व्यक्तिवाद, निराशावाद तथा धार्मिक रहस्यवाद की विभिन्न प्रवृतियां लिए थी। बालमाट ब्रूसाव और सोलोगव मे पतनो मुखी प्रवतियां मुख्य थी। १९०५ की प्रथम रूसी क्रांति के पश्चात् पतनोन्मुखता के बदले तरुण प्रतीकवादियो ने धार्मिक रहस्यवाद अपनाया। आइवानव, बली, ब्लाक, बोलाशिन इस धारा के मुख्य कवि थे। किन्तु पीटसबग (लेनिनग्राड) के कवियो ने प्रतीकवादी शैली का विरोध किया तथा अभिधा मे शब्द चित्रो के द्वारा अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने का माग अपनाया। गुमिलोव इस शैली का प्रवत्तक था तथा उसके द्वारा प्रवर्तित साहित्य-धारा एकेमिस्ट धारा के नाम से अभिहित हुई जिसमे से एक अन्य इमेजिस्ट शाखा भविष्यवाद का विकास हुआ जिसका प्रमुख कवि येसेनिन था।

किन्तु प्रगतिशील भावनाओ के प्रचार की दृष्टि से इस काल के साहित्यिक आन्दोलनो मे सबसे प्रमुख भविष्यवाद था। भविष्यवाद (Futurism) का आरम्भ इटली के कवि मारिनेति के क्रान्तिकारी विचारों (सन् १९०७) से माना जाता है। मारनेति ने सौन्दय के प्रचलित रोमांटिक उपमानो को छोड कर मशीन को सौन्दय का आधार माना। उसने रूढ़िगत विचारो तथा साहित्य के रूप विधान—छंद, व्याकरणादि नियमो के विरुद्ध विद्रोह किया। फ्रांस मे भी प्रतीकवाद के फार्मेलिज्म के विरोध म प्रकृतवाद (नेचुरलिज्म) का प्रचार हुआ जिसमे जीवन के नग्न चित्रण को उपस्थित किया गया। रूस मे भविष्यवाद के प्रवतक खेलें नकव तथा मायाकावस्की थे। सन् १९१२ मे मायकावस्की ने फ्यूचरिज्म का घोषणा पत्र निकाला जो सभी प्राचीन का विरोधी था। मायकावस्की ने सब या सामयिक तथ्यो पर कविता लिखी यथा, सोवियत पासपोर्ट, कम्युनिस्ट सम्मेलन बढते हुए रेल-भाडे आदि उनके विषय थे। इटली मे मारिनेति के भविष्यवाद के आगे चल कर दो भेद दिखाई दिए—'क्यूबो फ्युचरिज्म' तथा 'इगो फ्यूचरिज्म'। क्यूबो फ्यूचरिज्म' के काव्य मे भविष्य की कल्पना की प्रधानता थी तथा 'इगो फ्यूचरिज्म' न मनुष्य की महत्ता की साहित्य म प्रतिष्ठा की। इगो फ्यूचरिज्म की विचार सरणि ब्लरिटोसिज्म (वस्तु मानवता) में आधुनिक प्रगतिवाद का रूप प्रकट हुआ।

रूसी-क्रांति के पश्चात्

रूस म क्रांति की विजय (सन् १९१७) के पश्चात् साहित्य मे आबद्धता का वातावरण अधिक विषम हो गया। ए. बोग्दानव के प्रस्ताव के आधार पर प्रोलेटकल्ट की स्थापना (सन् १९२०) हुई जिसका मुख्य उद्देश्य वर्ग सघष म विश्वास रखनेवाली संस्कृति का प्रचार करना था। किन्तु रूस म लेनिन के नेतृत्व के कारण साहित्य में भी अधिक संकीर्णता नहीं आ पाई। जो लेखक कम्युनिस्ट नहीं थे किन्तु सर्वहारा वर्ग के साथ थे उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व उदार दृष्टिकोण रख कर उन्हें सहयात्री

(Popubtchiki) कहा जाने लगा। ऐसे सहयात्री लेखकों के दो दल थे सेरेपियन ब्रादर्स तथा ओप्याज सेरेपियन बन्धु वैयक्तिक प्रेरणा तथा कला व संस्कृति के क्षेत्र में स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। जमेटिन इस दल के संस्थापक थे। मैक्सिम गोर्की की भी सहानुभूति इस दल के साथ थी। ओप्याज (opyaz) 'काव्य भाषा का विद्यापीठ'—शुद्ध शैली पर आधारित साहित्यिक मतवाद था। प्रोलेटेरियट (सर्वहारा वर्ग) विषयों की संकीर्णता के कारण भाषा व अभिव्यक्ति-रूपों के क्षेत्र में ही नवीन प्रयोग सम्भव थे। पी० कोगन ने शैलीगत नवीनताओं का विरोध किया। प्रोलेटेरियट दिशा के लिए मजबूत आवाज बुलन्द करने के लिए एक नया दल नाल-पाड (सावधान) स्थापित किया गया। लेनिन की मृत्यु (२१ जनवरी १९२४) के बाद ट्राटस्की, कुलक व बोजुंवा षडयन्त्रों से अवकाश पाकर जब स्टालिन ने अपनी शक्ति को दृढ़ बना लिया तब उसने प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई तथा देश की सभी शक्तियों का इस योजना को सफल बनाने के लिए आह्वान किया। सन् १९२९ में आर ए पी पी प्रोलेटेरियट लेखकों का रूसी संघ स्थापित किया गया जिसका अध्यक्ष आवरबाख नियुक्त हुआ। पंचवर्षीय योजना और उसके ढाँचे में वर्ग-संघर्ष का विकास ही तत्कालीन साहित्यिक रचना का लक्ष्य स्वीकार किया गया। किन्तु इस संकीर्णता में लेकर उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण सम्भव नहीं था। इस संकीर्णता से तंग आकर येसेनिन (सन् १९२५) व मायकावस्की (सन् १९३०) को आत्म-हत्या कर लेनी पड़ी। जमेटिन (सेरेपियन बन्धु दल का संस्थापक) को पेरिस भागना पड़ा। रूसी पाठकों व लेखकों का इस यान्त्रिक व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट होने लगा। अंततः मैक्सिम गोर्की की प्रेरणा से कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने "प्रोलेटेरियट लेखकों का रूसी संघ" को भंग कर एक व्यापक संघ-'सोवियत लेखक संघ' स्थापित किया तथा लेखकों के सामने व्यापक जीवन-दर्शन—सामाजिक यथार्थवाद (Socialist realism) रखा।

आंग्ल साहित्य में मार्क्सवादी प्रवृत्ति

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आंग्ल-साहित्य में भी मनोरंजन के बदले युग-चेतना का साहित्य रचा जाने लगा तथा युग की आवश्यकताओं को वाणी दी गयी। सन् १९३० के लगभग आंग्ल साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव प्रतिफलित होने लगा। गाल्सवर्दी के उपन्यास, बर्नार्ड शा के नाटकों तथा डब्लू एच आडेन (W H Auden) सेसिल डे लेविस, (Cecil De Lewis) स्टीफन स्पेंडर (Stephen Spender) प्रभृति कवियों के काव्य में पूंजीपतियों के शोषण के विरुद्ध श्रमिक वर्ग में नव जागृति की प्रेरणा देनेवाली विद्रोहात्मक भावनाओं का प्रचार किया जाने लगा।

द्वितीय महायुद्ध के समय प्र० ले० सं० की स्थापना और भारत में प्रगतिवादी आन्दोलन

भारत में यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना सन् १९२० में हो गई थी किन्तु साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव द्वितीय महा-समर (१९३९–१९४५) के समय प्रतिफलित हुआ। इससे पूर्व भी साम्राज्यवाद व शोषण के प्रति विरोध के भावों व तथा इस विद्रोहात्मक स्वर के फासिज्म प्रवाह पर केन्द्रित होने के रूप में प्रगतिवादी आन्दोलन के लिए पूर्व-पीठिका बन चुकी थी।

द्वितीय महासमर के छिड़ते पूर्व जब रूस पर जर्मनी ने आक्रमण कर दिया तब फासिस्ट शक्तियों का विरोध करने के लिए विश्व के प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के लिए प्रथम सम्मेलन अंग्रेजी उपन्यासकार ई० एम० फोरस्टर (E M Forster) के सभापतित्व में पेरिस (सन् १९३५) में हुआ। इसी वर्ष नवम्बर की एक शाम लन्दन की गावरस्ट्रीट में स्थित नानकिंग रेस्तराँ में "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई। प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक प्रवर्तकों में दो भारत के प्रतिनिधि थे। अंग्रेजी उपन्यासकार डा० मुल्कराज आनन्द तथा उर्दू साहित्यकार श्री सज्जाद जहीर। भारत में सन् १९३६ में प्रेमचन्द के सभापतित्व में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ। सन् १९३७ में कलकत्ता में उसके द्वितीय अधिवेशन के सभापति रवीन्द्रनाथ टगोर थे। हिन्दी में छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त प्रगतिवाद के अग्रदूत बन कर आये। ✠

छायावाद की स्वप्न-बद्ध कविता के विरुद्ध काव्य में कठोर आवश्यकताओं के नग्न रूप की मांग प्रगतिवाद के आरम्भ की सूचक है। प्रेमचन्द के सम्पादन में काशी से 'हंस' (प्रकाशन सन् १९३०) के प्रकाशन से प्रगतिवादी आन्दोलन को अत्यधिक बल मिला। सन् १९३६ के बाद से ही प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति रहा है यद्यपि प्रेमचन्द की मृत्यु के पश्चात् प्रगतिशील संगठन में अनियमितता

✠ पंत ने कालाकांकर से प्रकाशित "रूपाभ" वर्ष १, अंक १ जुलाई १९३८ में लिखा

'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'

आ गयी। देश के विभाजन के उपरान्त सितम्बर १९४७ मे प्रयाग में प० राहुल साकृत्यायन की अध्यक्षता म हिन्दी के प्रगतिशील लेखको का सम्मेलन हुआ तथा उसका उद्घाटन डा० अमरनाथ झा ने किया। अप्रेल १९४८ व नवम्बर १९५२ म प्रान्तीय आधार पर प्रगतिशील लेखक सघ के अ य अधिवेशन हुए।

आलोचना के मान

प्रगतिवाद का मूलाधार मार्क्सवाद एक सार्वभौमिक जीवन दर्शन है जिसका सचेष्ट प्रतिपादन प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य है। अत यह स्वाभाविक ही है कि सृजनात्मक साहित्य से भी बढकर उसके सैद्धान्तिक आलोचना पक्ष की ओर ध्यान दिया गया है। मार्क्सवादी चिन्तकों—मार्क्स, ए गल्स, लेनिन, स्टालिन माओ त्से तु ग के अतिरिक्त हिन्दी की प्रगतिवादी आलोचना म क्रिस्टफर काडवेल, जेम्स टी फेरल रैल्फ फाक्स प्रभृति अ ग्रेजी व अमरिकी आलोचकों के विचारों की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है तथा उनके द्वारा उठाये गये साहित्यिक प्रश्नों पर विचार किया गया है।

पीछे हम कला क स्वरूप के सबध में काडवेल के सामूहिक भाव के सिद्धान्त का विवेचन कर चुके हैं। प्रगतिवादी आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान ने अपनी पुस्तक 'प्रगतिवाद'' मे कला की समीक्षा काडवेल के सामूहिक भाव के सिद्धान्त के अनुरूप ही की है।+ काडवेल के समान उनके मत में वर्ग-विभक्त समाज में कला

\+ Christopher Caudwell Illusion and Reality' People's Publishing House Ltd Bombay 1947 Pp 24
सामूहिक-भाव से निर्मित कल्पना लोक के सबध में काडवल ने लिखा है —
'This collective emotion organised by art at the tribal festival because it sweetens work and is generated by the needs of labour, goes out again into labour to lighten it '

शिवदानसिंह चौहान 'छायावादी कविता मे असन्तोष भावना'' शीर्षक लेख आधुनिक हिन्दी साहित्य (सपा-धनय) हिन्दी साहित्य परिषद् मेरठ १९४० पृष्ठ १४१

'कविता जो भावों को सगठित करती या उन्हें तरतीब देती है, नवीन म त प्रेरणाओं द्वारा भाव जगत् की सीमा विस्तृत करती जाती है। वह जीवन श्रम या सघर्ष को भावों के रस से सींच कर मधुर बनाती है।

शासक–वर्ग की क्रीत–दासी है । X काडवेल के समान वे यह भी मानते हैं कि कला का कल्पना जन्य संसार कल्पना मात्र न होकर उच्चतर वास्तविकता है । टी फैरल के स्वर को प्रतिध्वनित करते हुए वे कविता को मनुष्य की स्वतंत्रता का प्रश्न घोषित करते हैं ।+ क्या साहित्य प्रोपेगन्डा है लेख में भी शिव दान सिंह

X Christopher Caudwell' Illusion and Reality People's publishing House Ltd Bombay 1947 Pp 24
The division of labour has led to a class society in which conciousness has gathered at the pole of ruling class whose rule eventually produces the conditions for idleness
शिवदानसिंह चौहान छायावादी कविता में असन्तोष भावना शीर्षक लेख–आधुनिक हिन्दी साहित्य (सपा–अज्ञेय) हिन्दी साहित्य परिषद् मेरठ १९४० पृष्ठ १४२

एक अति उन्नत एवं सभ्य वर्ग के समाज में कविता समस्त समाज की आकांक्षाओं और उनके भावों को व्यक्त न कर केवल शासक–वर्ग की भावनाओं को व्यक्त करने लगती है । समस्त मानवता का दामन छोड़ कर यह शक्ति सम्पन्न वर्ग का वरण कर लेती है ।

- Christopher caudwell Illusion and Reality People's Publishing House Ltd Bombay 1947 Pp 26
'It (poetry) exhibits a reality beyond the reality it brings to birth and nominally portrays, a reality which though secondary is yet higher and more complex "
शिवदानसिंह चौहान 'छायावादी कविता में असंतोष भावना' शीर्षक लेख, आधुनिक हिन्दी साहित्य (सपा–अज्ञेय हिन्दी साहित्य परिषद् मेरठ १९४०

यह काम (श्रम को हल्का करना) कविता, मनुष्य के भावों को एक नवीन श्रेष्ठतर कल्पनात्मक संसार में अवतरित कर, करती है । इस कल्पनात्मक संसार की वास्तविकता अवास्तविकता नहीं होती वरन् एक उच्च कोटि की वास्तविकता होती है ।"

\+ J T Farell 'A note on Literary Criticism' Constable and Co London 1936 p 137
Literature is an instrument of social influence
चौहान के शब्दों में —
कविता मनुष्य की स्वतन्त्रता का प्रश्न है ।' साहित्य की परख, पृ २४

चौहान टी॰ फैरल की इस राय को कि "सारा साहित्य प्रोपेगेण्डा है" इस नारे को त्याग देना चाहिए और उसके स्थान पर 'साहित्य सामाजिक प्रभाव का अस्त्र है रखना चाहिए मानते हुए लिखते हैं 'जे॰ टी॰ फैरल से मैं कहां तक सहमत हूँ, यह ज्यादा महत्व की बात नहीं है यद्यपि यह स्वीकार करते मुझे कोई आपत्ति नहीं कि मैं फैरल द्वारा की गई प्रापेगेण्डा की व्याख्या से सहमत हूं।" श्री शिवदानसिंह चौहान ने मार्क्सवाद में अत्यधिक दृढ़तापूर्वक अपनी आस्था प्रकट की है "पन्द्रह साल हो गये जब से मार्क्सवाद कम्युनिस्ट पार्टी और जनता का सक्रिय कार्यकर्ता रहा हूँ, आजीवन रहूँगा। यही मेरा जीवन है, यही मेरा वस्तु-दर्शन और विज्ञान है केवल पढ़ लिख कर पाया हुआ ही नहीं वरन् उपचेतना में आत्म-सात् होकर रक्तमांस में घुलमिल कर हृदय में पुनः जन्मा। वस्तु-ज्ञान के इन्द्रियज बोध के साथ साथ मन में अनन्त पनपी वृत्तियों, संवेदनों मनोवेगों और सहज भाव प्रतिक्रियाओं के सहारे चेतना में विकास पाया मार्क्सवाद मेरे जीवन का श्वास है।' * मार्क्सवाद में इसी दृढ़ विश्वास को रखते हुए प्रगतिवादी आलोचकों ने हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन किया है तथा कला सम्बन्धी समस्याओं पर अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं। प्रकाशचन्द गुप्त शिवदानसिंह चौहान डा॰ रामविलास शर्मा अमृतराय प्रभृति आलोचकों ने मार्क्सवादी आधार पर साहित्यालोचन का स्वरूप खड़ा किया है। प्रकाशचन्द ने संक्षिप्त विवरणात्मक आलोचनाएं लिख कर आलोचना को सरल व सुगम बनाया जिससे आलोचना पर साधारण पाठकों का अधिकार हो। शिवदानसिंह चौहान ने प्रगतिवादी आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष को सबल बनाया तथा छायावादी काव्य का विशेष रूप से मूल्यांकन किया। डा॰ रामविलास शर्मा ने प्राचीन हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं की भी मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की तथा नवीन हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील तत्वों को स्पष्ट करते हुए मार्क्सवाद के यान्त्रिक प्रयोग की भूलों को दर्शाया। अमृतराय ने प्रगतिशील लेखकों के संगठन की समस्या पर विशेष रूप से सतर्कता दर्शायी। यहां पर प्रगतिवादी आलोचकों की व्यक्तिगत उपलब्धियों तथा सीमाओं का प्रश्न न उठा कर प्रगतिवादी आन्दोलन से सम्बन्धित कुछ विवादास्पद विषयों का स्पष्टीकरण समीचीन होगा।

सामाजिक दायित्व एवं वैयक्तिक चेतना का संघर्ष

प्रगतिवाद के प्रसंग में कलाकार की वैयक्तिक अनुभूति की व्यंजना का प्रश्न एक महत्वपूर्ण रूप धारण कर लेता है क्योंकि मानव जाति की मुक्ति के युग (वर्ग-

---

* शिवदानसिंह चौहान 'नई चेतना' ग्रन्थ ४ 'मानव आत्मा के शिल्पियों के नाम' शीर्षक लेख पृष्ठ ३४

हीन समाज की स्थापना) के लक्ष्य से प्रेरित उनकी रचना पर निश्चित योजना, राजनीतिक कार्यक्रम, सिद्धान्तों का प्रचार आदि के प्रतिबन्ध अपना प्रभाव डालते हैं तथा वैयक्तिक अनुभूति अनभिव्यक्त रह जाती है अथवा उन अनुभूतियों के चित्रण के कारण लेखक पर बुर्जुआ संस्कृति के अवशिष्ट प्रभाव रहने के आरोप को सहना पड़ता है। रैल्फ फाक्स ने उपन्यासों में चरित्र-निर्माण की आवश्यकता बतलाते हुए लिखा है

"इस अवसर पर जोर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उपन्यास का लक्ष्य मानव चरित्र का निर्माण होना चाहिए। दुर्भाग्यवश औपचारिकता के सिवाय वस्तुतः आधुनिक उपन्यासकारों का इस लक्ष्य से कोई सम्बन्ध नहीं है।" +

प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी उपन्यासों में भी हम देखते हैं कि कुछ लेखक उपन्यास में अपने वृहद् ज्ञान तथा व्यक्तिगत परिचय की बैठकियों (इन्दुमती सेठ गोविन्ददास), मन की उमंगों (शेखर एक जीवनी अज्ञेय) अथवा राजनीतिक वाद-विवादों (देशद्रोही: यशपाल, टेढ़े मेढ़े रास्ते भगवतीचरण वर्मा सीधे सादे रास्ते रांगेय राघव को अधिक प्रश्रय देते हैं तथा सामयिक उपन्यासों से मानवी व्यक्तित्व लुप्त-प्राय हो चला है। अन्तर्मन के मनोविज्ञान का सहारा लेनेवाले उपन्यासों में व्यक्तित्व खण्डित रूप में व्यक्त होता है जबकि सामाजिक परिवर्तन को लक्ष्य माननेवाले उपन्यासों में व्यक्तित्व का समाजीकरण होने के बदले वह अव्यक्त ही रह जाता है। व्यक्तित्व हीनता के विरोध में रैल्फ फाक्स ने ही लिखा है

"ये सहस्रों यथार्थवादी कही जानेवाली कृतियाँ जिनके लेखकों में न कला होती है, न आन्तरिक प्रेरणा, न कभी रचनात्मक प्रतिभा, अपने प्रकाशन के महीने भर बाद ही बासी हो जाती हैं। आज का उपन्यासकार अपने पात्रों का व्यक्तित्व बनाने के बजाय साधारण लोगों को साधारण परिस्थितियों में दिखलाने का प्रयास करता है। एक तूफानी अन्तर्जगत्वाले नायक की उपेक्षा करना साहित्य में युगों में

\+ Ralph Fox "The Novel and the People", London Cobbett press, Ltd Second Edition 1948 Pp 89

It seems an unnecessary platitude to emphasize that a novel should be chiefly concerned with the creation of character Unfortunately, except in a formal sense, this is no longer in fact the chief concern of

चली प्रानेवाली मानववादी परम्परा का अपमान करता है।" (A)

रूस में लेखकों की सस्था प्रार ए पी पी के निर्माण के कुछ समय पश्चात् तक रचा जानेवाला साहित्य व्यक्तित्व-हीन था तथा समाज की परिस्थितियों से यान्त्रिक रूप मे निर्मित पात्र सजीव प्राणियों के बदले निर्जीव कठपुतली-से चित्रित किय जाते थे। नारेबाजी प्रथवा भीड के चित्रण में पात्रो के प्रन्तजगत् की उथल-पुथल खो जाती थी। पात्रो के प्रन्तजगत् की उथल-पुथल वस्तुत उपन्यासकार द्वारा सामाजिक परिस्थितियों मे दर्शाये जानेवाले परिवर्तनों की व्याख्या प्रस्तुत करती है।

हिन्दी उपन्यासकारों में यशपाल ने यह प्रनुभव किया है कि उपन्यास के पात्र केवल वर्गगत भावनाप्रो के निष्प्राण प्रतीक न होकर सामान्य सुख दुःख का प्रनुभव करनेवाले जीवित प्राणी हों। यही कारण है कि 'दादा कामरेड" की भूमिका मे उन्होंने सकीर्ण मार्क्सवादी प्रालोचकों के हृदय पर ठेस पहुचने की प्राशका प्रकट की थी।+

सैद्धान्तिक मतवाद के प्रतिपादन व राजनीतिक स्थला पर यशपाल कट्टर मार्क्सवादी एवम् कम्युनिस्ट के रूप में प्रपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु सैद्धान्तिकता के खोल के नीचे उनके पात्रों का प्रन्तद्वन्द्व व्यक्त हुए बिना नहीं रहता क्योंकि मूलत क्रान्तिकारी भावना" नहीं 'व्यक्ति' है। दादा कामरेड' का नायक-हरीश राजनतिक कार्यकर्त्ता का जीवन बिताते हुए प्रनुभव करता है कि एक स्पन्दन-

---

(A) Ibid Pp 90
All the thousands of "realist" studies by those who are neither artists nor man of passion and genius are unreadable within a month of publication day The modern novelist, abondoning the creation of personality of a hero, for the minor task of rendering ordinary people in ordinary circumstances, has thereby abondoned both realism and life itself This is in effect the denial of humanism

\+ यशपाल: 'दादा कामरेड", विप्लव कार्यालय, लखनऊ
तीसरा सस्करण १६४३ 'दो शब्द", पृष्ठ ७
"प्रौरों की तो बात क्या प्राशका है स्वय क्रान्तिकारियो की भावना को ही "दादा कामरेड' से चोट पहुँचने की। शायद वे समझें कि क्रांतिकारियों की महत्ता को कम करने का यत्न किया गया है। क्रान्ति का स्थान व्यक्ति नहीं भावना है। प्रौर क्रांतिकारी भावना नहीं व्यक्ति है। क्रांति का ध्येय व्यक्ति के प्रति प्रनुरक्ति से नहीं भावना के प्रति निष्ठा से पूरा होता है।"

प्रीत भाव का हृदय उसके लिए अप्राप्य हो गया है कि शायद उसके हृदय के स्थान पर कोई निष्प्राण धातु है। मन से मिलकर वह अपने में एक हल्कापन अनुभव करने लगता है× और शैल का हृदय भी उसी मान्यता की उपज पुलक से निमोड़ित है। यह सामाजिक क्रांति के प्रसंग में व्यक्ति-कामना का प्रश्न प्रस्तुत करती है।==

अपने को केवल क्रांति की मशीन न समझ कर मनुष्य समझने की भावना तथा सामाजिक व्यवस्था के बन्धन में व्यक्ति के अवरुद्ध प्राणों की छटपटाहट का अनुभव वयक्तिक अनुभूति के प्रति क्रमाचार के सच्चे रहने की मांग प्रकट करते हैं। यशपाल ने अपने उपन्यासों के राजनीतिक पात्रों में इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण ही नहीं किया है वरन् उन पात्रों के लिए मनोवृत्तियों के दमनपूर्ण जीवन के बदले स्वस्थ मानसिक जीवन की आवश्यकता को भी दर्शाया है। उनके मनुष्य के रूप उपन्यास मे कम्युनिस्ट नेता भूषण ने झिझकते झिझकते अपना अनुराग, शब्दों दृष्टि और व्यवहार से मनोरमा की ओर प्रकट किया था। किन्तु समाज में वैषम्य के कारण जीवन की मधुर महत्वाकांक्षाओं से हाथ धोने के साथ ही उसने मनोरमा से मित्रता के मार्ग से कदम भी हटा लिया तथा एक सच्चे कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता के कर्तव्य को समझते हुए मनोरमा से कहा— वास्तव में यह झगड़ा है श्रेणी का। मैं निर्धन साधनहीन श्रेणी से हूँ। इस दृष्टि से मैं आप लोगों की श्रेणी का शत्रु हूँ।' मनोरमा के प्यार को ठुकरा कर भूषण एक प्रकार से उसे प्रेम के मार्ग पर असफलता की ओर ढकेलता है तथा सुतलीवाला से सिविल मैरेज कर मनोरमा का जीवन

× यशपाल वही पृष्ठ ३६

हरीश एक नई बात अपने शरीर और मस्तिष्क से अनुभव कर रहा था। एक बार क्रांतिकारी का जीवन ग्रहण करने के बाद स्त्री को अपने मार्ग से परे की वस्तु समझता था।

इधर अनेक बार शैल के समीप आने पर उसने उसे भी युवती न समझ केवल पार्टी का सहायक सदस्य ही समझा था जो केवल रूप और वेष मे उसके दूसरे साथियों से भिन्न है। परन्तु आज बार बार उसका मन उसे सचेत कर रहा था। वह युवती है जीवन की मृदुता, सहृदयता और तुष्टि का स्रोत लिये। तू क्या उसे नही पहचानता। उसका मन कह रहा था--तू केवल क्रांति की मशीन ही नही मनुष्य है।

== यशपाल वही पृष्ठ १४०

देखो तुम चाहते हो शासन मे क्रान्ति परन्तु समाज की व्यवस्था के बन्धन मे व्यक्ति के अवरुद्ध प्राण कैसे छटपटाते हैं इसे तुमने जाना ? क्या व्यक्ति के जीवन मे कामना पूर्ति का अधिकार नहीं चाहिए मैं तो सबसे अधिक यही बन्धन अनुभव करती हूं।

एक ट्रैजडी बन जाता है। पारस्परिक स्वाभाविक आकर्षण की अवहेलना से यह ट्रैजडी उस समय और भी करुण हो उठती है जब भूषण और मन्नो (मनोरमा) अपनी भूल को पहचानते हैं, अपने अपने ढंग से। × मन्नो के जीवन की ट्रैजडी तथा भूषण के जीवन के एक अंग के सूनेपन की छाया गहरी और लम्बी है। अस्तु, वैयक्तिक अनुभूति के प्रति सत्यता को अपनाना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है जिसके अभाव में पात्र मनुष्य न रह कर क्रान्ति की मशीन का पुर्जा मात्र रह जाता है।

व्यक्तित्व-निर्माण की समस्या स्वाभाविक चरित्र चित्रण के अतिरिक्त एक दूसरी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। व्यक्तित्व के माध्यम से ही सामाजिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति तथा उनका समाधान मिल सकता है। अन्यथा परिस्थितियों का यान्त्रिक चित्रण तथा ऊपर से थोपा गया हल न तो क्रान्ति के आदर्श को व्यक्त कर सकता है और न उसके लिए कोई प्रेरणा ही देना सम्भव है। मनुष्य केवल

× यशपाल मनुष्य के रूप" विप्लव कार्यालय लखनऊ।
प्रथम संस्करण १९४६ पृष्ठ २१०

'तारो राह देखती होगी ?'—मनोरमा परिहास से बोली। वह चुड़ैल अपने प्रेमी वेंकटा को चिट्ठी लिख रही होगी। दो दफे इनके विवाह की तारीख नियत हो चुकी है, परन्तु वेंकटा को छुट्टी ही नहीं मिलती वह ट्रावनकोर में फंसा हुआ है।'

"हैं ?" —मनोरमा ने विस्मय प्रकट किया। 'कम्युनिस्ट भी शादी करते हैं ?"

'क्यों"—वैसे ही भूषण ने उत्तर दिया — 'कम्युनिस्ट आदमी नहीं है ?'

'अच्छा हो गये है ? क्या यह नई पार्टी लाइन है ?"

भूषण ने हंस दिया— तुम मजाक कर रही हो। कम्युनिस्टों के लिए क्रान्ति एक तप के लिये स्वराज्य के संघर्ष का कार्यक्रम नहीं है कि प्रतिज्ञा करलें कि स्वराज्य के बाद विवाह करेंगे। या स्वराज्य होने तक नमक नहीं खायेंगे, जूता नहीं पहनेंगे। संघर्ष और क्रान्ति को जीवन भर निभाने के लिये जहां तक सम्भव हो, जीवन को साधारणतः स्वस्थ और प्राकृतिक बनाय रखना जरूरी है।"

'यह सब समझ में आ गया ?' मनोरमा का स्वर रूखा था।

'यह सब कुछ समझा समझाया तो कोई पाप नहीं होता। पूर्ण ज्ञानमय तो भगवान ही हैं और उनसे कम्युनिस्टों का परिचय नहीं है।' भूषण ने परिहास का उत्तर वैसे ही स्वर में दिया।

आर्थिक परिस्थितियों को बदलता है तथा उसे बदलते हुए स्वयं भी बदल जाता है। वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर आधारित मानव इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को भ्रामक बतलाते हुए श्री एम० एन० राय ने व्यक्ति की सृजन प्रेरणा को महत्व दिया है। उनका कथन है 'यदि सामाजिक विकास की प्रक्रिया में मानवी बुद्धि को महत्व न प्रदान किया जाय तो सभ्यता के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या निरर्थक ही है। यह समझना नितान्त मूर्खतापूर्ण है कि इतिहास स्वयमेव विकसित होनेवाले उत्पादन के साधनों के द्वारा लाई जानेवाली घटनाओं के क्रमागत परिवर्तन का लेखा है। इतिहास की विकासमान प्रक्रिया से मनुष्य को विलग नहीं किया जा सकता। सामाजिक शक्तियां कोई अमूर्त मात्र नहीं हैं, वे मनुष्य की सृजनशीलता की सामूहिक अभिव्यक्ति हैं एवं सृजनशील मनुष्य सदैव विचारशील मनुष्य होता है।' + अतः विचारशील मनुष्य की वैयक्तिक अनुभूति एवं चिंतन क्रांति के आदर्श को पूरा कराने के लिए आवश्यक उपादान हैं। अज्ञेय ने "शेखर: एक जीवनी" में व्यक्तित्व के विकास को सर्वतोमुखी क्रान्ति के लिए आवश्यक ठहराया है। पार्टी से अधिक वे व्यक्ति की महत्ता मानते हैं

'जो क्रान्ति एक दिशा में तभी बढ़ती है जब दूसरे मार्ग बन्द करले वह क्रान्ति नहीं है। हम जो इतनी हलचल के बाद भी आगे नहीं बढ़ पाते उसका यही कारण है कि हम प्रगति को कृत्रिम प्रणालियों में बहाना चाहते हैं। शायद यह संगठन का अनिवार्य दोष है? संगठन एक ध्येय लेकर होता है उसका एक निश्चित कार्यक्रम हो जाता है फलतः उसको बढ़ाने के लिए लोग दूसरी दिशाओं से हाथ खींच लेते हैं। पर संगठन के बिना भी क्या होता है।

होता है—क्रान्ति का एक संगठित पक्ष है तो एक महानतर व्यक्ति-पक्ष भी है। बिना संगठन के भी बिना संगठन के ही व्यक्ति अकेला भी बहुमुखी वृद्धि

+ M N Roy The Marxian way Vol 2 Pp 253

The materialist conception of history to identify the history of civilization with the history of class struggle looses all sen e if intelligence is accorded no place in the process of social evolution In any case it is palpably absurd to regard history as a succession of events brought about by the automatic development of the means of production The man can not be eleminated from the evolutionary process of history They are the collective expressions of the creativeness of man and the creative man is always a thinking man

के बीज बो सकता है।" +

अत व्यक्तित्व के समाजीकरण अथवा विलीनीकरण के बदले उसके प्रस्फुटन की आवश्यकता है जिसके अभाव मे क्रांति का लक्ष्य किसी प्रकार सफल नहीं हो सकता।

वयक्तिक स्वतन्त्रता का प्रश्न उस समय और भी अधिक महत्व ग्रहण कर लेता है जब कि कलाकार के व्यक्तित्व एव उसकी सामाजिक चेतना मे द्वन्द्व अनुभव होता है, जब सद्धान्तिक मतवाद अथवा सगठन का कार्यक्रम स्वतत्र चेता कलाकार की वैयक्तिक अनुभूति व चिंतन द्वारा मान्य नहीं रह जाता। आधुनिक आग्ल कवियों के सम्बन्ध म स्टीफेन स्पेंडर ने लिखा है

"किसी सीमा तक उनका काव्य मार्क्सवादी होने पर भी उनके व्यक्तिवाद और उनके सामाजिक चेतना के द्वन्द्व को अभिव्यक्त करता है।"•

नरेन्द्र की 'हसमाला' मे 'स्वर मेरे' कविता की निम्न पक्तियो मे यह द्वन्द्व नौडन अत्यधिक मुखर हो उठा है

तू नए सत्य के लिए नित्य कर मन मथन
ओ, स्वर मेरे! तू आगत की अनुगूज म बन!
बढता ही चले नित्य तेरा मानस रथ जिज्ञासा पथ पर
है ज्ञान विशद, मति विशद, कहीं सकोण न बन जाए अन्तर
सिद्धान्त प्रयोजन साधन हैं, बन जाय न ममता के बन्धन
ओ स्वर मेरे! तू आगत की अनुगूज म बन! ×

सिद्धान्त व प्रयोजन को साधन रूप माननेवाला कवि वयक्तिक चिन्तन के प्रति पूर्ण आस्थावान है। व्यक्तित्व के प्रस्फुटन की यह माँग अज्ञेय की कविता मे पुरजोर रूप मे मिलती है। अज्ञेय 'इत्यलम्' म युग की चाह को पूर्ण करने मे व्यक्तित्व का क्रान्तिकारी महत्व दर्शाते हैं

नहीं, सकुचा हू कभी समवाय को देने स्वय का दान विश्व जन
की अचना मे नही बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान

+ अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' भाग २, सरस्वती प्रेस, बनारस द्वितीय सस्करण १६४७ पृष्ठ ११७

• Stephen Spender, Poetry since 1939 Pp 28

To a great extent their poetry, though leftist, expresses the problem of the liberal divided between his individual development and his social conscience

× नरेन्द्र शर्मा। 'हसमाला', भारती भडार प्रयाग, प्रथम सस्करण सवत् २००३ पृष्ठ ११

कीर्ति प्रणु की है सन्त गुरु पुंज का सम्मान
बना हू कर्त्ता, इसी से कहू मेरी चाह मेरा दाह मेरा खेद और उछाह
मुझ सरीखी अगिन लीकों से मुझे यह सवदा है ध्यान,
नयी पक्की, सुगम और प्रशस्त बनती है युगों की राह +

युग की माग के प्रति समर्पित स्वत त्र चेता व्यक्तित्व के महत्व को स्वीकार करना प्रगतिवादी साहित्य क लिए आवश्यक ह ।

प्रगतिवादी विचारधारा और फ्रायडीय मनोविज्ञान

साहित्य मे वैयक्तिक अनुभूति के प्रकाशन के साथ ही मनोवज्ञानिक चित्रण की आवश्यकता निर्भ्रा त रूप से सिद्ध है । प्रेम मानव मन की नसगिक प्रवृति ह तथा साहित्य म इसका चित्रण व्यापक रूप से पाया जाता है । यद्यपि साहित्य म प्रेम का चित्रण आदि काल से महत्व रखता है किन्तु उन्नीसवीं सदी के अन्त व बीसवीं सदी के प्रारम्भ मे यूरोप म सिगमण्ड फ्रायड व अन्य विचारकों द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषण सिद्धान्त ने मानव मन के अचेतन भाग के जिस पक्ष का उद्घाटन किया उसके द्वारा जीवन मे काम प्रवृति का महत्त्व नये रूप मे स्वीकार किया गया । मनोविश्लेषण सिद्धा त (जिसकी व्याख्या एव प्रभाव अगले अध्याय का विषय ह) काम वासना को जीवन को मूल प्रेरणा मानता है तथा नतिक व सामाजिक वजनाओं का परिणाम अनेक मानसिक कुण्ठाए बतलाता है जिनसे वतमान समाज के अधिकाश व्यक्ति ग्रसित ह ।

प्रगतिवाद व्यक्ति के अन्तजगत् का महत्त्व तो अस्वीकार नहीं करता किन्तु वह पश्चिम म प्रचलित फ्रायड, एडलर, जुग आदि मनोवज्ञानिको के सिद्धान्तो को नही अपनाता । इसका कारण यही ह कि मनोविश्लेषण सिद्धान्त प्रगतिवाद की समाजवादी निर्माण की योजना मे योग नही देता । प्रगतिवादी आलोचक अमृतराय का कथन ह "फ्रायड का दृष्टिकोण असामाजिक ह । इतना ही नही माक्स के सदेश म आमूल क्रान्ति की जो मांग ह, फ्रायड का उसमें सवथा अभाव है । फ्रायड ऐसा कहीं नहीं मानता कि जिस समाज के व्यक्तियों की परीक्षा उसने की है उसमे भी कहीं कोई सडन या दुग ध है और उसे तोड फोड डालने की भी कोई आवश्यकता है । चाहे एक दिमागी उत्सुकता के लिए क्यों न हो वह एक बार भी पूजीवादी समाज को सदिग्ध मुजरिमों के कठघरे मे लाकर नहीं खडा करता उसकी नीयत म शुबहा नही करता । इस प्रकार फ्रायड आगे बढने का कोई सन्देश नहीं देता उल्टे अपने विश्लेषण में इसी जो ह

+ अज्ञेय 'इत्यलम्' पृष्ठ १४

(Status quo) की वकालत करता है।"+ यद्यपि फ्रायड के सम्बन्ध में यह कहना कि वह "जो है" की वकालत करता है अनर्गल ही है क्योंकि फ्रायड ने समाज की उस स्थिति का विरोध किया है जो अपनी वर्जनाओं के कारण व्यक्ति को यौन कुंठाओं का शिकार बनाती है। इस संबंध में उसने एक पूरी पुस्तक ही 'सभ्यता तथा तज्जन्य असंतोष (Civilization & its discontents)' रची है तथापि फ्रायड का दर्शन या मनोविज्ञान इस दृष्टि से एकांगी है कि वह समाज की आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में मौन है और यह नहीं देखता कि कुंठाएं केवल यौन संबंधी ही नहीं आर्थिक श्रेणी-विभाजन से ऊँच नीच के भावों से भी उत्पन्न हो सकती हैं।

फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रभाव इतना व्यापक है कि कतिपय प्रगतिवादी मार्क्स और फ्रायड के सिद्धांतों के सामंजस्य के पक्षपाती भी हैं। डाक्टर श्यामसुन्दर दास जी की स्मृति में सेंट जान्स कालेज आगरा में एक विशेष अधिवेशन में "आपकी दृष्टि में शास्त्रीय आलोचना का मूल्य क्या है ?" प्रश्न के उत्तर में आलोचक श्री प्रभाकर माचवे ने मार्क्स व फ्रायड के विचारों के समन्वय के पक्ष में अपना मत प्रदर्शित किया।×

आंग्ल कविता के क्षेत्र में आडेन, स्टीफेन स्पेंडर और उनके वर्ग के लेखक यद्यपि मार्क्सवादी विचारधारा के प्रतिपादक हैं तथापि मार्क्सवादी नियंत्रण से छिटक कर उनका दृष्टिकोण प्राय व्यक्तिवादी हो जाता है एवं व्यक्ति व समष्टि का द्वन्द्व उनके काव्य में उभर आता है। यौन प्रतीकों के रूप में भी उनकी भावना व्यंजित होती है। हिंदी की नयी कविता (प्रयोगवादी काव्य) में गजानन मुक्तिबोध, गिरिजा

+ अमृतराय "नयी समीक्षा", हिंदुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस १९५० पृष्ठ ७१

× साहित्य-संदेश अगस्त १९५० पृष्ठ ६०

मेरा अपना मत है कि साहित्यालोचन के क्षेत्र में भी विज्ञानों का [illegible] बहुत आवश्यक है। चूंकि समस्त कला व्यक्ति कलाकार के मन से [illegible] समाज में आकर मिलती है, अत मनोविज्ञान और समाज-विज्ञान का [illegible], उसके नवीन आविष्कारों से अभिज्ञता आलोचक की एक [illegible] है। राबर्ट ओसबन ने अपने 'फ्रायड एंड मार्क्स', ग्रन्थ में भी [illegible] है कि ये दोनों ही चिंतक परस्पर पूरक थे और न कि [illegible] आवेश में 'स्टडीज इन डाइंग कल्चर' में फ्रायड प्रकरण में [illegible] मुख उच्च वर्ग का चारण मात्र मानता है। मेरी [illegible] इन दो चिंतकों से मूल्यनिर्धारण में बहुत-कुछ सहायता [illegible] मूल्य निर्धारण का विषय केवल वैयक्तिक रुचि [illegible] विषय बन चुका है।

कुमार, अज्ञेय आदि के काव्य में हम वही व्यष्टि व समष्टि का द्वन्द्व तथा यौन प्रतीकों का प्रयोग पाते हैं। यह कविता आडेन वर्ग के कवियों से प्रभावित भी है। इस स्थल पर फ्रायड व मार्क्स के सिद्धान्तों का समन्वय प्रस्तुत करना अभिप्रेत नहीं है किन्तु, यह संकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है कि एक ओर फ्रायड की विचारधारा से प्रगतिवादी साहित्यकार प्रभावित भी हैं किन्तु दूसरी ओर सैद्धान्तिक रूप से वे फ्रायडीय विचारधारा के सम्मुख अपने किवाड़ बन्द कर देते हैं।

यौन नैतिकता का विरोध

प्रगतिवादी साहित्यकारों पर फ्रायड की विचारधारा का यह प्रभाव पड़ा है कि यौन नैतिकता (Sex morality) का विरोध कर उन्होंने उसे सहज प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है।

यशपाल के "दादा कामरेड" उपन्यास में इसका विशेष आग्रह पाया जाता है। स्वयं लेखक ने तत्सम्बन्धी मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है "हमारे समाज की वर्तमान आचार सम्बन्धी साधारण धारणा से यह विचार भयानक और विद्रोही जान पड़ेंगे। ठीक उसी प्रकार, जैसे गैलीलियो की बात कि पृथ्वी गोल है और वह घूमती है, तत्कालीन धारणा का विद्रोह था। दादा कामरेड' में राबर्ट के विचार और शैल का आचरण समाज में मौजूद संकट और अन्तर्द्वन्द्व के लिए 'उपचार' के नुसखे का दावा नहीं कर सकते हैं। यह तो निदान " का प्रयत्न मात्र है। उद्देश्य है समाज की मौजूदा परिस्थिति में और प्रचलित आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य और विरोधों की ओर संकेत करना।" +

यौन सम्बन्धी प्रचलित नैतिक धारणा के मान को बदलने के लिए यशपाल ने विवाह सम्बन्ध तथा पतिव्रत धर्म की मान्यता पर प्रहार किया है। शैल जिस वातावरण में पली उसमें स्वच्छन्द प्रेम की प्रवृत्ति जागृत होना स्वाभाविक था। पुरुष नारी पर एकाधिकार चाहता है इसका अनुभव उसे जीवन के आरम्भ में ही हो गया जब उसने देखा पन्द्रह वर्ष का लड़का भी उसे अपनी सम्पत्ति समझना चाहता था। एक अन्य लड़के से प्रेम के परिणाम स्वरूप गर्भ निपात की दारुण यातना सह कर भी उस पुरुष से प्रवञ्चना ही मिलती है और उसका प्रेमी धनवान जमींदार की इकलौती लड़की से अपने विवाह बन्धन की सूचना दे जाता है तो वह हतप्रभ रह जाती है। इस पर भी एम का यह प्रश्न कि महेन्द्र को तो तुमने केवल मन ही दिया था शरीर तो नहीं और शरीर को मा हामी भरने पर भी एम के बाहुओं का, जो शैल को लपेटे थीं ढीला पड़ जाना नारीत्व का अपमान प्रकट करता है। शैल के एकाधिक

+ यशपाल 'दादा कामरेड" विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४३ पृष्ठ २

व्यक्तियों के प्रति यौन आकर्षण के मूल में उसकी यह सरल विश्वास न्यस्त है कि जो अच्छा हो वह अच्छा कैसे न लगे? उसके लिए चाह या प्यार कैसे न हो? नील का यह प्रश्न कि क्या संसार भर की अच्छाई एक ही व्यक्ति में समा सकती है? और जगह अच्छाई दिखाई देने पर उसे कैसे अस्वीकार कर दिया जा सकता है? क्या मनुष्य हृदय का स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना जरूरी है?— यौन संबंधी प्रचलित नैतिक धारणा के सम्मुख एक कठोर प्रश्न बन कर उपस्थित होता है।

हरीश से पूछे गये नील के इस प्रश्न का उत्तर और इस प्रश्न से उठी हुई समस्या का निदान हम नील, हरीश व रावर्ट के वार्तालाप में मिलता है। जिस पनोरा को रावर्ट ने हृदय से प्यार किया था विचारों में भेद उत्पन्न हो जाने पर वह पनोरा से अपने विवाह को दुर्भाग्य मानने लगता है। वह विवाह की व्यवस्था को बंधनमय तथा स्त्री को पुरुष की सम्पत्ति बनाये रखने की प्रवृत्ति का परिणाम बतलाता है। हरीश विवाह को एक पुरुष को एक स्त्री के लिए लाईसेंस के रूप में देखता है तथा स्त्री की स्वतन्त्रता के लिए विवाह की प्रथा के नष्ट होने की कामना करता है। उसके अनुसार विवाह का बंधन दूर होने पर स्त्री और पुरुष स्वाभाविक अवस्था में रहेंगे।

प्रवृत्ति के लिए सफाई देनी पड़ी है। नरेन्द्र, अचल व दिनकर प्रभृति कवि जहां अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत हैं वहां उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन की सहज रोमांटिक प्रवृत्ति के लिए सफाई देनी पड़ी है। × कभी वे रोमांस की दुनिया को ही नष्ट कर देना चाहते हैं कभी वे नारी को क्रान्तिपथ की सहगामिनी और क्रान्ति की नारी रूप में ही कल्पना करते हैं तथा कभी उनकी दबी हुई काम वासना मानसिक विकृति यौन प्रतीकों अथवा यौन उच्छृंखलता के रूप में व्यक्त होती है।

नारी का जागृत रूप

नरेन्द्र का कवि 'एक नारी के प्रति' कविता में प्रेम की अलकापुरी से मुंह मोड़ लेता है। उसे अब श्वासों की सुरभि मुग्ध नहीं करती। पौ फटने पर जिस प्रकार यामिनी दूर हो जाती है उसी तरह सामाजिक चेतना के जाग्रत होने पर कामिनी की मूर्ति मन से हट जाती है। • "लाल चूनर" में अचल नारी को प्रणयिनी के रूप में देख कर सन्तुष्ट नहीं होते अतः उनको नारी के केवल उसी रूप को देख कर घृणा होती है। वे नारी से प्याले प्याले में सुरा भाग की मांग नहीं करते वरन् उससे युद्ध की प्रेरणा की मांग करते हैं। = प्रगतिवादी काव्य की नारी प्रणयिनी मात्र नहीं है वरन् वह समाज को बदलने की भावना लिए पुरुष की कर्तव्यशील सहयोगिनी है। अतः हरिकृष्ण प्रेमी 'अग्नि गान' में अपनी "प्रलय सहेली" से प्रेम का राग छोड़ कर दुर्गा का रूप धारण करने का अनुरोध करते हैं। + आरसी प्रसाद सिंह 'सचयिता' में नारी को सुकुमारता एव कामुकता छोड़ युग के अनुसार कर्मण्य

× प्रवासी के गीत एक क्षय ग्रस्त युवक कवि के गीत हैं। (नरेन्द्र) जहां मैं बहक गया ॥ । वहां मेरी दुर्बलता है जीवन के क्षयी रोमांस के प्रति अवांछनीय आसक्ति है। (अचल) 'रेणुका' और 'हुंकार' के विपरीत रसवन्ती की रचना निरुद्देश्य प्रसन्नता से हुई और इसमें किसी निश्चित सन्देश का अभाव-सा है। इन गीतों में अपने हाथ में छूट सा गया ॥ और प्रायः अकर्मण्य आलसी की भांति उस प्रगल्भ अप्सरी के पीछे भटका फिरा हूं जिसे कल्पना कहते हैं। इस प्रलम्ब भ्रमण में कुछ मेरे हाथ भी लगा या नहीं यह तो याद नहीं हो पाता मुझसे रही। (दिनकर)

• नरेन्द्र शर्मा एक नारी के प्रति हंस दिसम्बर १९४२

= अचल 'लाल चूनर' पृष्ठ २४

+ हरिकृष्ण प्रेमी अग्नि गान पृष्ठ १४

प्राण प्रेम का रास हो चुका अब आकर्षणहीन पुराना
ब्रज की बंसी छोड़ हमें अब कुरुक्षेत्र का शंख बजाना
मेरा राग प्रेम-पथ पर छोड़ो अब अभिसार रचाना
तुमको असुरों की दुनिया में है दुर्गा का रूप दिखाना

होने के लिए आह्वान करते हैं। ❖

कविता के क्षेत्र मे नारी के प्रति भावुकतापूर्ण उद्गार व्यक्त हुए हैं, वहा उपन्यासकारो द्वारा जीवन के कर्म क्षेत्र मे नारी का सहज स्वाभाविक रूप मे कम मित्र को ओर बढने की लालसा मे युक्त अकित किया गया है। "दादा कामरेड" की शैल समाज की प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप जीवन नहीं ढाल पाती पर इसका उसे खेद नही है। अपने कार्य के परिणामों को झेलने की उसमें सामर्थ्य है तथा सारी प्रताडनाओं को झेल कर भी कर्तव्य पथ पर उसकी गति अबाध रहती है। कम्युनिस्ट हरीश से सबधित होकर कुमारी शैल गर्भवती हो जाती है तब पिता से कहती है कि वह अपनी विवेक बुद्धि के सामने लज्जित नही है, कि उसे पश्चाताप नहीं है और वह कमजोरी का अनुभव नही करती। यदि हरीश फासी का हुक्म सुनकर भी मुस्करा दिया था तो उसकी साथी, उसकी कामरेड शैल मूर्खो की छी छी से नहीं डरेगी। वह जीवन को जारी रखने के लिए दादा" के साथ जाती है। लगता है जैसे उसका जीवन समाजवादी व्यवस्था को लाने के लिए समर्पित है। जिस हरीश को उसने उसके दादा से छीन लिया था उस हरीश के प्रतिरूप को वह दादा के हाथ मे सौंप देगी कि वह समाजवादी व्यवस्था को लाने का भगीरथ प्रयत्न करे। "देश द्रोही" की चाद भी खन्ना के समाजवादी विचारो से अत्यधिक प्रभावित होती जाती है और अत मे खन्ना की सहायता के लिए ऐसा साहसिक कार्य भी कर बैठती है जिसका परिणाम उसके लिए लात-घूसे बेहोशी स्वतत्रता का अपहरण और मृत्यु तक समव है। खातून और गुलशा के रूप मे हम रूस मे उस नारीत्व के रूप का परिचय पाते हैं जो समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए पूर्णत अपना जीवन समर्पित कर चुकी हैं। "मनुष्य के रूप" में मनोरमा कामरेड भूषण की जीवन सगिनी बन कर उसके कार्य मे सहयोगिनी होने को तत्पर है किन्तु भूषण ही उसे प्रारम्भ मे नही समझ पाता जिसका बाद मे दोनो को पश्चाताप होता है बम्बई म कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर म भूषण व पारो को साथ काय करते हुए मनोरमा सोचती है 'मेरी किस्मत थी। नही तो मैं आज यहा न होती ? पारो उसकी मित्र है। उसे पारो का भरोसा ■, मुझ पर न था। कितनी व्यंग बात उसने कही-तुम्हारे लिए तो पारो ही सुन्दर है ? लेकिन जो कुछ वह कर रही है मैं क्या नहीं कर सकती थी ? मेरा दिल रखने के लिए तुमने कहा मैं तीस घटे काम कर सकती हू। कभी तुमने मुझे अवसर दिया ?' + देश द्रोही'

❖ आरसीप्रसाद सिंह 'सचयिता' पृष्ठ १७६

नारि नारि, सुकुमारि नही यह उचित न व्रजकुमार
प्रोषितपतिका बन या कब तक बरसाओगी वारि
बहुत दिवस हो गए बहाते नयनो से जलधार
अब तो कुछ कर दिखलाओ इस युग के अनुसार

\+ यशपाल "मनुष्य के रूप" विप्लव कार्यालय लखनऊ छठा स० पृ० १६२

की याद जहाँ अपने पति से विद्रोह में असफल रहती है प्रणय के "शेखर एक जीवनी" मे शशि अपने संशयशील पति को छोड़ जाने के पश्चात् शेखर के व्यक्तित्व के निर्माण मे अपना पूर्ण सहयोग देती है। एक अवसर पर तो वह विशाल सभा-मण्डप में जाकर भाषण देती है जहां उसे हृदयहीन रँगना तिरस्कार मिलता है। इन उपन्यासों में नारी के जागृत रूप का आभास मिलता है। वे पुरुष का केवल प्रेरणा देनेवाली नही चित्रित की गयी हैं वरन् कर्म-क्षेत्र में पुरुष की सहयोगिनी भी हैं। पूरा सहयोग वे नहीं दे पाती क्योंकि समाज में उनकी वर्तमान स्थिति उनकी प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। पर उस परिस्थिति के प्रति उनका विद्रोह स्पष्ट है। इन उपन्यासकारों ने नारी के जिस विद्रोह का चित्रण किया है उससे नारी की समाज मे यथार्थ स्थिति का ज्ञान होने के साथ उसकी जागृति का भी परिचय मिलता है।

कुंठित वासना का चित्रण

नारी के मात्र प्रणयिनी रूप के प्रति असंतोष तथा नारी को क्रान्ति मार्ग की सहगामिनी के रूप मे चित्रित करने में जहां साहित्यकार की सामाजिक दायित्व के प्रति सजगता प्रमाणित होती हैं वहां क्रान्ति के स्वरूप को नारी रूप मे ही चित्रित करने मे कुण्ठित वासना का भी आभास मिलता है। दिनकर की 'हुंकार' मे 'विपथगा' कविता में क्रान्ति का चिरकुमारिका–नारी–रूप सहज प्रतीक रूप मे व्यक्त हुआ है परन्तु, अंचल की 'किरणवेला' मे 'दानव' कविता मे वासना का रूप ही उभर आता है। इस कविता मे महाक्रान्ति की जोगिनी माया अपनी शिराओं को झन झन बजाती आती है तब उसकी रक्तनात झकाडो से उलझी चोली में स्तन चंचल हो उठे हैं और वह बिजली सी उच्छृंखल बनी आती है। उसके तप्त कठिन अंगो मे तूफानो का आसव भरा है तथा उसका सौंदर्य असहनीय हो उठा है।+ क्रान्ति–भावना का चित्रण करते हुए कवि शृंगार, उन्माद नूपुरों की छन-छनाहट, रानी प्रिये के मधुर संबोधनों आदि से प्रच्छन्न शृंगारिक भावना को व्यक्त करता है। अंचल की कविता में कहने के लिए नारी-जीवन के दोनो पक्षो प्रेम व क्रांति का निरूपण हुआ है किन्तु वस्तुतः उनमें कुंठित वासना का ही अधिक द्योतन

+ अंचल 'किरणवेला (दानव) पृष्ठ ७०
मौन विवसना चली अकुंठित विषयमुखी ममता की मारी
महाक्रान्ति की जोगिनी माया झन झन बजती शिरा तुम्हारी
आज रक्तनात झकाड़ों से उलझी चोली में चंचल
सर्वनाशिनी बिजली सी तुम तजवत आती उच्छृंखल
भर लाई हो तप्त कठिन अंगों में तूफानों का आसव
आज तुम्हें फिर विश्व बदलना आज तुम्हें क्या कठिन असम्भव!

हुआ है।×

यशपाल के उपन्यासों में विकृत काम वासना के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। "दादा कामरेड" का नायक हरीश गौना होने के एक दिन पूर्व अपना घर चुपचाप छोड़ कर क्रांतिकारी जीवन व्यतीत करने के लिए निकल पड़ता है। सात वर्ष तक वह अपने जीवन में क्रान्ति को मूर्त रूप देने का प्रयत्न करता रहा है। राबट तथा उसकी बहिन मनसी के साथ हरीश को मिराजकर का छद्मनाम प्रदान कर शैल मसूरी लेजाती है। शैल व राबट के प्रेमपूर्ण जीवन को देख हरीश को व्यथा ईर्ष्या या कमी-सा कुछ अनुभव होता है। क्रान्तिकारी जीवन के लम्बे सात वर्षों में हरीश जीवन के आवश्यक अंग "चाह" को भुलाये या दबाये रहा है और वह विकृत रूप में शैल को पूर्णतया निवसना देखने की इच्छा के रूप में प्रकट होती है। हरीश शैल को निवसना देख कर जैसे पूर्णता का अनुभव करता है। हरीश की यह मानसिक विकृति चाहे उसकी मानवीय कमजोरी अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्‌घाटन कही जाय किन्तु, सामाजिक क्रांति को उपस्थित करनेवाले पात्र से अधिक मानसिक स्वास्थ्य की अपेक्षा की जाती है। मानसिक काम विकृतियों से खण्डित व्यक्तित्व द्वारा क्रांति का सफल होना ही संदेहास्पद है। यह संदेह यशपाल के 'देशद्रोही' उपन्यास के पात्र डा० खन्ना के जीवन से और भी अधिक स्पष्ट होता है। डा० खन्ना रूस से लौट कर साम्यवादी विचारों के प्रचारार्थ अपना जीवन समर्पित कर देता है पर अब भी वह चन्दा से मिलता है बल्कि वह मिलने का अवसर भी निकालता है तब उसकी गोद में सिर रख कर सो जाना चाहता है। अचल के "चढ़ती धूप" उपन्यास का पात्र मोहन मिल के फाटक पर पुलिस की गोली खाकर शहीद होने से पहली रात अपनी संचित वासना को तारा से सतुष्ट करता है। यह उदाहरण प्रकट करते हैं कि प्रगतिवादी उपन्यासों के क्रान्तिकारी पात्र दमित काम वासना की मानसिक विकृतियों से ग्रस्त हैं। यह मानसिक विकृति काव्य में यौन विकृतियों एवं उच्छृंखल वासना के प्रदर्शन का रूप ग्रहण करती है। अज्ञेय के "तार सप्तक" की 'जनाह्वान' व 'सावन मेघ' कविताओं के उपमान यौन प्रतीकात्मक हैं।+ भविष्य के पथ पर खड़ा हुआ दृढ पैर अत्याचार का मदन

× अचल 'करील'

रात को कथा मिला छाती से छाती सटा
रात को बनी थीं तुम गीली और रसीली
किन्तु दिन में बनी प्रखर युद्ध की करालिका

+ अज्ञेय (स०) 'तार सप्तक", प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली १९४३ पृष्ठ ७७

गुरु स्थिर स्थाणु सा गड़ा हुआ
तेरी प्राण पीठिका में लिंग सा खड़ा हुआ।

करता "लिंग सा" अथवा मध्याह्न आकाश को भूमि के उरोजों पर झुका + चित्रित करना यौन विकृति का ही परिचय देते हैं। गजानन माधव "मुक्तिबोध" ने भी क्षितिज पर रंगीले बादलों के रूप में दिवस की बरसात के गालों पर सूर्यास्त के चुंबन और नव हृदय के गर्भ में सत्य के शिशुओं के आकार ग्रहण करने का वर्णन किया है। ×

यौन प्रतीकात्मक उपमानों के प्रयोग में जहां दबी हुई काम वासना का आभास ही मिलता है वहां कुछ प्रगतिवादियों ने अपनी प्रज्वलित काम पिपासा का खुल कर इजहार किया। अंचल की "मधूलिका" की कविताओं में तृष्णा व वासना का ज्वलित रूप है। कवि आत्म परिचय देते हुए स्वयं को नग्न वासना की उच्छृंखल गीता बतलाता है। = और वह उच्छृंखलता कभी तो वीभत्सता की इस सीमा तक पहुंच जाती है कि अपनी अनियंत्रित भावना के प्रवाह में कवि

\+ अज्ञेय वही

घिर गया नभ उमड़ आए मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा
विशद श्वासाहत चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष—
वज्र सा यदि तड़ित से झुलसा हुआ सा !

× मुक्तिबोध वही पृष्ठ १४

स्वप्न का वह व्योम नीला
प्राण पृथ्वी पर झुका है,
उस महा व्याकुल अनावृत ज्ञान लिप्सा
के क्षितिज पर
अमित, नीला, जामुनी अति लाल सुंदर
दिवस की बरसात को सूर्यास्त का चुम्बन
और अनेकों सत्य के शिशु
नव-हृदय के गर्भ में द्रुत
आ चलेंगे।

= अंचल 'मधूलिका' (उच्छ्वास)

मैं इच्छा के मरुपथ का यात्री चंचल
प्रज्वलित पिपासा से भरा अन्तस्तल
मैं व्यथ बताता द्रोह भरे यौवन का
मैं नग्न वासना की गीता उच्छृंखल

मातृत्व की भी उपेक्षा कर देता है।+

अचल के काव्य की नारी पुरुष की तरह ही तृष्णाकुल व पिपासित दिखाई देती है।×

अचल द्वारा नारी व पुरुष के उक्त रूप में चित्रण के पक्ष म कहा जाता है कि उन्होंने नारी व पुरुष की जिस पिपासा का वर्णन किया है वह इसलिए कि हमें ज्ञात हो सके पूंजिवादी युग में पुरुष व नारी की वासना का रूप कितना उच्छृंखल हो जाता है। पर इसके अतिरिक्त अचल के काव्य में नारी का कोई अन्य रूप उभर कर नहीं आता। "किरणवेला" 'करील" व "लाल चूनर" में कवि ने समाजवादी भावना का पोषण किया है। इन काव्य–रचनाओं मे नारी का शोषित रूप प्रकट हुआ है पर शोषण के बीच पली मजदूरिन व भिखारिन के मातृ-रूप के प्रति घृणा व नारी सौन्दर्य के प्रति अनजानी लालसा ही व्यक्त हुई है। डा० शैल कुमारी के शब्दों मे "अचल ने नारी के साथ अनियन्त्रित निर्बन्ध और उद्दाम यौन-सम्बन्ध का आदर्श रखा है। वह कवि के किसी अन्य कार्य मे सहयोग देती नहीं दीखती। नारी योनि मात्र है। वह पुरुष वासना की उत्तेजना और वासना की पूर्ति का साधन है। स्वय मे भी वह वासना पूर्ण है। उसका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं है।" = इसी प्रकार प्रगतिवादी कवि उपन्यासकार नागार्जुन ने भी वासना का भद्दा व अश्लील रसपूर्ण चित्रण किया है। •

\+ अचल "अपराजिता" (मुहूर्त) पृष्ठ ४०
आज निरंकुश गमन में यही जलन की तो वेला
मानो कटि प्रदेश म युरता पर
मुहूर्त यह अलबेला

× अचल 'मधूलिका" (आज तो)
आज सोहाग हरूं मैं किसका
किसका लूटूं यौवन
किस परदेशी को बंदी कर सफल करूं
यह वेदन!

= डा० शैलकुमारी 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद पृष्ठ २३५

• नागार्जुन "रतिनाथ की चाची', पृष्ठ १४१
'मा के मरने के बाद लगभग आठ साल तक रतिनाथ के वा भगना [illegible] रुका रहा। नगा नहाते समय या दिशा फरागत के वक्त उसके साथी उसको ताना मारते रती तेरी न तो शादी होगी, न तेरे लिये लडका बच्चा पैदा होगा। तू तो हिजडों से भी बदतर है। रतिनाथ को साथियों का वह ताना

इन चित्रणों से उस हद नैतिकता का प्रभाव प्रकट होता है जो शान्तिश्री लेनिन का युग-धर्म मानी जाती है। अलक्जेंडर कुप्रिन (Alexendar Kooprin) ने 'यामा द पिट' (Yama the pit) उपन्यास में वेश्याओं का खुला वर्णन किया है तथापि उस वर्णन का पाठक के मन पर दूषित प्रभाव नहीं पड़ता वरन् अभागिनी वेश्याओं के प्रति सहानुभूति ही जागृत होती है। 'सेवा सदन' में प्रेमचन्द ने भी वेश्या जीवन के एक पक्ष को उद्घाटित किया है किन्तु, उसमें वासनापूर्ण स्थल लेशमात्र भी नहीं हैं। यशपाल की प्रारम्भिक रचनाओं से यौन विकृतियों के उदाहरण हम पीछे दे चुके हैं। तथापि उनकी नवीन रचनाओं में वह प्रवृत्ति अवशिष्ट नहीं रही है। 'मनुष्य के रूप' में १६४२ के आन्दोलन में तोड़ फोड़ के अवसर पर पाच सिपाहियों को रात में रेल्वे लाइन पर पहरा देते हुए बताया गया है। वे रेल्वे लाइन के पास से गुजरनेवाले राहगीरों को गोली से मार कर उनकी जेबों से रुपये निकाल लेते हैं पर उनके साथ एक स्त्री है जिसे गोली न मार कर उससे बलात्कार करते हैं। उपन्यासकार ने बलात्कार का खुला वर्णन किया है किन्तु इस वर्णन से पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र या ऋषभचरण जैन जैसे यथार्थवादी उपन्यासकारों अथवा 'रतिनाथ की चाची' के लेखक तथा यशपाल की शैली का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जहां प्रथम प्रकार के लेखक वर्णन करते हुए रस में लीन हो जाते हैं वहां दूसरे प्रकार के लेखकों की दृष्टि अशोभनीय के प्रति घृणा जागृत करने की ओर रहती है।

घूमता और अकेले में वह फफक फफक कर रोता। एक दिन जब बेचारा इसी उधेड़ बुन में पड़ा था तो सत्तो ने आकर पीठ थपथपाई थी और कहा था रत्ती तेरा इलाज मैं करूंगा चिंता मत कर और सचमुच सत्तो के ही बताये हुए तरीके से रतिनाथ की वह त्रुटि दूर हुई थी। नियमित रूप से कई दिनों तक .... पर हो गई तब रत्ती ने तारा बाबा की दुर्गा को पाच पैसे का प्रसाद चढ़ाया।"

रतिनाथ के भाई उमानाथ का विवाह हो रहा है, इस अवसर पर

"आंगन में औरतों ने कमीज और बनियान खुलवा कर उमानाथ को गहरी निगाह से देखा। एक मुंहफट खवासिन बोली 'आंख मूंद लो भइया। धोती खुलेगी।" 'आ तू ही खोल दे'—अधेड़ उम्र की एक औरत ने अपनी छोटी आंखें नचा कर उससे कहा। वह अप्रतिभ हो गई। उमानाथ को ट्राम कम्पनी का वह डाक्टर याद आया जिसके सामने इसी भांति कपड़े खोल कर खड़ा होना पड़ा था। उस दिन भी पसीना निकल आया था, और आज भी। फर्क यही था कि उस दढ़ुटे डाक्टर ने .... मगर इन औरतों ने वैसा कुछ नहीं किया।"

सौन्दर्याभास के बदले वस्तुपरक सत्य की माग साहित्य-रचना साधन रूप मे

छायावादी काव्य मे सूक्ष्म अशरीरी सौन्दर्य-पूजा का भाव प्रधान था, प्रगतिवादी साहित्य में इसके विरुद्ध वस्तुपरक सत्य की माग प्रकट होती है। प्रगतिवादी कवि छायावादी कवि की तरह स्वप्नदर्शी नही है। वह 'उस पार" के नीरव सन्देशा' अथवा 'हृद्तत्री के तारा की झकार" सुनने मे लीन नहीं होता वरन् उसे धरती पर आश्रित जन-जीवन आकृष्ट करता है। "युगवाणी" मे सुमित्रानन्दन पत कल्पना लोक मे विचरने व मृत्यु को महिमान्वित करनेवाले छायावादी कवि का भूमि की ओर देखने के लिए आह्वान करते हैं। + दिनकर की कविता नील-कुज मे स्वप्न खोजना व चमेली मे चन्द्र किरणों से चित्र बनाना छोड देती है तथा कवि व्योम कुजों की कल्पना को भूमि पर ही आकर स्वर्ग बसाने की चुनौती देता है। प्रगतिवादी को छायालोक का सौन्दर्य नहीं लुभाता क्योकि जगजीवन को वह विपण्ण व निर्जीव देखता है। जग-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'शाहजहा' कविता में ताजमहल को आलम्बन मान कर अत्यन्त मधुर भावो की व्यजना की किन्तु उर्दू के सबकी पसद गीतकार साहिर लुधियानवी ने ताज को एक बादशाह के दौलत के बल पर गरीबो की उडायी हुई मुहब्बत की मजाक के प्रतीक रूप में देखा। साहिर की तरह सुमित्रानन्दन पत भी ताज' के रूप में मृत्यु का अपार्थिव पूजन देखते हैं एव जग के विपण्ण जीवन की ओर दृगपात करने का आग्रह करते हैं। •

+ सुमित्रानन्दन पत 'युगवाणी", प्रथम सस्करण १६३६ पृष्ठ १६

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु नीलिमा गहन ?
देखो भू को
जीव प्रसू को
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित गुजरित
कुसुमित भू को !

• सुमित्रानन्दन पत " आधुनिक कवि ", हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ सस्करण सवत २००६ पृष्ठ ७१

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन
जब विपण्ण निर्जीव पडा हो जग का जीवन
मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति

प्रगतिवादी कल्पना-घोर में सौन्दर्य का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता, यहाँ केवल सौन्दर्याभास अथवा सौंदर्य की मरीचिका है। अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' में इस भटकन पर व्यंग्य करते हैं तथा कल्पना के सौन्दर्य को मिथ्या बताते हुए उसकी स्थिति यथार्थ जगत् में प्रमुख भावना के रूप में मांसल शरीर में देखते हैं। + "तार-सप्तक" में भारत भूषण अग्रवाल छायावादी कल्पना विलास एवं रसायन के विरुद्ध यथार्थ को पहचानने का आग्रह करते हैं। #

पंत जैसे सौन्दर्य-प्रेमी कवि की भी सौन्दर्य भावना धरा के कुरूप मुख को देख कर हिल उठती है। ∠

वे धरती के शोषित व पीड़ित मानवों में सौंदर्य-दर्शन करते हैं। × सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन शुद्ध काव्य का सिद्धान्त प्रगतिवादियों के

\+ अज्ञेय "शेखर एक जीवनी" भाग २ सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण १९४७ पृष्ठ १०

शेखर द्वारा सौंदर्य की खोज की परिसमाप्ति स्वप्न भंग के रूप में होती है "उसने स्वप्न में देखा था एक काली चट्टान की गोल गोल आँखें उस पर टिकी हैं और चट्टान कह रही है, तुमने बहुत अच्छा किया जो सौन्दर्य की खोज में चले आये मेरे पास।" और फिर वह एकाएक उसकी स्त्री में परिणत हो गई थी जो ठठा कर हँस पड़ी थी।"

\# अज्ञेय (सं०) तार सप्तक प्रतीक प्रकाशन दिल्ली १९४३ पृष्ठ २४

तू सोचा किया भाव वाचक है तत्व शून्य जिसको छूने
की भी चेष्टा है व्यर्थ। दूर यों भाग गया तू जीवन से
तू सदा सोचता रहा "मुक्त हो जाऊँ जग के बंधन से
उड़ कर दिगंत के पार!" सृष्टि को पाया तूने क्षण मधुर
निज दिव्य-दृष्टि से। रे! तेरी यह भाषा तो है मात्र मुकुर
उस दर्शन का जिसने देखा आसमान थोथा नीला
नश्वरता से डर कर जिसने देखी न प्रकृति चिर गतिशीला

∠ सुमित्रानन्दन पंत

यहाँ धरा का मुख कुरूप है
सुलभ यहाँ रे कवि को जग में
युग का नहीं सत्य, शिव, सुंदर

× सुमित्रानन्दन पंत

इस धरती के रोम रोम में
भरी सहज सुन्दरता
इसकी रज को छू प्रकाश
बन मधुर विनम्र निखरता

लिए प्रमाण्य बन जाता है। डा० रामविलास शर्मा की 'सत्य, शिव सुन्दरम्' कविता में शुद्ध काव्य के सिद्धांत पर व्यंग्य किया गया है। X साहित्यकार से अपना उत्तरदायित्व पहचानने की मांग की जाती है। नेमिचन्द "कवि गाता है" कविता में कलाकार से वैषम्य मिटाने और पद-दलित मानवता की रक्षा करने की मांग करते हुए उलाहना देते हैं। =

साहित्य की रचना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के ध्येय को लेकर की जाती है साहित्य साध्य न बनके साधन बन जाता है। कलात्मक सौंदर्य का प्रश्न विषयगत उद्देश्य से भिन्न नहीं रहता। प्रत्येक उद्देश्य के प्रति एकाग्रता से ही सौंदर्य की सृष्टि सम्भव मानते हैं।

वर्ग-संघर्ष की भावना सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं क्रान्ति में विश्वास

मार्क्सवादी जीवन दर्शन को अपनाने के कारण प्रगतिवादी वर्ग संघर्ष में विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार वर्तमान समाज पूंजीवादी वर्ग एवं सर्वहारा-वर्ग में विभाजित है। मध्यम-वर्ग प्रायः पूंजीवादी वर्ग का पिछलग्गू बन कर पूंजीपति वर्ग के स्वार्थों की रक्षा करता है। इतिहास के गति क्रम व युग-चेतना के प्रति सजग मध्यम वर्ग के प्राणी पूंजीपति वर्ग की दासता स्वीकार न कर सर्वहारा वर्ग की क्रांति को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। तब वे अपनी श्रेणी चेतना से विहीन (declassed) होकर सर्वहारा वर्ग के तद्रूप हो जाते हैं। समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष में प्रगतिवादियों की सहानुभूति सर्वहारा वर्ग के प्रति रहती है और वे साहित्य के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

जहां तक दलितों के प्रति सहानुभूति का प्रश्न है छायावादी कवि 'कलावादी' होने के कारण कदाचित अनेक अभावों से पीड़ित पद-दलित मानवता के दुःख को वाणी नहीं दे सके किन्तु यह भी सत्य है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक

X अज्ञेय (सपा) 'तार सप्तक' प्रतीक प्रकाशन दिल्ली, १९४३ पृष्ठ ६६
= वही पृष्ठ २८

गाता है वह कलाकार
जब बाहर दुनिया में फैली घनघोर विषमता
दिशि दिशि से उठ रहा भयंकर चीत्कार
उसको तो बस अपने सपनों से ममता—वह कलाकार
व्याकुल मानवता की रक्षा का
उसके ऊपर आज भार है
दानवता से रौंदे जाते मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है
वह कलाकार जो गाता है,
जो केवल गाता है— !

युग के प्रारम्भ से ही भारतेन्दु-युग के लेखकों ने सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से मानवता की मुक्ति का स्वर छेड़ा था। साहित्य में धर्म निर्पेक्षता का भाव जो क्रमश: विकसित होता रहा है स्वयं अपने में मुक्ति का सदेश था। उदारवादी दृष्टिकोण रखते हुए मैथिलीशरण गुप्त तथा प्रेमचन्द के साहित्य में दलित मानवता के प्रति अशेष सहानुभूति व्यक्त हुई है। स्वयं प्रगतिवादियों के सम-सामयिकों में बालकृष्ण शर्मा "नवीन", रामधारीसिंह "दिनकर" सुभद्रा कुमारी चौहान प्रभृति राष्ट्रीय धारा के कवियों ने भी पद-दलितों व शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की परन्तु दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करना ही प्रगतिवादियों का उद्देश्य नहीं है। छायावाद की प्रतिक्रिया रूप में केवल "सौन्दर्य-पूजा" के भाव से हट कर सामाजिक न्याय की माग के आन्दोलन रूप में प्रारम्भ हुआ प्रगतिवाद धीरे धीरे निश्चित सैद्धांतिक मतवाद के रूप में परिणत हो गया। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग संघर्ष साम्यवादी व्यवस्था में विश्वास आदि सद्धांतिक मान्यताएं प्रगतिवादी होने के लिए अनिवार्य समझी गयीं। उदारवादी लोकदृष्टि के साहित्यकारों का प्रगतिवादी क्षेमे से निष्कासन सा हो गया एवं उनकी कटु आलोचनाएं की गई। प्रगतिवाद के प्रारम्भिक नेता सुमित्रानन्दन पंत को आज प्रगतिवादी स्वीकार नहीं किया जाता तथा प्रेमचन्द को उनकी व्यापक मानव सहानुभूति के कारण नहीं वरन् उनके द्वारा वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को मान्यता देने के कारण प्रगतिवादी कहा जाता है।

प्रेमचन्द यद्यपि अपनी रचनाओं में विशेष रूप से गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित रहे तथा अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में उन्होंने प्रेम व करुणा के द्वारा हृदय-परिवर्तन में विश्वास किया किन्तु, पिछली रचनाओं में वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त में उनकी आस्था प्रकट होती है। प्रेमचन्द के "गोदान" में आदर्शवादी पात्र मेहता शिक्षित कहलानेवाले लोगों द्वारा अशिक्षित भोले ग्रामवासियों पर होते अत्याचार को देख कर आश्चर्य करता है। किन्तु, उपन्यासकार प्रतिभावान मेहता की सरलता पर एक सतर्क जीवन-दृष्टा के रूप में लिखता है "प्रभात की भांति मन भी सरल निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखनेवाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़ इतना सजीव होता है कि वह इसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। यह वह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजे और दांतों से दिया है।" + स्पष्ट ही प्रेमचन्द समाज को भेड़िया व भेड़ों-शोषक व शोषित वर्गों में बंटा देखते हैं तथा शोषक वर्ग के हाथों शोषितों के स्वार्थ को सुरक्षित नहीं मानते। यशपाल के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की

+ प्रेमचन्द "गोदान" सरस्वती प्रेस, बनारस, नवां संस्करण १६४८, पृष्ठ ४१४

भावना स्पष्ट उभर कर सामने आती है। उनके सभी उपन्यासो मे समाज दो वर्गों मे बटा हुआ तथा यह वग, सघष म रत चित्रित किय गए हैं। 'दादा-कामरेड, 'देशद्रोही मनुष्य के रूप' म पू जीवान्नो व सवहारा वग के सघष मे यद्यपि लेखक ने सवहारा की विजय तो नही दर्शायी है किन्तु, जिस साहस व उत्साह से आर्थिक व्यवस्था के परिवतन के लिए उस वत्त व्य निष्ठा से प्रयत्नशील चित्रित किया है इससे पाठक का सवहारा वग की विजय म विश्वास हो जाता है। उपरोक्त उपन्यासो के नायक हरीश, डा० खन्ना तथा कामरेड भूषण यद्यपि आर्थिक व्यवस्था मे परिवतन लाने की चेष्टा म, बल्कि इसी चेष्टा के कारण मृत्यु का सामना करते हैं किन्तु, वे उसका वीर की तरह ही सामना करते हैं और उनकी मृत्यु मे निराशा का लेश भी नहीं है। यही नहीं, यशपाल के उपन्यासों के पात्र वग-सघष की चेतना के प्रति स्वय भी जागरूक हैं। 'दादा कामरेड" म राबट व्यक्तिगत रूप से जमा पूजी का स्वय लाभ उठाते तथा उसको इतिहास-क्रम में आवश्यकता अनुभव करत हुए भी आधुनिक युग म उसके शोषक रूप को सामाजिक अभिशाप मानता है। * उपन्यास में शल के पिता शैल के मनोरजन के लिए अथवा धर्मार्थ कार्यों के लिए हजारों रुपये खच करने को तयार हैं किन्तु, मजदूरों का हडताल मे सहायता देने से बिल्कुल इन्कार कर देते हैं क्योंकि यह समाज की व्यवस्था की चाबी एक श्रेणी के हाथ से दूसरी श्रेणी के हाथ में चले जाने का सवाल है। (卐) देशद्रोही" मे यशपाल ने पिछडी हुई जाति वजीरियों म भी वग-सघष की चेतना का उदय दर्शाया है। ==

---

* यशपाल "दादा कामरेड', विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४३ पृष्ठ १२३

समाज का यह माना हुआ कायदा है बाप के या स्वय हमारे सम्पत्ति जमा कर लेने स हम बिना हाथ पर हिलाये भी मज म जिन्दगी गुजार सकते हैं। किसी समय यदि यह कायदा न बनाया जाता तो लोग न सम्पत्ति इकट्ठी करते और न पदावार के बडे बडे साधनो का विकास ही हो पाता। लेकिन आज भी यह कायदा चला आ रहा है। व्यक्तिगत रूप से मैं उससे लाभ उठा रहा हूँ। लेकिन यह भी देखता हू जब अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिये सम्पत्ति या पैदावार क अधिक स अधिक साधन व्यक्तिगत रूप से जमा किय जाते हैं तो लाखो करोडो बिना किसी साधन के भी रह जाते हैं।

(卐) वही, पृष्ठ १८४

== यशपाल 'देशद्रोही' विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४६ पृष्ठ २६

कविता में भी वर्ग-संघर्ष की भावना का चित्रण पाया जाता है। सुमित्रा-नन्दन पंत पूंजीवादी व्यवस्था को निष्प्रयोजन बताते हुए उसकी भर्त्सना करते हैं तथा पूंजीपतियों के अंतिम दिन निकट देखते हैं —

निराला के "नये-पत्ते" काव्य संग्रह में 'घोड़े के पेटों में बहुतों को आना पड़ा' कविता में वर्ग-संघर्ष की भावना व्यक्त हुई है। 'राजे' पूंजीपति-वर्ग तथा 'लक्ष्मी' उत्पादन के साधनों के प्रतीक बन जाते हैं। ✓

निराला के "कुकुरमुत्ता" व्यंग्य-काव्य में 'कुकुरमुत्ता' निम्न वर्ग का प्रतीक है जो कैपिटलिस्ट के प्रतीक 'गुलाब' की भर्त्सना करता है। ≅ 'तार सप्तक' में भारत भूषण अग्रवाल 'मसूरी के प्रति" शीर्षक कविता में धनवशालियों के हास-विलास की चर्चा करते हुए नीचे मैदानों की बस्ती की सुषाप चीजों का वर्णन करते हैं तथा इसे पूंजीवादी प्रणाली की साधारण घटना बतलाते हैं। ↓ प्रभाकर माचवे की 'बीसवीं सदी' शीर्षक कविता में पूंजीवाद के अन्तर्विरोध को दर्शाया गया है जो निरन्तर बढ़ते रहने के कारण रहस्यमय नहीं रह पाता तथा उसका पर्दाफाश हो जाता है। ≠ गजानन माधव मुक्तिबोध 'पूंजीवादी समाज के प्रति" कविता में पूंजीवादी सभ्यता के समस्त रूपों को 'केवल एक जलता सत्य देने टाल" अचेष्ट देखते हैं और यह जलता सत्य पूंजीपतियों द्वारा किया जाने वाला शोषण है। अतः इस शोषक वर्ग को सम्बोधित कर कवि उसे मृत व व्यर्थ की संज्ञा प्रदान करता है। ×

— सुमित्रानन्दन पंत

वे नृशंस हैं, वे जन के श्रम बल से पोषित
दुहरे धनी जोंक जग के भू जिनसे शोषित
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण

✓ वानिज के राजे ने लक्ष्मी को हर लिया
टापू में धर कर रखा और कैद किया (निराला नये पत्ते)

≅ निराला कुकुरमुत्ता"
खून चूसा खाद का तू ने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट

↓ अज्ञेय (सपा) तार सप्तक " प्रतीक प्रकाशन दिल्ली १९४३ पृष्ठ ३६
हां, मैंने अपनी आंखों देखा है विभेद यह
यह विरोध जो साधारण घटना है
अपनी पूंजीवाद प्रणाली की

≠ वही, बीसवीं सदी' शीर्षक कविता

× वही, पृष्ठ १७

किसानो का वर्ग-सघर्ष मे सहयोग

पूजीवादी व्यवस्था म आर्थिक दृष्टि स किसान व मजदूर समाज को पूजी पतियो के शोषण-चक्र मे सर्वाधिक पिसना पडता है। यद्यपि मार्क्सवाद के अनुसार सवहारा-वग की क्रान्ति मजदूर वर्ग ही सफल बनाता है क्योकि किसान वस्तुत सवहारा नहीं है-उसके पास भूमि की मिल्कियत रहती है और इसी कारण सामन्त-मार्गी परम्परा के अवशिष्ट रूप रूढि-प्रेम आदि निष्ठाए बनी रहती हैं जो क्रान्ति-धर्मा व्यक्तित्व के निर्माण म वाधक होती हैं तथापि वह शोषित वग का ही प्राणी होने से प्रगतिवादी साहित्य मे उसके प्रति सहानुभूति दर्शायी जाती है। मानव वादी प्रेमचन्द के उपन्यासो मे किसानों के जीवन का चित्रण मिलता है जब कि सद्धान्तिक प्रगति-धर्मी यशपाल ने मजदूरों के जीवन का ही चित्रण किया है। यह भेद कदाचित् आकस्मिक नही है, इसके मूल म जहा प्रेमचन्द म दलितों के प्रति व्यापक सहानुभूति का भाव पाया जाता है वहा साम्यवादी यशपाल के मजदूर वर्ग को क्रान्तिकारी समझने की आस्था का निदशन मिलता है।

भारत म अग्रेजी साम्राज्यवाद के सरक्षण में एक ओर अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए शासको ने जमींदारी प्रथा को बनाये रखा वहा दूसरी ओर स्वय ब्रिटन के पूजीवाद के अन्तर्विरोध के कारण देशी पूजीवाद पनपने लगा। इस स्थिति मे भारतीय किसानो का शोषण दुहरे रूप म होने लगा। सरकारी लगान के साथ ही किसान को जमींदारी प्रथा के भार को भी ढोना पडता है। बिरादरी की रूढि-गत मान्यताओं रस्म-रिवाज, जमींदार का हिस्सा सरकारी लगान आदि की अधिकता के कारण किसान के पास जब कौडी भी नही बच पाता तो उसे सूदखोर महाजन स बढी हुई दर पर उधार लेना पडता है और मूल की कई गुना रकम चुका देने के बाद भी किसान कर्जदार ही बना रहता है। दूसरी ओर औद्योगिक नगरों के निर्माण के कारण किसानों द्वारा उत्पादित माल कच्चे माल के रूप में गावो से नगरो में कम कीमत पर बिकने आता जिससे कि पूजीपति कम कीमत में उत्पादन कर सके। अत किसानों की आमदनी से कहीं बढ कर खर्च होता जो कर्ज के रूप मे बढता जाता। किसानों की इस करुण स्थिति का जिसमे उनकी फसल कटने के पहले ही उस पर जमींदार और महाजन का अधिकार हो जाता तथा स्वय किसान के पास एक दाना भी नहीं बचने पाता, प्रगतिवादी साहित्य म सुलगता चित्रण मिलता है।

प्रेमचन्द का "गोदान" उपन्यास भारतीय किसान के दयनीय जीवन का महाकाव्य है। 'गोदान" मे किसानो के आर्थिक-शोषण के दोनों रूप मिलते हैं—अवशिष्ट साम तवादी निष्ठाओ और साम तवाद व पूजीवाद के गठबधन के प्रतिफल रूप में। किसान प्राण देकर भी अपनी मर्यादा की रक्षा करना चाहता है। होरा

गाय को विष देकर भाग जाता है तब पुलिस दरोगा उसके घर की तलाशी लेना चाहते हैं। पर होरी के लिए हीरा कितना ही बुरा हो ह तो वह उसका भाई ही। उसके घर की तलाशी होरी अपनी ही हार समझता है। अत होरी घर की मर्यादा रिश्वत देकर भी बचाना चाहता है। होरी का पुत्र गोबर गर्भवती झुनिया को छोड कर शहर भाग जाता है। होरी झुनिया को पुत्र वधू मान कर आश्रय दे देता है। किन्तु झुनिया के परिणीता न होने के कारण पचायत जुडती है जो होरी पर जुर्माना व डांड लगाती है। होरी अपनी फसल उठा कर और घर गिरवी रख कर डाड चुकाता है। उधार मिल सके थ तब होरी ने दुलारी से उधार लेकर अपनी लडकी सोना का विवाह किया पर अब नही मिला तो आत्म-ग्लानि से मर कर अधेड उम्र के रामसेवक से रूपा का दो सौ रुपय लेकर विवाह किया । पर उसने विवाह के आवश्यक खर्च को आवश्यक ही माना । होरी धर्म-भीरु है। जब भोला को गाय के पसे नही चुका सका तो धर्म की दुहाई देकर गाय के बदले अपने बैल ही ले जाने दिये, चाहे खेती जोतने से भी उसे वंचित होना पड़ा।

अस्तु यह सामतयुगीन निष्ठाए — घर की मर्यादा, रुढि परम्परा का पालन, धर्म भीरुता आदि भारतीय किसान के जीवन को ग्रस लेती हैं। यह नहीं कि किसानो मे भी इसके विरुद्ध जागृति न हो। होरी की पत्नी धनिया का चरित्र एक क्रान्ति-कारिणी सी नारी का व्यक्तित्व है जो अन्याय का प्रतिकार किये बिना नही रह पाती। जब पुलिस दरोगा को रिश्वत देने के लिए झींगुरीसिंह से रूपये उधार लेकर होरी जाता है तो सबके बीच धनिया पोटली पर झपटती है और ललकारती है "हम बाकी चुकाने को पचीस रुपये मागते थे, किसी ने न दिया। आज अजुली भर रुपये टनाठन निकाल के दिये। मैं सब जानती हू। यहां तो बांट बखरा होने वाला था। सभी के मु ह मीठे होते। ये हत्यारे गाव के मुखिया हैं गरीबो का खून चूसने वाले। सूद-ब्याज डेढी सवाई, नजर-नजराना, घूस घास जसे भी हो गरीबो को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धर्म से।" + गाव के नेताओ के मु ह पर धनिया द्वारा पोती हुई कालिख का रंग गहरा है। पुलिस अधिकारियों से मिल कर पटवारी, महाजन पच आदि किसानो के शोषण म सहयोगी बनते हैं। देश की स्वतन्त्रता के आकांक्षी किन्तु साम्राज्यवादी शोषण के सहयोगी नेताओं पर यहां उपन्यासकार ने कठोर व्यंग्य किया है। गोबर द्वारा झुनिया के गर्भ-स्थापन की घटना को लेकर पचायत द्वारा होरी पर जुर्माना और डांड लगाई जाती है, इसका धनिया खुल कर विरोध करती है 'यह पच नहीं हैं राक्षस हैं, पक्के राक्षस ! यह सब हमारी जगह जमीन छीन कर माल

+ प्रेमचन्द 'गोदान' सरस्वती प्रेस, बनारस, नवा सस्करण १६४८ पृष्ठ १५१

मारना चाहते हैं, डाड तो बहाना है।" × जमींदार व महाजन के शोषण के कारण किसानों का जीवन दु खों का मूत्त रूप बन गया है। होरी अनुभव करता है कि किसान का जन्म अपना खून बहाने और बड़ा का घर भरने के लिए ही हुआ है। मनुष्य की तरह जीने का उन्हें अधिकार नहीं। होरी का मर्मकथन अपने म कितना निरीह है हम राज नही चाहते, खाली मोटा झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।' + गोबर दुबारा लखनऊ से लौट कर गावा का करुणास्पद चित्र अपनी आखो के सामने देखता है 'दादा ही का कलेजा है कि वह सब सहते हैं उससे तो एक दिन न सहा जाय और यह दशा कुछ होरी ही की न थी। सारे गाव पर यह विपत्त थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणो की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियो की तरह नचा रही हो। चलते फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर मे लिखा था। जीवन में न कोई आशा, न कोई उमग। मानो उनके जीवन के सोते सूख गये हो और सारी हरियाली मुर्झा गयी हो।" *

सुमित्रानन्दन पत की 'ग्राम्या" म गावों का चित्रण निराशा को व्यजित करता है। वहां मौन प्रमात अकेला और सध्या उदासी से भरी आती है। कठपुतले से मनुष्य "छल प्रतिमा" सदृश छाया' या माया से" निर्मित प्रतीत होते हैं। उदर दु ख" एव नग्न तन" प्राणियो के जीवन मे कवि को युग का सत्य–शिव–सुन्दर अप्राप्य हो गया है। कवि ग्राम–युवती के पनघट पर जाने, धोबियो के नृत्य, चमारों के हुल्लड हुडदग, कहारों के नृत्य प्रभृति का चित्रण कर अपनी सौंदय वत्ति को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न अवश्य करता है किन्तु गावा के करुणास्पद जीवन का भाव उसके काव्य म उभर आता है। वह पृथ्वी पुत्र कृषक के जीवन को सुखमय बनाने की कामना करता है। —

प्रचल ने अपनी कविता मे किसाना पर जमीदारों के अत्याचारो के विरुद्ध भावना अभिव्यक्त की है। ≠ दिनकर किसानो के जीवन के प्रति सहानुभूति दर्शाते

× वही, पृष्ठ १७०

+ वही, पष्ठ २४३

* वही, पृष्ठ ४७४

— सुमित्रानन्दन पत ग्राम्या

हो धरणी जनों की जगत स्वग–जीवन का घर
नव मानव को दो प्रभु ! भव–मानवता का वर

≠ म चल

इन खलिहानों म गूज रही किन अपमानों की लावारी
हिलती हड्डी के हाथों ने पिटती देखी घर की नारी

हुए उसे पशु तुल्य चित्रित करते हैं। × भगवतीचरण वर्मा की "भैंसागाड़ी" कविता में गावों से सस्ता कच्चा माल खरीदने के रूप में नगरों द्वारा गावों की शोषण क्रिया का चित्रण मिलता है और इस शोषण से पीड़ित ग्राम अविकल क्रन्दन करते हैं। •

श्रमिक-वर्ग का वर्ग-संघर्ष

प्रगतिवादियों की दृष्टि में पूंजीवादी व्यवस्था में समाज का सबसे अधिक पीड़ित अग श्रमिक-वर्ग है। यह सर्वहारा है-वह वर्ग जिसके पास खोने के लिए कुछ नहीं होता सिवाय अपने बधनों के। यही वर्ग क्रान्ति का अगुआ बनता है तथा उत्पादन के साधनों पर अपना अर्थात् सम्पूर्ण समाज का अधिकार कर साम्य की स्थापना करता है। प्रगतिवादी साहित्य में मजदूर वर्ग के शोषण का चित्रण ही नहीं मिलता वरन् उसमें क्रान्ति की भावना का उद्बोधन भी मिलता है।

पूंजीवादी व्यवस्था में श्रम व पूंजी के सहयोग से उत्पादन होता है किन्तु उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों का अधिकार होने के कारण अधिकांश लाभ पूंजीपति हस्तगत कर लेते हैं तथा श्रमिक-वर्ग को मजदूरी के रूप में जो मिलता है वह उनके जीवन यापन के लिए भी पर्याप्त नहीं होता। प्रेमचन्द के 'गोदान'

जब लोट लोट सी पड़ती हैं ये गेहूं धानों की बालें
है याद इन्हें आती मानो जब खिचती थी तेरी खालें
युग युग के अत्याचारों की आकृतियां जीवन के तल में
घिर घिर कर पूंजीभूत हुई ज्यों रजनी के छाया छल में
इसकी भी आई थी आमों सी बौराती प्रखरी जवानी
किन्तु गई चुप चाप जमींदारों के भय की छोड़ कहानी
उन जुल्मों की याद न पूछो ! जल उठता प्रति रोम सिहर कर
दबे कण्ठ से रोती पतुआ बीती रजनी अभी प्रहर भर

× दिनकर बैलों के ये बधु वर्ष भर कर क्या जाने कैसे जीते हैं
जबां बंद झरती न आंख गम खा शायद आंसू पीते हैं

• भगवतीचरण वर्मा
वह राज काज जो सधा हुआ है इन भूखे कंकालों पर
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है तिल तिल मिटने वालों पर
वे व्यापारी वे जमींदार, वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त
वे निपट निरामिष सूदखोर पीते मनुष्य का उष्ण रक्त
इस राज काज के वही स्तम्भ उनकी पृथ्वी उनका ही धन
ये ऐश और आराम उन्हीं के और उन्हीं के स्वर्ग सदन
उस बड़े नगर का रोम रोम हम रहा निरन्तर पागल-सा
उस पागलपन से ही पीड़ित कर रहे ग्राम अविकल क्रन्दन

में जब शक्कर मेयर मिल के मालिक खन्ना सरकारी ड्यूटी बढने का बहाना लेकर मजदूरों का वतन अनुपात से अधिक घटा देते हैं तो प्रोफेसर मेहता मिस्टर खन्ना की भत्सना करते हुए मजदूरों की स्थिति की ओर इंगित करते हैं 'क्या आपका विचार है कि मजदूरो को इतनी मजूरी दी जाती है कि उसमे चौथाई कम कर देने से मजदूरों को कष्ट न होगा। आपके मजूर बिलो में रहते हैं—गदे बदबूदार बिलो में जहा आप एक मिनट भी रह जाय, तो आपको कै हो जाय। कपडे जो वह पहने हैं उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वह खाते हैं वह आपका कुत्ता भी न खायेगा।'' + यशपाल ने उपन्यासो म मजदूरो के जीवन व समस्याओ का व्यापक चित्रण मिलता है। 'दादा कामरेड' का नायक हरीश शर्मा तकारी दल से निष्कासन के पश्चात अपने मित्र अख्तर मजदूर के यहा लाहौर में जाकर ठहरता है। उपन्यासकार ने इस अवसर पर मजदूरों की दशा का चित्रण किया है। अख्तर के फिटर बनने का अवसर था किन्तु रिश्वत देने पर भी अन्य को पद दे देने पर उसके मन में भयकर प्रतिक्रिया जाग्रत होती है और वह हैड मिस्त्री का वध कर देना चाहता है। हरीश उसे इसकी व्यर्थता समझाता है। अख्तर के अनुसार मजदूरों की दुदशा का कारण तीन व्यक्ति इन्जीनियर कश्मीरी और जाबर हैं। यह तीनों प्रतीक हैं मजदूरो की काय अवस्था की बुराईयो दुराचार एव आर्थिक असहायता के। कश्मीरी वेश्याओ का दलाल है जिसके कारण मजदूरों का नतिक पतन ही नहीं वरन् आर्थिक स्थिति और शारीरिक स्वास्थ्य का भी ह्रास होता है। जाबर कारखाने को मजदूर देनेवाला ठेकेदार है जो मजदूर से दो रुपया स्वय कई महीने लेता है तथा रोजाना प्रति रुपया एक आना दर पर कज भी देता है। आर्थिक कठिनाईयो से दब कर मजदूरो म एक प्रकार की उत्तरदायित्वहीनता आजाती है तथा वे शराब पी कर अपने दुखों को भुला देने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। प्रेमचन्द के "गोदान" म सारी फसल की कमाई खोकर एक आने की ताडी पी मजूरी अपने दुख को भुलाने का असफल प्रयत्न करता है। यशपाल के "दादा कामरेड" म अख्तर हरीश से एक घूट शराब पी सर्दी की रात बिताने का प्रस्ताव करता है तब हरीश मुस्काता है "रोज पीकर सर्दी काटने से एक रजाई न बनवालो आदमी ?" इस पर अख्तर की झल्लाहट श्रमिक-वग की दयनीय दशा को प्रकट करती है 'लगा तू फिर काग्रेसी छाटने————बच्चा राज रोज काटनी पडे तो पता चले। यहा मजदूर चार पसे म रात काटते हैं रजाई बनती है पाच रुपये में। जब तक पाच होंगे बन्दा जहन्नुम म पहुच जायगा।" × मदन वात्स्यायन

+ प्रेमचन्द "गोदान", सरस्वती प्रेस बनारस नवा सस्करण १९३८ पृष्ठ ३८५
× यशपाल "दादा कामरेड", विप्लव कार्यालय लखनऊ, तीसरा सस्करण १९४८ पृष्ठ ८१

“मिल क्वार्टर” शीर्षक कविता में श्रमिक के दिन-रात श्रम में ही लीन रहने का चित्रण करते हैं। इस कवि ने सुना भर है कि प्रात सूर्योदय एवं सन्ध्या में चन्द्रोदय होता है पर उसके प्रात और सन्ध्या तो कारखाने के भोंपू ही सूचित करते हैं

भोंपू चीख उठा, मेरी भोर हो गई
श्रीमतीजी जरा एक कप चाय बना दो
सुना है सोने-सा चमकीला गोला एक सूर्य होता है
जब वह आता है तब मस्जिद के गोल गोल गुम्बद पर
जब वह आता तो कुहरे के जाल को काट कर
सारी दुनिया को जगाने लगता है
सुना है चांदी-सा चमकीला गोला एक चांद होता है
जब वह आता है तब मस्जिद के गोल-गोल गुम्बद पर
खड़ा हो मुअज्जिन खुदा के नाम पर
उसके सारे बन्दों को पुकारता। =

प्रस्तुत उद्धरण से श्रमिक के जीवन की व्यस्तता के साथ ही यह भी व्यंजित होता है कि वह मानो अपना जीवन मशीन की तरह जी रहा है और कि उसके जीवन में कठोर श्रम के अतिरिक्त कोई आकर्षण नहीं है।

क्रान्ति में विश्वास

प्रगतिवादियों का श्रेणी संघर्ष (Class Struggle) तथा इस संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की विजय में अनन्य विश्वास प्रकट होता है। प्रगतिवादी प्रेम के सामर्थ्य की अपेक्षा घृणा की क्षमता में अधिक विश्वास करते हैं। अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' में क्रान्तिकारी की बनावट के लिए घृणा को 'एक अत्यन्त करणीय पाप" माना है।+ प्रेमचन्द के "गोदान" में गोबर लखनऊ से दूसरी बार लौट कर

= मदन वात्स्यायन "प्रतीक" (सपा अज्ञेय) सितम्बर १९५१
+ अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी" भाग १, सरस्वती प्रेस, बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१ पृष्ठ ३०

इन्हीं निष्कलंक पापों में क्रान्ति के लिए एक अत्यन्त करणीय पाप है घृणा।

क्रान्तिकारी की बनावट में एक विराट व्यापक प्रेम की सामर्थ्य तो आवश्यक है ही साथ ही उसमें एक और वस्तु नितान्त आवश्यक, अनिवार्य है—घृणा की क्षमता एक कभी न मरने वाली जला डालने वाली, घोर मारक, किन्तु इतना सब होते हुए भी तटस्थ, सात्विक घृणा की क्षमता, यानी ऐसी घृणा जिसका अनुभव हम अपने सचेतन मस्तिष्क से करते हैं, ऐसी नहीं जो कि हमें ही भस्म कर डालती है ।

ता है तब राजनीतिक चेतना का परिचय देता है। वह सर्वहारा वर्ग का उत्थान अपने पैरों पर खड़े होने में ही मानता है तथा किसी दैवी शक्ति की सहायता विश्वास नहीं करता। सर्वहारा-वर्ग के लिए कार्ल मार्क्स का यह कथन "Labourers of the world unite ! A proletariat has nothing to loose but his chains" गोबर के विचारों के कितना समीप है 'उसने राजनैतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग अंग में बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आपदा पर विजय पाना होगा कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी। ... ने तुम्हें एक सूत्र में बांध दिया है। बंधुत्व के इस बंधन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों से तोड़ डालते हो ? इस बंधन को एकता का बंधन बनालो।"× यशपाल के उपन्यासों में क्रांति भावना यथार्थ परिस्थितियों के चित्रण के पार्श्व में व्यक्त हुई है। यशपाल श्रमिकों की केवल आर्थिक स्थिति के सुधार पर ही बल नहीं देते वरन् सर्वहारा वर्ग का राजनैतिक सत्ता पर अधिकार (Dictatorship of the proletariat) आवश्यक समझते हैं। 'देशद्रोही" में शिवनाथ मिल मालिक के सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण की मांग नहीं करता वरन् सिद्धांततः वह मिल की पैदावार पर मिल मालिक की अपेक्षा मजदूरों का अधिकार अधिक मानता है।= मराठे मजदूरों के अधिकार को और भी अधिक बताते हुए मिल को मजदूरों की मेहनत की कमाई का फल बतलाता है।* यशपाल के उपन्यासों में मजदूर आन्दोलन को राजनैतिक रूप देने का स्पष्ट प्रयास लक्षित होता है। "दादा कामरेड' में हरीश अख्तर से केवल मजदूरी बढ़ाने की चिन्ता छोड़ कर मजदूरों के राजनीति में भाग लेने की शिक्षा देता है जिससे कि राजनैतिक सत्ता श्रमिक वर्ग के हाथ में आजाय।+

× प्रेमचन्द 'गोदान", सरस्वती प्रेस बनारस, नया संस्करण १६४८ पृष्ठ ४७५।

= यशपाल 'देशद्रोही" विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण १६४६ पृष्ठ १०३।

* वही पृष्ठ १०४।

+ यशपाल 'दादा कामरेड", विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण, १६४८ पृष्ठ ८३।

अख्तर "य वर्ग बना कर सुराज लेता फिरता है न ? अरे तुम बाबू बनियों से कहीं सुराज लिया जाता है। इन्हें तो जायदाद की फिक्र है। हम कहा न मजदूरों और दिहात के लोगों को, एक दिन में तख्ता पलट कर रख दें।"

'देशद्रोही'' में उपन्यासकार ने उग्र दल (प्रकारान्तर से कम्युनिस्ट पार्टी) द्वारा संचालित मजदूरों की हड़ताल का निहित उद्देश्य वर्ग-संघर्ष की शिक्षा देना बतलाया है। जिससे सर्वहारा वर्ग राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो सके। 'उग्र दल की नीति थी, मजदूरी पेशा और कम वेतन पाने वाले लोगों को, उनकी श्रेणी की अवस्था सुधारने की समस्या पर संगठित कर राजनैतिक क्षेत्र में लाना। वे जानते थे मजदूरों की मांगें सहज में पूरी न होंगी परिणाम होगा हड़ताल। हड़ताल युद्ध है और वर्ग-युद्ध के लिए प्रारम्भिक शिक्षा। + "मनुष्य के रूप" उपन्यास में मजदूर नेता कुन्दनसिंह संगठन के द्वारा ही सभी समस्याओं का हल सम्भव मानता है। कार्ल मार्क्स ने भी तो 'दुनिया के मजदूरो एक हो' का नारा दिया था। प्रगतिवादियों का विश्वास है कि इस एकता के बल पर क्रांति सफल हो सकती है। तथा क्रांति को कोई रोक नहीं सकता। अज्ञेय ने लिखा है

"क्रांति का विरोध कराग, उसे रोकोगे तुम! सूर्य का उदय होता है, उसको रोकने की चेष्टा की है? समुद्र में प्रलय लहरी उठती है उसे रोका है? ज्वालामुखी में विस्फोट होता है—धरती कांपने लगती है, उसे रोका है? क्रान्ति सूर्य से भी अधिक दीप्तिवान प्रलय से भी अधिक भयंकर ज्वाला से भी अधिक उत्तप्त भूकम्प से भी अधिक विदारक है।—उसे क्या रोकोगे?'

"तो फिर पलटता क्या नहीं? उठ पलट!" हरीश ने खोंचा दिया।
"पलटें क्या? यह सब मिस्त्री जैसों का ही राज हो जायगा। वह भी तो काला हिन्दुस्तानी ही है। देस का कैसा खून पीता है।

'काला हिन्दुस्तानी तो तू भी है! क्यों हो जायगा मिस्त्री जैसों का राज? तेरे जसों का ही क्यों न होगा? जो कोशिश करेगा राज उसी का होगा।' हरीश ने उत्तर दिया।

'अरे हमारा राज क्या होगा? हम अब भी मरना तब भी। मजदूरी तो बढ़ नहीं पाती, राज होगा?' अख्तर ने चिढ़ाया।

तुम भी तो मजदूरी बढ़ाने की बात करते हो।"

तो क्या भण्डा उठाया करें कांग्रेस का?'

'अगर तुम सब लोग मिल कर कांग्रेस का झंडा उठाने लगा तो कांग्रेस तुम्हारी हो जाय! तू ही बता, ज्यादा तादाद तुम्हारी है या बाबुओं की? अगर तुम लोग एक हो जाओ तो बाबू तुम्हारे पीछे पीछे आवें।"

+ यशपाल देशद्रोही, विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४९ पृष्ठ ७१।

रूस की प्रशस्ति

रूस की प्रशस्ति प्रगतिवादी साहित्य की एक विशिष्ठ प्रवति है। जिस साम्यवाद की स्थापना के लिये प्रेरणा देना इस साहित्य का उद्देश्य रहा है उसका सव प्रथम एव व्यापक प्रयोग रूस मे हुआ अत यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है। किन्तु, द्वितीय महायुद्ध मे जब जमनी ने रूस पर आक्रमण किया तो लेनिनग्राड व मास्को की रक्षा का प्रश्न केवल एक देश की रक्षा का प्रश्न नहीं रहा वरन् बबर फसिस्टों के विरुद्ध साम्यवादी सिद्धान्त, विचारधारा या आदश की रक्षा का प्रश्न बन गया। रूस में साम्यवाद की स्थापना के कारण साधारण रूप मे उस ओर आशा भरी दृष्टि का आभास हम प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास मे देख चुके हैं। यशपाल ने देशद्रोही" उपन्यास मे रूस की परिस्थितियो का लालसापूण दृष्टि से वणन किया है। डा० खन्ना को अग्रेजी फौज से एक दिन चुपचाप उठा कर वजीरी स्पिन्दा ले गये और फिर उसे मुसलमान अन्सार बना कर गजनी के सौदागर अब्दुला के यहा बेच दिया। अब्दुला की दुकान पर अन्सार काम किया करता था। उसके पास अब्दुला का बेटा नासिर भी बठा रहता। नासिर को अन्सार से सहानुभूति हो गयी। वह अन्सार से हिन्दुस्तान का तथा अफगानिस्तान के अतिरिक्त अन्य देशो का हाल पूछता है। नासिर की कल्पना में रूस का चित्र इस प्रकार आता है "सुना है, रूस मे छोटे बडे सब एक हो गये। कोई खुदा को नहीं मानता। मुल्ला और मसजिद सब खत्म हो गय। भूखा कोई नहीं मरता। मजदूर भी अमीरों की तरह महलों म रहत हैं। कोई किसी का नौकर नहीं। हमारे मुल्ला लोग रूस से बहुत जलते हैं। इन्हें विलायत की बातें पसन्द नही क्योंकि उससे उनका राज नहीं रहेगा।' + नासिर व अन्सार के हृदय मे गजनी के आबद्ध वातावरण से मुक्त होकर रूस में भाग जाने की प्रबल इच्छा जाग्रत होती है। एक दिन वह अवसर आ जाता है जब कि यह दोनो छुप कर रूस की सीमा मे प्रविष्ठ हो जाते हैं। उपन्यासकार ने रूस में खन्ना के अनुभवो के रूप में रूसी जीवन की विशेषताओं को दर्शाया है। यह विशेषतायें हैं— वहा के लोग राष्ट्र निर्माण के काय को अपना काय समझ कर करते हैं, नौकरी समझ कर नहीं विज्ञान मानव समाज के उपयोग मे रत है, उत्पादन के साधना की मालिक पूजीपति श्रेणी नहीं, शिशुगृहो की आदश व्यवस्था है शिक्षा अनिवाय रूप से दी जाती है जन सख्या की वद्धि अभिशाप नही बनती अत, परिवार नियोजन जसी समस्यायें नहीं हैं, आदि।

प्रगतिवादी साहित्य में रूसी जीवन की ही प्रशसा नहीं मिलती, रूसी नेताओं के प्रति भी श्रद्धा (या वीर पूजा) की भावना प्रकट हुई है। सुमित्रानन्दन

+ वही, पृष्ठ ६२

पंत "युगवाणी" में मार्क्स को प्रलयंकर शंकर के त्रिनेत्र की उपमा देते हैं ।* "दूसरा सप्तक" में नरेश कुमार मेहता 'समय देवता" कविता में क्रांति विधायक लेनिन के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए रूस का गौरवास्पद शब्दों में स्मरण करते हैं । × द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तब रूस की विजय गाथा के लिए अनेक प्रगतिवादी कवियों ने रूसी सेना की वीरता की प्रशस्ति की तथा बर्बर नाजियों के प्रति घृणा की भावना व्यक्त की । भारतीय किसानों की दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने रूस के दुश्मनों को सभी इन्सानों, मजदूर व किसानों का शत्रु घोषित किया ।+ शिवमंगलसिंह "सुमन' ने रूसी

---

* सुमित्रा नन्दन पंत "युगवाणी"
धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर

× अज्ञेय (सम्पा) 'दूसरा सप्तक"
यह यौवन की भूमि सोवियत
जहां मनुज की उसके श्रम की होती पूजा
पूंजी और साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियां
हाथों में नवजीवन की उल्काएं लेकर मनुज खड़ा है
कुतुब सरीखा !
सबसे प्रथम इसी भूमि पर श्रम की जयकार हुई है
एक पुरुष लेनिन की वाणी शतकंठी हुंकार हुई है
बीचे दोनों समय देवता ! उसी पुरुष की यह समाधि है
अभी अभी जो कर्म निरत था
अब आंखें आकाश मीच कर श्रम के सपने देख रही हैं

(नरेश मेहता)

+ नरेन्द्र शर्मा
जहां लहलहाती खेती पर कारिन्दे मंडराते ना
सजी रास की ढेरी पर लालाजी घात लगाते ना
ब्याज चुकाते ही न जवानी गई कमीन जवानों की
लाल रूस का दुश्मन साथी दुश्मन सब इन्सानों का
दुश्मन है सब मजदूरों का दुश्मन सभी किसानों का

सेना को विषमता मिटानेवाली शक्ति के रूप में चित्रित किया ।≠ "तार-सप्तक" में प्रभाकर माचवे का सानेट "दा व्दास्तव्युते सोवित्सकी सोयूज" (सोवियत यूनियन-जिन्दाबाद) रूस की व्योम सेना की प्रशस्ति में लिखा गया । × डा० रामविलास शर्मा ने युद्धकालीन एक सोवियत चित्र पर "जल्लाद की मौत" शीर्षक कविता लिखी जिसमें जर्मन आक्रमण के अवसर पर लाल सिपाहियों की पराजय, इस पराजय में भी विजय की भावी आशा वास्तविक विजय, बर्बर नाजियों के प्रति घृणा तथा रूस के नव निर्माण का भाव प्रकट किया ।● अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में चन्द्रमाधव इस युद्ध को संस्कृति का अन्तिम युद्ध मानता है तथा वर्तमान संस्कृति को सड़ा हुआ चौखटा बतलाता है 'हिमाक़त सी पोल्का है, तितलियों का राज है।' कदाचित् अज्ञेय का यह साम्यवादी व्यवस्था के प्रति व्यंग्य है। अज्ञेय की साम्यवाद में आस्था नहीं रही है किन्तु युद्ध में वे फासिस्ट शक्तियों की पराजय की कामना करते हैं। (वे स्वयं अपनी आस्था के अनुसार युद्ध काल में सेना में भर्ती हुए थे।) भुवन के कथन में युद्ध के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है—"यह युद्ध किसलिए लड़ा जा रहा है, सहसा नहीं कह दिया जा सकता, ठीक स्वाधीनता के लिए ही है, यह कह देना भोलापन होगा क्योंकि स्वाधीनता के साथ कितने इतर स्वार्थ भी तो मिले हुए हैं, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध से आरम्भ करके हमें संस्कृति के उन मानों के लिए संघर्ष करना है जिनको स्वयं हमारी इस संस्कृति ने ही नष्ट कर दिया या जोखम में डाल दिया।' ┼अस्तु प्रगतिवादी साहित्यकारों में रूस के प्रति स्वभावतः आत्मीयता का भाव पाया जाता है। चीन में कम्युनिस्ट राज्य की स्थापना के बाद उसके प्रति भी प्रगतिवादियों का सहानुभूति एवं श्रद्धापूर्ण दृष्टिकोण रहा है।

≠ शिवमंगलसिंह 'सुमन'

युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अंधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना
समाजी विषमता की नींवें मिटाती
गरीबों की दुनिया में जीवन जगाती
अमीरों की सोने की लंका जलाती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना

× पृष्ठ ५७।

● वही पृष्ठ ६८।

┼ अज्ञेय नदी के द्वीप' ती० सं० पृष्ठ ८१

सातवा अध्याय

साहित्य और मनोविश्लेपण

(सदभ उपन्यास)

मनोविश्लेषण (Psycho analysis) सिद्धान्त

फ्रायड द्वारा मानव मन का विश्लेषण करने की प्रणाली और उस प्रणाली के द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर निर्मित सिद्धान्त विशेष का नाम मनोविश्लेषण है। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के साथ एडलर व जुग के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का भी निकट सम्बन्ध है। फ्रायड के सिद्धान्त से अपने सिद्धान्तों का विभेद स्थापित करने की दृष्टि से ही एडलर ने अपने सिद्धान्त को "व्यक्ति मनोविज्ञान" (Individual Psychology) और जुग ने 'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान" (Analytical Psychology) संज्ञा दी है। परन्तु, फ्रायड एडलर व जुग के सिद्धान्तों में अवचेतन मन की प्रधानता अनिवार्य रूप से है और कला का उद्गम अवचेतन मन की प्रक्रिया से सम्बन्धित होने के कारण प्रस्तुत अध्याय में तीनो मनीषियो के सिद्धान्तों की चर्चा वाछनीय होगी।

उन्नीसवी सदी की प्रमुख विचारधारा बुद्धिवाद थी। भौतिक विज्ञान की प्रगति ने मानव सभ्यता के विकास की पूर्ण आशा दिला दी थी। मनुष्य ने कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त किए, उसके प्राचीन धार्मिक बधन टूट गये, भौतिक समृद्धि के परिणाम स्वरूप उसे कुछ आर्थिक लाभ हुआ, प्रकृति की अन्ध शक्तियों पर वह उत्तरोत्तर विजय प्राप्त करता गया। अतः उसका एक विवेकपूर्ण जगत् की स्थापना में विश्वास बढ़ने लगा। युद्ध की बात बीते युग की कहानी सी जचने लगी और यह विश्वास होने लगा कि अब यदि कोई युद्ध होगा तो वह सारे भावी युद्धों का अन्त करने लिए होगा। इसी पृष्ठभूमि में प्रथम विश्व युद्ध की घटना घटी। उसके पश्चात् लोगों का ध्यान मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण सिद्धान्त की ओर आकर्षित हुआ। फ्रायड के इस सिद्धान्त ने पिछले युग की सस्ती आशावादिता को जड़ मूल से हिला दिया। उसने अपने पूर्व विचारकों की अपेक्षा अवचेतन मन की अविवेकशील शक्तियों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया।

कला काम वासना का उदात्तकरण

फ्रायड हमारे मन का तीन भागों में विभाजन करते हैं चेतन (concious) पूर्व चेतन (pre-concious) और अवचेतन (Unconcious) पूर्व चेतन चेतन मन

का ही भाग है। परन्तु, अवचेतन मन के तत्वों का हमें ज्ञान नहीं होता। पानी के ऊपर तैरते हुए बर्फ के शिलाखण्ड का जिस तरह एक चौथाई भाग पानी के ऊपर रहता है और तीन चौथाई पानी के नीचे वैसे ही चेतन मन हमारे मानसिक जीवन का बहुत छोटा भाग है और अवचेतन ही प्रमुख है। महत्वपूर्ण बात यही नहीं है कि मन का अवचेतन भाग चेतन की अपेक्षा प्रमुख है वरन् यह कि हमारा अवचेतन मन के चेतन स्वरूप से बिल्कुल भिन्न है। कल्पना कीजिये एक दुमंझिला मकान है। इसके ऊपरी भाग में थोड़े-से शान्तिप्रिय सभ्य लोग रहते हैं परन्तु नीचे के भाग में बहुत-से लोगों की भीड़ जमा है। वे झगड़ालू स्वार्थी और असभ्य हैं। परन्तु मकान के ऊपरी भाग में आने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। इस दृष्टि से कि उनके शान्तिपूर्ण वातावरण में खलल न हो ऊपरी भाग में रहनेवाले लोगों ने अपने लिए सीढ़ियों पर एक पहरेदार नियत कर लिया है। यह पहरेदार कुछ लोगों को बिल्कुल रोक देता है। इस तरह स्वाभाविक रूप में खुली हवा और प्रकाश में न आ सकने के कारण यह व्यक्ति वीभत्स और भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। जिस तरह किसी झरने का एक जगह इकट्ठा हुआ गंदा और सड़ा पानी अकस्मात् गंदे नाले के रूप में फूट कर चारों ओर दुर्गन्ध फैला देता है उसी तरह इनमें से प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण मकान के वातावरण को दूषित बना देता है। कभी जब पहरेदार अपनी जगह पर नहीं होता तो नीचे की मंझिल के लोग ऊपरी भाग में आने का मौका पा जाते हैं। कुछ अवस्था में नीचे रहनेवाले लोगों और पहरेदार के बीच समझौता हो जाता है और तब उन्हें ऊपरी भाग में जाने की अनुमति मिल जाती है। परन्तु इस दशा में उनका स्वरूप बिल्कुल परिवर्तित हो जाता है। वे ऊपरी मंझिल के लोगों की तरह सभ्य समाज के प्राणी जान पड़ते हैं। यह दुमंझिला मकान मानव मन है। ऊपर का मंझिल उसका चेतन भाग है, नीचे की अवचेतन। सभ्य और असभ्य निवासी हमारे मन की इच्छाएं हैं। मन के चेतन भाग में केवल वे ही इच्छाएं रहती हैं जिन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त है। अवचेतन में हमारी बहुत सी असामाजिक इच्छाएं होती हैं जो अपनी पूर्ति के लिए निरन्तर चौकस बनी रहती हैं। पहरेदार प्रतिबंधक (censor) है। अवचेतन की इच्छाओं के दमन के कारण मानसिक ग्रन्थियों (complexes) का जन्म होता है। मानसिक ग्रन्थियों की तीव्रता होने पर मनुष्य विक्षेप (Neurosis) पीड़ित हो जाता है। समझौते के रूप में दमित इच्छाएं अपना स्वरूप परिवर्तित कर चेतन में उदात्त रूप धारण कर लेती हैं। कला इसी तरह का उदात्तीकरण (sublimation) है। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया मूल रूप में काम वासना से प्रेरित होती है। कला इसका अपवाद नहीं।

मानसिक अन्तर्द्वन्द और कला

हमारे मानसिक जीवन में अवचेतन ही प्रधान और महत्वपूर्ण है। इसे समझने

के लिए नाटकीय रंगमंच की कल्पना कीजिए। किसी नाट्यशाला में होनेवाले खेल के सभी पात्र एक साथ रंगमंच पर नहीं आ सकते इसी तरह हमारे मन की सभी इच्छाएँ चेतन मन में प्रकट नहीं होतीं। रंगमंच पर होनेवाली घटनायें पर्दे के भीतर से संचालित होती हैं। पर्दे के भीतर का यह सूत्रधार ही अवचेतन मन है वही यह निर्णय करता है कि कौन पात्र कब रंगमंच पर आयेगा, अनावश्यक पात्रों को रंगमंच पर आने से वह रोक देता है।

हमारे मन में अन्तर्द्वन्द्व क्यों बना रहता है इसका भी कारण है। फ्रायड हमारे मन की पुनः तीन रूपों में कल्पना करते हैं—अहं (Ego) नैतिक अहं (super ego) और इदम् (Id)। इदम् हमारे अवचेतन मन और अन्तप्रवृत्तियों (Instincts) का प्रतीक है। अहं हमारी चेतना का वह भाग है जिससे साधारणतया हम परिचित रहते हैं। नैतिक अहं समाज और सभ्यता के द्वारा स्वीकृत आचरण का हमारी चेतन पर आरोप है। अहं नैतिक अहं से सतुलन करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। ऐसा करने में उसे इदम् की अन्तप्रवृत्तियों का दमन करना पड़ता है जो अनिवार्यतः आदिम होती हैं। जैसे जैसे हमारी सभ्यता अधिक संश्लिष्ट होती जाती है वैसे ही यह दमन तीव्र होता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति के विक्षिप्त (Neurotic) होने की सम्भावनाएं बढ़ती हैं जिसका निराकरण करना फ्रायड की विचारणा का मूल संदेश है। उस सीमा तक कला और संस्कृति के निर्माण की अवस्था भी रहती है जहां तक व्यक्ति अवचेतन की अन्तप्रवृत्तियों का उदात्तीकरण करने में सफल होता है। परन्तु अपनी अन्तप्रवृत्तियों का उदात्तीकरण कर पाने की व्यक्ति की शक्ति सीमित होती है क्योंकि उदात्तीकरण में इसे उपभोग नहीं भुलावा है। समाज व्यक्ति की इच्छाओं का दमन करता है। साधारणतया व्यक्ति की इच्छापूर्ति और कला-सृजन में विरोधी सम्बन्ध रहता है। जितना ही अन्तप्रवृत्तियों का दमन होगा उतना ही कला सृजन की प्रेरणा तीव्र होगी। (और व्यक्ति के विक्षिप्त होने की अधिक सम्भावनाएं होंगी) अवचेतन की इच्छाओं की पूर्ति के साथ कला सृजन की गति में निश्चित ह्रास होगा।

काम वासना का विकास और मानसिक ग्रन्थियां

जीवन की मूल प्रेरणा काम वासना है, इस धारणा का स्पष्टीकरण आवश्यक है। कोई भी मनोविश्लेषण वेत्ता इसका अर्थ प्रत्यक्ष यौन क्रियाओं (sexual intercourse) के रूप में नहीं लेता। फ्रायड अपने सिद्धान्त में काम शक्ति (Libido) के अन्तर्गत यौन भावना के साथ प्रेम भाव का भी समावेश करते हैं। परन्तु, उनकी विचारणा में अन्ततः काम वासना के साथ यौन भावना अनिवार्य रूप से स्थित रहती है। हमारा कोई भी प्रेम व्यापार यौन भावना के बिना नहीं होता। साधारणतया हम अपने चेतन मन में इस यौन प्रवृत्ति से अनभिज्ञ रहते हैं। बाल्यकाल से ही हम इस

काम शक्ति से प्रेरित होते हैं। हमारी कामवासना का विकास आत्म सम्मोह Narcissism) मातृ रति (Oedipus complex) स्ववर्गीय रति (Homosexual) एव विजातीय रति (Hytrosexual) की सरणिया म होकर होता है। फ्रायड आत्म सम्मोह और मातृ रति के उदाहरण प्राचीन ग्रीक कथानकों म देखत हैं। नार्सीसस नाम का एक सुन्दर बालक था। वह एक दिन अकेला एक झरने के पास गया। कुछ देर तक उसके किनारे खेलते खेलते उसकी दृष्टि पानी मे दिखाई देनेवाली अपनी परछाही पर पडी। इस परछाही को देख कर वह मोहित हो गया। उसने समझा कि पानी मे कोई अन्य सुन्दर बालक है। उसे नर्सीसस ने बुलाने की बहुत चेष्टा की किन्तु जब वह न आया तब झरने के किनारे ही उसकी चिंता करते करते वह मर गया। इस ग्रीक कथानक के आधार पर मनोविश्लेषण वेताओ ने आत्म सम्मोह (Self love) की अवस्था का नाम नार्सीसस अवस्था रखा।

ग्रीक कथाओ में वर्णित लगडे योद्धा आडीपस को उसके पिता-थेब्स के राजा ने बचपन मे इसलिए ठुकरा दिया क्योंकि भविष्यवता ने यह भविष्यवाणी की थी कि यह बालक बडा होकर अपने पिता को मार कर म ता मे शादी करेगा। किसी पडोसी राज्य के राजा ने बालक को अपने संरक्षण म रख लिया। ओडीपस बडा हुआ तब उसे अपने सच्चे माता पिता का ज्ञान नही था और गोद लेनेवाले राजा रानी को ही वह अपने माता पिता समझता था। एक बार जब वह किसी भविष्यवेता के पास गया तो उसने भी यही बात बतलाई कि तुम अपने पिता को मार कर माता से शादी करोगे। इस दुघटना से बचने के लिए वह अपने संरक्षक माता पिता से दूर रहने लगा। पर अपने घुमक्कड जीवन म कही अपने सच्चे पिता से मिलने पर उसका उससे झगडा हो गया और अनजाने उसने अपने पिता को मार दिया। तत्पश्चात् थैब्स म पहुँच कर वहा के लोगो को उसने अत्याचारो से मुक्त किया और लोगों ने उसे अपना शासक घोषित किया तथा अपनी विधवा रानी का उससे विवाह कराया। वर्षों बाद इस अनजाने अपराधी दम्पति को सत्य का पता चला, उस समय तक उनके चार सन्तानें हो गई थीं। बेचारे आडीपस ने निराशा स जड होकर अपनी आखों को बाहर निकाल लिया। इसके उपरान्त वह जीवन पयन्त अनेक दुर्भाग्या का शिकार बनता रहा। इसी आडीपस की कथा क आधार पर फ्रायड ने मातृ रति को आडीपस ग्रन्थि (Oedipus complex) की सज्ञा दी। आडीपस ग्रन्थि से फ्रायड का आशय यह था कि आत्म रति की अवस्था के बाद कोई भी बालक लडका माता से और लडकी पिता स प्रेम करती है। लडके की पिता के प्रति एव लडकी की माता के प्रति विद्वेष व भय की भावना क रूप मे क्रमश आडीपस एव एलेक्ट्रा ग्रन्थि की अभिव्यक्ति होती है। कभी यह भी होता है कि लडका अपने नारी रूप की कल्पना करके पिता से प्यार करके माता स घृणा करता है और लडकी अपने पुरुष रूप की कल्पना करके माता से प्यार करती है तथा

पिता से घृणा। परन्तु, समाज इस तरह के सम्बन्धों को मान्यता नहीं देता अत समाजगत ज्ञान की चेतना होने पर यह भावना हमारे अवचेतन में चली जाती है और यहां मानसिक ग्रंथि का रूप धारण कर लेती है जो हमारे प्रौढ जीवन में विक्षेप, स्वप्न या कला-सृजन के रूप में प्रकट होती है। मातृरति की अवस्था के बाद बालक अपने स्ववर्गीय बालकों से प्रेम करता है और उसके बाद विपरीत लिंगी नारी जाति से। समाज के बाह्य आचरण व प्रतिबंधों के कारण उसे अपनी अनेक इच्छाओं का दमन करना पड़ता है जिससे हमारे अवचेतन में ग्रंथियां बनती रहती हैं।

कला सृजन में शैशव की स्मृतियों का महत्व

इस पृष्ठभूमि के साथ हम कदाचित् फ्रायड के कला-सिद्धान्त को आसानी से समझ सकते हैं। फ्रायड के अनुसार कला दमित काम वासना का उदात्तीकरण है। शैशव काल में ही हमारी काम वासना का नैतिक अहं दमन करने लगता है और तब वह हमारे अवचेतन मन में मानसिक ग्रंथि का रूप धारण कर लेती है। स्वप्न के छायाचित्रों में यह मानसिक ग्रंथियां प्रतीकों के रूप में प्रकट होती हैं इसी तरह कलाकार की रचना में यही अतृप्त काम वासना भाव चित्रों का रूप धारण कर लेती है। कला सामाजिक क्षेत्र में संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग मानी जाती है। अत कला सृजन के बहाने अपने अरमानों को कविता के रूप में अभिव्यक्त करना कलाकार के लिए स्वाभाविक होता है। इसका आशय यह नहीं है कि कविता करना बहाना है। वास्तव में कविता के द्वारा कवि अपनी आत्माभिव्यक्ति करता है। इस आत्माभिव्यक्ति का कविता में क्या स्वरूप होता है या कैसा होना चाहिए यह दूसरा प्रश्न है। व्यक्तित्व के निर्माण में हमारे शैशव काल के अनुभवों का सबसे अधिक महत्व होता है। उसी तरह कला सृजन में शैशव की स्मृतियां प्रतीकों के रूप में प्रकट होती हैं। अवश्य यह प्रतीक अतीत की अभिव्यक्ति होते हैं—परन्तु वह अतीत जो आज भी वर्तमान बना है। यह प्रतीक कलाकार का चित्र होता है, फोटोग्राफर की तस्वीर नहीं। कलाकार अपने चित्र में कुछ रेखाओं का ही प्रयोग करता है और अनावश्यक विस्तार को छोड़ देता है। उसी तरह अतीत की केवल कुछ स्मृतियां जिनका मानसिक ग्रंथियों से सम्बन्ध होता है प्रतीकों के रूप में कला कृति में प्रकट होती हैं। प्राय कहा जाता है कि कलाकार चित्र खींचते समय कल्पना ही चित्र खींचता है। यदि शैशव को जान कर युवावस्था को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि शैशव में यौवन के बीज निहित हैं वरन् इसलिए कि यौवनावस्था में शैशव की स्मृतियों के द्वारा हम अपनी आत्माभिव्यक्ति करते हैं। अतृप्त काम वासना के कारण हमारे अवचेतन मस्तिष्क में जो मानसिक ग्रंथियां पड़ती हैं उनमें प्रधान मातृ रति की ग्रंथि है। प्रसिद्ध कलाकार ल्योनार्दो द विन्ची का मनोविश्लेषण करते हुए फ्रायड ने उसके शैशव काल की इसी ग्रंथि को प्रधानता

दी है। विन्ची ने अपने बचपन की एक विचित्र धारणा का उल्लेख किया है कि जब वह पालने में लेटा हुआ था तो मानो उसके पास एक गृद्ध आकर बैठ गया और अपनी पूछ बार बार जैसे उसके मुह मे डाल निकाल रहा हो। इस कल्पना के आधार पर फायड ने अपने प्रतीक सिद्धान्त के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि विन्ची की काम-वासना स्ववर्गीय रति के रूप मे अभिव्यक्त हुई थी। बचपन में पिता के अभाव में उसकी मातृ रति अत्यन्त जागृत हो गई थी जो उसे किसी भी अन्य स्त्री की ओर आकर्षित नही होने देती थी। मोनालीसा के चित्र में वह इसी मातृ रति की अभिव्यक्ति देखता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आटोरेंक के अनुसार विश्व साहित्य की प्रसिद्ध कथाओं का आधार मम्व ध इसी ग्रं थ के विभिन्न रूपों से है। परन्तु अतृप्त काम वासना सम्बन्धी अन्य मानसिक प्रक्रिया का भी प्रदर्शन कला-सृजन के रूप में होता है। फ्रायड के अनुसार जिस तरह स्वप्न हमारी अतृप्त वासनाओं की पूर्ति के साधन होते हैं उसी तरह कला सृजन में हम अपनी दमित वासनाओं की पूर्ति प्रतीकों के रूप में करते है।

कला जीवन से पलायन के लिए

अपनी अपेक्षाकृत पीछे की रचनाओं मे फ्रायड सस्कृति के विभिन्न तत्वों को हमारे सामाजिक जीवन के अभावों की पूर्ति के रूप में किये गये मानसिक प्रयत्न मानते हैं। जिस तरह मार्क्सवादी इतिहास की आर्थिक आधार पर व्याख्या करते हुए उस उत्पादन के विभिन्न जरियों द्वारा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का उपक्रम मानते हैं उसी तरह कहा जा सकता है कि फ्रायड सस्कृति को उन अभावों की पूर्ति के लिए किये गये मानसिक प्रयत्नों का फल समझते हैं जो व्यक्ति को समाज मे रहने के लिए अपनी अन्तप्रवृत्तियों की बलि देकर सहने पड़े हैं। इस तरह धर्म के सम्बन्ध में उनका कथन है कि भौतिक जीवन में अन्त तक अपने पिता से दुलार और रक्षा पाने में असफल रहने के कारण हम ईश्वर के रूप में स्वर्गिक रक्षक और अभिभावक की कल्पना करते हैं। नैतिकता को प्राय विवेकपूर्ण चिंतन का परिणाम माना जाता है। फ्रायड के अनुसार वह केवल अपने मन को आश्वासन देने का प्रयास है जिससे हमारी अन्तप्रवृत्तियों के दमन होने पर भी हम समाज से समझौता बनाये रख सकें क्योंकि उसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। इसी तरह कला का महत्व इसी में है कि जीवन जैसा है उसके भार से आक्रान्त व्यक्ति अपने लिये एक विभ्रम पैदा कर के आश्वस्त होना चाहता है। अवचेतन मन की अन्तप्रवृत्तियों के दमन से असंतुष्ट होकर हम एक विभ्रम की संयोजना करते हैं। कला एक ऐसा ही संयोजन है। अपने दिवा स्वप्नों के जगत् से हम एक मरीचिका या छायाजाल बुनते हैं। उस छाया पथ के भ्रमण में सुखों में सबसे बढ़ कर कला के सृजन और आस्वादन का सुख है। कला जगत् की कठोर परिस्थितियों से क्षण भर के लिये पलायन है।

फ्रायड का कथन है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन के सम्बन्धो ने उसके जीवन को इतना भार स्वरूप बना दिया है कि उसके उपचार का उपाय सोचे बिना कोई चारा नही। दुःख की इस अनुभूति से बचने के तीन उपाय हैं। फ्रायड के अनुसार हमारे जीवन का ध्येय इस दुःख की अनुभूति से छुटकारा पाना और सुख का अनुभव करना है। दुःख से छुटकारा पाने के अथवा अपने को भुलावा देने के उपाय हैं— (१) व्यक्ति किसी एक कार्य में अपने को इतना लीन कर दे कि दुनिया के दूसरे दुःख दर्दों को भूल जाय, प्रसिद्ध वैज्ञानिकों का कार्य प्राय इसी श्रेणी में आता है। अथवा (२) व्यक्ति नशीली वस्तुओं का सेवन करता है जिसके कारण शरीर में रसायनिक परिवर्तनों के प्रभाव स्वरूप उसे मानसिक दुःखों की सत्ता नही रहती। (३) कुछ दशाओं में व्यक्ति अपने दुःखों को कल्पना के द्वारा भुलाने का प्रयत्न करता है।

कला के द्वारा इच्छा पूर्ति या दुःखों से मुक्ति का रहस्य यह है कि हम अपनी मूल वासनाओं को ऐसी दिशा की ओर अभिमुख कर देते हैं जहाँ बाह्य संसार के द्वारा इच्छाओं के खण्डित होने का अवसर नही रहता। कला सृजन का सुख एक तरह से अनिर्वचनीय है, फ्रायड के शब्दों में हम उसे 'उच्च और सुन्दर' कह सकते हैं। कवि जिन दिवा स्वप्नों का कविता में चित्रित करता है उसकी ओर संकेत करते हुए फ्रायड लिखते हैं

'कलाकार मूलतः ऐसा प्राणी है जो कठोर वास्तविकता से पलायन करता है क्योंकि पहिले उन वर्जनाओं को जो उसकी मूलप्रवृत्तियों को अभुक्त रखने की माँग करती हैं स्वीकार कर, वह अन्तत उस स्थिति में सन्तुष्ट नही रह पाता। अत वह कल्पना जगत् में अपनी रति भावनाओं और महत् इच्छाओं की पूर्ति का विराट आयोजन करता है। पर इस छाया जगत् से वास्तविक जगत् की ओर पुन लौटने का मार्ग भी उसे मिल जाता है। अपनी असाधारण प्रतिभा के द्वारा वह इन छाया चित्रों को एक नये प्रकार की वास्तविकता में परिवर्तित कर देता है और समाज उन्हें गम्भीर चिंतन के रूप में स्वीकार कर अपने को कलाकार का कृतज्ञ मानता है। अत एक विशिष्ट ढंग को अपना कर वह बाह्य जगत् में परिवर्तन लाने के कठिन मार्ग को अपनाये बिना सचमुच मान्य व्यक्ति, नेता स्रष्टा और लोगों का प्रेम पात्र बन जाता है जिसकी कि उसे आकांक्षा रहा करती है।"× परन्तु प्रत्येक व्यक्ति

× Freud 'Coll-cted Papers' (The Relation of the poet to day-dreming) Pp 183

The arti t is originally a man who truns from reality because h- cannot come to terms with the demand for the renu nciation of instinctual satisfaction as it is first made, and who then in phantasy life allows full play to his erotic and ambitious

कलाकार नहीं होता। उसके लिए विशिष्ट प्रतिमा और प्रवृत्ति की आवश्यकता रहती है, जो साधारणतया काफी अंशों में नहीं पायी जाती। कलाकार बाह्य जगत् से मुंह मोड़ कर अपने अन्तर्जगत् में लीन रहता है। वह कला सृष्टि में विभ्रम (Illusion) के द्वारा इच्छा पूर्ति करता है। इस विभ्रमपूर्ण इच्छा पूर्ति के बारे में फ्रायड का कथन है

"यह विभ्रम उस छाया जगत् के उपकरणों से बने होते हैं जो कि जीवन की वास्तविकताओं का ज्ञान होने पर सच्चाई की कसौटी पर नहीं कसे जाते तथा उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं जिन्हें पूरा करना सम्भव नहीं होता। इस छायालोक के सुख के अनुभवों में सबसे महत्वपूर्ण कला के आस्वादन का सुख होता है जो कि कलाकार के माध्यम से उन लोगों के लिए भी सहजगम्य हो जाता है जिनमें कि सृजन शक्ति का अभाव होता है।" *

अतः हम देखते हैं कि कला जीवन से पलायन के क्षण का सृजन है। वस्तुतः कलाकार का पलायन कला सृजन के लिए होता है—वह कला जिसमें जीवन की प्रेरणा होती है। किन्तु निराशावादी साहित्य भी सर्वथा अनुपयोगी नहीं होता। फ्रायड के अनुसार कला का सबसे बड़ा उपयोग उसका सृजन और आस्वादन सुख है।

मनोविश्लेषण और सौन्दर्यगत मान

सौन्दर्यानुभूति का विवेचन करते हुए फ्रायड का कथन है कि जीवन के लक्ष्य के रूप में कला प्रेम हमारे अवसादों का अंत नहीं कर सकता परन्तु, कला हमारे जीवन के अभाव की बहुत बड़ी पूर्ति है। सौन्दर्यानुभूति गुलाबी नशे की तरह

---

wishes But he finds a way of return from this world of phantasy back to reality, with his special gifts he moulds his phantasy into a new kind of reality and men concede them a justification as valuable reflections of actual life Thus by a certain path he actually becomes the hero king creator favourite he desired to be without the circuitous path of creating real alterations in the outer world

* Freud Civilization and its discontents Pp 35

These illusions are derived from the life of phantasy which, at the time when the sense of reality developed, was expressly exempted from the demands of the reality test and set apart for thr purpose of fulfilling wishes which would be very hard to realize At the head of these phantasy pleasures stands the enjoyment of works of art which through the agency of the artist is opened to those who cannot themselves create

हमें अभिभूत कर लेती है। प्रत्यक्षत सौन्दर्य का कोई उपयोग नहीं जान पड़ता, सांस्कृतिक विकास के लिए उसकी आवश्यकता अपरिहार्य नहीं है परन्तु सभ्यता फिर भी उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। सौन्दर्य विज्ञान उन परिस्थितियों का विवरण करता है जिनमें विशिष्ट वस्तुओं को सुन्दर समझा जाता है पर वह सौन्दर्य की उत्पत्ति और उसके गुणों की व्याख्या नहीं कर पाता। प्राय इस कमी को सुन्दर और निरर्थक शब्दों से छुपाने का प्रयत्न किया जाता है। दुर्भाग्यवश मनोविश्लेषण सिद्धान्त भी सौन्दर्य के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत मौन है। केवल मात्र इतना निश्चित है कि सौन्दर्यगत भाव (Beauty concepts) काम वासना से सम्बन्धित हैं। यह महत्वपूर्ण बात है कि यौन अंगों को जिनकी दृष्टि मन में हमेशा विकार उत्पन्न करनेवाली होती है सौन्दर्य-पूर्ण नहीं समझा जाता। जीवन में नग्नता को हम सुन्दर नहीं कहते। सौन्दर्य का सम्बन्ध काम-वासना से सम्बन्धित परोक्ष प्रतीकों से है।

कला और नैतिकता फ्रायडीय मत

कला और नैतिकता के सम्बन्ध में फ्रायड के क्या विचार हैं यह भी यहां जान लेना उचित होगा। मानसिक प्रक्रिया के द्वन्द्व पीडन (Conflicts) की बात इदम् और नतिक अहं के संघर्ष के रूप में कही जा चुकी है। हमारे चेतन मन के भाव और विचारधाराएं अवचेतन के द्वारा संचालित होती हैं। हमारा विवेक इच्छाओं का सेवक है। हम अपनी इच्छाओं के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराये जा सकते। अत नैतिकता मात्र प्रवञ्चना है। कला में नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं। कला सृजन की प्रेरणा शैशव के भाव चित्रों से प्रेरित होती है और हमारे शैशव की भूलें कितनी ही भयंकर हों किन्तु उन्हें, पापमय कहना जीवन सौंदर्य के अस्तित्व को भी नष्ट करना है।

प्रतीक विधान

फ्रायड के कला-सिद्धान्तों में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान है। अपने स्वप्न सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया है कि अभुक्त काम वासना स्वप्नावस्था में विभिन्न प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्त होती है। वस्तुत प्रतीक अन्त प्रेरित सम्बन्ध सूत्रों (Association) से निर्मित होते हैं। प्रतीक कलाकार के अन्तर्मन तक पहुंचने के अमोघ साधन हैं। अत हम काव्य के वाह्य सौंदर्य अलंकारों—उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि के प्रति उदासीन नहीं रह सकते। वास्तव में इन्हें काव्य का वाह्य-स्वरूप मानना बहुत बड़ी भूल है। इन्हीं के सहारे हम कवि के अन्तर्मन तक पहुंच सकते हैं। फ्रायड के मत में कोई भी मानवी क्रिया निरर्थक नहीं होती—यहां तक कि हमारी दैनिक जीवन की साधारण भूलों के पीछे भी कोई न कोई तथ्य छुपा होता है। अत किसी विशेष प्रतीक या अलंकार के प्रयोग का भी जो अनुकृति

मात्र नही है निश्चित अर्थ होता है जिससे कलाकार के अन्तर्जगत् का गहरा संबंध पाया जाता है।

फ्रायड के कला सम्बन्धी प्रमुख निर्णय निम्नलिखित हैं

१ कला दमित काम वासना का उन्नत्तिकरण है।

२ कला-सृजन म प्रयुक्त काम वासना प्रतीकों के रूप प्रकट होती है।

३ कला जीवन से पलायन के क्षणों की सृष्टि है।

४ कला और नतिकता का कोई संबंध नहीं।

व्यक्ति-मनोविज्ञान (Individual Psychology) सिद्धान्त

फ्रायड के समकालीन और परवर्ती विचारकों में मनोविश्लेषण सिद्धान्त को अपना योग देनेवालों में एडलर और युग महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक हैं। जसा कि कहा जा चुका है, यह दोनों ही विचारक अपने अपने नय संस्थानो के संस्थापक हैं परन्तु, उनके विचारों का फ्रायड के विचारों स गहरा सम्बन्ध है।

एडलर फ्रायड के शिष्य थे और आरम्भ में उनके दल में थे परन्तु उनका विचार था कि फ्रायड काम भावना के महत्व को आवश्यकता से अधिक तूल दे रहे हैं। कुछ समय पश्चात् यह स्पष्ट हो गया कि एडलर जिस अह भाव पर सर्वाधिक जोर दे रहे हैं वह फ्रायड की काम शक्ति से भिन्न ह। अत उन्होंने 'व्यक्ति मनोविज्ञान' नाम की अलग विचारधारा प्रतिपादित की जो फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त से भिन्न थी।

हीन-भावना की ग्रन्थि, जीवन-लक्ष्य निर्धारण एव क्षतिपूरक व्यवहार

फ्रायड की तरह एडलर भी अवचेतन के महत्व को स्वीकार करते हैं परन्तु वे प्रमुखत काम-वासना के बदले हीन भावना की ग्रन्थि को विवेचन का कारण मानते हैं। मनुष्य अपने जन्म के अवसर पर शक्तिहीन और असहाय होता है। प्रकृति की दुर्जेय शक्तियों स बचने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं होता और पालन तथा रक्षा के लिए वह अपने से बड़ों पर आश्रित रहता है। बड़ों की महत् शक्तियों और उनकी स्वतन्त्रता को देख कर वह प्रभावित होता है तथा इस हीन भावना स मुक्ति पाने के लिए वह अपने वातावरण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। जब ऐसा करने म वह सफल नहीं हो पाता क्योंकि वातावरण सदा नित्य-प्रति सुखमय रहा है, तब वह अपने ही स्वप्न लोक म विचरण करने लगता है। वह सपनों का राजा होता है और यथार्थ-जगत् म जिन व्यक्तियों के हाथों उसे अपमान झेलना पड़ा है, उन पर व्यंग्य की हंसी हंसता है। लेकिन सपने सदा अपने

हुए हैं जीवन की कठोर वास्तविकता का सामना किये बिना कोई चारा नहीं। एडलर का कथन है कि जब भी या देरी से प्रत्येक बालक एक दिन इस बात का अनुभव करता है कि वह स्वयं अकेला अपने सुख के परिवार को कायम रखने में असमर्थ है और इस ज्ञान के उदय होने पर वह अपने जीवन की मान्यता के लिए आधार भूमि ढूंढने लगता है। यही अवसर उसके भावी जीवन की गति को निश्चित करने वाला होता है, घड़े को आकार बनानेवाला पौधे की डालियों को निश्चित दिशा की ओर मोड़नावाला। मानव स्वयं अपने जीवन के लक्ष्य का निर्माण करता है। परन्तु हीन-भावना के स्फुरण का दूर करने का प्रायः प्रयत्न करता है। ग्रीस के प्रसिद्ध वक्ता डेमस्थनीज तनपन में बोलते समय हकलाते थ। अतः मुँह में कंकड़ को भर कर वे समुद्र के किनारे देर तक उच्च स्वर में बोलते रहते। अन्त में वे ग्रीस के सबसे बड़े वक्ता प्रसिद्ध हुए। साधारणतया जिस क्षेत्र में हीनता की भावना होती है व्यक्ति उससे दूसरे क्षेत्र में अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है क्योंकि जिस क्षेत्र में वह दूसरों से पिछड़ा होता है उसमें अधिक प्रयत्नशील होने की आवश्यकता होती है। इस तरह शारीरिक दृष्टि से कमजोर विद्यार्थी पढ़ने में तेज पाया जाता है। यह बात ध्यान में रखने की है कि हीन भावना से आक्रान्त व्यक्ति का मानसिक सतुलन बनाये रखने के लिए वहाँ तक प्रयत्नशील होना आवश्यक है जितना कि जरूरी हो अन्यथा उसका विक्षेपपूर्ण होना बहुत स्वाभाविक है। इस तरह के विक्षेपपूर्ण व्यक्ति विकासशील सभ्यता के इतिहास को कभी पतन की गहरी खाई में डाल देते हैं। नेपोलियन के युद्ध-प्रिय होने का कारण उनके बचपन में सहे गये अत्याचार थे। हमारे युग में हिटलर एक प्रभावपूर्ण विक्षिप्त व्यक्ति थे जिन्होंने नृशंसता को जीवन को बीसवीं सदी में एक बार पुनः जीवित कर दिया।

एडलर के अनुसार हमारे मानसिक जीवन में चेतन और अवचेतन का संघर्ष नहीं रहता बल्कि सहयोग होता है। अवचेतन की हीन भावना की ग्रन्थि चेतन में स्पष्टतः क्षतिपूरक कर्मशीलता के लिए अनुप्रेरित होती है। हीन भावना की ग्रन्थि और क्षतिपूरक व्यवहार एक ही गत्यात्मक व्यक्तित्व के संबंध-सूत्र से जुड़े हैं। हीन-भावना की ग्रन्थि का क्षेत्र अवचेतन है क्योंकि उसका हम चेतन मन में ज्ञान नहीं होता और ज्ञान न होने का कारण यही है कि वह हमारे सुदूर अतीत शैशव की ग्रन्थि है।

यह नहीं कि एडलर जीवन में काम-वासना का महत्व न स्वीकार करते हों परन्तु उनके मत मे काम वासना हमारे समष्टिगत जीवन का अंग मात्र है। जीवन की तीन मुख्य समस्याएँ सामाजिक जीवन धंधा और प्रेम है। इनके प्रति बालक का जैसा दृष्टिकोण है उसी के अनुरूप वह अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित करता है। अन्य समस्याओं का वह किस दृष्टि से सुलझाता है यह इस पर निर्भर होगा कि बालक सामाजिक सतुलन किस रूप में करता है। यदि बालक को अपने वाता

रण के प्रति उत्साह और प्रेम की भावना है—दूसरा को प्रभावित करने और स्वय प्रभाव ग्रहण करने के सम्बन्ध में वह आशावादी है तो वह यौन-सम्बन्धो को भी इसी रूप म स्वीकार करेगा। यदि बालक का सामाजिक दृष्टिकोण अपने वातावरण पर पूर्ण प्रभाव जमाना है तो वह अपने यौन सम्बन्धों को भी इसी लक्ष्य की पूर्ति का साधन बनायगा।

कला हीन-भावना की ग्रन्थि का क्षतिपूरक प्रयास

अस्तु एडलर के अनुसार कला हीन-भावना की ग्रन्थि का क्षतिपूरक प्रयास है। श्री स० ही० वात्स्यायन अपने निबन्ध 'कला का स्वभाव और उद्देश्य' म जिस स्थापना पर पहुचते है 'कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न, अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है"* इसी एडलरीय सिद्धान्त का प्रतिपादन है। वात्स्यायन जी उस युग की कल्पना करते हैं जब मानव पहाडो मे कन्दराए खोद कर रहता था और घास-पात या कभी पत्थर या ताँबे के फरसों से आखेट कर के मास खाता था। उस मानव समाज का 'किसी कारण एक कमजोर व्यक्ति जब समाज के अन्य प्राणियों का उनके काम म सहयोग नहीं दे सकता तो वह अपने भाव को प्रमाणित करने के लिए दूसरे क्षेत्र मे विकासमान होता है। उस आखेट युग मे जब कल्पित 'कमजोर व्यक्ति' देखता है कि उसके अन्य सब साथी आखेट के लिए गये हैं और वह अकेला कन्दरा म है, तब वह कुछ ऐसे काय करता है जो उपयोगी न होते हुए भी सुन्दर हैं और हम उन्हे कला की सज्ञा देते हैं। ×

---

* स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय त्रिशकु सरस्वती प्रेस, बनारस १९४५ पृ० २१

× वही, पृष्ठ २८

'हमारी कल्पना देखती है कि जब उस समाज के समर्थ और बलिष्ट अहेरी अपने अपने अस्त्र सभालते हैं तब वे पाते हैं उनके अस्त्रो के हत्थों पर शिकार की मूर्तिया खुदी हुई हैं जिनमे अपनी सामर्थ्य का प्रतिबिम्ब देख कर उनकी छाती फूल उठती है, कि जब वे दल बाध कर खोहो से बाहर निकलते है तब शिकार के रणनाद औरघमासान के तुमुल स्वर न जाने कैसे एक ही कठ के आलाप मे रणरणित हो उठते हैं कि जब वे लदे हुए कधो पर थके और श्रमसचित मुह लटकाए खोहों की ओर लौटते हैं तब पाते हैं कि खोहों का मार्ग पत्थर की कुन्नी मे आकी गई फूल पत्तियो से सजा हुआ है कि जब वे दाम्पत्य जीवन की द्विगुणित एकातता मे प्रवेश करते हैं तब सहसा पाते हैं कि उस जीवन की चरमावस्था सहचरी के वक्ष पर किसी फल के रस से गोदी गई है।

कलाकार जीवन के दूसरे क्षेत्रों में या अन्य किसी एक क्षेत्र में अनुभूत हीनता की भावना को भुला देने के लिए कला-क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व का सफल योग प्रदान करता है। अवश्य कला सृजन के लिए विशिष्ट प्रतिभा और मनोवृत्ति की आवश्यकता होती है। कला किसी अभाव की पूर्ति है। जीवन की कुरूपता हमें सौन्दर्य बोध की कल्पना के लिए प्रेरित करती है।

परन्तु, यह हीनता की भावना जिसे कला सृजन की प्रेरणा कहा गया है क्या वास्तविक कमजोरी है? ऐसा कहना कदाचित कलाकार का अपमान समझा जायेगा। जैसा कि हम देख चुके हैं यह हीनता की भावना आवश्यक नहीं है कि शारीरिक रूप में हो। जैसा कि वात्स्यायन जी कहते हैं यह हीनता सामाजिक संतुलन बनाये रखने की एक विशेष दशा में असमर्थता है। इस असमर्थता का यही अर्थ है कि कलाकार, समाज का साधारण जीवन जिन रूढ़ियों में बंध कर चला है उनमें अपना स्वीकार नहीं करता। रूढ़ि मुक्त होने की यह भावना उसे नई राह बनाने की प्रेरणा देती है।*

तब वे विस्मय से भर कर कहते हैं "अधूरा है तो बिचारा पर उसके हाथ में हुनर है।'

हमारे कल्पित कमजोर प्राणी ने हमारे कल्पित समाज के जीवन में भाग लेना कठिन पाकर, अपनी अनुपयोगिता की अनुभूति से आहत होकर, अपने विद्रोह द्वारा उस जीवन का क्षेत्र विकसित कर दिया है। उसे एक नई उपयोगिता सिखाई है-सौंदर्य बोध। पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा, पहली कला चेष्टा ऐसा ही विद्रोह रही होगी, फिर चाहे वह रेखाओं द्वारा प्रकट हुआ हो चाहे वाणी द्वारा, चाहे तान द्वारा, चाहे मिट्टी के लोंदों द्वारा।

* हरिवंशराय बच्चन 'मधुकलश'

स्थल गया है भर पगों से
नाम कितनों के गिनाऊँ
स्थान बाकी है कहाँ ? पथ
एक अपना भी बनाऊँ
राह जल पर भी बनी है
रूढ़ि पर न हुई कभी वह
एक तिनका भी बना सकता
यहाँ पर मार्ग नूतन
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

यह नई राह बनाने की जो प्रेरणा हम कलाकार मे मिलती है, उस व्यक्ति का हीन भावना की ग्रंथि से आक्रान्त कह कर कैसे टाला जा सकता है !

कला और नैतिकता एडलरीय मत

एडलर फ्रायड की ही तरह कला को जीवन के संघर्ष से पलायन के क्षणों का सृजन मानते हैं। यद्यपि दोनो मनीषियों की दृष्टि मे कला का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति है परन्तु, एक की दृष्टि में कलाकार अपनी सृष्टि मे विगत जीवन की खण्डित इच्छाओं की पूर्ति का छाया जाल बुनता है जब कि दूसरे की दृष्टि में जीवन के किसी क्षेत्र में हीन भावना की ग्रंथि से ग्रसित हो कर वह संस्कृति के निर्माण में अपना सुयोग प्रदान करता है। फ्रायड कलाकार के लिए नैतिकता का प्रश्न उठाना नहीं चाहते। एडलर यद्यपि कला और नैतिकता के सम्बन्ध में मौन हैं परन्तु, उनका सिद्धान्त प्रधानतया उपयोगितावादी है। वे कला सृजन की प्रेरणा अन्तर्भावना के दमित रूप में नहीं पाते। मन हमारी अन्तर्भावनाएं जो हैं, वे हैं कह कर छुट्टी नहीं मिलती। व्यक्ति और सामाजिक भावना के संतुलन की ओर अग्रसर होना एडलर का निश्चित प्रयास है।

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) सिद्धान्त

काम वासना और हीन भावना की ग्रंथि, इनमें जीवन की मूल प्रेरणा कौन सी है यह निर्णय करना कठिन है फ्रायड और एडलर के सिद्धान्तों को देखते हुए यों कहें असम्भव है। परन्तु इन दोनों विरोधी सिद्धान्तों में हम देखते हैं कि जुंग महोदय ने आश्चर्यपूर्ण समन्वय किया है।

मन के स्तर और जातीय अवचेतन

जुंग फ्रायड की तरह मन का प्रधान भाग अवचेतन मानते हैं। परसनेलिटी (Personality) का जुंग के लिए विशिष्ट अर्थ है। नाटकों के अभिनय के समय रोम में पात्र अपने मुंह पर नकली चेहरा (Persona) धारण करते थे। दर्शकों को वही भाग दिखलाई देता था। समाज व्यक्ति के चरित्र के जिस रूप से परिचित होता है वही उसका व्यक्तित्व (Personality) है। यदि व्यक्ति का अहं जो कि चेतना का केन्द्र बिन्दु है उसके व्यक्तित्व के अनुरूप है तो उसे स्वयं अपने अन्तर्मन का भी परिचय नहीं रहता। उसकी दमित इच्छाएं जिन्हें चेतन मस्तिष्क मे स्थान नहीं मिलता, अनजाने व्यक्तिगत अनुभव और साधारण भूलें सभी उसके व्यक्तिगत अवचेतन (Personal unconcious) मे संचित रहते हैं। इसके अतिरिक्त जुंग जातीय अवचेतन मन (Racial unconcious mind) की कल्पना करते है। आदि काल में जब मनुष्य केवल जीवन अंश (Protoplasm) था तब से लेकर आज तक के विकास काल में जो वृत्तियां बनती बिगड़ती रहीं, वृत्तियों के संस्कार होने पर व नष्ट न होकर हमारे जातीय अवचेतन मन में संचित होती गई। अगड़ासू

मानव प्रवृति का उदाहरण लें—आज चाहे आदिम रूप में वह प्रवृति हमारे अन्दर न हो पर दंगल, मुर्गा लड़ाई या महायुद्धों के रूप में वह हमारे जीवन में अभी भी अभिव्यक्त होती है। अस्तु इस सुदीर्घ काल में असंख्य मूल पशु प्रवृतियां हमारे जातीय अवचेतन में दबी पड़ी हैं। सभ्यता के संस्कारों से हम अपने चेतन मन को सफेदपोश बनाये रखते हैं परन्तु उसका आवरण इतना झीना है कि भीतर का मल बार बार दिखलाई पड़ता है। जुंग के अनुसार मानव शिशु अपने अनुभव की इसी जातीय अवचेतन के आधार पर व्याख्या करता है। संसार की जातियों के पौराणिक साहित्य में हम देवता, राक्षस भूत आदि की कल्पना अनिवार्यतः पाते हैं। वह पूर्व युग के सीमित ज्ञान का परिणाम था परन्तु आज भी प्रत्येक मानव शिशु उस जातीय अवचेतन से प्रभावित होता है और वैसी कल्पनाएं करता है। जिस तरह व्यक्तिगत अवचेतन हमारे चेतन मन में प्रकट होने के लिए प्रयत्नशील रहता है उसी तरह जातीय अवचेतन के तत्व भी हमारे चेतन मन में प्रकट होने के लिए प्रयत्नवान होते हैं। परन्तु उनके प्रयत्नों में साधारणतया सफलता नहीं मिलती। पागलपन या विक्षेप की अवस्था में अथवा असंभावित परिस्थितियां, यथा भूकम्प के अवसर पर अथवा स्वप्नों में या कलाकार के कुछ असाधारण क्षणों में जातीय अवचेतन अभिव्यक्त होता है। ऐतिहासिक विकास की अवस्थाओं में जिस तरह मनुष्य एक के बाद दूसरे तरह के संतुलन में प्रवृत हुआ उसने संतुलन प्राप्त करने के लिए काम शक्ति का प्रयोग किया। काम शक्ति का स्वरूप केवल यौन मय ही नहीं रहा यद्यपि उसकी शब्दावली प्रतीकों के रूप में यौन सम्बन्धी बनी रही। एक व्यक्ति रात को स्वप्न देखता है कि वह अपनी माता और बहिन के साथ चढ़ रहा है। एक पर्वत की चोटी पर पहुंचने पर उसे बताया जाता है कि उसकी बहिन के बच्चा होने वाला है। इस स्वप्न की व्याख्या जहां फ्रायड यौन सम्बन्धों के रूप में करते हैं जुंग उसका बिल्कुल भिन्न अर्थ लगाते हैं। जुंग की दृष्टि में माता व्यक्ति की उन जिम्मेवारियों की प्रतीक है क्योंकि वह व्यक्ति अपनी माता के प्रति अब तक जीवन में उदासीन बना रहा था। बहिन उसकी प्रेम भावना की प्रतीक है और बहिन के बच्चा होने का अर्थ है व्यक्ति जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करना चाहता है। जुंग के अनुसार चेतन और अवचेतन का सम्बन्ध अनुरूप न होकर विरूप तथा क्षतिपूरक होता है। यदि चेतन में नारी एक पुरुष की ओर आकर्षित होती है तो उसका अवचेतन अनेक के प्रणय की मांग करता है।

जैसा कि कहा गया है जुंग काम शक्ति को यौन सम्बन्धों से मुक्त समझते हैं। ये उसे बर्गसां के 'जीवन शक्ति' (Elan Vital) या आधुनिक भौतिक विज्ञान की ऊर्जा (Energy) की तरह मानते हैं। काम शक्ति उनकी दृष्टि में जीवनेच्छा है। जिस तरह ऊर्जा का प्रयोग किसी भी दिशा में किया जा सकता है—स्टीम से रेलवे इंजिन भी चलाया जा सकता है कपड़े का कारखाना भी उसी तरह उनके मत में

काम शक्ति का प्रयोग भी विभिन्न रूपों में किया जा सकता है। काम शक्ति की इस नवीन धारणा के आधार पर वे फ्रायड और एडलर के विरोधी सिद्धांतों में समन्वय स्थापित करते हैं और व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों की-अंत: प्रेरित (Introvert) और वाह्य प्रेरित (Extrovert) की नियोजना करते हैं। उनके मत में कुछ लोगों के जीवन की प्रेरणा का मूल स्रोत काम वासना-यौनमय होती है कुछ का हीन भावना की ग्रंथि से प्रेरित अहं भाव। काम वासना जातीय अवचेतन मन में किस तरह परिवर्तित रूप धारण करती है इसका विवेचन वह नतत्व विज्ञान, पुराण, साहित्य और लोकगीतों के आधार पर करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि त्याग की भावना मनुष्य में उतनी ही अन्तर्निहित है जितनी अहं की क्योंकि वह प्रारम्भ से ही गिरोह में साथ (Gregarious) रहा है। नैतिकता मनुष्य की आत्मा की प्रक्रिया है जो उतनी ही प्राचीन है जितनी स्वयं मानव जाति। निश्चय ही यह फ्रायड के विचारों में बिलकुल विपरीत धारणा है।

कला के माध्यम से जातीय अवचेतन की अभिव्यक्ति

जुंग की धारणा है कि अवचेतन के चेतन में अभिव्यक्त होने पर और उसकी अंध शक्तियों का विश्लेषण किये जाने पर जीवन में विकास सम्भव है। हमारी जाति का अस्तित्व बना रहे हमारा जीवन विकासमान हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने आपको अभिव्यक्त करते रहें, हमारा जातीय अवचेतन व्यक्त होता रहे जिसके अभाव में उसका विस्फोट अत्यन्त भयंकर हो सकता है। अस्तु कला प्राण चेतना की ऐसी ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। कला की मूल प्रेरणा क्या है इसके सम्बन्ध में किसी अन्तिम निर्णय पर पहुंच पाना जुंग के मत में असम्भव है। उनका कहना है कि यदि मनोवैज्ञानिक कला सृजन के सम्बन्ध में पूर्वापर सम्बन्ध (Causal relations) स्थापित करने में सही हों, तो फिर कला के अध्ययन की कोई स्वतन्त्र आधार भूमि शेष नहीं रह पायेगी और मनोविज्ञान उसे अपने अध्ययन के लिए एक विशिष्ट शाखा बना लेगा। वास्तव में जीवन में सृजन-प्रेरणा जिसकी कला के रूप में स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है किसी तरह के नियमों में नहीं बांधी जा सकती।

कला का निर्वैयक्तिक स्वरूप

किसी कलाकृति के अध्ययन में साहित्यकार और मनोवैज्ञानिक की दृष्टि में मौलिक भेद होता है। उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक कहे जानेवाले उपन्यासों को लिया जाय। शायद कुछ साहित्यिक व्यक्ति यह समझते हों कि इन उपन्यासों के द्वारा साहित्य में मनोविज्ञान की सेवा की जाती है परन्तु वास्तव में मनोवैज्ञानिक के लिए यह उपन्यास उपयोगी नहीं होते क्योंकि उनका लेखक स्वयं ही मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर देता है और मनोवैज्ञानिक उसकी केवल आलोचना

कर सकता है या उसे उचित ठहरा सकता है। इसके विपरीत वे उपन्यास होते हैं जिनमें मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने में बल्कि लेखक जीवन का सम्पूर्ण संश्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है। मनोवैज्ञानिक के लिए ऐसे ही उपन्यास रुचिकर सामग्री प्रस्तुत करते हैं। व्याख्यापूर्ण साहित्य के बल्कि स्वप्नदर्शी कला मनोवैज्ञानिक के लिए जीवन को समझने के अधिक अवसर प्रदान करती है। कलाकार की कृति में हमारी समझ की पकड़ में न आनेवाला ऐसा वातावरण रहता है जो मनोवैज्ञानिक को उसकी व्याख्या करने के लिए ललकारता है। हमारे जातीय अवचेतन में, व्यक्तिगत अवचेतन में कितनी आदिम पशु प्रवृत्तियां दबी पड़ी रहती हैं, उन्हें पशु प्रवृत्तियां ही क्यों कहा जाय—मानव मन में कैसी रहस्यमता, एवं अगम्यता का वातावरण बना रहता है। केवल हम सभ्य कहे जानेवाले व्यक्तियों ने पुराण-पंथी या अंध विश्वासी कहे जाने के भय से उन प्रवृत्तियों का बुरी तरह से दमन कर दिया है क्योंकि हम स्वतन्त्र चेता होकर एक सुरक्षित व्यवस्थित विवेकपूर्ण जगत् की स्थापना करना चाहते हैं। परन्तु हमारे बीच ही कवि कभी हम उस जगत् का आभास देता है जिसे "निशा–लोक" कहा जा सकता है कि जो अंधकारमय रहस्यपूर्ण पशुओं राक्षसों, देवताओं परियों से भरा है। केवल कवि ही नहीं सिद्ध पुरुष भविष्य वक्ता, नेतागण स्वप्नदर्शी भी इसी लोक के आभास को पाते हैं। मानव मन के इस आश्चर्यजनक रूप को समझ कर ही जीवन में हम किसी तरह का विकास कर सकते हैं।

अतः जुग का मत है कि कविता में अपने युग की मांग करना भयकर भूल है। युग के प्रतिनिधि कवि की बात बहक है। कलाकार तो युग युग का प्राणी होता है। उनका कथन है कि प्रत्येक युग एक व्यक्ति की तरह है जिसके चेतन मन का भाग सीमित है। अतः उसे जीवन में मानसिक संतुलन के लिए अवचेतन के क्षतिपूरक प्रयास की आवश्यकता रहती है। यह प्रयास चित्रकार की तूलिका के द्वारा, कवि की लेखनी के द्वारा स्वप्नद्रष्टा की कल्पना के द्वारा जातीय अवचेतन की अभिव्यक्ति के रूप में होता है। यह प्राणी अपने युग की उन अमुक्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति करते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति अज्ञात रूप में भोगने के लिए इच्छुक रहता है चाहे उसका परिणाम अच्छा हो या बुरा, युग के घाव को पूरा करने में या उसकी विनाश लीला में। हम देखते हैं महाभारत के कृष्ण कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाने वाले हैं 'सूर सागर' के कृष्ण बाल भगवान हैं, 'बिहारी सतसई" के प्रेमी–रसिक और प्रिय प्रवास' के देश भक्त। इनमें से चाहे किसी भी कवि का कितना ही महत्व हो परन्तु प्रत्येक कवि लाखों प्राणियों की इच्छाओं को अभिव्यक्त करता है जिससे क्रमशः इन कवियों के युग के चेतन मन के परिवर्तित स्वरूप का पता चलता है।

जसा कि कहा जा चुका है, फ्रायड कलाकार के व्यक्तिगत जीवन मे पडी मानसिक ग्रथियो से कला-सजन का सम्बन्ध जोडते हैं। प्रत्यक्ष जीवन में इच्छाओ के अभाव में कलाकार कल्पना लोक मे अपनी इच्छाओ को पूरी करने का स्वाग रचता है। इस दृष्टि से जीवन मे कला का विशेष महत्व नहीं है वह एक अवाछनीय क्रिया है भुलावा है। फ्रायड कला को कलाकार की दमित वासनाओ की प्रतिक्रिया मानते हैं। यदि इसका अर्थ यह लिया जाय कि कलाकार के जीवन की व कौन सी बातें हैं जो उसे कला सजन के लिए प्रेरित करती हैं तो इस स्थापना को चुपचाप स्वीकार किया जा सकता है। कलाकार के जीवन से अलग कला कृति का स्वय अपने मे महत्व है। फ्रायड की यह मान्यता कि कलाकार विक्षेपपूर्ण व्यक्ति होता है जहा तक कलाकार के व्यक्तिगत जीवन का सम्बन्ध है चाहे सही हो परन्तु कलाकार के रूप मे यह कदापि सही नही है। जुग के मत में कलाकार निरपेक्ष और निर्वैयक्तिक होता है

"वह निरपेक्ष और निर्वैयक्तिक होता है—यहा तक कि अमानव भी क्योकि कलाकार के रूप मे वह अपनी कृति है, मानव प्राणी नही।"+ कलाकार के वयक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति के बारे मे उनका कथन है

'कलाकृति मे जिन व्यक्तिगत बेहूदगियो का समावेश होता है वे आवश्यक नही हैं। जितनी ही व्यक्ति विशिष्ठताओ का प्रदशन किया जाता है कला का रूप उतना ही मौन बन जाता है। कला सष्टि के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सीमाओ से ऊपर उठ कर कलाकार विश्व मानव के रूप में कवि की आत्मा और हृदय के सन्देश को सुनाय। कला के क्षेत्र मे व्यक्तिगत पहलू बधन है और यहां तक कि पाप भी।" ×

+ C G Jung 'Modern man in search of soul Pp 194

He is objective and impersonal even inhuman for as an artist he is his work and not a human being

× Ibid Pp 194

The personal idiosyncrasies that creep into a work of art are not essential, in fact the more it has to cope with these peculiarities, the less it is a question of art What is essential in a work of art is that it should rise far above the realm of personal life and speak from the spirit and the heart of poet as man to the spirit and the heart of mankind The personal aspect is a limitationand even a sin in the realm of art

हिन्दी कथा साहित्य की अन्तमुखी प्रवृत्ति

आधुनिक मनोविज्ञान का हिन्दी साहित्य पर गहरा और व्यापक प्रभाव दिखाई पडता है। यह मनोविज्ञान के अध्ययन का ही परिणाम है कि आज का हिन्दी साहित्यकार नय मूल्य सत्त्वा (values) और अभिव्यक्ति के नये माध्यमो को अपनाने के लिए सचेष्ट है। मनुष्य के सामाजिक व राजनीतिक जीवन की अभिव्यक्ति जो बाह्य घटित का अनुलेख्य है, वे बल्के व्यक्ति के अन्तर्जीवन के सत्य का उद्घाटन आज के साहित्यकार का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है। बाह्य जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत अवश्य किया जाता है किन्तु वे पात्रो के अन्तर्जीवन का अग बन कर आती है। और यही पर हम अनुभव करते हैं कि आधुनिक साहित्य और मनोविज्ञान सम्बन्धित-साम म बधे हुए हैं।

कथा साहित्य मे प्रेमचन्द युग तक बाह्य घटना वविन्य अथवा सामाजिक राजनैतिक समस्याओ का चित्रण ही प्रधान था। पात्रो के अन्तर्जीवन की भाकी प्रेमचन्द के उपन्यासो म भी मिलती है किन्तु वह क्षण भर सास ले लेने की तरह है। प्रेमचन्द के उपन्यासो म यदि केवल बाह्य घटनाओ को ही जान लिया जाये और पात्रो के अन्तर्जीवन की कथा एक बार भुलादी जाय तो अवश्य उपन्यास से रस प्राप्ति मे कुछ कमी होगी किन्तु उपन्यासकार का मन्तव्य कुछ भिन्न नही होगा। ठीक इसके विपरीत, प्रेमचन्द-युग के बाद के उपन्यासकारो-जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र देवराज आदि के उपन्यासो म बाह्य जीवन की घटनाओ का निरपेक्ष रूप म कोई महत्व नहीं। वे कथा की उपजीव्य बन कर केवल इसीलिए आती हैं कि हम पात्रों के अन्तमन की प्रतिक्रिया जान कर उनके चरित्र को अधिक स्पष्ट रूप में पहचान लें।

मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की समस्याए या व्यक्ति के अन्तरग जीवन से सम्बन्धित हैं और नय मूल्य सत्वों की खोज प्राचीन आदर्शों की प्रमान्यता पर।

प्रेमचन्द की रचनाओं म सामान्य मनोविज्ञान के दर्शन हाते हैं। प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कथा साहित्य म मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता गया। फ्रायड की विचारधारा स प्रभावित होकर आगे के उपन्यासो म केवल विवाहित स्त्री पुरुष के बीच यौन सबध की पवित्रता को उच्च मान्य के रूप म अपनाने के बजाय विवाह सस्था की उपयोगिता पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया गया जिसका विश्लेषण हम आगे अध्याय म कर चुके हैं जैनेन्द्र हिन्दी के पहले कथाकार हैं जिनकी रचनाओं म फ्रायड एव अन्य मनोविज्ञानिकों के जटिल मनोविज्ञान का समावेश हुआ है। जैनेन्द्र की रचनाओं म मनोविज्ञान का प्रभाव दो रूपों म लक्षित होता है-(१) चरित्र-गठन के रूप म (२) नवीन मूल्य-सत्वों (new values) की

स्थापना के रूप मे। फ्रायड के अनुसार मरणोन्मुखी मूल प्रवृत्ति (Death Instinct) दो रूपों म अभिव्यक्त होती है (१) आत्म पीड़क प्रवृत्ति (Masochistic tendency) तथा (२) पर पीड़क प्रवृत्ति (Sadistic tenndency)। जैनेन्द्र न इसी के अनुरूप आत्म-पीड़क एवं पर-पीड़क चरित्रों की सृष्टि की है। नवीन मूल्य सत्वो की स्थापना की दृष्टि से जैनेन्द्र मनोविज्ञान की गेस्टाल्ट धारा (Gestalt Psychology) के अधिक निकट हैं।

जैनेन्द्र के उपन्यासों मे पर-पीड़क तथा आत्म पीड़क चरित्र सृष्टि

"सुनीता" मे श्रीकान्त के

चरित्र मे पर-पीड़न (Sadism) का भाव

जैनेन्द्र के "सुनीता" उपन्यास मे श्रीकान्त को पर पीड़क चरित्र के रूप म अंकित किया गया है। श्रीकान्त का कालेज का मित्र हरिप्रसन्न आतंकवादी रह चुका था। सुदीर्घ काल के बाद एक दिन श्रीकान्त को अचानक एक मेले मे वह साधु के रूप में दिखाई पड़ता है। श्रीकान्त उसे पाने के लिए आतुर हो उठता है। वह हरिप्रसन्न को सामान्य जीवन की राह पर लाना चाहता है। क्यो लाना चाहता है, इसी म श्रीकान्त के मानसिक जीवन का भेद निहित है। श्रीकान्त के चरित्र गठन मे हम मनोवैज्ञानिक फ्रायड द्वारा कथित (Sadistic Character) पर पीड़क चरित्र की प्रवृत्तियां पाते हैं। फ्रायड के अनुसार आत्म पीड़न (Masochism) तथा पर पीड़न (Sadism) दोनो भाव मरणोन्मुखी प्रवृत्ति (Death instinct) की अभिव्यक्ति करते हैं। व्यक्ति में मरणोन्मुखी प्रवृत्ति प्रत्यक्ष रूप म नही प्रकट होती है। फ्रायड का कथन है कि मरणोन्मुखी प्रवृत्ति काम प्रवृत्ति के साथ मिश्रित हो जाती है तथा जब वह स्वयं के विरोध म केन्द्रित होती है तो आत्म पीड़न तथा जब अन्य के विरोध मे केन्द्रित होती है पर पीड़न भाव के रूप म प्रकट होता है। एरिक फ्राम (Erich Fromm) ने अपनी पुस्तक द फियर आफ फ्रीडम'(The of Freedom) म आत्म पीड़न पर पीड़न की प्रवृत्ति को व्यक्ति के अकेलेपन की असहायावस्था मे सहारे की चाह के रूप म आवश्यक बतलाया है। व मानते हैं कि फ्रायड का आत्म पीड़न व पर पीड़न सम्बन्धी उक्त विचार उनके आरम्भिक विचारो से भिन्न है। फ्रायड ने आरम्भ म इन प्रवृत्तियों को काम वासना से सम्बन्धित बताया था परन्तु वस्तुतः इनका मरणोन्मुखी प्रवृत्ति से सम्बन्ध है। काम वासना के मिश्रित हो जाने से मरणोन्मुखी प्रवृत्ति का रूप भिन्न दिखाई देने लगता है। आत्म-पीड़न व पर-पीड़न की प्रवृत्तियां मूलतः एक ही मानसिक स्थिति अकेलेपन की असहायावस्था की अनुभूति की उपज हैं। प्रेम के सम्बन्ध में इन प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए फ्राम का कथन है "प्रेम समानता व स्वतन्त्रता के भाव पर आधारित रहता है। यदि वह एक सहयोगी के समर्पण व व्यक्तित्व की विषमता पर आधारित हो तो वह आत्म पीड़न युक्त आश्रय की मांग का रूप लेता है, चाहे इस सम्बन्ध का किसी रूप में

बौद्धिकरण किया जाय। पर पीडन की प्रवृति भी प्राय प्रेम के छद्म-वेष में व्यक्त होती है। दूसरे व्यक्ति पर अधिकार यदि कोई विश्वास कर सके, वह अधिकार उस व्यक्ति के भले के लिए ही है प्राय प्रेम की अभिव्यक्ति करता प्रतीत होता है, किन्तु मूलत वह अन्य व्यक्ति पर अधिकार प्राप्ति के आनन्द के भाव से ही प्रेरित होता है।"×

इस विश्लेषण के प्रकाश में हम हरिप्रसन्न को सामान्य जीवन के पथ पर लाने की श्रीकान्त की प्रवृति की जाच करें। श्रीकान्त हरिप्रसन्न से मिला कि उसके जी मे बस गया। श्रीकान्त के लिए कालेज के जीवन से ही हरिप्रसन्न का निद्वन्द्व व जोखम से पूर्ण जीवन स्पृहणीय रहा है यद्यपि वह स्वय सयत व नाप जोख का जीवन व्यतीत करता है। क्या इस स्पृहा के कारण ही श्रीकान्त हरिप्रसन्न के कालेज जीवन का अधिकाश व्यय अपने पर नही ओढता ? और अब जब वह वकील बन गया है तो चाहता है हरिप्रसन्न भटकना छोड कर सीधी राह लगे। क्यो ? श्रीकान्त का स्पष्टीकरण ध्यान देने योग्य है उसके भटकते रहने से अपने बारे में मेरा विश्वास शिथिल होता है। हरिप्रसन्न की याद घुण्डीदार प्रश्न वाचक सी बनी मेरे इस जीवन के आगे खडी हो जाती है। मानो पूछती है, तुम यह श्रीकान्त, तुम यह ? जब कि तुम्ही देखो मैं क्या हू।' मुझे अपने तमाम जीवन की ओर हरिप्रसन्न की याद सदैव से सकेत करती दीख पडती है। मानो कुछ भीतर में अधेरा सा उठ कर तजनी की नोक मेरे सामने करके पूछता रहता है यो श्रीकान्त यही मार्ग है ? यही जीवन है ? इन सबसे मैं बच नही सकता। बचने के लिए ही मैं कहता हूँ हरिप्रसन्न को पाना होगा और पाकर इस विस्मयबोधक को मिटा कर वहां जीवन के आगे निश्चय वाचक विराम चिह्न ले आना होगा। मुझे देखना होगा कि हमारी सुनिश्चित और सुप्रतिष्ठित जीवन नीति को इस व्यक्ति की याद विचलित नहीं करती। मैं परमार्थ का कायल नही। कोई हरिप्रसन्न की कल्याण कामना के हेतु उसका हितू बनाना

× Erich Fromm The fear form Freedom Routledge and Kegan Paul London Fifth impression 1950 Pp 133

Love is based on equality and freedom If it is based on subordination and loss of integrity of one partner it is masochistic dependence regardless of how the relationship is rationalised Sadism also appears frequently under the disguise of love The rule over another person if one can claim that to rule him is for that person s own sake frequently appears as an expression of love, but the essential factor is the enjoyment of domination

चाहता हूँ या उसका उद्धार करना चाहता हूँ ऐसी बात नहीं है। मुझे तो मेरा अपना हित ही इसमें दीखता है। जब जब उसकी याद सिर उठाती है, मुझे अपनी तरफ शंका होती है अपने औचित्य पर सन्देह होता है।"* श्रीकान्त के इस कथन से ही भासित होता है कि जीवन नीति की बात मात्र हेत्वाभास (Rationalisation) है। उपन्यास के अंत तक भी गृहस्थ बन कर रहने अथवा निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करने की समस्या विरोध का रूप धारण कर हरिप्रसन्न को उद्वेलित नहीं करती। अवश्य, सुनीता की बहिन सत्या को पढ़ाने श्रीकान्त व सुनीता हरिप्रसन्न को गृहस्थी में बांधने की कल्पना करते हैं। फिर भी हरिप्रसन्न के निमित्त श्रीकान्त का सुनीता को पाने का क्या तात्पर्य हो सकता है। निश्चय ही गृहस्थ जीवन की प्रेरणा देना ही इसका मन्तव्य नहीं। इसका भी गूढ़ मनोवैज्ञानिक कारण है–और वह है हरिप्रसन्न को पाना श्रीकान्त जिस मार्ग का इंगित करे उस पर हरिप्रसन्न को चलते हुए देखना जिससे कि श्रीकान्त के व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता (अकेलेपन के भय की अनुभूति का नाश) पूरी हो। क्योंकि श्रीकान्त के अकेलेपन की अनुभूति एक तथ्य है। सुनीता को पाकर भी वह सूनापन दूर नहीं कर सका है, तभी तो हरिप्रसन्न के निमित्त सुनीता को पाने की बात कहता है। # और सुनीता की राह से हरिप्रसन्न को दुनिया में लाने की सोचता है।× डा० देवराज उपाध्याय का कथन है कि कुछ मनोवैज्ञानिक केस ऐसे होते हैं जो कुमारी कन्या से प्रेम न कर विवाहिता से ही कर सकते हैं। श्रीकान्त का उन्होंने ऐसा ही केस बताया है जो अपनी पत्नी सुनीता का हरिप्रसन्न से सम्बन्ध मान लेने के बाद ही उसे प्रेम दे पाता है। किन्तु ऐसा क्यों है ? इसके मनोवैज्ञानिक आधार की खोज उपाध्यायजी ने नहीं की। हम समझते हैं श्रीकान्त के चरित्र में परपीडन प्रवृत्ति बद्धमूल है और वह सुनीता व अन्य किसी को पाने के बदले हरिप्रसन्न को ही पाने को विकल है। इसके लिए कितना त्याग वह नहीं करता। श्रीकान्त के जटिल मनोविज्ञान को समझे बिना उसके व्यवहार को भी समझना असम्भव है। भला कोई व्यक्ति शरीर के साथ ही मन से भी सुन्दर लगनेवाली अपनी पत्नी को किसी अन्य व्यक्ति के साथ काम-

---

* जैनेन्द्रकुमार 'सुनीता', हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, चौथा संस्करण १९४९ पृष्ठ ११

वही, पृष्ठ १२९

× वही, पृष्ठ ११

सम्बन्ध स्थापन के लिए प्रेरित करेगा जब कि श्रीकान्त ऐसा ही करता है। × वस्तुत पर पीडन (Sadism) की प्रवृत्ति श्रीकान्त के चरित्र में बद्धमूल है जो उसके मित्र हरिप्रसन्न पर केन्द्रित हुई है और हरिसन्न को पाने के लिए वह अपनी पत्नी को साधन बनाता है (क्योंकि इस साधन के प्रचुर होने की सम्भावना है)। लाहौर से लौट कर जब श्रीकान्त सुनीता को अपने और निकट पाता है तब हरिप्रसन्न को भूलता नहीं वरन् उस साजने की आतुरता व्यक्त करता है और उसके द्वारा अंकित चित्र को स्टडी रूम म मध्य म स्मृति चिह्न के रूप मे लगाने को कहता है। श्रीकान्त का पर पीडन का भाव अपने लक्ष्य पात्र को पीड़ा देने के भाव के विपरीत प्रेम भाव से मिश्रित है, उसी रूप में जैसे कि एरिक फ्राम ने कहा है पर पीडन इस शब्द का हमने प्रयोग किया है वह अपेक्षतया पीडन से मुक्त भी हो सकता है और अपने लक्ष्यपात्र के प्रति मत्री भाव से मिश्रित होता है।" +

"त्यागपत्र" की "बुआ" मे आत्म-पीडन (Masochistic tendency) की प्रवृत्ति

जनेन्द्र के कथा-साहित्य म पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के प्रति आकर्षण का अनुभव करते हुए भी नारी कपटपूर्ण नही है। पति की इच्छा को वह अपने रास्ते को बाधक न मान, बल्कि सहयोगी ही मान कर उस पर चल पाती है। किन्तु यदि नारी के लिए वह रास्ता बन्द कर दिया जाता है और वह पति द्वारा ठुकराई जाती है तो वह उस पर भार बन कर नही रह सकती जनेन्द्र के नारी पात्रो की सरल निष्कपटता ही उन्हे गरिमामयी बना देती है। 'त्याग-पत्र' की 'बुआ' बचपन म शीला के भाई से प्रेम करती थी। जब बुआ का विवाह हो गया और वह अपने पति के यहा चली गयी तो शीला के भाई का पत्र आया जिसम उसने विशेष कुछ नही लिखा पर बुआ ने इसका जिक्र अपने पति से करना आवश्यक समझ कर किया। इसी पर वह पति द्वारा ठुकरा दी गयी। बुआ

× वही पृष्ठ १३६

तुमसे कहता हू तुम इन दिनो के लिए अपने को उसकी इच्छा के नीचे छोड देना। यह समझना कि मैं नही हूँ तुम हो और तुम्हारे लिए काम्य कम कोई नही है। इस भांति निषिद्ध कम भी कोई नही रहेगा।

+ Erich Fromm 'The fear of Freedom Routledge and Kegan Paul Ltd London Fifth Impression 1950 Pp 137

Sadism as we have used the word, can also be relatively free from destructiveness and blended with a friendly attitude towards its object

पतिव्रता धर्म की व्याख्या नये रूप में करती है। वह पतिव्रता का धर्म मानती है कि पति यदि उसे नहीं चाहता तो उस पर भार बन कर न रहे। इसके पश्चात् बुआ कष्टमय जीवन को अंगीकार करती है। वह कोयलेवाले के साथ रहती है जो उसे गर्भवती अवस्था में ही छोड़ कर चला जाता है। बुआ यह जानते हुए भी कि कोयलेवाला उसका साथ नहीं निभायेगा और छोड़ कर एक दिन चला जाएगा फिर भी उसे अपना सारा धन दे देती है। अस्पताल में एक बच्चे को जन्म देकर जो बाद में मर जाता है बुआ किसी प्रकार एक घर में बच्चों को पढ़ाने का काम करके जीवन व्यतीत करती है। किन्तु वहां भी व्यवधान आता है। उसके भतीजे प्रमोद का इस घर में विवाह का सम्बन्ध स्थापित होने वाला था। पर वह बुआ से अपना सम्बन्ध प्रकट कर देता है जिससे सम्बन्ध तो स्थापित होने से रुक ही जाता है किन्तु, बुआ का काम भी छूट जाता है। उसके बाद कथा–नायक का अपनी बुआ से मिलन वहां होता है जहां नगर की सडांद रहती है—"अधेड़ अवस्था की वेश्याएं, बेकार मजूर, पेशेवर भिखमंगे, कानून की आंख और चंगुल से बचकर छिपे अधेड़ काम करने वाले उच्चके लोगों के रहने की जगह।"

सम्पूर्ण कथा में बुआ के चरित्र की एक ही विशेषता उभर कर आती है—सुख सुविधा का अवसर मिलने पर भी बुआ ने उसे सदैव छोड़ दिया है और कष्ट-पूर्ण जीवन का वरण किया है। मनोविज्ञान की दृष्टि से आत्म पीडन (Masochism) की प्रवृत्ति बुआ के जीवन में बद्धमूल है। प्रमोद कोयलेवाले के यहां से बुआ को घर ले जाना चाहता है, अपने सम्भावित ससुराल में मिलने पर भी उससे घर चलने को आग्रह करता है, जीवन की दुर्गन्ध भरी जगह में मिल कर वह बुआ को अपने साथ ले चलने के लिए आतुर हो उठता है पर हर बार बुआ इसका प्रतिरोध करती है। क्या वह आत्मपीडा को अंगीकार करती है? बुआ समाज की यौन–नैतिकता की प्रचलित मान्यताओं की शिकार है और एक बार पति के द्वारा ठुकराई जाकर तथा पिता या भाई के घर भी स्थान न पाकर एकाकीपन की असहायावस्था की भावना से पीड़ित है। जिस स्थिति में पड गई है वहां सहारे के लिए किसी दिशा में वह हाथ नहीं उठा पाती। ऐसी दशा में पीडा में ही वह अपने को भुला देती है। उसका आक्रोश अपने ही विरुद्ध लरजता है। यद्यपि पीडा लक्ष्य नहीं है लक्ष्य तो अपने को भुलाना ही है वह पीडा के द्वारा हो, अपने को भाग्य के थपेडों को समर्पित करने से ही सम्भव है। मानो इस प्रकार पीडा को ओढ़ कर बुआ समाज की प्रचलित यौन नैतिकता के सामने प्रश्न चिह्न बन खड़ी होती है।

बुआ परिस्थिति के प्रति अपने को पूर्ण समर्पित कर असहायावस्था के भाव से मुक्त [redacted] जाती है। आत्म पीडन की प्रवृत्ति के कारण आत्म-हत्या भी तो सतोष

का कारण बन जाती है तब बुआ की पीड़ा को अपनाने की प्रतिक्रिया मनोविज्ञान की दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं है। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होने से जो स्वय आत्मपीड़न के मनोविज्ञान पर आधारित है, जैनेन्द्र के "त्यागपत्र" में बुआ के चरित्र में आत्म पीड़न का भाव प्रमुखतया पाया जाता है।

'त्याग पत्र' में नये मूल्यों की खोज गेस्टाल्ट पंथी मनोविज्ञान की प्रवृति

किन्तु 'त्यागपत्र' की मुख्य समस्या नये मूल्य तत्वों की खोज है। जैनेन्द्र के उपन्यासों की व्याख्या करते हुए डा० देवराज उपाध्याय ने अपने प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में दर्शाया है कि जैनेन्द्र का दृष्टिकोण गेस्टाल्ट पंथी है—सम्पूर्णतावादी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। वे किसी स्थिति का समग्र रूप में अवलोकन करते हैं अवयव रूप में नहीं—विश्लेषण नहीं संश्लेषण ही उनका श्रेय है। जैसा कि उपाध्यायजी ने जैनेन्द्र के उपन्यासों से उदाहरण देकर बताया है जैनेन्द्र ने समग्रतावादी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। पर यह दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक पद्धति (Psychological method) तक ही सीमित नहीं है। नवीन मूल्य सत्ता की खोज में भी जैनेन्द्र का यही दृष्टिकोण पाया जाता है। वस्तुतः गेस्टाल्टपंथी मनोविज्ञान का महत्व उसकी मनोवैज्ञानिक पद्धति के रूप में इतना नहीं है जितना कि नवीन जीवन मूल्यों की खोज में प्रयत्नशील होने में गाडनर मर्फी (Gardner Murphy) ने अपनी पुस्तक कन्टम्परेरी साइकलॉजीकल सिस्टम (Contemporary psychological System) में गैस्टाल्ट मनोविज्ञान के सम्बन्ध में लिखा है 'दर्शक का पहला काम निर्माण करना नहीं वरन् निःसंग रूप में विश्व में व्याप्त नियम व अर्थ को समझना है। अनेक रूप व प्रकारों में दर्शक के लिए सभी समान सम्बन्ध नहीं रखते। अनुवीक्षण अपूर्ण से अधिक पूर्ण की ओर गतिमान होता है तथा इस प्रकार रूपों का गत्यात्मक चुनाव व संगठन होता है। अतः हम अनुवीक्षण मनोविज्ञान से सीधे विचारों के मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और इसमें मूलतः भिन्न नियमों की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। सर्व प्रथम हमारे लिए प्रकृति में व्याप्त नियम को समझना आवश्यक है तत्पश्चात उसकी भीतरी व्यवस्था के उत्तरोत्तर प्रकारों को जानना जो संगठित होते हुए किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख प्रतीत होते हैं।' +

+ Gardner Murphy 'An Historical Introduction to Psychology Routledge and Kegan Paul Ltd London Fifth Ed Pp 289
The fisrst task of the perceiver, then is not to create, but to appreh nd the order and m aning which is objectively in the

"त्यागपत्र" में बुआ के सामाजिक बहिष्कार पर प्रमोद की झल्लाहट सृष्टि व समाज में व्याप्त प्रकृत नियम को ही जान लेना चाहती है। प्रचलित मूल्य-सत्ता की असंगति उसे उद्विग्न कर देती है "कहीं कुछ गड़बड़ है। कहीं क्यों सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि गलत है। समाज गलत है। जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊटपटांग है। इसमें तत्व नहीं है। इसमें जरूर कुछ होना होगा, जरूर कुछ करना होगा।' + कुछ करना और कुछ होना वस्तुत मानवता के अलग और अजस्र अंत सलिल को सभी में एक रूप प्रवाहमान देखने की आकांक्षा को व्यक्त करता है जिसकी गति में सदाचार के बाह्य कृत्रिम नियम काई की तरह हट जाते हैं। सहज भावना का वहां बहिष्कार नहीं और सदाचार के ढोंग का मूल्य नहीं है—बाहर और भीतर एक है। छल नहीं है। बुआ उस प्रवाहमान अंत सलिल को ही देखती है। समाज की जूठन कहे जानेवाले लोगों के बीच में रह कर भी वह अनुभव करती है इन लोगों में जिन्हें दुर्जन कहा जाता है, कई तह पार कर वह भी तह रहती है कि इनको छू सको तो दूध सी श्वेत सद्भावना का सोता ही फूट निकलता है।' × कलईवाले सदाचार की भर्त्सना कितनी खरी है "सच्चरित्र दिखनेवाला यहां नहीं टिक सकता। उसे मज्जा तक सच्चा होना होगा तभी चरित्र है। जो बाहर हो वही भीतर हो। भीतर

————

world There are however, many many forms of structures to be found not all of which are of equal relevance to the perceiver Just as perception moves from the incomplete towards that which is more nearly complete so there is continous dynamic selection and integration of forms We have thus a direct transition from the psychology of perception to the psychology of thought without involving the need of any essentially different principles We need to grasp, first of all the order lying in nature and waiting for our apprehension and second the internal order which the thinker manifests as he passes from one to another orderly form, creating new order in the succession and the integration

+ जैनेन्द्रकुमार 'त्यागपत्र' हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, चौथा संस्करण १९४९ पृष्ठ ६३

× वही, पृष्ठ ७५

पशु हो तो इस जलवायु में भीतर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरेगी। मनुष्य हो, तो भीतर तक मनुष्य होना होगा। कलई वाला समाचार यहां मुल कर उघड़ रहता है। यहां खरा कचरा ही टिक सकता है, क्योंकि उसे जरूरत ही नहीं कि यह कहे कि मैं पीतल नहीं हूँ। सोने के भय की यहां परीक्षा है।" + बाहर और भीतर की एकता की भावना से जीवन मूल्यों को समग्र रूप में देखने की प्रवृत्ति प्रकट होती है। स्पष्ट ही जैनेन्द्र की दृष्टि में प्रचलित यौन नैतिकता (Sex morality) मानवता के विकास की ओर प्रवाहमान न होकर चुनाव व संगठन के मार्ग में वरेण्य नहीं है। यही नहीं, धन संचय की प्रवृत्ति को भी वे मानवता के विकास के मार्ग में बाधक समझते हैं तभी तो प्रमोद बुआ की मृत्यु का समाचार पाकर सबसे अधिक दुःखी इसी बात से है कि जब बुआ से समाज की फूठन कहे जानेवाले लोगों के बीच का मिला और बुआ ने जितने रुपए दे सकते हो उतने दे जाने के लिए कहा था रुपये के जोर से यह नरक कुण्ड स्वर्ग बन सकता है, ऐसा तो नहीं जानती फिर भी रुपया कुछ न कुछ काम आ सकता है तब क्यों उसकी मुट्ठी मिंच गई उसका आज वह यही उत्तर दे सकता है 'मैं क्षुद्र था।'× मानो त्यागपत्र' का सन्देश यही है क्षुद्रता छोड़ो, कलईवाला समाचार छोड़ो–सहज मनुष्य बनो, पूरे मनुष्य। पत्तों के नीचे बहनेवाले दूध-से श्वेत सद्भावना के स्रोते को पहचानो और उस प्रवाह के वेग में कृत्रिम यौन-नैतिकता के किले को ढह जाने दो।

बाल मनोविज्ञान

आधुनिक उपन्यासकारों की अन्य प्रमुख प्रवृत्ति बाल मनोविज्ञान सम्बन्धी है। अज्ञेय के शेखर एक जीवनी प्रथम भाग का महत्व बाल मनोविज्ञान सम्बन्धी सामग्री के आधार पर है। वस्तुतः इस रचना को उपन्यास कहना भी उपन्यास शब्द की खींचतान करना है क्योंकि इसमें कथा की एकसूत्रता नहीं, व्यक्तित्व की ही एकसूत्रता है। स्मृति के दृश्य सामने आते हैं और व्यक्तित्व की रेखाएं उभरती जाती हैं। किन्तु मनोविज्ञान के अध्ययन को कलात्मक रूप में आत्मसात् करने की दृष्टि से यह अत्यन्त ही प्रौढ़ रचना है। शेखर के व्यक्तित्व के सूत्र उसके बाल जीवन से पोषित हुए हैं।

बाल्य काल के अध्ययन का आधुनिक मनोविज्ञान में बहुत महत्व समझा जाता है। हम स्मरण है कि फ्रायड ने मानसिक विकृतियों व जीवन प्रवृतियों के सूत्र बाल्य जीवन में ही देखे हैं तथा अपने सिद्धान्त को शैशव के काम जीवन के अध्ययन पर आधारित किया है। अन्य मनोविश्लेषणवेत्ताओं में अग्रा फ्रायड

———

१७ वही पृष्ठ ७५

१८ वही, पृष्ठ ७६

(Anna Freud) मेलन क्लेन (Melaine Klein), डेविड लेवी (David Levy) आदि ने बाल जीवन के अध्ययन के नवीन ढंग अपनाये तथा मनोविज्ञान की मनोविश्लेषण शाखा के बाहर भी मनोविज्ञानवेत्ताओं ने बाल मन का अध्ययन किया। अतः हिन्दी साहित्य पर मनोविज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के साथ यह स्वाभाविक ही है कि बाल मन के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति विकसित हो। यद्यपि हिन्दी में इस दृष्टि से अज्ञेय का 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास ही महत्वपूर्ण है किन्तु इस एक रचना से ही इस प्रवृत्ति का हिन्दी साहित्य की विचारधारा में विवेचन आवश्यक हो जाता है।

बाल-मन के अध्ययन का महत्व स्वीकार

बाल मनोविज्ञान का अध्ययन प्रौढ़ व्यक्तित्व के समझने का अनिवार्य साधन है। फ्रायड ने पहले प्रौढ़ व्यक्तियों का मनोविश्लेषण किया तथा उन्हें उनकी मानसिक विकृतियों के कारण उनकी शैशव काल की स्मृतियों में मिले। अब तक शैशव-काल की निर्लिप्तता एवं भोलेपन में विश्वास किया जाता था किन्तु फ्रायड ने सिद्ध किया कि शैशव के आरम्भिक काल में काम प्रवृत्ति सजग मात्र नहीं होती वरन् अवरोधों के कारण उसमें कुण्ठाएं भी उत्पन्न हो जाती हैं जो व्यक्तित्व के सहज विकास में बाधक सिद्ध होती हैं। केवल प्रौढ़ व्यक्तियों के जीवन के अध्ययन से ही नहीं शिशु जीवन के अध्ययन से भी फ्रायड ने इसी निर्णय को पुष्ट किया। अतः उनका बाल जीवन के प्रति आकर्षण अधिकाधिक होता गया।• अनेक मनोवैज्ञानिक फ्रायड की मान्यताओं से मतभेद रखते हुए भी शिशु जीवन के अध्ययन में प्रवृत्त हुए तथा परिवार समाज आदि के बाल मन पर प्रभावों का उन्होंने अध्ययन किया। अस्तु अज्ञेय ने मनोविज्ञान की इस सामग्री को अपने उपन्यासों में स्वीकार किया है। 'शेखर : एक जीवनी' की भूमिका में उन्होंने लिखा है 'बाल्य काल का अध्ययन स्वयं अपना महत्व रखता है और विदेशों के कई कलाकारों ने बाल्य मन का अध्ययन और चित्रण किया है लेकिन जीवनी में अध्ययन साध्य नहीं है वह केवल उन सूत्रों को खोजने का साधन है जो होते हैं प्रत्येक जीवन में।"+

• Sigmund Freud An Autobiographical study The Hogarth Press London Fourth Impression 1948 P p 58

In my search for the pathogenic situations in which the repressions of sexuality had set in and in which the symptoms as substitutes for what was repressed had had their origin I was carried further and further back into the patient's life and ended by reaching the first years of his childhood

+ अज्ञेय शेखर : एक जीवनी भाग १ सरस्वती प्रेस, बनारस, चतुर्थ संस्करण १९५१ पृष्ठ ६

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के सामने बाल मन के अध्ययन का अत्यधिक महत्व है। चरित्र की विशिष्ट प्रवृत्तियों की जड़ व प्रधानतया शैशव के अनुभव में देखते हैं। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास में भुवन रेखा के जीवन में असाधारण रूप से भटकने की प्रवृत्ति आ जाने पर उससे प्रश्न करता है व्यक्तित्व जड़े तो फैलने लगता है बिल्कुल बचपन से और' ×हमारा यहां "और" से तात्पर्य नहीं, तात्पर्य है यही दर्शाने से कि आज का उपन्यासकार चरित्रगत विशिष्टताओं का स्रोत शैशव के प्रारम्भ वर्षों में देखता है। अज्ञेय बच्चों के व्यक्तित्व के स्वाभाविक विकास के पक्षपाती हैं तथा सामाजिक परिवेश द्वारा व्यक्तित्व के विकास में पहुंचने वाली बाधा को हानिप्रद मानते हैं। वे बच्चों से प्रौढ़ों की तरह व्यवहार चाहने वाले माता पिताओं को घातक व कपटी मानते हैं लोग प्रायः भूल जाते हैं कि उनके जीवन क्या रहे। तभी समाज अपने लिए सम्भव पाता है कि विधान करे 'योग्य माता पिता वे हैं जो बच्चों को वय प्राप्त लोगों की तरह रहना सिखाएं।' इस एक भावना ने यौवन का जितना पराजय किया है उतना शायद ही किसी और कानून या प्रथा या विधान ने किया हो। अपनी सन्तान को वय प्राप्त लोगों सा बर्ताव सिखाते समय वे भूल जाते हैं कि उनके अपने जीवन क्या थे कि वे भी कभी बच्चे थे उनमें भी बच्चों सी निष्पाप शरारत थी, कि बच्चों का कोई दोष है तो यही कि वे इतने भोले इतने अछूते इतने स्वच्छ निष्पाप हैं कि वे अपने माता पिता को अपने कपट पर लज्जित कर देते हैं। यदि माता पिता अपना बचपन याद भर रख सकते तो उनकी सन्तान और वे स्वयं कितने सुखी होते।'* बच्चे के मन पर माता पिता व परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु प्रायः 'यह तो बच्चा है" कह कर उसकी उपेक्षा की जाती है। इस उपेक्षा की प्रतिक्रिया बालक के मन में भयंकर रूप में हो सकती है और उसके व्यक्तित्व में इससे गांठे पड़ना सम्भव है। इस सम्बन्ध में अज्ञेय लिखते हैं "कभी तो विवश होकर पूछना पड़ता है कि ये आखिर बच्चों को समझते क्या हैं? जहां एक ओर ये कहते हैं कि बच्चे सब बदमाश और पाजी होते हैं वहां दूसरी ओर वे ऐसा भी बर्ताव करते हैं, मानो बच्चे मिट्टी के लौंदे से अधिक कुछ न हों। बच्चों के सामने ऐसी हरकतें करते हैं। जो यदि वे बच्चे को तनिक भी समझते तो कल्पना में लाते भी लज्जित होते। किसने

× अज्ञेय नदी के द्वीप प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, दिल्ली १९५१ पृ० ३४

* अज्ञेय शेखर एक जीवनी' भाग १, सरस्वती प्रेस बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१, पृष्ठ १२५

नहीं सुना, अरे इसके सामने कहने मे क्या हर्ज है, यह तो बच्चा है। अरे उसे क्या पता वह तो बच्ची है। 'उत्तरदायित्व शून्य" बच्चे की निष्कपटता का उत्तरदायित्व कितना बडा है व भला क्या समझें। वे कोमल प्रारम्भिक मस्तिष्क, अपनी कोमलता क कारण ही भयकर होते हैं। हम लोग कच्ची सडक पर चलते हैं, तब पर बहुत गहरा धस जाता है। पक्की सडक पर पानी बह जाता है कच्ची सडक पर जहा जहा धसे हुए परो से गडढे बने होते हैं, वहा कीच बनती है =

'पथ की खोज" म डा० देवराज ने दर्शाया है कि बच्चों का स्वय अपना अरक्षित रूप होता है जो उपक्षणीय नही है। इस उपन्यास म दो छोटी सी घटनाए बाल मन का महत्व दर्शाती हैं। एक समय चन्द्रमाधव की भतीजी बर्फ खाने के लिए आतुर है किन्तु उसे कोई पसा नही दता कि तब तक बर्फवाला ही चला जाता है। तब वह रो पडती है। इस रोने की लेखक व्याख्या करता है कि बालकों के दु ख व उसक कारण को कोई महत्व नही देता, वह रोकर ही लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकती है सरला को सिर्फ बर्फ ही खाने को नही मिला सो नहीं। बर्फवाले को न पा सकने की घटना न उसकी सारी सतर्कता और उद्योग को मानो अर्थ हीन सिद्ध कर दिया था। निष्ठुर ससार म उस सरला की आकाक्षा और प्रयत्न का कोई मल्य ही न था।' ☼ ऐसी ही दूसरी घटना, साधना का विवाह होने वाला है। उसका छोटा भाई प्रमोद चन्द्रमाधव को चाहने लगा है। वह चन्द्रमाधव से साधना के तिलक तक रुकने का आग्रह करता है। किन्तु, तिलक तो बहाना है प्रमोद या भी चन्द्रमाधव रोकना को चाहता है और उसे अपने स्नेह की शक्ति मे विश्वास नही है कि बिना बहाने स्वय ही उसे रुकन क लिए कह दे। चन्द्रमाधव सोचता है 'क्या अवस्था कम होने से बालकों के सुख दु ख और भावनाओं का महत्व भी कम हो जाता है।" + बालकों के व्यक्तित्व क स्वतत्र विकास की भावना मनोवैज्ञानिक उपन्यासों म स्वाभाविक रूप स पायी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने बालक क जन्म के साथ ही उसके मन पर पडनेवाले प्रभावों का विश्लेषण किया है। स्पष्ट ही "शेखर एक जीवनी" म बाल मन का *अध्ययन साध्य नहीं, साधन है। अत शशव में प्राथमिक दो तीन वर्षों म उसके* व्यक्तित्व पर पडनेवाले प्रभावों का जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व व्याख्या की अपेक्षा रखते हैं *सकेत मात्र किया है। यह उचित भी है* क्योंकि एक तो जन्म स्तन पान, आदि की अवस्थाओं का विश्लेषण, जसा कि मनोविज्ञानिकों ने किया

= वही, पष्ठ १२६

☼ डा० देवराज पथ की खोज', बुद्धिवादी प्रकाशनगृह, लखनऊ १९५१, पृष्ठ ५४

+ वही, पृष्ठ २९५

है, स्वयं अस्पष्ट एवं विवादपूर्ण है । दूसरे, अभी वह जितना यथार्थिक विश्लेपण का विषय है उतना वह आकलन का नहीं । फ्रायड ने जन्म के अनुभव को बालक के जीवन की प्रथम भयावह स्थिति का अनुभव बताया है जिसकी पुनरावर्ति स्तन पान की उस अवस्था में होती है जब पहली बार उसकी भूख अतृप्त रह जाती है : (The situation of being unsatisfied in which the amount of excitation reaches a painful degree must be analogous for the suckling to its experience of birth and must therefore be repetition of that danger situation) ※

अज्ञेय ने लिखा है 'शिशु शायद जिस समय एक आकार हीन मांस पिण्ड भर होता है, तभी से वह एक अमिट छाप ग्रहण करने लगता है " शेखर अपने छोटे मांस पिण्ड की कल्पना करता है । उस समय भी उसकी शारीरिक क्रियाओं व मानसिक उलझनों का उसके व्यक्तित्व निर्माण में क्या योग रहा कौन जाने ? शेखर को शैशव के घटना चित्र चाहे स्मरण न हों किन्तु भाव स्थितियाँ उसकी कल्पना में साकार हो उठती हैं । फांसी के रूप में आकस्मिक प्रेरणा शेखर के मन में अतीत की, शैशव काल की भाव स्थितियों को यदि जगा देती है तो स्वाभाविक ही है । वस्तुतः मनोविज्ञान की दृष्टि से वास्तविक घटनाओं की अपेक्षा इन भाव स्थितियों का ही अधिक महत्व है । फ्रायड भी मानसिक रोगियों का विश्लेषण करते हुए इसी निर्णय पर पहुंचा था कि शैशव की जिन घटनाओं का वे मानसिक रोगी स्मरण करते हैं वास्तव में कभी घटित नहीं हुई वरन् वे उनकी भाव स्थितियाँ रहीं ।

※ Freud quoted in 'The Psycho analysis of children by Malanie Klein, The Institute of Psycho analysis, London Third edition 1949 p p 182

अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' भाग १ सरस्वती प्रेस बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१ पृष्ठ ४८

Freud 'An Autobiographical study The Hogarth Press London 1948 P p 61

The neurotic symptoms were not related directly to actual events but to phantasies embodying wishes and that as far as the neurosis was concerned psychical reality was more important than material reality

'शेखर एक जीवनी " मे मनोविज्ञान

शेखर मानव जीवन के मूल म तीन महती प्रेरणाए देखता है अहन्ता, भय और सक्स। यह तीनो प्रेरणाए सहजात प्रवतिया हैं। वे व्यक्ति-जीवन को ही प्रभावित नहीं करती वरन् सामाजिक सगठन और सस्कृति के आकार भी उन्ही पर आधारित हैं। सूत्र रूप म शेखर सामाजिक जीवन के नियम प्रस्तुत करता है 'प्रेम ने मनुष्य को मनुष्य बनाया भय ने उसे समाज का रूप दिया, अहकार ने उसे राष्ट्र मे सगठित कर दिया।" शशव की स्मृति के आधार पर तो शेखर ने इन प्रेरणाओ को पहचाना ही है किन्तु स्वय उसके स्मृत जीवन म इन प्रवृत्तियो का अत्यधिक महत्व रहा है।

अहन्ता – शेखर का अहमाव अत्यधिक शक्तिशाली है। उसमे विद्रोह की भावना इसी अह माव के कारण जाग्रत हुई। एतादृत्व मात्र के प्रति विद्रोह माता के अविश्वास की भयकर प्रतिक्रिया का परिणाम है। यहा तक कि शेखर विद्रोह की *जिस अवस्था म है उसका कुछ भी श्रेय अपनी माता को नहीं देना चाहता।* शेखर का बडा भाई भाग कर कलकत्ता चला जाता है। पिता को जब समाचार मिलता है तो उन्हें इस बात का बड़ा दुख होता है कि उसने वल्दियत गलत बतलायी। माता कहती है, ऐसे लडके का कोई क्या विश्वास करे और शेखर की ओर सकेत कर धीमे स्वर म कहती है ' सच पूछो मैं इसका भी विश्वास नही करती।' शेखर की इसके विरुद्ध भयकर प्रतिक्रिया होती है। वह रोटी छोड कर उठ गया। शाम तक पत्थर-सा बठा रहा। बहुत रात गये उसने डायरी म अपना उफान उतारा–' अच्छा होता कि मैं कुत्ता होता, चूहा होता कुछ घमय कीडा कृमि होता–बनिस्बत इसके कि मैं वसा आदमी होता, जिसका विश्वास नही है' और वह "आई हेट हर कह कर खिडकी स कूद कर घूमने चला जाता है। लिख कर, जिस पर विश्वास किया जा सके एसा व्यक्ति न बनने की प्रतिज्ञा करता है पर फिर उस कागज के टुकडे कर के फेंक देता है और सारे ससार का विश्वास पा उसके मुह पर ला पटक देने की सोचता है। इस प्रकार वह प्रखर विद्रोही बन कर घर लौट आता है। = और आज विद्रोही के रूप म फासी पर चढने आनेवाला शेखर अपनी मा को इतने गहरे प्रभाव के लिए कोई श्रेय देने की इच्छा नही करता। (A) एक और उदाहरण, शेखर का गाधीवाद के प्रति आकर्षण बढ गया है। पिता को यह आकर्षण उचित नही लगता। एक दिन पूछते हैं– कोई तुम्हें एक गाल पर थप्पड मारे तो क्या करोगे ? उत्तर–दूसरा गाल

= अज्ञेय शेखर एक जीवनी' भाग १, सरस्वती प्रेस बनारस, चतुर्थ सस्करण १९५१ पृष्ठ १८७

(A) वही पृष्ठ २७

भागे पर दूगा। पिता जो कोई आता है उसके सामने शेखर से वही प्रश्न फिर फिर पूछ कर उसका प्रदर्शन करते हैं। एक बार एक बैरिस्टर आते हैं तो उन्हें देख कर ही शेखर को घृणा हो जाती है। शेखर उनके सामने अपना प्रदर्शन अपमान समझता है और अप्रत्याशित उत्तर देता है "मैं उनके दोनों गालों पर लगाऊं।" कह कर शेखर हताश अगाढ़ नैराश्य के साथ लौटता है। अपना नाटक जिसे लिखने के बाद किसी को दिखाया भी नहीं था निकाल कर गाय को खिला देता है। पत्थर बन कर बैठ जाता है। बहिन की सहानुभूति उसे निराशा से लौटाती है। वह भीतर कुछ टूट गया अनुभव करता है यद्यपि उसकी बहिन के स्नेह ने उसे बचाया भी है। गांधीवाद पर विश्वास, पिता के प्रति पूज्य भाव समाप्त हो गया। ⁂ जीवन शिशु के यह गहरे परिवर्तन अहंता भाव से ही सम्बन्धित हैं किन्तु हम पाते हैं कि पिता के प्रति शेखर उतना कठोर नहीं है जितना माता के प्रति क्या इसका कारण यह नहीं है कि पिता पीट कर भी शेखर के पराजय भाव को आदर भाव से स्वीकार करते हैं जब कि माता उस पर अविश्वास ही करती रही है। माता के अविश्वास ने शेखर के व्यक्तित्व में मानसिक ग्रंथि-सी छोड़ दी है 'मुझे जान पड़ता है कि मेरे मन के दो टुकड़े हो गये हैं। कभी कभी तो दो से भी अधिक जान पड़ते हैं किन्तु दो तो अवश्य हो गये हैं। और जहां तक मैं स्वयं सोच पाता हूं इस न भरनेवाली दरार का कारण वह एक कल्पित चित्र ही है जो मेरे मन ने उस रसोईघर की दिवार भेद कर देखा था, उस समय जब कि मां कह रही थी— मैं तो इसका भी विश्वास नहीं करती।'

कभी कभी मुझे स्वयं ज्ञात होता है कि मेरे मन के ये दोनों खण्ड घोर युद्ध कर रहे हैं, मेरी चेतना पर स्वामित्व पाने के लिए लड़ रहे हैं और ऐसा भी होता है कि कभी किसी का प्रभाव बढ़ जाता है कभी किसी का और इसके फलस्वरूप मेरे कार्यों में एक प्रतिकूलता एक असम्बद्धता आ जाती है" ⊛ स्पष्ट ही आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में खण्डित व्यक्तित्व (duel personaity) की बात कही जा रही है।

भय —शेखर की भय की अनुभूति के साथ शैशव का एक विशेष प्रसंग जुड़ा है। अजायबघर में बाघ को देख कर वह भयभीत हो भाग खड़ा होता है। भागते समय भी वह यही समझता है कि बाघ उसका पीछा कर रहा है। अतः रास्ते में एक चपरासी जब उसे पकड़ता है तो वह चीख पड़ता है। पर धीरे धीरे इधर उधर देखने पर बाघ के न मिलने से आश्वस्त होता है। किन्तु रात में उसे भयंकर स्वप्न आने लगते हैं—अन्धकार असंख्य बाघों में बदल जाता है। अतः में वैसा ही बाघ लाए जाने पर भाईयों की देखा देखी वह उसके पास जाता है मुश्किल से पीठ पर बैठता भी है, निर्जीव पाकर

⁂ वही, पृष्ठ १३०

⊛ वही पृष्ठ ३१

मुह म हाथ भी डालता है। फिर चाकू से उसे चीर कर भीतर के घास फूस का विखेर कर हंसता है। शेखर के जीवन का प्रथावलोकन शमय के इस अनुभव की सीख प्रकट करता है 'शिशु ने जाना डर डरने म होता है। संसार की सब भयानक वस्तुए हैं, केवल एक घास फूस म भरा निर्जीव चाम, जिससे डरना मूर्खता है।' यही प्रेरणा शेखर को भावी जीवन म संसार म सबसे बडे डर शासन को चीर कर उसके भीतरी खोखलेपन को दिखाने के लिए प्रेरित करती है और इसके लिए फांसी का दण्ड पाकर भी वह इस दण्ड के प्रति केवल हंसता है और फांसी की कल्पना कर मुग्ध होता है। शायद यही अनुभव दूंआ मृत्यु के डर को भी शेखर के लिए तुच्छ बना देता है। वह तरना न जानते हुए भी भाईयों की देखा देखा पानी में कूद जाता है। गंगा की धारा म चले के स्तम्भों पर लेट कर बह जाता है, मृत्यु उसकी कल्पना में दान उखाड़न की क्रिया के सदृश अधिक महत्व नहीं रखती। इन क्रियाओं व विचारों के मूल में कदाचित् शेखर के भय के अनुभव की पहली प्रतिक्रिया की ही पुनरावृत्ति सजग होती है।

सेक्स —और सेक्स। शेखर की सम्पूर्ण जीवनी अनेक प्रणयों की स्मृति ही तो है। जीवनी को आरम्भ करने से पहले ही शेखर की स्मृति म कुछ चित्र तीव्रता के साथ घूमते हैं और यह चित्र हो हम कह सकते हैं उसके जीवन म सबसे अधिक महत्व के हैं। शशि उसके जीवन की सबसे अधिक स्फूर्ति देनेवाली प्रेरणा स्रोत है। शेखर का होना अनिवार्य रूप से शशि के होने को लेकर है। शेखर को याद आती है। कभी ऐसा भी था कि हम सन्ध्या मात्र म मिलते जुलते थे। स्नेह हम म था मोह हम में था लेकिन वह स्नेह नहीं जो कि विघ्नों के सहारे बनता है वह मोक्ष नहीं जो कि पीड़ा की नींव पर ही अपना घर खड़ा करता है।'== यह आकस्मिक नहीं है कि इस स्नेह की याद आन पर शीघ्र ही शेखर को याद आता है अपने जेल से छूट कर शशि (जो अब विवाहिता है) के घर मिलने जाना। स्पष्ट ही यह शशि के पराये हो जाने की भावना की कटु स्मृति है। शेखर शशि के गीत को अपने विद्रोही व्यक्तित्व से अपील के रूप में स्मरण करता है तो उसकी हंसी को अपने मन के दूसरे खण्ड म सौन्दर्य-चेतना जगाने के कारण रूप मे। अपनी सगी बहिन सरस्वती का भी शेखर के जीवन पर कम प्रभाव नहीं पड़ा। उसके प्रथम स्नेह की अभिव्यक्ति सरस्वती को देख कर हुई- कितनी अच्छी लगती हो तुम।' जब कि अभी उसकी शब्दावली म सुन्दर और असुन्दर अच्छे व बुरे के लिए अलग शब्द बनी भी नहीं थी। 'बहिन का गीत सुनते सुनते, एकाएक कोई अज्ञात भाव बालक के मन म जागता है। वह एकाएक उत्पन्न नहीं हुआ कई दिनो से धीरे धीरे उसके हृदय मे अंकुरित हो रहा है किन्तु इसकी यह व्यंजनीय सम्पूर्णता नई

== वही, पृष्ठ १७

है, आज ही मालाएं पहनाते समय, उसके मानसिक क्षितिज के ऊपर आई है। एक अत्यन्त कोमल स्पर्श से बहिन के कपोल को छूकर बालक कहता है– 'कितनी अच्छी लगती हो तुम।'' + सरस्वती शेखर के मन में कब 'सरस' बन जाती है कि वह इस नाम का उच्चारण भी नहीं कर सकता और मन में छिपा रखता है 'वहीं काश्मीर में उन्हीं वर्षा के दिनों एक दिन सरस्वती उसके मन में एकाएक सरस्वती' से बहिन और बहिन से 'सरस' हो गई थी–यद्यपि इस अंतिम अंतरंग नाम का उसने कभी उच्चारण नहीं किया, इसे मन में ही छिपा रखा। सरस्वती का स्नेह ही है जो उस समय शेखर को टूटने से बचा लेता है जब कि बैरिस्टर के सामने पिता द्वारा अपमानित किये जाने के बाद शेखर दुख अनुभव करता है। कितनी जिज्ञासाएं हैं जो शान्त तो नहीं होतीं पर घर में वह किसी से पूछने का भी साहस नहीं कर पाता। केवल एक सरस्वती कुछ सीमा तक उसकी जिज्ञासाओं को शान्त कर पाती है। मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए मां से यह पूछने पर कि तुम कब मरोगी जो व्यवहार घर में उसे मिला उससे वह हताश ही हो गया तब सरस्वती से ही उसे पता चला–मृत्यु का डर कुछ नहीं, मरने से इसलिए डरते हैं क्योंकि जीना अच्छा लगता है। 'बच्चे कैसे पैदा होते हैं' सम्बन्धी शेखर की जिज्ञासा भी सरस्वती द्वारा कुछ शान्त होती है जब वह यह बता कर 'मां के शरीर में से' अटूट मौन ग्रहण कर लेती है। शारदा के प्रति शेखर का वय सन्धि का प्रेम तो सचमुच शेखर को आकुल ही बना देता है। यातना से खिंच कर शेखर जब नौकरानी अत्ती की ओर बढ़ता है तो शारदा के बाल व नीम की सुगंधि की याद ही उसे लौटा ले आती है और वह कमरे के बाहर निकल कर जोर से दरवाजा बन्द कर चला जाता है। महाबलीपुर में मन्दिर की देहरी से चांद को देखते समय वह शारदा की याद की ओस के मीठे स्पर्श से भीग उठता है। कालेज जीवन में सत्याशिव के साथ वह छुट्टियां में कुछ दिन ट्रावनकोर पढ़ने के लिए चला आता है। वहां शारदा से भेंट होती है पर शेखर जानता है शारदा के घरवालों द्वारा शेखर व शारदा के मिलन का शान्त शिष्ट किन्तु दृढ़ विरोध किया जा रहा है। शेखर शारदा से स्पष्ट शब्दों में प्रणय की याचना भी करता है किन्तु शारदा कदाचित् उस याचना को सामाजिक अवरोधों के कारण नकारने के लिए बाध्य है। शेखर की व्यथा कितनी घनीभूत हो उठी है जब वह सोचता है कि महाबलीपुर के समुद्र ने उसे अस्वीकार कर बाहर फेंक दिया था। (महाबलीपुर में तैरना ठीक से न जानते हुए भी शेखर समुद्र में तैरने लगा था और डूबने को था कि समुद्र की लहर ने उसे बाहर फेंक दिया) शारदा भी उसे नहीं अपनाती तो अचम्भा क्या! शशि का विवाह होने पर जब वह जेल में शेखर को पत्र लिख कर आशीर्वाद मांगता है 'तुम उस शशि को आशीर्वाद देना जो आज

+ वही पृष्ठ २१

तक तुम्हारी बहिन थी, किन्तु कल वैसा नही रहेगी, और जो आज इस पद से अंतिम बार तुम्हे प्रणाम करतो है ' तब शेखर अनुभव करता है कि शशि के अलग होने के रूप मे उसका एक अग ही अलग हो गया है "नही है वह सहोदरा, वह सहजन्मा है एक खण्डित आत्मा दो क्षेत्रो मे अकुरित हुई है—तभी तो तभी तो शेखर अपने को देखता है और नही समझ पाता कि कहा वह अलग हो गया है-यद्यपि एक गहरी टीस उसमे उठती है और एक मूच्छना भी उसके बचे हुए गात पर छाई जा रही है "× शेखर के स्नेहार्पण के सम्बन्ध मे एक बात ध्यान देने योग्य है कि उसमे सर्वत्र एक अतिरिक्त-पवित्रता-शारीरिक तटस्थता, का भाव पाया जाता है। इसकी जड उसके बाल जीवन की उस 'भद्दी व बीभत्स' स्मृति मे है जो उसे याद भी नही है पर उस दृश्य को देखकर उसके हृदय मे घृणा की भावना जगी है "जिस वे ही समझ सकते हैं, जो कभी वासना से उत्पन्न हुए पाप कर्म के किनारे तक पहुँचकर लौट आये हैं—किसी बाह्य रुकावट के कारण नही, एक आतरिक स्वत उत्पन्न ग्लानि के कारण।'+ यही कारण है What all Married People Should know शीर्षक पुस्तक को पढ कर जब पहली बार बच्चे कैसे जन्मते हैं' का रहस्य जानता है तो "अकथ्य घृणित अचिन्तनीय भ्रष्टाचार" के प्रति उसकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है और यथार्थ का ज्ञान पाकर वह सोचता हैं ' अच्छा है कि सारा ससार मर जाय। √अजायबघर मे महावीर जिन की विशाल काय नग्न मूर्ति को देखना, तारा की मूर्ति की पीठिका पर रात भर बैठे रहना एकाकी प्रकृति के आगन मे अपनी देह को अनावृत करना माता के मासिक धर्म की अवस्था के प्रति जिज्ञासा, माता पिता के प्रेम व्यापार दर्शन आदि बाल जीवन की सबल अनुभूतियो का 'शेखर एक जीवनी" मे चित्रण है। आधुनिक मनोविश्लेषणवेत्ता व्यक्तित्व की जडें ऐसी ही बाल जीवन की परिस्थितियो मे देखते हैं।

'शेखर एक जीवनी मे वय सधि अवस्था का मनोविज्ञान

बालक की वय सधि काल की मानसिक प्रवृतियो का भी शेखर एक जीवनी" मे चित्रण मिलता है। वय सधि की अवस्था मे बालक के मानसिक जगत् मे गहरी उथल-पुथल मची रहती है। इस अवस्था मे बालक को सामाजिक व्यवस्था के प्रभाव से स्ववर्गीय रति अपने लिंग के दल के साथियो के साथ सम्बन्ध को छोड विजातीय रति विपरीत लिंग के साथी या साथिन को खोजने की आवश्यकता का अनुभव

× अज्ञेय शेखर एक जीवनी भाग २ सरस्वती प्रेस बनारस पाचवा स०पृष्ठ ८०

+ अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' भाग १ सरस्वती प्रेस बनारस चतुर्थ सस्करण १९५१ पृष्ठ ४२

√ वही पृष्ठ १९७

होता है। इसके साथ ही उसकी शारीरिक बनावट में भी परिवर्तन होने लगता है। एक ओर बालक अपने सम्पूर्ण परिवेश के प्रति विद्रोह का भाव लिए रहता है तथा स्वयं को संसार भर का के द्र समझ अपने विरुद्ध षडयन्त्र सा अनुभव करता है तथा दूसरी ओर बालक स्वयं ही अपनी इच्छाओं को अच्छी तरह नहीं समझ पाता। इस समय जिस एक विपरीत लिंगी व्यक्ति की ओर उसकी रति भावना केन्द्रित होती है उसे वह सम्पूर्ण मन से चाहने लगता है। प्रायः वह उन दिवा-स्वप्नों में खोया रहता है जिनमें अपने प्रिय पात्र को अपनी ओर आकर्षित पाता है। वय सन्धि की अवस्था में परिवार के नियन्त्रण का भी बालक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस समय वह माता पिता के नियन्त्रण के विरुद्ध असन्तोष लिए रहता है किन्तु साथ ही इससे वह भय भी बना रहता है कि सचमुच ही माता पिता के स्नेह से वह अपना सम्पर्क ही न तोड़ ले। 'शेखर एक जीवनी' में वय सन्धि काल की प्रायः सभी उक्त मानसिक प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है।

घर में बहिन सरस्वती के प्रति ही स्नेह भाव होने के कारण शेखर प्रायः उसके साथ ही रहता है। सभी वाञ्छित व प्रिय की पुञ्जीभूत रूप उसके लिए सरस्वती ही बन जाती है जब कि मां सभी अवाञ्छित, अप्रिय की कठोर साकार रूप। सरस्वती विवाह व उसके पति के घर चले जाने से शेखर कितना व्यथित रहता है। क्या भाव उसके मन में है इसका स्वयं उसे भी पता नहीं। वह जब तब रो पड़ता है पर क्यों कारण उसके स्वयं के समक्ष में नहीं आता। वह अपने सम्पूर्ण परिवेश को अपने विरुद्ध षडयन्त्र में लीन समझता है "उसकी यह भावना धीरे धीरे बढ़ने लगी कि संसार में अन्याय ही अन्याय है और यह अन्याय विशेष उस पर किया जाने के लिए है। मानो संसार का पहिया उसी को धुरी मान कर उसके आसपास घूम रहा है जो कुछ है केवल इसलिए है कि शेखर है और साथ ही साथ उसकी असहिष्णुता बढ़ने लगी वह चलने लगा उस अन्याय के विरुद्ध ' + उसे अपने वय सन्धि काल के शारीरिक परिवर्तनों का भी अनुभव होता है 'उसे लगता, उसके शरीर में कोई परिवर्तन हो रहा है। उसे लगता वह बीमार है उसे लगता उसमें बहुत शक्ति और स्फूर्ति आ गई है, उसे लगता, उसे जीवन में एक नई विरासत मिलने वाली है और वह अपने ही मद से उन्मद कस्तूरी मृग की तरह या प्लेग से आक्रान्त चूहे की तरह, या अपनी दुम का पीछा करते हुए कुत्ते की तरह, अपने ही आसपास चक्कर काट कर रह जाता × शेखर मां के साथ शारदा की मां के यहां जाता है तब पहली बार उसे शारदा की उपस्थिति में अपने हाथ, पैर व कपड़ों का भद्दापन अनुभव

\+ वही पृष्ठ १५३

× वही पृष्ठ १५४

होता है। शारदा को शेखर ने हृदय से प्रेम किया है "वय सधि का व्यक्ति मात्र के प्रति घृणा और विद्रोह के बाद का प्रेम !"+ शारदा के अनुपगो ने उसे कितने दिवा स्वप्ना म विभोर नही कर लिया है –दिवा स्वप्न जो कवि की कल्पनाओ से कम नहीं हैं, कथाकार ने कहा भी है ' वयसधि काल मे कौन नही कवि होता।" × शारदा की उपस्थिति में ही उसे वय सधि में वह उत्कट अनुभूति हुई है जिसे वह नही जानता क्या कहे, और एक छोटा सिर उस सिर के बालो की गध ने उसे घृणा के स्पर्श से दूर कर दिया है, सावित्री, शान्ति और म०ा तक कि शशि के बारे म कभी सोचकर उसे अनुताप हुआ है कि क्यो उसने अपने जीवन का एक क्षण भी शारदा के अतिरिक्त किसी को दिया, अनुताप जिसको साँस वह लेता रहा उस क्षण तब कि जब स्वय शारदा ने ही महाबलीपुर क समुद्र की तरह उच्छिष्ट समझ कर उसे अपने से बाहर नही फेंक दिया, कि जिसे अपनी पराजय मान शेखर भागा है पराजय से दूर।

परिवार का व्यक्तित्व पर प्रभाव

पिता— "व्यक्तित्व के निर्माण म परिवार के प्रभाव का मनोविश्लेषणवेत्ता बहुत महत्व मानते है। शेखर के व्यक्तित्व में भी उसक परिवार के लोगा का व परिवश का महती योग रहा है। शेखर के व्यक्तित्व का आकर्षण–जीवन के प्रति आदर भाव विद्रोह भावना, और बौद्धिकता व सौदर्य प्रेम की प्रवृत्तिया हैं जिन्ह उसने परिवार के प्राणियो से अपने व्यक्तित्व मे छाप रूप पाया है। शेखर के पिता म दूसरों की पराजय को भी उदारता से झेलने की सामर्थ्य थी। कितनी बार शेखर घर के वातावरण स खिन्न होकर चला गया है पर पराजित होकर लौटा है। और उसके पिता ने उसे एक शब्द भी नही कहा है। पिता ने उसे पीटा भी है तो शान्त होने पर फिर उससे सुलह करली है। जिस आदर भाव से पिता दूसरो की पराजय भी झेल लेते उसी आदर भाव से शेखर अपनी जीवनी की स्मृतियां लिपिबद्ध करता है। मानव की कमजोरियों के प्रति उसमे जब तब महानुभूति का भाव ही जागृत हुआ है। यही नही जीवन के प्रति उसम गहरा सम्मान है तभी तो फासी की कल्पना में वह प्रारम्भ ही में जीवन की घोर हृदयहीन उपेक्षा का प्रदर्शन देखता है यद्यपि स्वय उसम मृत्यु का लेश भी डर नही रहा है।

माता—शेखर की विद्रोह भावना बचपन मे माता द्वारा उसके प्रति प्रदर्शित अविश्वास की प्रतिक्रिया का परिणाम है यद्यपि इसके लिए वह अपनी माता को कोई श्रेय नही देना चाहता और मानता है कि विद्रोही बनते नही, पैदा होते हैं। किन्तु क्या कुछ प्रसगों में यह हेत्वाभास और शेखर के बढ़े हुए [illegible]ह भाव

+ वही, पृष्ठ १६६
× वही, पृष्ठ १७०

का प्रश्न नहीं ? चाहे अन्तर जहाँ यह है (फांसी की सजा पाये हुए विद्रोही के रूप में) उन बड़े परिवार का सम्पूर्ण अर्थ अपनी माता को न है किन्तु उसके प्रभाव को अस्वीकार करने का कोई रास्ता नहीं है प्रकृति के साहचर्य एवं अपनी बहिन सरस्वती के स्नेह ने उसकी सौन्दर्य-वृत्ति को जागृत किया है। घर के सम्प्रदायहीन वातावरण ने जिसमें ईश्वर शिशु के जन्म आदि से सम्बन्धित उसकी जिज्ञासाएं शान्त नहीं हुई, उसे घोर बुद्धिवादी बना दिया है– यदि किसी का कोई है, तो उसकी अपनी बुद्धि मनुष्य को उसी के सहारे चलना है, उसी के सहारे जीना है। एक स्थान अवश्य है जहां बुद्धि जवाब दे जाती है लेकिन इसमें यह ईमानदारी है जो बात नहीं जानती, वहां पर चुप रहती है गलत उत्तर नहीं देती।"+ शेखर ने पशु पक्षियों जगत आदि से स्वतन्त्रता की भावना का आदर्श सीखा है। नीच समझी जानेवाली जाति की कन्या फूला की माता को अपने लड़की को आत्मविश्वास की सीख देना शहर में बाढ़ आने पर नाव में पिता के साथ गरीबों की बस्ती की ओर जाकर गरीबी के कारण न खेल सकनेवाले शिशुओं को देखने खाना न मिल सकने के कारण घोड़े के गिर कर मर जाने आदि शैशव कालीन स्मृतियों में उसकी सामाजिक दृष्टि के अंकुर भी जग हैं।

व्यक्तित्व की असाधारणता

माता, पिता तथा बहिन के सम्बन्धों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी "शेखर एक जीवनी' का विवेच्य विषय रहा है। बालक पर माता और पिता के प्रभाव के सम्बन्ध में फ्रायड ने एक स्थान पर लिखा है कि 'काम जीवन के विकास में आडीपस ग्रंथि की अवस्था की समाप्ति पर माता को काम-लक्ष्य के रूप में छोड़ना आवश्यक होता है। उसका स्थान दो विकल्पों में से एक लेता है–या तो माता से अपनी अनुरूपता स्वीकार करले अथवा पिता से गहन अनुरूपता अपनाये। दूसरे विकल्प को ही हम प्रायः अधिक उचित मानते हैं, इससे एक सीमा तक माता के प्रति स्नेह मात्र बना रहता है। इस प्रकार आडीपस ग्रंथि का विलय लड़के के चरित्र में पुरुष के योग्य गुणों को सम्पादित करता है। प्रायः इसी के अनुरूप छोटी लड़की में आडीपस दृष्टि अपनी माता से गहरी अनुरूपता प्राप्त करने (अथवा यह अनुरूपता प्रथम बार ही प्राप्त की गयी हो) में रत होती है–जिसका परिणाम लड़की के चरित्र को स्त्रीजनोचित रूप देने में प्रकट होता है।"× अतः साधारण व

+ अज्ञेय शेखर एक जीवनी प्रथम भाग सप्तम संस्करण सरस्वती प्रेस, बनारस पृष्ठ ९३

× Freud 'The Ego and the Id' The Hogarth Press and The Institute of Psycho analysis Fifth impression, 1949 Page 41

Along with the dissolution of the Oedipus complex

ामान्य पुरुष पिता के चरित्र के अनुरूप गुण ग्रहण करता है। पर शेखर पिता की ोर आकर्षित होकर साधारण नहीं है। फ्रायड की मान्यता के विपरीत शेखर पिता प्रभाव को ग्रहण कर असाधारण बना है। शेखर के मनोविज्ञान के ज्ञान का वश्राम भी टूटता लिए है प्राय लोग सन्तान पर मा के प्रभाव की बात कहा करते हैं। बहुतो का विश्वास है कि सभी असाधारण व्यक्तियो पर उनकी मा का प्रभाव रहा होता है। लेकिन जहा तक मैं समझ पाया हूँ, पुत्रो पर मा का प्रभाव पुत्रियो पर पिता के प्रभाव की तरह नकारात्मक होता है। वह स्थिरता देता है, उत्थान म भी उतना ही बाधक होता है, जितना कि पतन म। यो कहना चाहिए, मा की ओर आकर्षित पुत्र और पिता की ओर आकर्षित कन्या साधारणता की ओर, सामान्यता की ओर जाते हैं और पिता की ओर आकृष्ट पुत्र, माता की ओर आकृष्ट कन्या असाधारण होते हैं।'× शेखर अपने पिता का उपासक है और साधारण नही है। शायद मनोविज्ञानवेत्ता फ्रायड ही की स्थापना सही हो किन्तु, शेखर रचनाकार की सृष्टि है, पूर्णतया वास्तविक जगत् का जीता जागता व्यक्ति नही, अत उसके सम्बन्ध म वही सत्य मानना होगा जो उसका रचनाकार उसके सम्बन्ध म कहता है।

बहिन

हिन्दी के कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासो में बहिन के प्रति भाई के उस सीमा तक आकर्षण का चित्रण मिलता है जिसे रति प्रेम की संज्ञा से अभिहित किया

---

the Object cathexis of the mother must be given up Its place may be filled by one of two things—identification with the mother or an intensified identification with the father We are accustomed to regard the latter outcome as the normal it permits the affectionate relation to the mother to be in a measure retained In this way the passing of the oedipus complex would consolidate the masculinity in the boy s character In a precisely analogous way the outcome of the oedipus attitude in the little girl may be an intensification of the identification with her mother a result which will stamp the child s character in the feminine mould

× अज्ञेय शेखर एक जीवनी प्रथम भाग सरस्वती प्रेस बनारस सप्तम सस्करण पृष्ठ १२३

जा सकता है, चाहे उनमें निकट शारीरिक दूरी भले बनी रही हो। इलाचन्द्र जोशी के 'पूर्णामयी'' उपन्यास में तो रञ्जन अपनी बहिन को उसके प्रेमी डा० कन्हैयालाल से मिलते देख कर ईर्ष्या से मर कर स्वयं आत्म हत्या कर लेता है। जिस परिवार में पूर्णामयी रहती है उसमें अविवाहित अवस्था में उसका प्रेमी से मिलना अनुचित नहीं है जबकि विशेष रूप से वह उसी से विवाह करने का भी निश्चय कर चुकी हो, किन्तु रञ्जन का उसकी ओर आकर्षण ही उसकी ईर्ष्या का कारण बनता है और आत्महत्या का भी। डा० देवराज के 'पथ की खोज' उपन्यास में साधना यद्यपि चन्द्रनाथ की पत्नी सुशीला की सखी है, किन्तु साधना व चन्द्रनाथ का सम्बन्ध इतना गहरा हो गया है कि भाई और बहिन के सम्बोधन के साथ ही साधना अपने हृदय की गूढ़तम बातें पत्र द्वारा चन्द्रनाथ को लिखती है जबकि चन्द्रनाथ ने साधना को सदैव अपने निकटतम पाया है 'मेरे जीवन की यह बड़ी साध रही है कि कहीं मेरा ऐसा सम्बन्ध हो जहाँ किसी प्रकार का अलगाव किसी तरह का दुराव न रहे। जहाँ मैं अपने को सम्पूर्णता में दे सकूँ ... जहाँ मुझे आलोचना का भय न हो। जहाँ केवल एक ही वस्तु मिले अकृत्रिम प्रेम निर्मल सौहार्द। + वह साध साधना है जिसे उसके विवाह की घटना में चन्द्रनाथ दूर ... बहुत दूर अनुभव करने लगता है। 'शेखर एक जीवनी'' में शशि शेखर के जीवन के निकट ही नहीं आयी एक तरह से उसने उसे बनाया भी है। यह शशि शेखर की सगी बहन नहीं है सगी नहीं है इसलिए शेखर उसे अपने और भी निकट अनुभव करता है। अपनी सगी बहिन सरस्वती के अपने व्यक्तित्व पर प्रभाव को शेखर ने एक गहन मनस्तत्व द्रष्टा के रूप में व्यक्त किया है। वय सन्धि काल में वांछित व प्रिय का पुञ्जीभूत रूप सरस्वती बन जाती है जब कि माँ अवांछित व अप्रिय का। शेखर बहिन में अपना प्रक्षेपण (projection) करता है। वह इस सत्य का आभास पाता है 'आदमी बनते हैं तो वे अपने को प्यार करने वाली अपने से छोटी किसी स्त्री के लिए बनते हैं जो उनमें आस्था रखती है, और जिस आस्था के योग्य होने की चेष्टा में वे जान लड़ा देते हैं ... माताएं हैं अपना स्थान रखती हैं, लेकिन बनाती हैं बहिनें या बहिनों के बराबर और कन्याएं जो बहिनों के बराबर, बहिनों से बढ़ कर होती हैं ... माँ जन्म देती है, परवरिश देती हैं पिता बुद्धि देते हैं लेकिन व्यक्तित्व अपने ही को सहने की सामर्थ्य वह वहाँ से नहीं मिलती ...।' × मलेन क्लेन (Malanie Klein) ने अपनी पुस्तक 'द साइकोएनलेसिस आव चिल्ड्रन'' (The Psycho analysis of Children) में बताया है कि बालक के विकास में

+ डा० देवराज 'पथ की खोज' बुद्धिवादी प्रकाशन गृह लखनऊ १९५१.

× अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' प्रथम भाग, सरस्वती प्रेस बनारस। सप्तम सं० पृ० १४४

माता या पिता के अतिरिक्त किसी एक अन्य ऐसे व्यक्ति का गहरा हाथ रहता है जिसके प्रति वह अपने जीवन में स्नेह व सहानुभूति की आकांक्षा रख सके । यदि आडीपस अवस्था में किसी प्रकार बालक के लिए उसके काम लक्ष्य (माता पिता) उसकी दृष्टि में अच्छे नहीं हैं तो अन्य व्यक्ति उसके काम-लक्ष्य का रूप ले लेते हैं । इस प्रकार आडीपस काम लक्ष्य का भय (अथवा उनके प्रति घृणा) आगे आकर उन्हें प्रेम लक्ष्य के निकट ले आते हैं । X सम्भवत बहिन के प्रति भाई के प्रेमाकर्षण का जो रति की सीमा को छूता-सा प्रतीत हो, यही कारण है जिसका हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्राय चित्रण किया जाता है । "शेखर एक जीवनी" में तो स्पष्ट ही आडीपस अवस्था के काम-लक्ष्य माता के प्रति शेखर के मन में विरोध व घृणा का भाव है । बचपन में माँ के बदले बहिन सरस्वती ही उसके लिए नया काम लक्ष्य बन कर आती है । वय सधि में उसका प्रेम स्वाभाविक रूप में शारदा की ओर उन्मुख होता है पर परिस्थितियों के कारण सफल नहीं होता । शशि जो उसकी सगी बहिन नहीं पर बहिन है और सगी न होने के कारण ही अधिक निकट है के प्रति जो आकर्षण भाव शेखर में पाया जाता है उसमें कितना अश उसके वय सधि के प्रेम की पराजय का है और कितना आडीपस अवस्था में मा के बदले बहिन के प्रति उन्मुख काम-लक्ष्य का इसका विवेचन कोई मनोविज्ञानवेत्ता ही कर सकता है ।

मानसिक कुठाओं का चित्रण

सामाजिक बधनो के विरुद्ध प्रकृत जीवन की मांग

फ्रायड के अनुसार मानव सभ्यता की मूल समस्या व्यक्ति और समाज के अपरिहार्य विरोध की समस्या है । समाज अपने वर्तमान रूप में व्यक्ति के प्रकृत जीवन में अवरोधों को खड़ा कर उसे मानसिक कुण्ठाओं से ग्रसित बना देता है । यह कुण्ठाएं प्रतीकात्मक स्वप्न सांकेतिक चेष्टाओं शारीरिक व मानसिक रोगों कलात्मक सृजन मानसिक ग्रन्थियों विक्षेप आदि के रूप में व्यक्त होती हैं । सामान्यत ऊपर से सभ्यता का चोगा पहिन भीतर से मनुष्य की प्रकृत प्रवृत्तियां

X Melanie Klein "The Psycho analysis of Children The Hogarth press and the Institute of Psycho anlysis Third Edition 1949 Page 303

But if, because its anxiety is too great or for realistic reasons, its oedipus objects have not become good imagos, other persons such as a kindly nurse brother or sister, a grand parent or an aunt, or uncle can in ceritan cercumstan es take over the role of the 'good' mother or the 'good father

दुत्कारती रहती हैं। यदि मनुष्य किसी तरह प्रकृत जीवन बिता सके तो उसका जीवन सृजनात्मक आनन्द लिए विकासमान होगा किन्तु अवरोधों के खड़े हो जाने पर मनुष्य जितना ही ऊपर से सभ्य दिखायी पड़ेगा भीतर से उतना ही बर्बर होगा।

वर्तमान सभ्यता के विरोध में प्रकृत जीवन की वांछनीयता अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में रेखा के विचारों में व्यक्त हुई है

'असल में मेरे दो पहलू हैं—एक चरित्रवान, प्रकृत मुक्त एक सभ्य और चरित्रहीन—' × सभ्यता व्यक्ति के ऊपर के सुन्दर रूप को प्रदर्शित करती है—किन्तु भीतर वह व्यक्ति चरित्रहीन बन जाता है।

इलाचन्द्र जोशी के "मुक्तिपथ" उपन्यास में सामाजिक बंधनों व प्रकृत जीवन की माँग का संघर्ष कथा का उपजीव्य बना है। उमाशंकर सक्सेना सरकारी उच्च अधिकारी हैं जिनके यहाँ उनके दूर के रिश्ते की युवती विधवा बहिन सुनन्दा रहती है जो घर के काम काज में अत्यधिक तत्पर है। उमाशंकर का अपने गाँव के एक युवक राजीव से परिचय होता है जो देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन के अवसर पर क्रान्तिकारी का जीवन व जेल जीवन बिता चुका था। उमाशंकर के आग्रह से और जेल से छूटने के बाद अपनी आर्थिक स्थिति की कमजोरी के कारण राजीव भी उमाशंकर के यहाँ रहने लगता है। राजीव सुनन्दा को झूठी सामाजिकता, अंध-परम्परा से प्रचलित मिथ्याचारपूर्ण लौकिकता और झूठे शिष्टाचार द्वारा फैलाये गये जाल को तोड़ने की प्रेरणा देता है। सुनन्दा में वह एक तेजस्विता के दर्शन करता है जिसे घर गिरस्ती की चार दीवारी बाँध कर नहीं रख सकती और या तो वह चहार दीवारी उसके तेज से जल कर ढह जायेगी या सुनन्दा को एक दिन स्वयं अपने ही तेज में अपनी ही आहुति देनी होगी। राजीव की प्रेरणा से सुनन्दा मध्यम वर्ग की सीमित और संकीर्ण पारिवारिकता को विस्तृत और वृहद् कौटुम्बिकता में बदलने को तत्पर हो जाती है और उन दोनों के प्रयत्न से 'मुक्ति निवेश' की स्थापना होती है जिसका उद्देश्य श्रम का महत्व समान वितरण व समान अधिकार की स्थापना करना है। अपने उद्देश्य में उन्हें महान् सफलता मिलती है किन्तु, राजीव का कठोर संयम का जीवन सुनन्दा के असंतोष का कारण बन जाता है और वह अपने व्यक्तित्व में भारी कमी का अनुभव करती है। वह अप्राकृत कठोर संयम के जीवन को व्यक्तित्व की परिपूर्णता का बाधक मानती है और इसी कारण नारी की मुक्ति केवल श्रम के आधार पर चलने वाले 'मुक्ति निवेश" में न पाकर वह नारी की मुक्ति के नये मार्ग की ओर बढ़ती है। सुनन्दा कठोर संयम के जीवन

————

× अज्ञेय नदी के द्वीप प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स दिल्ली १९५१ पृ० १३६

की अवहेलना कर प्रकृत जीवन की उपयोगिता दर्शानी है। + बाहर के पार्थिव जीवन के साथ साथ भीतर के भाव-जीवन का विकास "मुक्तिपथ" का संदेश है।

आडीपस व एलेक्ट्रा ग्रन्थि

समाज एव व्यक्ति के अपरिहार्य विरोध का प्रमुख कारण काम वासना का दमन है। काम दमन जनित असाधारण कार्य कलापो के अतिरिक्त काम जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी अनेक मानसिक ग्रन्थियों को जन्म देता है जिसमे प्रतिस्पर्द्धा अथवा प्रतिहिंसा का भाव प्रमुख रहता है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों म इन मानसिक ग्रन्थियो का वर्णन व विस्तृत विवेचन किया गया है। यहा पर दो एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'प्रेत और छाया" जोशी जी का प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमे पारसनाथ का पिता यह जानते हुए भी कि उसकी पत्नी सती साध्वी है अकारण उसके चरित्र पर सन्देह करने लगता है एव अपने पुत्र से कह देता है कि वह अपनी माता की जारज सन्तान है। इससे पारसनाथ के चरित्र म एक मानसिक ग्रन्थि बन जाती है और जिस प्रेमिका के सम्पर्क म वह आता है उसे गर्भवती या सतानवती बना कर या प्रेम मे विश्वासघात कर वह सदैव भाग निकलता है और अन्त म सयोगवश जब उसका पिता ही उसके जारज होने के मन म काटे को अपने चरित्र की कमजोरी बता कर दूर करता है तभी हीरा से जिसके गहनों को लेकर

+ इलाचन्द जोशी मुक्तिपथ' हिन्दी भवन इलाहाबाद स० २००६ पृ० ४२७

'मेरी उपयोगिता आपके आगे केवल इसी रूप म आई कि आप मेरी गार्हस्थिक कार्य क्षमता से परिचित थे और उस क्षमता को एक वृहद् परिवार की व्यवस्था के लिए उपयोजित करना चाहते थे आपने यह नहीं सोचा कि किसी भी कुटुम्ब की व्यवस्था का सुचारु सचालन केवल जड व धनो को मौन भाव से स्वीकार कर लेनेवाले यन्त्र परिचालित पुतलो और पुतलियो द्वारा नही होता। उन पुतलो के भीतर प्राण स्पन्दन कर सकनेवाले स्नेह प्रेम, करुणा और ममता का अन्त स्रोत निरतर बहाते रहने वाले किसी महाप्राण प्रेरक की आवश्यकता मूल रूप मे होती है। मैंने उसी सूत्र मे आपको पाने की आशा इतने दिना तक बाध रखी थी। मैं मनुष्य हूँ, राजीव बाबू कोई यन्त्रचालित पुतली नही। मैंने सारे पिछले बधना का तोड कर जो आपका साथ दिया था, वह केवल इस मूलगत आशा से कि मेरे अन्तर्जीवन की अनत प्रसारित जलती हुई मरुभूमि को भी आप अन्त प्राणों के अविरल स्नेह रस से सीच सींच कर, बाहर की बजर भूमि की तरह ही, उवरा और हरा भरा बना पायगे। पर आपको तो केवल मेरे बाहरी जड श्रम की आवश्यकता थी, भीतर के स्नेह रस सिंचित आश्रय की नही।

यह भागने को या वह विधिवत् विवाह करता है व भावी अपराधो को करने से बचता है। "प्रेत और छाया' की मनोवैज्ञानिकता इसी से स्पष्ट है कि पारसनाथ का पिता किसी घटनावश अपनी पत्नी के चरित्र को कलंकित नही बताता वरन् सम्पन्न जीवन की एकरसता (Monotony) ही अपनी पत्नी के चरित्र म कलंक आरोपित करने को उसे प्रेरित करती है जिससे कि वह स्वय सदाचारहीन जीवन व्यतीत कर सके मैं भली भाति जानता था कि तुम्हारी मा के रक्त की एक एक बूद मे सतीत्व की भावना कूट कूट कर भरी हुई थी। शायद इसी की प्रतिक्रिया के फल से मेरे विरस मन को यह विश्वास करने की इच्छा हुई कि वह घोर असती है।'+ पारसनाथ के पिता के इस समय म बहु विलास की कामना का मनोवैज्ञानिक तथ्य तथा पिता और पुत्र के द्वेष भाव मे ग्राडीपस ग्रंथि का ही रूप मिलता है। इसी प्रकार मजरी के चरित्र म एलेक्ट्रा ग्रंथि का रूप प्राप्त है, मजरी व उसकी मा परस्पर ममता के बधन म आलिप्त है पर मा की मृत्यु के पश्चात् मजरी जिन शब्दो मे मातृ प्रेम का शोषक रूप पारसनाथ के सामने व्यक्त करती है उससे मा और बेटी की अतश्चेतना म द्वेष भाव प्रगट होता है। मजरी अपने कानो म यह फुसफुसाहट सुनकर आश्वस्त होती है 'स्नेह के जिस कठोर बधन मे वह तुम्हे बाधे हुई थी वह तुम्हार जीवन की गति को चारो ओर रोके हुए था और भीतर ही भीतर तुम्हारे अनजान म तुम्हारी अन्तरात्मा का रस सोख-सोख कर तुम्हें निष्प्राण सूखे झाड म परिणत करने पर तुला हुआ था। पर अच्छा ही हुआ कि उसकी मृत्यु ऐसे समय म हो गई जब तुम्हारे भीतर थोडी सी हरियाली शेष थी।"× इसी प्रकार जोशी जी के 'निर्वासित" उपन्यास मे नीलिमा क चरित्र म एलेक्ट्रा ग्रंथि बद्ध रूप है। अपनी मा के शोषक प्रेम के कारण वह महीप से प्रेम करते हुए भी अपनी मा की आज्ञानुसार ठाकुर लक्ष्मणसिंह से विवाह करने हो तयार नही होती वरन् अपने अतमन से भी वह महीप के प्रेम को भुलाने म समथ होती है।

प्रेम मे घात-प्रतिघात

मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म एक प्रवृत्ति प्रेम के क्षेत्र म स्त्री पुरुष की प्रतिद्वद्विता को चित्रित करना है। प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता जो डी एच लारेंस (D H Lawrance) के अग्रेजी उपन्यासों का प्रमुख विषय है इलाच द जोशी के कतिपय उपन्यासों म चित्रित की गयी है स्त्री पुरुष क प्रेम की प्रतिद्वद्विता का मनोवैज्ञानिक कारण यही है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ओर प्राकृतिक नियम से आकृष्ट रहते है किन्तु इसी कारण उनमें हीनता की भावना भी रहती है कि विपरीत लिंगी दूसरे क बिना, एक का जीवन असार हो जाता है। अत वे एक दूसरे का मान

+ इलाचन्द्र जोशी प्रेत और छाया द्वितीय स० २००४ स० पृ ३८५
× इलाचन्द्र जोशी वही पृष्ठ १६४

खण्डन करने की लालसा रखने हैं। जब प्रेमी प्रेमिका को बेहद प्यार करता है तब वह उसे बेहद घृणा भी करता है। इलाचन्द जोशी के 'संन्यासी' उपन्यास में नन्दकिशोर आरम्भ में ही जयन्ती की ओर आकृष्ट होता है। किन्तु, इसके उपरान्त वह शान्ति के साथ स्वच्छन्द प्रणय जीवन व्यतीत करता है। शान्ति से नन्दकिशोर का सम्बन्ध नन्दकिशोर के घरवालो व भाई को नही रुचता और शान्ति चली जाती है इसके उपरान्त जयन्ती से नन्दकिशोर का विवाह प्रस्ताव रखा जाता है जिसका नन्दकिशोर प्रकट रूप मे तो विरोध करता है किन्तु उसके व्यवहार से स्पष्ट है कि वह विवाह के लिए तत्पर क्यों हुआ। इसका कारण स्वयं नन्दकिशोर बताता है "जयन्ती से मैं विवाह इसलिए नही करने जा रहा था कि मैं अपने एकांगी जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करूं बल्कि इसलिए कि मुझे इस तेजस्वनी नारी के स्वभाव में एक शान्त और संयत तथापि दुर्दमनीय गर्व का जो भाव दिखाई दिया था उसे अकारण ही चूर चूर करने की प्रतिहिंसापूर्ण भावना मेरे मन में समा गई थी।"× जोशीजी के 'पर्दे की रानी' उपन्यास में प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण व्यापक रूप में हुआ है। मनमोहनजी निरंजना को अपनी वासना पूर्ति का साधन बनाना चाहते हैं किन्तु इसमें असफलता दिखाई देने से वे निरंजना के हृदय पर यह बता कर कि वह वेश्या की लड़की है गहरी चोट पहुँचाते हैं। निरंजना इसका बदला लेने अपने प्रति मनमोहन के पुत्र इन्द्रमोहन के प्रेम को उकसाती है। इस प्रकार के घात प्रतिघातो मे सम्पूर्ण उपन्यास की कथा बंधी है। मनमोहन शीला से इसलिए विवाह करता है कि निरंजना की दृष्टि में वह सच्चरित्र दिखाई देने लगे और एक बार निरंजना के यह कह देने पर कि इन्द्रमोहन को वह तब तक प्राप्त नही हो सकती जब तक शीला जीवित है इन्द्रमोहन शीला को धीरे २ मारने वाला विष दे देता है। शीला को विष देने की बात इन्द्रमोहन निरंजना से गाड़ी में उसका कौमार्य खण्डित कर देने के पश्चात् बताता है और स्वयं गाड़ी के नीचे आकर प्राण दे देता है। प्रेम की प्रतिद्वन्दिता का मनोवैज्ञानिक कारण हम ऊपर प्रकृति की माग के कारण उत्पन्न हीनता की भावना बता चुके हैं किन्तु बहुत से लोग में सामाजिक व्यवस्था में काम संबंधों की असफलता इसका कारण है। व्यक्ति स्त्री व व्यक्ति पुरुष की एक दूसरे के प्रति लालसा या घृणा विशिष्ट दृष्टिकोण बना देती है और उनके व्यवहारों में उसी दृष्टिकोण के अनुकूल प्रतिक्रिया पायी जाती है। यौन वर्जनाओ से परिपूर्ण समाज मे प्रतिद्वन्द्विता का भाव विद्यमान होना स्वाभाविक है। डी एच लारेंस ने समाज व्यवस्था में पाये जाने वाले काम

× इलाचन्द जोशी संन्यासी, भारती भण्डार इलाहाबाद, चतुर्थ सं० २००६ पृ० सं० ३५२

संबंधी भावों की गहराई से विवेचन किया है, जहाँ बर्नार्ड शा ने उन काम विकृतियों पर निर्मम व्यंग्य प्रहार किया है जो सामाजिक जीवन की विरोधिनी हैं एवं प्रकृत जीवन को अनुचित ठहराया है। इलाचन्द्र जोशी का विवेचन लारेंस की तरह गहरा व शा की तरह निर्मम नहीं है किन्तु विकृतियों से मुक्त स्वस्थ प्राकृतिक जीवन का उल्लेख उनमें स्पष्ट है। 'पर्दे की रानी' के अन्तिम पृष्ठों में निरंजना का जो मनोविश्लेषण गुरुजी द्वारा किया गया है उसमें यह भाव की हानिकारकता व प्रेम के स्वाभाविक स्वरूप का महत्व दर्शाया गया है। डा० शैलकुमारी ने अपने शोध प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना' में 'यौन समय तथा स्त्री-पुरुष के आकर्षण विकर्षण की शाश्वत कथा' को आधुनिक प्रेम-कविता की विचारधारा का केन्द्र माना है। उनके अनुसार 'अज्ञेय को छोड़कर अभी अधिकांश कवियों में इस प्रकार की भावना में परिष्कार की कमी है। वे संतुलन को खोकर घृणात्मक दृष्टिकोण का ही निर्माण कर रहे हैं।' +

हीन भावना की ग्रन्थि

काम विकृतियों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हीन भावना की ग्रन्थि का भी व्यापक रूप में विवेचन मिलता है। इलाचन्द्र जोशी के ''मुक्तिपथ'' उपन्यास का विजय पात्र बचपन में अर्थाभाव से पीड़ित रहता है तथा उसकी हीन भावना की ग्रन्थि धन संचय की ओर प्रवृत्त हो जाती है। उसका आत्म विश्लेषण स्पष्ट है ''मैंने कैसी गरीबी में अपना प्रारम्भिक जीवन बिताया। अपनी हीनता की भावना से मैं सब समय दबा रहता था। इतना मैं समझ गया था कि वह छुटकारा मुझे तभी मिल सकता है जब मैं एक अच्छी पूंजी जोड़ पाऊं। जीवन की काल्पनिक सुविधाएं जुटाने में मैं प्रत्यक्ष सुविधाओं से हाथ धो बैठा। × अज्ञेय के ''नदी के द्वीप'' उपन्यास में भी हीन भावना का विवेचन किया गया है। इस उपन्यास में चन्द्रमाधव जो स्वयं रेखा से निराश होकर कम्युनिस्ट बन अपनी हीन भावना को मिटाने का क्षतिपूरक प्रयास करता है, रेखा व भुवन के सिद्धान्तों की एडलर की हीनभावना की ग्रन्थि के सिद्धान्त का आधार लेकर व्याख्या करता है ''सब सिद्धान्त क्षतिपूरक होते हैं आप जो हैं जैसे हैं उससे ठीक उल्टा सिद्धान्त गढ़ कर उसका प्रचार करते फिरते हैं। इससे एक तो आप अपने लिए संतुलन स्थापित कर लेते हैं ताकि आपको ठीक ठीक कोई पकड़ न पा सके।'' • और स्वयं चन्द्रमाधव

+ डा० शैलकुमारी 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना', हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद पृ० २१

× इलाचन्द जोशी 'मुक्तिपथ' हिन्दी भवन इलाहाबाद सं० २००६ पृ० २४६

• अज्ञेय नदी के द्वीप, प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, दिल्ली १९५१ पृ० ५०

को अपने जीवन मे सबसे बडा ग्रीवेंस यही है कि उसे ग्रीवेंस के लायक भी कुछ नहीं मिला कि जिसके सहारे उत्पीडित मसीहा की तरह वह चल निकलता। अतः उत्पीडित मसीहा का जीवन बिताने को वह कम्युनिजम अपनाता है तथा भुवन के शब्दों म "उसकी कुण्ठा और उसका वाद परस्पर पोषी" + बन जाते हैं।

अन्य मानसिक प्रक्रियाए

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे मानसिक ग्रंथियो के चित्रण के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं यथा प्रक्षेपण (Projection) आरोपण, (Introjection) साकेतिक चेष्टाए (Tics) अकारण भय (Phobia) स्वप्न (Dream) आदि का चित्रण भी हुआ है। अज्ञेय के "नदी के द्वीप' म रेखा चन्द्र और भुवन एक अग्रेजी सिनेमा देखने जाते हैं। रेखा के रहस्यमय चरित्र से परिचय पाकर भुवन सिनेमा को तटस्थ भाव से न देख रेखा पर उसकी प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक है तथा मनोविज्ञान के प्रक्षेपण (Projection) व आरोपण (Introjection) सिद्धातों का सकेत करता है 'समस्त तटस्थ भाव से तो कुछ देखा नही जाता, हम अनजाने कथावस्तु पर अपना आरोप करते चलते हैं या फिर अपने पर ही घटनाए घटित करते चलते हैं और मन की यह भी एक शक्ति है कि जरा से भी साम्य के सहारे वह सहज ही भयकारी सबध जोड लेता है।' × रेखा के कुण्ठित व्यक्तित्व की साकेतिक चेष्टा को भुवन ने नोट किया है 'रेखा को एक आदत थी—सहसा जाने अनजाने उसका हाथ उठता और कनपटी के पास मानो कुछ खोजने लगता फिर बालों की किसी छुटी हुई लट—कभी कभी काल्पनिक ही लट को कानों के पीछे डालता हुआ धीरे धीरे लौट आता। सारी क्रिया एक बडे कोमल और आयासहीन ढग से दुहरायी जाती थी।" — मानसिक ग्रथियो की एक विशेषता यह है कि व्यक्तित्व को कुण्ठित करनेवाले कारणों का पुन स्मरण दिलानेवाले ससर्गों का सम्पर्क उस व्यक्ति को विक्षिप्त बना डालता है। जब तक व्यक्ति की कुण्ठा के कारण उसकी चेतना के तल पर नही आजाते और वह उन्हें किसी सहानुभूतिशील श्रोता को नहीं कह देता तब तक उसके मन में गाठ बनी ही रहती है। किन्तु चेतन मन की विनशीलता एव सहानुभूतिशील श्रोता के प्रति कथन उस ग्रथि को दूर कर देता है। नदी के द्वीप' मे इस प्रकार की मानसिक ग्रथियो के कारण उत्पन्न अकारण भय (Phobia) के उदाहरण रेखा व भुवन के चरित्र मे मिलते हैं। पति

+ अज्ञेय वही पृ० ४०८

× अज्ञेय वही पृ० २९

— अज्ञेय वही पृ० १३५

चेहरा दिखाई देता है, तो गौरा समझ जाती है बात गहरी है। गौरा के आग्रह से भुवन रेखा के प्रति अपने प्रेम व होने वाले शिशु के गर्भ निपात की सम्पूर्ण कथा आग की ओर देखते हुए मंत्राविष्ट की तरह कह देता है तथा कथन के पश्चात् अपने बोझ को हल्का हुआ अनुभव करता है "भुवन ने कहा मुझे तो लगता है, वह जो बोझ मुझ पर था—वह सागर का बूढ़ा जो मेरे कंधों पर सवार था वह उतर गया। सोचता हू पहले ही तुमसे कहा होता—" + अस्तु इन उदाहरणों में मानसिक ग्रंथि के कारण होने वाले अकारण भय व उसके निरोध का मनोविज्ञान सम्मत स्वरूप मिलता है।

'नदी के द्वीप' मे डा० रमेशचन्द्र के विवाह–प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद रेखा भुवन से अलग होने के भय तथा उससे एकात्म बने रहने के इच्छाजनित विश्वास को स्वप्न प्रतीकात्मक शैली मे व्यक्त करती है

"फिर एक दिन स्वप्न मे तुम्हें देखा था—देखा कि तुम हमारे घर आये हो—हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति मे और सबसे मिले हो, पिता तुम्हें बाहर नदी की रौंस पर मेरे पास बिठा गये हैं फिर हम लोग कागज की नावें बना कर नदी मे डालते हैं और उनका बह जाना देखते हैं। नावें कभी दूर दूर तक चली जाती हैं, कभी पास आ जाती हैं कभी टकरा भी जाती हैं कभी नदी में बहते हुए शैवाल से उलझ जाती हैं। सहसा देखती हू कि उन्ही हमारी कागज की नावों मे हम भी हैं फिर नावें एक बालू के द्वीप मे जा लगती हैं, जहा हम उतर कर नावों को खींचने लगते हैं—पर नावों मे बैठे भी रहते हैं। अब हम रौंस पर से देखते भी हैं नावों मे बैठे भी हैं, नावों को खींच भी रहे है। फिर देखती हू बहुत से द्वीप है हर एक पर हम नाव में भी बैठे नाव को खींच भी रहे हैं और रौंस पर बैठे देख भी रहे ही हैं। सहसा नदी का पानी बहती हुई सूखी बालू हो जाती है और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नहीं, कोई और चेहरा है, तुम मुस्कराते हो तो वह चेहरा तुम्हारा भी है पर नहीं भी है, मैं कहती हूं यह सपना है जागेंगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा हो जायगा तुम कहते हो सपना थोड़ी देर और देखें न फिर चेहरा बदल नहीं सकेगा। फिर मैं तुम्हारी मुस्कान देखती रही थोड़ी देर में जाग गयी, सपना के सिर पर सींग होते होंगे जैसा मनोविश्लेषक जताते हैं तो उसका अर्थ जानने की जरूरत नहीं होती—पर मैं जागी एक मधुर भाव लेकर फिर ध्यान आया कि तुम तो बर्मा मे होंगे ×

कहना न होगा कि स्वप्न मे वर्णित प्रतीक रेखा के जीवन से गहरा सम्बन्ध रखते हैं तथा उनके विश्लेषण के लिए जैसा कि रेखा स्वयं जानती है मनस्तत्व वेत्ता के ज्ञान की आवश्यकता है।

———

+ अज्ञेय वही पृ० ३६१
× अज्ञेय वही पृ० ४१४

इलाचन्द जोशी के "संन्यासी" उपन्यास से स्वप्न विश्लेषण का एक और उदाहरण लें। नन्दकिशोर शान्ति के साथ स्वच्छन्द प्रणय जीवन व्यतीत करता है किन्तु उसके मन में संशय है कि शान्ति बलदेव को चाहती है। नन्दकिशोर को भावी अर्थ संकट भी दिखायी देता है और वह कार्निवाल में जाकर जुए में अपने रुपये खो देता है। उस रात वह स्वप्न देखता है

'मुझे बहुत देर तक नींद न आई, अन्त में जब बड़ी मुश्किल से आंख लगी तो मैंने स्वप्न देखा कि कार्निवाल में मैं जीतता चला जाता हूं—इस हद तक कि मेरे जीत का रुपया जुटाने जुटाते कार्निवाल वाले परेशान हो गए हैं और उनके स्टाक में अधिक रुपया न रहने से उन्हें खेल बन्द करना पड़ा है। जीत के रुपयों से अपनी जेबें ठसाठस भर कर मैं मकान पर पहुंचा हूं। यहां पर मेरे मनजान में स्वप्न का दृश्य इलाहाबाद से एक दम बनारस में उस मकान पर आजाता है जहां मैं शान्ति से पहिले मिला था। वहां देखता क्या हूं कि शान्ति और बलदेव आपस में बातें करते हुए ठहाका मार कर हंस रहे हैं "+ आदि कहना न होगा कि इस स्वप्न का चित्रण ही नन्दकिशोर के आर्थिक संकट, बलदेव के प्रति उसकी ईर्ष्या, शांति के लिए त्याग की तत्परता आदि को सन्देह से पर व्यक्त कर देता है।

मनोविश्लेषण सिद्धान्त का सर्वांगीण प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ है जिसे हम प्रतीकात्मकता (symbolism) मुक्त आसंग (Free Association) एवं अन्तर्दृष्टि (Introspection) इन तीन रूपों में विभाजित कर सकते हैं। पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि नयी कविता के उपमान प्रायः यौन प्रतिपाद्य रखते हैं। अन्तर्मन की स्थिति को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग आवश्यकता हो गया है क्योंकि इसने पहले कभी भाषा की असहायता को इतने स्पष्ट रूप में नहीं बताया गया था। 'नदी के द्वीप" में गौरा जब अपने को उत्सर्ग कर भुवन के साथ मरने की बात सोचती है तो कहती है "कह नहीं सकती तो इसलिए कि सोचना चित्रों से, प्रतीकों से होता है, कहना शब्दों से, और शब्द अधूरे हैं।"■ अज्ञेय ने तो 'तार सप्तक' के अपने वक्तव्य में साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियों को असमर्थ ठहराते हुए आज के कवि का यहां तक उद्योग बताया है। 'भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से, अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे बड़े टाइप से सीधे या उल्टे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे

+ इलाचन्द जोशी 'संन्यासी', भारती भंडार, इलाहाबाद चतुर्थ सं० ■ २००९ पृ० २४२

■ अज्ञेय नदी के द्वीप, प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स दिल्ली, १९५१ पृ ३१४

वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई सवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुचा सके।"* मनोविश्लेषण सिद्धात के अनुसार अचेतन मन के भाव चेतन मन म आते हैं तो प्रत्यक भाव तल मे दूसर से जुडा होता है इसी से पुन स्मरण समव है । एक भाव दूसरे से अनिवाय सबधित नहीं होता है तथा उन्ह जोडनेवाले ततु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। इस प्रकार मुक्त आसग स हमारे मन में विचार आत रहते हैं। इस पद्धति का आधुनिक साहित्य में अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा है। अज्ञेय के उपन्यासो मे ऐसे बहुत से स्थल हैं जहा मुक्त आसग पद्धति का पात्रो की मनोदशा प्रकट करने के लिए प्रयोग किया है। इसी प्रकार, गिरिजाकुमार माथुर 'चूडी का टुकडा,' कविता में रेडियम की छाया सूना पलग खाली कमरा, चलती रेलगाडी आदि कितने प्रसगों का स्मरण दिलाते हैं। आधुनिक साहित्य म बाह्य घटनाओ के विवरण का अधिक महत्व नहीं है । साहित्यकार अन्तर्दृष्टि का अधिकाधिक प्रयोग करता है तथा आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति अधिक महत्व रखती है फिर चाहे वह उपन्यास हो नाटक हो, या कविता।

अस्तु, हम देखते हैं कि आधुनिक युग म हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप साहित्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध सायास और गहरा हो गया है। हिन्दी उपन्यास म पात्रों के अन्तरग जीवन का चित्रण ही नही मिलता (अन्तरग जीवन के बिना पात्र कठपुतली-स और कथा विकास कामू ला युद्ध पूर्वाग्रह युक्त मात होता है) वरन् जटिल चरित्रो व मानसिक ग्रथियो का सर्दांगतक विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति जीवन क आन्तरिक मनोवैज्ञानिक गठन के साथ उन पर पडन वाले विभिन्न प्रभावों एव व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया तथा मनोविज्ञान के सन्दभ म व्यक्तित्व के विभिन्न आयामो पर प्रकाश डाला गया है । जीवन मूल्यों कीखोज भी मनोविज्ञान के सदभ म की जाने लगी है। विषय-वस्तु के साथ ही वर्णन शली एव कथा शिल्प में भी मनोविज्ञान परक परिवर्तन दृष्टिगत होता है यद्यपि इस दृष्टि से सफल कृतिया अधिसख्य नही हैं।

---

* अज्ञेय तार सप्तक प्रतीक प्रकाशन दिल्ली पृ० ७५

आठवां अध्याय

अन्तर्धारा रूप अन्य प्रवृत्तियां

(राष्ट्रीयता, यथार्थवाद, प्रयोगवाद)

(१) राष्ट्रीयता—

राष्ट्रीयता एक आधुनिक भाव (Concept) है जिसे सामान्य देशभक्ति अथवा देश प्रेम से भिन्न समझा जाता है। पश्चिम में राष्ट्रीयता का विकास इटली के रिनैसां (Renaissance) से हुआ जब कि पोप की सब शक्तिमान सत्ता से अलग होकर योरूपीय देशों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की। पोप के पास राजनीतिक सत्ता न होते हुए भी योरूपीय देशों के शासकों पर उसका अत्यधिक प्रभाव था। एक शताब्दी से भी अधिक काल तक चलते रहनेवाले धार्मिक युद्धों (Crusades) में योरूपीय देशों के सभी ईसाई राजाओं को पोप के आदेशानुसार सेनाएं भेजनी पड़ती थी। ईसाई शासकों की राज्य सत्ता भी पोप का मुंह ताका करती थी। किन्तु इस्लाम की शक्ति से टक्कर कर पोप की शक्ति का ह्रास हो गया। योरूप के विभिन्न देशों ने धार्मिक साम्राज्यवाद से मुक्ति पाकर अपने देशों की अलग राष्ट्रीय भावना का विकास किया। अतः अपने देश को अन्य देशों से अलग व श्रेष्ठ समझना एवं किसी भी बाह्य शक्ति की अधीनता स्वीकार न करना राष्ट्रीयता के अनिवार्य अंग हैं। जान स्टुअर्ट मिल (John Sturat Mill) ने राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए लिखा है— 'मनुष्य जाति के उस भाग को राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता है जिसके व्यक्ति परस्पर समान सहानुभूति का अनुभव कर संगठित होते हैं तथा यह सहानुभूति की भावना उनमें दूसरों के प्रति नहीं पायी जाती। अन्य लोगों से सहयोग करने की अपेक्षा वे स्वेच्छापूर्वक परस्पर सहयोग के लिये तत्पर रहते हैं एवं स्वशासन अथवा केवल अपने में से ही कुछ लोगों के एक शासन द्वारा शासित होने की आकांक्षा रखते हैं। राष्ट्रीय भावना का स्फुरण अनेक कारणों से सम्भव है। कभी वह जाति व वंश की एकता का परिणाम होती है। भाषा तथा धर्म की एकता उसके विकास के महत्वपूर्ण कारण हैं। भौगोलिक सीमाएं भी एक कारण है। किन्तु सबसे बढ़ कर कारण है—अतीत में समान राजनीतिक स्थिति एक राष्ट्रीय इतिहास व उससे सम्बन्धित समान स्मृतियां, विगत जीवन की विशिष्ट घटनाओं के प्रति सम्मिलित मानापमान तथा

भुग व दुख की अनुभूति' + अत जाति भाषा, धर्म समाजिक परम्परा व एक सत्ता के अ नगत राजनीतिक तंत्र की एकता राष्ट्रीयता के प्रमुख तत्व हैं।

आधुनिक अर्थ मे राष्ट्रीयता की भावना पाश्चात्य देन

राष्ट्रीयता के उपयुक्त तत्वो की दृष्टि से प्राचीन भारत मे राष्ट्रीयता के विकास क लिए आवश्यक आधार भूमि का अभाव था। यद्यपि जम्बू द्वीप भारत वर्ष आयावर्त 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावेरि जले स्मिन् सन्निधि प्रभृति प्राग ऐतिहासिक उक्तियों से भौगोलिक व मानसिक दृष्टि से देशभक्ति की सामान्य भावना का परिचय मिलता है कि तु जाति भाषा धर्म, सामाजिक स्थिति आदि विभेदो के कारण प्राचीन भारत म राष्ट्रीयता का विकास न हीं हो सका। अ तर्जातीय विवाहो की अधिकता होने पर भी आधुनिक भारत म भी जातिगत विभिन्नताए पायी जाती हैं। उत्तर म तुर्की ईरानी पूर्व म मगोल द्रविड तथा दक्षिण म द्रविड जातिया रक्त की विभिन्नता सूचित करती हैं। बगाली मद्रासी व पजाबी के बीच जाति व रक्त भेद पहचानना कठिन नहीं है। सन् १९२१ की भाषा गणना के अनुसार भारत म १७९ भाषाए अनुचित की गयी थी किन्तु उनम से बहुत सी भाषाओ को बोलनेवाले इतने कम लोग थे कि इससे भाषा सबधी स्थिति का पता चलना कठिन था। ग्रियर्सन ने भाषा परिवार का विवेचन करते हुए भारत मे पाच विशाल

\+ John stuart Mill 'Representative Government"

A portion of mankind may be said to constitute a nationality if they are united among themselves by common sympathies which do not exist between them and any others which make them co operative with each other more willingly than with other people and desire to be under same government by themselves exclusively

The feeling of nationality may have been generated by various causes, sometimes it is the effect of identity of race and descent Community of language and community of religion greatly contribute to it Geographical limits are one of its causes But the strongest of all is identity of political antecedents the possession of a National History and consequent community of recollective pride & humiliation pleasure and regard, connection with the same incidents in the past

भाषा परिवार माने हैं आय, द्रविड़ मुडा तिब्बती चीनी। धम की दृष्टि से, हिन्दू धम जो भारत की सर्वाधिक जनसख्या द्वारा माना जाता है स्वय समन्वयवादी है किन्तु हिन्दू धम इस्लाम को अपने धम म आत्मसात् नही कर सका व विरोधी राष्ट्र के रूप मे मुसलमानो की आकाक्षा पाकिस्तान की स्थापना (१५ अगस्त १९४७) के रूप मे व्यक्त हुई। साथ ही हिन्दू धम म जाति प्रथा के कारण एकता के बदले छुआछूत की भावना को प्रश्रय मिला। आधुनिक युग से पूव एक सत्ता के अन्तगत सुदीघ काल के लिए राजनीतिक तन्त्र की एकता का भारत के प्राचीन इतिहास मे कभी अवसर नही आया। अत आधुनिक युग से पूव भारत मे राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक रूप म नही हुआ था।

प्राय यह समझा जाता है कि गुप्त काल म विदेशी आक्रमणो का प्रतिकार करने के लिए देश रक्षा की भावना से भारत म राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ था किन्तु यह स्मरणीय है कि स्वदेश व भारतीय सस्कृति की रक्षा की भावना से उस युग मे भी केवल ब्राह्मण व क्षत्रिय ही प्रेरित हुए थ जो भारत की सम्पूण जनसख्या का केवल एक अग थे। गुप्त साम्राज्य का नमदा के पार दक्षिण की ओर विस्तार नही हुआ था। कृषि जीवन व्यतीत करनेवाले सामान्य भारतीय की युद्धो म दिलचस्पी नही थी। हषवद्धन की मृत्यु क पश्चात् देश विभिन्न हिन्दु राज्यो मे विश्रृखल हो गया, मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज को पराजित करने पर (सन् ११९२) जयचन्द तटस्थ ही बना रहा। इतिहासकार डा० ईश्वरीप्रसाद के शब्दो मे "सम्पूण भारत म फसे हुए बहुत स राज्यो म एक भी ऐसा शासक नही था जो सभी राज्यो को सम्मिलित सुरक्षा के उद्देश्य स एक साम्राज्य के रूप म सगठित कर सके।"+ अत एक केद्रीय शासन के अभाव मे भारत म राष्ट्रीयता का विकास नही हुआ। भारत मे राष्ट्रीयता क अभाव का दूसरा महत्त्वपूण कारण जाति प्रथा का भेद भाव था। राष्ट्रीयता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश के सभी निवासी अपने का एक समझ कर सम्मिलित गौरव का अनुभव कर सकें। हिन्दुओं म जाति प्रथा आरम्भ म श्रम विभाजन क आधार पर निर्मित थी किन्तु कालान्तर म वह ऊच नीच क भेद भाव की पोषक बन गयी। जहाँ अछूत की छाया स भी ब्राह्मण दूर रहना चाहता था वहा ब्राह्मण व अछूत को प्रम में साथ गूथनेवाला आदश कहाँ मिल सकता है। ठाकुर रवीन्द्रनाथ

+ Dr Ishwari Prasad

In the numerous states that existed all over India we do not find a single ruler capable of organising them into an imperial union for purposes of common defense

टगोर ने लिखा "राष्ट्रवादी कहते हैं स्विट्जरलैण्ड का उदाहरण देखो जहा जातिगत विभेदों के होते हुए भी जनता एक राष्ट्र के रूप मे सगठित हो गयी है। किन्तु, हम स्मरण रखना चाहिए कि स्विटजरलण्ड म जातियां परस्पर मिल सकती हैं—उनम अन्तर्जातीय विवाह सम्भव है क्योकि उनका एक रक्त है। भारत में सभी जातियों का एक रक्त नहीं है और जब हम पाश्चात्य राष्ट्रीयता की बात करते हैं तो यह भूल जाते हैं कि वहां एक राष्ट्र के सदस्य इस प्रकार पारस्परिक शारीरिक घृणा नहीं करते हैं। क्या विश्व भर म कहीं ऐसा उदाहरण मिल सकता है जहा लोगो म परस्पर रक्त सम्बन्ध न हो पर वे एक दूसरे के लिए बिना किसी दवाव या धार्मिक जिहाद के रक्त बहाने को तत्पर रहते हों? और क्या हम आशा कर सकते हैं कि हमारे जाति सम्मिलन में बाधक यह नतिक बधन हमारी राजनीतिक एकता के माग म अवरोधक सिद्ध नही होंगे?" ×

जाति, भाषा, धम सामाजिक भेदों आदि स्थिति के रहते हुए भी अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ जब सम्पूर्ण भारत एक केन्द्रीय शासन के अतगत आगया तब आधुनिक भारत में राष्ट्रीयता के विकास के लिए बहुत बडी आवश्यकता की पूर्ति हुई इसलिये नहीं कि भारतवासी उस शासन से सन्तुष्ट हो वरन् इसलिये कि एक विदशी शासक के रूप मे सभी भारतवासियो को उनका सम्मिलित शत्रु दिखायी दिया जिसके विरुद्ध सगठित होने के लिये वे सभी तत्पर हुए। अंग्रेजी शिक्षा, यातायात के आधुनिक साधन न्यायालयो की स्थापना व प्रेस ने देश के एकीकरण म सहयोग दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (सन् १८८५) व स्वराज्य के लिए उसके द्वारा किय गये प्रयत्नो ने राजनीतिक जागृति उत्पन्न की।

× Rabindranath Tagore —Nationalism

Nationalists say look at Switzerland where inspite of race differences the people have solidified into a nation Yet remember that in Switzerland people can mingle, they inter marry because they are of the same blood In India there is no common birth right and when we talk of Western nationality we forget that the nations there do not have physical repulsion, one for the other that we have between castes Have we an instance in the whole world where a people who are not allowed to mingle their blood for one another shed their blood for one another, except by coercion or for mercenary purposes? And can we ever hope that these moral barriers against our race amalgamation will not stand in the way of our political unity

महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन की गूंज सामान्य जनता के बीच पहुँच गयी। सामान्य जनता चाहे राष्ट्र की विशिष्ठ समस्याओं से नितान्त अनभिज्ञ भी रही हो किन्तु स्वतन्त्रता की भावना ने उसमे नवीन चेतना फूंक दी जिसे हम राष्ट्रीय चेतना के नाम से पुकारते हैं।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अंकुर

किसी भी देश मे राजनीतिक जागृति के लिए उसके अतीत गौरव का स्मरण अधिक उपयोगी होता है। जब भविष्य अन्धकारमय होता है और वर्तमान अनिश्चित तब आलोक के लिए हम अतीत की ओर मुड कर देखते हैं। किसी देश की सांस्कृतिक पतितावस्था के समय उसकी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति ही उसकी प्राणाधिक बहुमूल्य सम्पत्ति बन जाती है जिसे वह 'अपनी' कह कर संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों के सम्मुख अपना मस्तक उठाने का अधिकार संचित करता है।

पीठिका अध्याय मे हम देख चुके हैं कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन के फलस्वरूप हमारे देशवासियों के हृदय में गौरव की भावना का उदय हुआ और भारतीय विद्वान भी प्राचीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए प्रावृष्ट हुए। यह भारतवासियों के लिए कम गौरव की बात न थी कि जो अंग्रेज शासक प्रारम्भ मे भारत को केवल असभ्य व अज्ञानी लोगों का देश समझते थे प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन से उनकी आंखें खुल गयी और वे भारतीय संस्कृति की महानता के प्रशंसक बन गये।

वारेन हेस्टिंग्ज ने चार्ल्स विल्किन्स द्वारा भगवद्गीता के अनुवाद की भूमिका मे लिखा

'बहुत दिन नहीं हुए जब अनेक व्यक्तियों द्वारा भारतवासियों को जंगली जीवन व्यतीत करने वाले असभ्य प्राणियों से अधिक न समझा जाता था मुझे भय है कि यह पूर्वग्रह अभी सम्पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ है। यद्यपि अवश्य वह धारणा बहुत अंशों मे अब समाप्त हो गयी है। उनके वास्तविक चरित्र को हमारी दृष्टि के सम्मुख लानेवाला प्रत्येक उदाहरण रूप उनकी रचनाओं को अधिक उदार दृष्टि से समझने के लिए प्रेरित करेगा और यह रचनाएं उस समय भी जीवित रहेंगी जब भारत से ब्रिटिश साम्राज्य कभी समाप्त हो चुका होगा एवं एक समय की उसकी वैभव व सत्ता की स्मृति मात्र शेष रह जाएगी।'+

+ Charles Wilkins-Bhagwadgita (Introduction by Warren Hastings)

It is not very long since the inhabitants of India were considered by many as creature scarce elevated above the decree

अत सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भारतेन्दु ने इतिहास की पुनर्व्याख्या करना आवश्यक समझा। 'काश्मीर कुसुम' की भूमिका में उन्होंने भारतीय इतिहास के लुप्त होने पर खेद प्रकट करते हुए लिखा

' भारतवर्ष के निर्मल आकाश मे इतिहास चन्द्रमा का दर्शन नही होता क्योंकि भारतवर्ष की प्राचीन विद्याओ के साथ इतिहास का भी लोप हो गया। कुछ तो पूर्व मे शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने की चाल ही न थी और जो कुछ बचा बचाया था वह भी कराल काल के गाल मे चला गया। जैनो ने वैदिकों के ग्रन्थ नाश किए और वैदिकों ने जैनो के। एक राजधानी मे एक वश राज्य करता था। जब दूसरे वश ने उसको जीता तो पहले वश की सम्पूर्ण वशावली के ग्रन्थ जला दिये। कवियों ने अपने अन्नदाता की झूठी प्रशसा जोड़ली और उनके जो शत्रु थे उनकी सब कीर्त्ति लोप करदी। यह सब तो था ही मुसलमानो ने आकर जो कुछ बच बचाये ग्रन्थ थे जला दिये। चलिये छुट्टी हुई। ऐसी काली घटा छाई कि भारतवर्ष की कीर्त्ति चन्द्रमा का प्रकाश ही छिप गया" ×

राजनीतिक विचारधारा का विवेचन करते हुए हम चौथे अध्याय मे देख चुके हैं कि भारतेन्दु युग के साहित्यकारो ने केवल युग की आवश्यकता के अनुरूप मुसलमानो से एकता की आशा व्यक्त की थी किन्तु, सांस्कृतिक दृष्टि से वे मुसलमानो को विरोधी तत्व के रूप मे ही देखते थे। भारतेन्दु ने 'बादशाह दर्पण' मे मुसलमान लेखकों द्वारा लिखे हुए इतिहास को पूर्वग्रहीत व भ्रामक ठहराया तथा यह आशा प्रकट की कि किसी दिन सच्चे भारतीय इतिहास का प्रणयन होगा। भारतेन्दु के इतिहास ग्रन्थ प्राचीन संस्कृत नाटकों के अनुवाद, ऐतिहासिक शोध के आधार पर मौलिक नाटकों का प्रणयन सभी मुसलमानी राज्य काल से पूर्व की भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की भावना से अनुप्रेरित थे। पर केवल मुसलमानो ने ही प्राचीन इतिहास को नष्ट नहीं किया था अंग्रेज भी प्राचीन भारतीय इतिहास की गलत व्याख्या कर रहे थे। अंग्रेजों द्वारा स्थापित रायल एशियाटिक सोसायटी

---

of savage life nor I, fear, is that prejudice yet wholly eradicated though surely abated Every instance which bring their real character to observation will impress us with a more generous sense of feeling for their writings and these will survive when the British Dominion in India shall have long ceased to exist, and when the forces which it once wielded of wealth and power are lost to r memberance

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, काश्मीर कुसुम पृष्ठ ७

एवं 'पुरातत्व विभाग' के अंग्रेजों जितने दोषपूर्ण व पूर्वग्रहीत थे इसका परिचय भारतेन्दु द्वारा ऐंटिक्वेरियन (antiquarian) शब्द के प्रति किये व्यंग्य से प्रकट है "जो मूर्तियाँ मिलें वह जैना की हैं हिन्दू लोग तातार से या और कहीं पश्चिम से आए होंगे, आगे यहाँ मूर्ति पूजा नहीं होती थी इत्यादि कई बातें बहुत मामूली हैं जिसके कहने से आदमी-एंटिक्वेरियन हो सकता है।"

वर्तमान हीनावस्था की प्रतिक्रिया

राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश में आत्म सम्मान जाग्रत हो। शीघ्र ही इसका अवसर मिल गया।

अंग्रेज भारतवासियों को काला और असभ्य कहते थे किन्तु भारत से बाहर जिन साम्राज्यवादी युद्धों को लड़ने के लिये भारतवासी भेजे गये वहाँ उन्होंने अंग्रेजों की नृशंसता और घोर असभ्यता का परिचय पाया। गदाधरसिंह ने 'चीन में तेरह मास' पुस्तक में अपने संस्मरण लिखे जिनमें चीन युद्ध में अंग्रेज जाति द्वारा किये गये अमानुषिक व्यवहारों का वर्णन था। आर्थिक और राजनीतिक लाभ के लिए लड़े जानेवाले इन युद्धों में प्रवृत्त होनेवाली अंग्रेज जाति के प्रति भारतीयों की सम्मान व श्रद्धा की भावना को ठेस पहुँची। उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि सभ्यता की दृष्टि से पाश्चात्य जातियाँ किसी प्रकार भारतीयों से श्रेष्ठतर नहीं हैं, अंग्रेज केवल पशुबल के सहारे ही भारत के शासक बने हुए [redacted]।

तत्कालीन युग की एक पत्रिका में 'उन्नीसवीं शताब्दी और ये सभ्यता' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें पाश्चात्य जातियों द्वारा अकारण केवल अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए लड़े जानेवाले युद्धों की निंदा की गई। लेखक के अनुसार केवल पशुबल का नियम ही इन युद्धों का मूल आधार है तथा इस आधार पर अंग्रेजों का अपने को सभ्य कहना उनकी सभ्यता के आगे प्रश्न चिह्न लगा देना है। अंग्रेजों ने वीरता की अपेक्षा कूटनीति के द्वारा भारत पर अपना शासन स्थापित किया यह भारतेन्दु युग के लेखकों के लिए ऐतिहासिक तथ्य मात्र न होकर निकटवर्ती संस्मरण था। प्रतापनारायण मिश्र ने रजनीकान्त गुप्त द्वारा बंगला भाषा में लिखित 'आर्य कीर्ति' पुस्तक का अनुवाद किया जिसमें कुम्भ के चरित्र की श्रेष्ठता को दर्शाया गया है। कुम्भ ने अपने शत्रु मालवा अधिपति को पराजित करके भी उसकी प्रतिष्ठा नष्ट नहीं की वरन् उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर उसे बहुत-सी सम्पत्ति देकर मालव भेज दिया था। वीरता के इस आदर्श की अंग्रेजों की कूटनीति से तुलना करते हुए लेखक ने लिखा है

जिस समय सिक्खों के सेनापति का पराभव हुआ था और सिक्ख सरदारों ने अंग्रेज सेनापति को अपनी तलवार देकर कहा था कि अंग्रेजों के अत्याचार से

व्यथित होने के कारण हम लोग युद्ध में प्रवृत्त हुए थे और अपने देश की रक्षा के लिए यथासाध्य युद्ध किया भी। हमने कभी वीर धर्म की अवमानना नहीं की पर जब हमारी सेना मर कट गई और शस्त्र बेकाम हो गए हैं इससे नाना अभाववशत हम अधीनता स्वीकार करते हैं हमने जो कुछ किया है उसके निमित्त लज्जित नहीं हैं वरञ्च सामर्थ्य होने पर फिर भी वैसा ही करेंगे उस समय अंग्रेजों के दलपति ने इन पराजित तेजस्वी वीरों की सम्मान रक्षा नहीं की थी वरञ्च ब्रिटिश राज प्रतिनिधि ने पंजाब की स्वाधीनता नष्ट करदी थी और गुजरात के युद्ध क्षेत्र में पड़े घायल योद्धाओं पर भी दया न प्रकाश की थी। उन्नीसवीं शताब्दी के सभ्यता स्रोत में वीरत्व की महिमा डूब गयी थी पर पन्द्रहवीं शताब्दी में मेवाड़ ने अपनी सच्ची वीरता सुरक्षित की थी। लार्ड क्लाइव यदि मीर जाफर और जगत सेठ आदि को मिला न लेते तो प्लासी के युद्ध में समस्त बंगाल बिहार तथा उड़ीसा एकाएकी ब्रिटिश कम्पनी के आधीन न हो जाता। कप्तान निकलसन और कप्तान लारेंस षड्यन्त्र रचना न करते तो महाराज रणजीतसिंह का राज्य ब्रिटिश जाति के हस्तगत हो जाना हँसी खेल न था। हिन्दुस्तान में बहुत लोगों ने इसी प्रकार अपना वीरत्व कलुषित किया है पर राजपूतों की वीरता पर कभी ऐसे कलंक की छाया भी न पड़ी।'+

अस्तु भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए प्राचीनता के पुनरुत्थान की भावना का उदय हुआ। मुसलमानों के प्रति भारतेन्दु युग के साहित्यकार की मनोवृत्ति को देखते हुए यह स्वाभाविक ही था कि वे अविकृत भारतीय संस्कृति मुसलमानी राज्य काल से पहले की हिन्दू संस्कृति के आराधक बने। भारतेन्दु की आरम्भिक रचनाओं में हिंदू संस्कृति के प्रतीक अनेक नामों का बार बार स्मरण मिलता है। प्रबोधिनी' (अगस्त १८७४) कविता में कवि भगवान को जगाते हुए पुकारता है विक्रम, भोज राम, बलि, कर्ण युधिष्ठिर कहाँ गये चन्द्रगुप्त और चाणक्य कहाँ सभी क्षत्रिय (और ब्राह्मण) नष्ट हो गये जहाँ विश्वेश्वर सोमनाथ, माधव के मंदिर थे वहाँ मस्जिदें बन गई—'राजकुमार शुभागमन वर्णन' (सन् १८७५) में कवि नगर का वर्णन करने के पश्चात् भारत के प्राचीन वैभव का स्मरण करता है। यद्यपि भोज, व्यास वाल्मीकि, राम शाक्य, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, कृष्ण, विक्रम अकबर कालिदास आदि नहीं हैं एवं भारत खण्डहर के समान बना है, तथापि राजकुमार के आगमन से जैसे उसमें नवीन प्राणों का संचार हो गया है। यद्यपि अंग्रेजों

+ प्रतापनारायण मिश्र राय कीर्ति (अनुवाद) भूमिका

राज्य प्रत्याचारी यवन राज्य में भारत युग और शासन का अग्रदूत बनकर आया है। मिश्र विजय के अवसर पर– त्रिभुवनी विजय पताका या वैजयन्ती–' कविता में भारतवासियों की मिश्र विजय पर गौरव का अनुभव करते हुए कवि अर्जुन कर्ण भीम, नकुल, सहदेव, विराट अभिमन्यु, द्रुपद अन्य पुरू, रघु अज, परशुराम, रावण सुग्रीव हनुमान भीष्म द्रोण, सात्यकि पोरस पृथ्वीराज हम्मीर, विक्रम, राणा रणजीतसिंह प्रभृति वीरों का स्मरण करता है। कवि देश की हीनावस्था का वर्णन करते हुए पचनद पानीपत चित्तौड़ आदि को पुकार कर कहता है कि देश की इतनी हीन दशा होने पर भी ये पृथ्वी पर अभी तक क्यों विराजमान रहे। मिश्र विजय एक मुसलमानी देश पर विजय थी। अतः कवि ने यवनों को जिनके कारण देश का अधःपतन हुआ भरपूर कोसा है और कहा है कि रण में इनको मारने से कोई पाप नहीं होता।

यदि भारतेन्दु युग विचारधारा की दृष्टि से देशभक्ति का युग था तो द्विवेदी युग को हम सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग कह सकते हैं। अतीत का गौरव गान व उसके आलोक में भविष्य निर्माण की आशा सांस्कृतिक पुनरुत्थान युग की मूल प्रवृत्ति है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने एक अंग्रेजी पुस्तक की समालोचना करते हुए पतित राष्ट्र के जीवन में गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति का महत्व दर्शाया है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने अनुज सियारामशरण गुप्त द्वारा रचित 'मौर्य विजय' की भूमिका में पतित जातियों का भविष्य उनकी अतीत स्थिति पर ही आधारित बताया है। वे लिखते हैं

'हमारी वर्तमान दशा ऐसी नहीं है कि उस पर विशेष अभिमान किया जा सके। ऐसी दशा में अपने अतीत के गौरव की ओर ध्यान देना आवश्यक ही है यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और उस पर अभिमान कर सके तो उसका भविष्य भी गौरवपूर्ण हो सकता है " पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बड़ा सहायक होता है आत्म विस्मृति ही अवनति का मुख्य कारण है और आत्म स्मृति ही उन्नति का।'

जयशंकर प्रसाद ने भी 'विशाख' की भूमिका में अपनी नाट्य रचना के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए पतित जाति के लिए आदर्श संगठित करने इतिहास का अनुशीलन आवश्यक बताया है। ×

× जयशंकर प्रसाद— विशाख ' भूमिका।
इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को आदर्श संगठित करने के लिये

वतमान पतितावस्था ही गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिलाती है तथा वतमान अवस्था कवि के क्षोभ का कारण बन जाती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी विद्या बल व धन से दीन भारत की उजडी हुई दशा पर अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हैं।—

मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वदेश सगीत' की 'अनिश्चय' कविता मे भारत अपनी वतमान दशा की अतीत गौरव से तुलना करते हुए चिन्ता-सा करता प्रतीत होता है।+ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'चुभते चौपदे' मे 'क्या से क्या' शीर्षक कविता के अन्तगत भारत के अतीत व वतमान की तुलना करते हुए वतमान असहायता व पतन का चित्रण किया है

आज वेढग बन गए हैं वे ढग जिनमे भरे हुए गुण थे
बाध सकते नही कमर भी व बाधते जो समुद्र पर पुल थे
जो रहे आसमान पर उडते आज उनके कतर गये है पर
सिर उठाना उन्हे पहाड हुआ जो उठाते पहाड उगली पर
सब सहारे क्या न सके कर जो मन उन्ही का मरा हुआ हारा,
है लहू घूट आज वे पीते पी गये थे समुद्र जो सारा,
राज पाकर राज जो करते रहे काम अब वे राज का है कर रहे
डालते थे जान जो दे जान मे आज वे हैं जानवर जाते गिने,

यद्यपि कमण्यता का पाठ पढाने के लिये वतमान पतितावस्था के प्रति क्षोभ प्रकट करना आवश्यक था किन्तु यदि अतीत के प्रति वास्तविक गव की भावना एव अपने म आत्म विश्वास जाग्रत न किया जा सका होता तो यह क्षोभ केवल भाग्य पर रोने का रूप ले लेता अत आलोच्य काल मे मैथिलीशरण गुप्त कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होगे अभी' की समस्याओ पर विचार करते हैं वतमान सदव उनके सामने रहा तथा अतीत गौरव का वणन भी वे वतमान को सुधारने की दृष्टि से ही करते हैं । अस्तु 'भारत भारती' म जिस प्राचीन गौरव का कवि स्मरण करता है

अत्यन्त लाभदायक होता है। हमारी गिरी हुई दशा को उठाने के लिये हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढकर उपयुक्त और कोई आदश हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमे मुझे पूर्ण सन्देह है।

— विद्या नही है बल नही है, धन भी नही है,
क्या से हुआ है क्या यह गुलिस्तान हमारा

(महावीर प्रसाद द्विवदी)

+ विश्व तुम्हारा भारत हूँ मैं हूँ या था चितारत हू मैं
(मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत')

ईसा मुहम्मद आदि का जग में न था तब भी पता,
कब की हमारी सभ्यता है कौन सकता है बता ?
संसार में जो कुछ जहा पर ज्ञान प्रकाश विकास है
इस जाति की ही ज्योति का उसमें प्रकाशाभास है,
देखो हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था
नर देव थे हम और भारत देवलोक समान था !

यह देश यह कहने का अधिकारी भी हो सका
कर यद्यपि दुखत भारत है,
पर भारत के सम भारत है

सियारामशरण गुप्त के 'मौर्य-विजय' में प्राचीन भारत का गौरव गान गाया गया है। 'मौर्य विजय' में चन्द्रगुप्त की सेल्युकस पर विजय दर्शायी गई है। इस ऐतिहासिक आख्यान के द्वारा कवि ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है तथा सम्पूर्ण विश्व द्वारा वन्दनीय बतलाया है। × राष्ट्रीय गौरव की उज्ज्वल भावना आगामी युग में जयशकर प्रसाद के नाटकों में अत्यन्त प्रखर रूप में प्रकट हुई।

पाजिटिविस्ट दर्शन के अनुरूप सास्कृतिक विशिष्टता की देन सबधी विचारणा, रवीन्द्र के माध्यम से

पीछे 'धार्मिक विचारधारा' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत मानववादी प्रवृत्ति का विवेचन करते हुए हम काम्टे (Comte) के पाजिटिविज्म (Positivism) दर्शन की चर्चा कर चुके हैं। मानव सेवा भावना के समय तत्कालीन युग में पाजिटिविस्ट दर्शन की लोकप्रियता का कारण उसका राष्ट्रीय भावना का पोषक होना है। हिन्दी में पाजिटिविस्ट दर्शन का प्रभाव बगला के माध्यम से आया जहा पाजिटिविज्म के माननेवाले कदाचित् स्वयं फ्रास से भी अधिक थे। =

× जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे
शौर्य वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे
रोम मिस्र चीन आदि कापत रहते सारे
सब हम जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय
फिर एक बार हे ! विश्व तुम गाओ भारत की विजय
(सियारामशरण गुप्त 'मौर्य-विजय')

= Priya Ranjan Sen Western Influence in Bengali Literature' 19, College Street Market, Calcutta 1947 Pp 102

It was said there were more Comtists in Bengal than in France

पाजिटिविस्ट दर्शन मानव हित की ओर लक्ष्य करता है किन्तु, उसके अनुसार मानवता कुटुम्ब और राष्ट्रों के रूप में व्यक्त होती है तथा मानव सेवा कुटुम्ब व राष्ट्रों की सेवा द्वारा ही सम्भव होती है। पाजिटिविस्ट दर्शन जितना मानव सेवा भावना का प्रचारक है उतना ही राष्ट्रवाद का भी सभी राष्ट्रों को एक स्तर पर लाने से मानवता शक्तिशाली नहीं बनती वरन् इसके लिए प्रत्येक राष्ट्र के स्वतन्त्र विकास के साथ उसकी विशिष्ट अभिरुचि व योग्यताओं का मानवता की सम्मिलित सेवा में लगाना आवश्यक है। मानव भक्ति कुटुम्ब व देश के प्रति प्रेम भावना पर आधारित है। मानव सेवा भावना राष्ट्रीयता का विरोध नहीं करती वरन् केवल उसका नियन्त्रण करती है जिससे अन्य राष्ट्रों को अपने अधिकार में लाना राष्ट्रीय गौरव का विषय न बन कर राष्ट्र सेवा ही उसका लक्ष्य रहे। सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत की राष्ट्रीय उन्नति का यह अर्थ समझा गया कि भारत को विशिष्ट रूप में अपनी उन्नति कर विश्व सभ्यता को अपनी देन प्रदान करना है। रवीन्द्रनाथ टगोर 'विश्व-हित' के लिये भारतीय स्वतन्त्रता की माँग करते हैं

'अगर हमारा ऐसा विश्वास हो कि पहले हम कभी भी एक जाति (एक नेशन) नहीं थे, नई शिक्षा के साथ हम राष्ट्रीय जीवन का यह स्वाद मिला है, धीरे धीरे मन में अगर ऐसे एक नए संकल्प का उदय हो रहा हो कि अपने देश में इकट्ठे हुए इन सब टुकड़ों को आज असीम समय के विशाल क्षेत्र में बोकर अंकुरित कर के हमें उनका पूर्ण विकास करना होगा सबमें एक सा जीवन प्रवाह सचारित कर के एक अपूर्व शक्तिशाली विराट पुरुष को जाग्रत करना होगा, हमारा देश एक खास और अलग देह धारण करके विपुल मनुष्य समाज के लिए अपनी आजादी का हक हासिल करेगा और इस विश्व व्यापी चराचर की राह में वह बिना किसी सकोच के असीम जनता में निरलस निर्भीक होकर लेन-देन करता रहेगा और अन्त में अपनी शान की खान अपना कार्य का क्षेत्र अपना प्रेम का रास्ता सवत्र सबके लिए खोल देगा, तो हम अपने मन के अन्दर विश्वास को दृढ़ करना ही पड़ेगा।'×

अस्तु, भारत, में पाजिटिविस्ट-दर्शन की यह विचारणा कि देश सेवा के रूप में मानव सेवा प्रतिफलित होती है तथा प्रत्येक राष्ट्र को अपनी विशिष्ट योग्यता का विकास कर मानव सेवा के अंश को पूर्ण करने में संलग्न होना चाहिए आलोच्यकालीन हिन्दी साहित्य को भी प्रभावित करती प्रतीत होती है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'स्वप्न' खण्ड काव्य में आत्मोत्सर्ग को ही सच्चे प्रेम का आधार बताया है तथा देश सेवा के रूप में ही वे मानव सेवा का विकास देखते हैं

× रवीन्द्रनाथ टगोर 'तपोवन' (अनु०)

सच्चा प्रेम वही है जिसकी
तृप्ति आत्म बलि पर हो निर्भर
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है
करो प्रेम पर प्राण निछावर
देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है
अमल असीम त्याग से विलसित
आत्मा के विकास से जिसमें
मनुष्यता होती है विकसित

मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू' में विश्व हित के लिए ही भारत को राष्ट्रीय उद्बोधन दिया है तथा परतन्त्रावस्था में उसकी विश्व मैत्री की बात को उपहासास्पद बतलाया है। भारत का उत्कर्ष स्वयं अपने लिए नहीं वरन् संसार के लिए अथच, मानवीय आदर्शों के लिए है

अथच विश्व मैत्री की बात
आज दीन दुर्बल तुम तात
यह औदार्य नहीं उपहास
तुम्हें जानते हैं सब दास
बिखरी शक्ति करो एकत्र
फिर सबको वह दो सर्वत्र
भुवन हेतु है भारतवर्ष
सबका है उसका उत्कर्ष

रवीन्द्रनाथ टगोर ने भारत के जिस 'खास और अलग देह धारण कर' अपनी स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त करने और विश्व को नया संदेश देने की कामना प्रकट की मैथिलीशरण गुप्त के वैतालिक में वही सांस्कृतिक वैशिष्ट्य की भावना मुखरित हुई है।(A) पश्चिम की देन को स्वीकार करते हुए भी कवि भेड़ों की तरह उसके अंधानुकरण को अनुचित समझता है।• पश्चिम के भौतिकवाद के विरोध में वह भारत

(A) आप आत्म उद्धरण करो
कुछ न बने अनुकरण करो
पर अंधों की भांति नहीं
तुम भेड़ों की पांति नहीं
(मैथिलीशरण गुप्त—'वैतालिक')

• पश्चिम खाता पीता है इसीलिए वह जीता है
इष्ट हमें है वह जीना मरने से न जाय छीना

के आध्यात्मिक 'योग म योग' के सदेश को मुखरित करता है। जिसके पास देने के लिए कुछ होता है और स्वय अपने में विश्वास नहीं खो जाता तब एक दिन स्वतत्रता के उस लोक म जगने की कामना वह राष्ट्र अवश्य करता है जिसके लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है

जहां निडर मन सिर ऊचा हो बिना बन्ध मिलता हो ज्ञान
जहां तग दीवारें टुकडे टुकडे करें न विश्व महान्
जहा सत्य की गहराई से शब्द निकलते प्यारे हों
जहा अथक उद्योग पूर्णता की दिशि बाहु प्रसारे हो
जहां विवेक विमल का सुदर बहता स्रोत सुहाया हो
रूढि रूप मरुभूमि भयानक मे जावे न समाया हो
जहा सदा विस्तीर्ण विचारों और कम मे मन रत हो
हे पितु उसी स्वतत्र स्वग में जगता प्यारा भारत हो

(अनुवादक गयाप्रसाद शुक्ल)

रामनरेश त्रिपाठी के 'मानसी' काव्य सग्रह की 'कामना' कविता भी रवीन्द्रनाथ की इसी भावना को प्रतिच्छायित करती है। मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वदेश सगीत' के प्रार्थना गीत म हम भारतीय राष्ट्र की अपने निजी रूप मे अभ्युदय की आकाक्षा पाते हैं

राम तुम्हे यह देश न भूले
धाम धरा धन जाय भले ही यह अपना उद्देश्य न भूले
निज भाषा निज भाव न भूले निज भूषा निज वेश न भूले
प्रभो तुम्हें भी सिंधु पार से सीता का सन्देश न भूले ।

राजनीतिज्ञ नेताओं के प्रभाव स्वरूप देश प्रेम की भावना का प्रसार हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि भावना कही से उधार नही आती किन्तु अभिव्यक्ति के लिए

वह सयोग मात्र पाकर प्रकटित हुआ यहा आकर
पर तुम आप न आये हो कुछ सदेशा लाये हो
तुमको उसे सुनाना है सबको यह बतलाना है
हुए नही तुम मरने को आये हो कुछ करने को
उनकी प्रस्तावना पगे पर अपनी भावना जगे
उनका सा उद्योग करो किन्तु योग म योग भरो

(वही)

भाग पनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति (General Tendency) से पनुप्रेरित हो काव्य साधना का सहारा लिया जा सकता है। देश प्रेम की भावना से रचे जानेवाले राष्ट्र स्तवन के गीतो म पश्चिम की प्रेरणा थी श्रीधर पाठक की भारत गीत' रचना की भूमिका म श्री पुरुषोत्तमदास टडन ने लिखा।

"पिछली शताब्दी म फ्रांस के विप्लव के समय प्रसिद्ध मारसेलस के गीत ने नैराश्य और कुप्रबन्ध से व्यथित फ्रेंच जाति म ऐसा उत्साह भर दिया कि उसने फ्रांस के इतिहास की सूरत ही बदल दी। 'वन्दे मातरम्' के गीत ने बग देश म कैसा जातीय परिवर्तन किया यह कल ही की बात है। पच्चीस गीतो का यह सग्रह राष्ट्रीय गीतो का अनुपम ग्रथ है।"+

यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि स्वतन्त्रता या गोखले के युग का भारत का राष्ट्र-गीत—'वदे मातरम्' फ्रांस के मारसेल्स गीत के पनुकरण पर लिखा गया किन्तु यह अवश्य है कि पश्चिमी राष्ट्रो की रीति पर राष्ट्र गीत गायन के पनुकरण रूप म 'वदे मातरम्' गान को अपनाया गया। बकिम के 'वदे मातरम्' गान ने स्वदेशी आन्दोलन म भाग लेनेवाले राजनीतिक कार्यकर्ताओ को ही प्रेरणा नहीं दी वरन् हिन्दी-कवियो को भी मातृभूमि के प्रति भावनाए प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। श्रीधर पाठक के 'भारत गीत' की कविताओ महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'वदे मातरम्' गीत राय देवीप्रसाद पूर्ण के स्वदेश कुण्डल मैथिलीशरण गुप्त की 'मातृभूमि' तथा रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि भारत' कविता म बकिम के 'वन्देमातरम्' गीत की ध्वनि सुनाई पडती है। 'वन्दे मातरम्' गीत म भारत माता को दुर्गा के रूप म देखा गया है। हिन्दी भाषी प्रान्त म बगाल के समान दुर्गा की मान्यता नहीं थी अत यहा राष्ट्र की कल्पना एक ओर 'वन्दे मातरम्' की सुजला सुफला शस्य श्यामला भारत भूमि की कल्पना प्रधान हुई तो दूसरी ओर रवी [redacted] की 'भुवन मोहिनी' का रूप निखर पडा। निम्न पक्तियाँ राष्ट्र कल्पना म हिन्दी कवियों की प्रधान प्रेरणा स्रोत रही

वदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्

(बकिम)

अयि भुवन मन मोहिनी
अयि निर्मल सूर्यकरोज्जवलधारिणी जनक जननी

+ श्रीधर पाठक 'भारत गीत' (भूमिका लेखक—पुरुषोत्तमदास टडन)

नील सिंधु जल धौत चरण तल
अनिल विकम्पित श्यामल अञ्चल
अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल शुभ तुषार किरीटिनी
(रवीन्द्र)

उपरोक्त पंक्तियों का निम्नलिखित कविताओं में भाव साम्य द्रष्टव्य है

भारत हमारा कैसा सुंदर सुहा रहा है
शुचि भाल पै हिमालय, चरणों में सिंधु अंचल
मणि बद्ध नील नभ का विस्तीर्ण यह अञ्चल
सारा सुदृश्य वैभव मन को लुभा रहा है
(श्रीधर पाठक)

पानी की कुछ कमी नहीं है, हरियाली लहराती है
फल औ फूल बहुत होते हैं रम्य रमन छवि छाती है
मलयानिल मृदु मृदु है शीतलता अधिकाती है
सुखदायिनी वरदायिनी तेरी मूर्ति मुझे अति भाती है
(महावीर प्रसाद द्विवेदी)

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है
नदियां प्रेम प्रवाह सूर्य तारे मण्डन हैं
बंदी विविध विहग शेषफन सिंहासन है
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेश की
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की
मैथिलीशरण गुप्त)

द्विवेदी युग की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना छायावादी-युग में कोमल रूप में मिलती है। निराला जागरण कविता में वैदिक युग के भारत के ज्ञान श्रेष्ठता का स्मरण करते हैं

देवत्व की पताका
सोऽहम् का शांत स्वर
भरा हुआ प्रतिमुख में
'अण्वप्युचितम्' विशाल हृदय
मुक्त द्वार खुला था
सदा ही संसार को
शिक्षा देने के लिए +

+ सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' परिमल, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ पृ २४६

महादेवी जी 'मैं कम्पन हूँ तू करुण राग' कविता में देश के दुखी जनों के विषाद में स्वयं खो जाना चाहती हैं तथा देश की मिट्टी में मिल जाने की कामना रखती हैं । ये स्वयं को छाया और देश को आधार मानती हैं ।

मैं छाया तू उसका आधार
मेरे भारत मेरे विधान
कहता है जिनका व्यथित मौन
हम सा निष्फल है आज कौन
निधन के धन सी हास रेख
जिनकी जग न पाई है देख
उन सूखे ओठों के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार
मैं तुझमें मिट जाऊँ उदार

पंतजी की रोमांटिक प्रवृत्ति उन्हें स्वर्ण पुरातन को मोहक दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करती है । 'प्रथतहि परलोक' कविता में भी यही भाव पाया जाता है ।

निराला के 'भारती जय विजय करे' गीत में भारत माता का दैवी रूप अंकित है

लंका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल, स्तव कर बहु अर्थ भरे
मुकुट शुभ्र हिम तुषार प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएं उदार, शत मुख शतरव मुखरे

पंत ने 'भारत माता' के करुण स्निग्ध रूप को अंकित कर भारतीय ग्रामीण जनता की दीन दशा को समुपस्थित किया

भारत माता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला सा श्यामल
धूल भरा मैला सा आंचल
गंगा यमुना में आंसू जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी

भारत के दिव्य मूर्तिकरण और प्राचीन गौरव की पुनरुत्थानमयी भावना में आर्य संस्कृति का जयघोष था । तथापि इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना में संकीर्णता नहीं थी । राजनीतिक स्वतंत्रता के उद्देश्य से प्रेरित हो हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना का प्रसार किया था । साथ ही गांधी जी के सभी धर्मों की समानता के भाव एवं रवीन्द्र की अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा विश्व संस्कृति की भावना का तत्कालीन साहित्य पर गहरा प्रभाव था । अन्न सांस्कृतिक विशिष्टता की

नस दन का प्रस्तुत अध्याय मे पीछे विवेचन किया गया है भारतीय स्वतत्रता के बाद सका समुज्जवल रूप मिलता है । भारत ने अपनी स्वतत्रता के साथ साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद से परतत्र देशा की मुक्ति की कामना की । विश्वशाति की थापना म भारत के बढते हुए अ तराष्ट्रीय महत्व के अनुरूप ही हि दी के कवि ी वाणी है

भारत हे! तेरी जय ध्वनि में,
विश्वशाति की उदघोषणा है अवनि म
(सियाराम शरण गुप्त जयहिन्द')
हो भारत स्वातत्र्य विश्व हित स्वण जागरण
(पत)

मेरे प्यारे देश देह या मन को नमन करू मैं
भारत नही स्थान वाचक गुण विशेष नर का है
एक देश का नही शील वह भूमडल भर का है
उठे जहा भी घोष शाति का, भारत स्वर तेरा है
धम दीप हो जिसके कर मे वह नर तेरा है
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अडने जाता है
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है
मानवता के इस ललाट वदन को नमन करू मैं +
(दिनकर)

हिन्दी नाट्य साहित्य में जयशकर प्रसाद के नाटको म सास्कृतिक पुनरुत्थान की भावना सबसे बढकर मिलती है । ऐतिहासिक नाटको का आधार लेकर प्रसाद ने अविकृत भारतीय सस्कृति–आय सस्कृति का समुज्जवल रूप अ कित किया है । उनके नाटको म महाभारत काल (जनमेजय का नाग यज्ञ) से लेकर हष वद्धन (राज्य श्री) के राज्य काल का युग अ कित किया गया है । यही भारतीय सस्कृति के उत्थान का युग भी रहा है । अपने नाटको म देश के सास्कृतिक उथल पुथल के युग का अ कित कर तथा विदेशी आक्रमणकारियो के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार कर उन्होने इतिहास के माध्यम से वतमान युग की आवश्यकता का प्रभावशाली रूप म प्रस्तुत किया है । प्रसाद जी की सास्कृतिक पुनरुत्थान की भावना इसम प्रकट है कि उनके नाटक गम्भीर ऐतिहासिक अध्ययन के उपरान्त लिखे गये हैं ।

प्रसाद जी के स्कन्दगुप्त (१६२८) नाटक म स्कन्दगुप्त को हम प्रारम्भ म एक उदासीन व्यक्ति के रूप म पाते हैं जिसे अधिकार सुख मादक और सारहीन

+ भारतीय कविता १६५३ साहित्य अकादमी, नई दिल्ली १६५६ पृष्ठ ५७७

प्रतीत होता है। किन्तु मण्डलाधिकृत पर्णदत्त से जब यह प्रश्न करता है 'अधिकार का उपयोग किस लिए' तो पर्णदत्त उसे अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत करता है "त्रस्त प्रजा की रक्षा के लिये, सतीत्व के सम्मान के लिये देवता ब्राह्मण और गौ की मर्यादा में विश्वास के लिये आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिये, अपने अधिकारों का उपयोग करना होगा।"* स्कन्दगुप्त देश की पूजा से रक्षा करने को तत्पर होता है और अन्त में उसे सफलता मिलती है। स्कन्दगुप्त का चरित्र इतना भव्य है कि वह पूर्ण सफलता प्राप्त करने के बाद भी अपने भाई पुरगुप्त को साम्राज्य का अधिपति बना देता है और देवसेना के प्रति आकृष्ट होने पर भी मर्यादा पालन और प्रेम के आदर्श को निभा कर वानप्रस्थ ले लेता है। भटार्क हूणों से मिल कर स्कन्दगुप्त के साथ विश्वासघात करता है जिसके कारण उसकी पराजय होती है। फिर भी अपनी माता द्वारा देशद्रोह के लिए प्रताड़ित किये जाने पर जब भटार्क आत्महत्या के लिए प्रस्तुत होता है तब स्कन्दगुप्त उसे रोकता है "रणभूमि में प्राण देकर जननी जन्मभूमि का उपकार करो। भटार्क यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिये नहीं जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूंगा और तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी। पुरगुप्त को सिंहासन देकर मैं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करूंगा।'+

स्कन्द की पराजय से हूणों द्वारा देश के पदाक्रान्त होने पर पर्णदत्त भीख माँग कर रोटियाँ एकत्रित करता है जिससे कि देश रक्षा के उपक्रम के लिए प्राण बचे रह सकें।×

स्कन्द विजया के यह प्रस्ताव करने पर कि वह धन देकर हूणों को लौटा ■ और वह सम्पत्ति विजया उसे प्रदान करने को तत्पर है जिससे कि वह सुख से साथ रह, कहता है "विजया तुमने मुझे इतना लोभी समझ लिया है? शस्त्र बल से यदि हो सका तो जन्मभूमि का उद्धार कर लूंगा, सुख के लोभ से मनुष्य के भय से मैं उत्कोच देकर क्रीत साम्राज्य नहीं चाहता।=

विजया के आत्म हत्या करने पर भटार्क उस गाड़न के लिए जब वह खोदता है तो उस स्थान पर ही गुप्त हुआ रत्नागार मिलता है तथा स्कन्दगुप्त भटार्क के सहयोग से सेना संगठित कर रण से हूणों को मार भगाता साम्राज्य

---

* जयशंकर प्रसाद स्कन्दगुप्त भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ग्यारहवां संस्करण पृ० १०

+ वही पृ० १४४

× वही पृ० १४६

= वही पृ० १४२

की स्थापना करता है तथा पुरगुप्त का जिसके कारण उसे आन्तरिक षडयन्त्रों का सामना करना पड़ा था राज्याभिषेक करता है। उसकी अपनी यही कामना है– देखना मेरे बाद जन्म भूमि की दुर्दशा न हो।" ✝

प्रसाद जी की देश भक्ति की भावना विदेशी पात्रों द्वारा भी भारत की प्रशंसा कराने के रूप में प्रकट हुई है। स्कन्दगुप्त' में धातुसेन भारत की प्रशंसा करता है। * वह इस देश को वसुंधरा का हृदय और 'सपनों का देश भव्य भारत' कह कर संबोधित करता है। चन्द्रगुप्त' (१९३१) में भी कार्नेलिया का भारत प्रेम प्रमित है। प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति का गौरव विदेशी आक्रमणकारियों को पराजित कर उनके प्रति क्षमाशील होने में दर्शाया है। 'चन्द्रगुप्त' में सिकन्दर के आहत होकर गिरने पर मालव सैनिक कहते हैं "सेनापति रक्तपात का बदला ? प्रतिशोध ?" तब सिंहरण की देश भक्ति इन स्वरों में प्रकट होती है 'ठहरो मालव वीरो, ठहरो, यह भी एक प्रतिशोध है, यह भारत के ऊपर एक ऋण था, पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है।" स्कन्दगुप्त भी पुरगुप्त के राज्याभिषेक के समय बन्दी बना कर लाये हुए हूण सेनापति को छोड़ देता है 'इस हूण को छोड़ दो और कह दो कि सिन्धु के इस पार के पवित्र देश में कभी आने का साहस न करे।" ×

सामयिक समस्याओं का चित्रण भी प्रसाद ने इतिहास के माध्यम से किया है। 'स्कन्दगुप्त' में बौद्ध और ब्राह्मण वर्ग का संघर्ष प्रकारान्तर से वर्तमान युग के हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का ही रूप है। गुप्तकाल की जनता के मुंह से यह कहला कर 'हम लोग यस आपस में झगड़ते हैं और आततायियों को देख कर घर में घुस जाते हैं। हूणों के सामने तलवारें लेकर इसी तरह क्यों नहीं अड़ जाते ?' = मानो वे तत्कालीन राजनीतिक समस्या का संकेत करते हैं और साम्राज्यवाद के विरुद्ध उद्बोधन देते हैं। 'चन्द्रगुप्त' में चाणक्य के इस उपदेश में 'मालव और मगध को भूल कर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह (आत्म सम्मान) मिलेगा' और सिंहरण के इन शब्दों में "परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं गांधार भी है, यही क्या समग्र आर्यावर्त है" में आधुनिक युग की राष्ट्रीयता की भावना प्रकट हुई है। 'स्कन्दगुप्त के गीत हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार उषा ने हंस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार ' में भारतीय संस्कृति का भव्य रूप प्रकट हुआ है।

✝ वही, पृष्ठ १५२
* वही पृष्ट ११६
× वही पृष्ठ १५२
= वही पृष्ठ १२४

(२) यथार्थवाद

उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया। रैल्फ फाक्स (Ralph Fox) ने साहित्य के इन दोनों रूपों में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "महाकाव्य में सम्पूर्ण समाज की अभिव्यक्ति जिस रूप में सम्भव थी वैसी अभिव्यक्ति उपन्यास नहीं कर सका और न कर सकता था। महाकाव्य के चरित्रों में समाज के साथ सन्तुलन रहता था और वह सन्तुलन आज के युग में लुप्त हो गया है। उपन्यास व्यक्ति का चित्रण करता है यह व्यक्ति की समाज व प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष की गाथा है और केवल उसी युग में इसका विकास सम्भव था जब कि व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन नष्ट हो गया हो एवं व्यक्ति अन्य व्यक्तियों अथवा परिवेश के विरुद्ध संघर्ष में लीन हो" + उपन्यास के वे पात्र जिनके साथ लगकर पाठकों की सहानुभूति जागृत करता है किसी न किसी रूप में सामाजिक मान्यताओं के मूर्तिभंजक होते हैं।

पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ है। भारतेन्दु-युग से ही इस दृष्टि से उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होता है। लाला श्रीनिवास दास ने 'परीक्षा-गुरु' उपन्यास के प्रेरणा स्रोत के संबंध में लिखा 'इस पुस्तक के रचने में मुझे महाभारत आदि संस्कृत गुलिस्तां वगैरे फारसी स्पेक्टेटर, लार्ड बेकन, गोल्डस्मिथ, विलियम कूपर आदि के पुराने लेखों और स्त्रीबोध आदि रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।"* तत्कालीन युग में प्रचलित कथाओं–तोता मैना छबीली भटियारिन आदि से भिन्न इस उपन्यास में पाश्चात्य प्रथानुकरण से फिजूल खर्ची की समस्या को लिया गया है तथा देश की दुरावस्था व उसके आर्थिक शोषण समाज–सुधारकी आवश्यकता आदि के रूप में लेखक की उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रकट होती है। उपन्यास में मौलिक कथा अंश बहुत कम है तथा विश्व इतिहास एवं पाश्चात्य साहित्य से उदाहरण लेकर दिये

+ Ralph Fox The Novel & the People' Cobett Press Ltd Second Impression 1948 Pp 43

The epic was a complete expression of a society in a way in which the novel never has been and never could be There is a balance between the character of the epic and the society in which they lived which has since been lost, and it could only develop in a society where the balance between man and society was lost, where man was at war with his fellows or nature

* श्रीनिवास दास परीक्षा गुरु' निवेदन' पृष्ट २

गय उपदेशों की भरमार है। यह उपदेशात्मक प्रवृत्ति बालकृष्ण भट्ट व राधाकृष्णदास के उपन्यासों में भी पाई जाती है परन्तु उनके उपन्यासों में परीक्षा गुरु की तरह साहित्य व इतिहास से उदाहरण देने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। श्रीनिवासदास पाश्चात्य उपन्यासकारों में गोल्डस्मिथ से अधिक प्रभावित हुए थे। देवकीनन्दन खत्री ने उपन्यासों में भारतेन्दु युग की यथार्थवादिता से हटकर तिलस्मी उपन्यासों की रचना की। खत्रीजी भी पाश्चात्य रचनाओं से प्रभावित हुए थे। रनाल्ड के समान उनके उपन्यासों में तिलस्म का भेद किसी विवेक सम्मत सूत्र के सहारे खुलता है। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों की रचना की। बंगला से पचकौड़ीदे के जासूसी उपन्यासों के उन्होंने अनुवाद भी किये थे। गहमरी जी पर बंगला के माध्यम से रेनाल्ड, राइडर हैगार्ड कानन डायल एडगर वालेस व अनेक सिरीज के जासूसी उपन्यासों का प्रभाव पड़ा। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में सर्व प्रथम सामाजिक समस्याओं का उल्लेख हुआ। गोस्वामीजी ने जिस समय अपने उपन्यासों की रचना की उस समय हिन्दी में बंगाल से बंकिमचन्द्र रमेशचन्द्र दत्त प्रभृति के उपन्यासों के अनुवादों की भरमार थी। बंगला के यह लेखक पाश्चात्य लेखकों से प्रभावित हुए थे। हिन्दी में प्रेमचन्द के आगमन से सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्य लेकर उपन्यासों की रचना की जाने लगी। हिन्दी उपन्यासों पर आंग्ल उपन्यासकार डिकेन्स व विलियम मेकपीस थेकरे रूसी उपन्यासकार तालस्ताय व मक्सिम गोर्की तथा फ्रांसिसी प्रकृतवादी (Naturalist) उपन्यासकारों के यथार्थवाद का प्रभाव मिश्रित रूप में पड़ा।

उपन्यास स्वभावतः यथार्थ चित्रण की ओर ऋजु होता है। किन्तु यथार्थ की परिभाषा विभिन्न लेखकों के साथ भिन्न रूप धारण कर सकती, और करती है। प्रेमचन्द की मानव-कमजोरियों के प्रति अशेष सहानुभूति थी। यही कारण है कि वे उसकी पतितावस्था का चित्रण करके भी निर्मम नहीं बन सकते थे। उनके मत में 'यथार्थवाद यदि हमारी आंख खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठा कर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है ... वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है हमारी दृष्टि को फलाता है—कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।" * अतः प्रेमचन्द अपनी रचनाओं द्वारा मनुष्यत्व को जगाने का आजन्मव्यापी प्रयत्न करते रहे। वेश्याओं के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने सेवा सदन जैसी संस्था की स्थापना का उपदेश दिया। अपनी ओर से जमींदारों द्वारा स्वत्वों को त्याग कर प्रेमाश्रमों' के निर्माण की प्रेरणा दी। अछूतों को समाज में ब्राह्मणों के साथ वे ऊंचा स्थान दिलाना चाहते थे। किन्तु समाज में यह परिवर्तन नहीं आया। फलतः

---

* प्रेमचन्द कुछ विचार' 'उपन्यास का विषय शीर्षक लेख

प्रेमचन्द अपनी पीढ़ी की रचनाओं (गोदान, कफन व अन्य कहानियां) में आदर्श की बातें छोड़ कर यथार्थ का अंकन करते हैं। "सेवासदन" के अंत में वेश्या सुधार के लिये सदन की स्थापना की गई थी किन्तु 'गोदान' में वेश्या सुधार का समाधान दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक परिवर्तन के साथ वे वेश्याओं के लिये सम्मानीय जीविका का साधन जुटाने के हामी हैं। इसी प्रकार, प्रेमचन्द अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में अछूतों को समाज में सम्मानीय स्थान दिलाने के पक्षपाती थे। समाज ने अछूतों को वह स्थान नहीं दिया तो 'गोदान' में मातादीन ब्राह्मण को चमार के स्तर पर उतारा गया है। उसके मुंह में हड्डी डाल कर उसे चमार बनाया जाता है तथा वह जनेऊ तोड़ कर ब्राह्मण समाज को सलाम दे चमारिन सिलिया को आत्म-समर्पण करता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द के स्वप्न अत्यधिक फीके हो गए हैं। कृषक समस्या का हल करने के लिए प्रेमाश्रम में इंगित किये हुए प्रेमाश्रम की भी भारतीय समाज में स्थापना नहीं हुई। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में कृषक समस्या का कोई सुधारवादी हल प्रस्तुत नहीं किया। जीवन भर सूदखोरी लगान विवाह आदि सामाजिक कर्मों एवं रूढ़ियों में फंसा होरी मरता है तब उसकी पत्नी गोदान के लिये सवा रुपया लेकर मूर्छित हो जाती है। किसान का यह दयनीय जीवन है। होरी करोड़ों भारतीय किसानों का प्रतीक है। सबकों से संघर्ष करने में ही उसका व्यक्तित्व सजीव हो उठा है और वह एक यथार्थवादी युग धारा के सच्चे नायक के रूप में हमारे सामने आता है—व्यक्ति परिवेश के विरुद्ध संघर्ष में लीन।

जयशंकर प्रसाद के अनुसार यथार्थवाद की विशेषता है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात जिसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की आवश्यकता है। दूसरे रूप में प्रसाद जी समाज में पतित कहे जानेवाले वर्ग की वेदना की अभिव्यक्ति करना यथार्थवाद का सत्य मानते हैं। अतः प्रेमचन्द की तरह उन्होंने पतित जीवन के आदर्शात्मक पक्ष का कल्पना नहीं किया है। प्रसाद ने 'कंकाल' में समाज के यथार्थमूलक पक्ष का ही अनावरण किया है। समाज की सड़ांध को दिखाने के लिये कंकाल में प्रसाद ने धार्मिक तीर्थ स्थानों का क्षेत्र चुना है। 'कंकाल' व्यंग्यपूर्ण उपन्यास है और इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जो धर्म कर्मों का ढोंग रचाते हैं समाज उनको साधु समझ कर पूजा करता है और उनके कुकर्मों का उद्घाटन करने की आवश्यकता नहीं समझता किन्तु वह व्यवहार है कि कंकाल में रूढ़ि विरोधों के शिकार होकर पात्र अस्तित्व जीवन का दिग्दर्शन करते हैं। कंकाल के सभी पात्र वर्ण संकर अवस्था में उत्पन्न हैं। तारा और मंगल का पाप स्वाभाविक है किन्तु इस अस्वाभाविक बन्धन का उत्तरदायित्व मंगल पर ... व्यक्ति का चित्रण करना है। कंकाल का विजय गुप्त द्वारा ... है। कंकाल के अंत में चमत्कार का अद्भुत चित्रण है जिसमें ... सब ... का दृश्य ... रहा है और वह समाज के रूढ़ि विरोधी

से पिसी यमुना अपने भाई का कत्ल लिये बठी है। घमसघ के रूप मे मानो प्रसाद न प्रमचन्द के सेवासदन व प्रमाश्रमों की ध्यथता व वास्तव को नग्न रूप म दर्शा दिया है।

प्रसाद के तितली' उपन्यास म हम उनके द्वारा व्यक्ति व समाज के सघष व यथाथ चित्रण का ओर भी स्पष्ट रूप पाते हैं। समाज और व्यक्ति का सघष मान' मधुबन क एक वाक्य म ही मूत्त हो उठा है-' ससार पाजी है तो हम अकेले महात्मा बन कर मर जायेंगे।" मधुबन जानता है आज के समाज म अन्याय का प्रतिकार करने क लिय शक्ति सपत्ति और सहाय (Push) की आवश्यकता होती है।

'तितली' म हम केवल भारतीय किसान के शोषण का ही चित्रण नही पाते प्रसाद ने इस उपन्यास म इगलैण्ड क वातावरण को भी चित्रित किया है। लदन का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं 'एक ओर सुगन्ध जल के फुब्वारे छूटते हैं, बिजली से गम कमरा मे जाते ही कपडे उतार देने की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर पाले में चबूतरों के नीचे अध नग्न दरिद्रा का रात्रि निवास'+ प्रसाद ने इगलण्ड के निम्न वग का चित्रण करके यह स्पष्ट बतला दिया कि समाज शोषक व शोषित वग म बटा है, चाहे इगलण्ड की बात हो या भारत की। तितली म उन्होने सामाजिक वषम्य को अधिकतर आर्थिक कारणो का परिणाम बतलाया है। अवश्य प्रसाद अध प्रेम क पक्षपाती नही थे। इगलण्ड से लौट कर इन्द्रदेव ग्राम सुधार का प्रयत्न करते हैं तब कहते है "म तो अपने धम और सस्कृति से भीतर ही भीतर निराश हू। म सोचता हू कि मेरा सामाजिक बधन इतना विशृखल है कि उसम मनुष्य केवल ढोंगी बन सकता है। आप लोग इतने दुखी हैं कि थोडी सी सहानुभूति मिलते ही इतना नाम की दासता करने लग जाते हैं। इससे तो अच्छी है पश्चिम की आर्थिक या भौतिक समता जिसमे ईश्वर के न रहने पर भी मनुष्य क लिए सब तरह की सुविधाओ की योजना है।'× तब इसके उत्तर मे रामनाथ के शब्दो म मानो प्रसाद ही कहते हैं

'जनता को अध प्रेम की शिक्षा देकर उसे पशु बनाने की चेष्टा असफल करेगी। भारतीय आत्मवाद की मानसिक समता ही उसे स्थायी बना सकेगी। यान्त्रिक सभ्यता पुरानी होते ही ढीली होकर बेकार हो जायगी। उसम प्राण बनाये रखने के लिये व्यावहारिक समता क ढाचे या शरीर म भारतीय आत्मिक साम्य की आवश्यकता कब मानव समाज समझ लेगा, यही विचारने की बात है। मैं मानता हू कि पश्चिम एक शरीर तयार कर रहा है, किन्तु उसम प्राण देना पूव क आध्यात्म

+ जयशकर प्रसाद तितली, पृ० ३३७

× जयशकर प्रसाद वही, पृ० २४७

जाता है यही सकेत पर्याप्त था किन्तु लेखक ने इससे आगे भी उद्दाम वासना के चित्रण की आवश्यकता समझी। 'आत्म दाह' भिन्न रूप से यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। व्यक्ति नियति का दास बन कर (नियति क्यों कि इस उपन्यास में व्यक्ति के कष्टों का कारण सामाजिक परिस्थियाँ नहीं अत भाग्य ही है) कष्टमय जीवन व्यतीत करता है और अंत मे सीढ़ियों पर हम उसे रोटी के टुकड़ो के लिए कुत्तों से स्पर्द्धा करते पाते हैं। 'वैशाली की नगर वधू' विस्तृत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (६०० ई पू से ५०० ई पू) पर रची हुई यथार्थवादी रचना है जिसमें वैदिक धर्म के प्रभुत्व और इतिहास के स्वर्णकाल मे समाज के कुत्सित पक्ष का उद्घाटन किया गया है। गणतन्त्र व सामन्ती राज्य आकण्ठ विलासिता मे निमग्न थे। आर्य सम्राट प्रसेनजित के यहा भेड बकरियो की तरह सभी जाति की पत्नियां एकत्रित हैं वज्जीगणसंघ का नियम है कि सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी जनपदकल्याणी अथवा नगर वधू बनने के लिये बाध्य है ब्राह्मण व क्षत्रिय वर्गों ने अन्य जातियो की स्त्रियो से उपभोग कर जिन सतानो को जन्म दिया उनकी नवीन सकर जाति बन गई थी जिसने राजवशो को चुनौती दी, दासो का विक्रय पशुओ की तरह हो रहा था—विशेष रूप से स्त्रियो का वासना की पूर्ति के लिए यज्ञ की ओट मे विलासिता, धन और अहकार पनप रहे थे। अत स्वाभाविक ही है इन परिस्थितियो मे वैदिक धर्म के विरुद्ध जैन व बौद्ध धर्मों का विकास हुआ 'वैशाली की नगर वधू' विलासिता में अंधे पुरुष समाज की पाशविक वासना वृत्ति के विरुद्ध एक अनिंद्य सुन्दरी किन्तु असहाय नारी के विद्रोह की कहानी है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के सन्यासी (१९३१) नाटक मे पाश्चात्य शिक्षा के रूप पर व्यग्य किया गया है। किरणमयी व मालती के जीवन द्वारा उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव को दर्शाया है। आजीवन अविवाहित रह कर देश सेवा का व्रत लेने वाला मुरलीधर किरणमयी का कौमार्य भग करता है। मुरलीधर की मृत्यु के उपरान्त किरणमयी वृद्ध प्रोफेसर दीनानाथ के साथ रहती है किन्तु अपने मन के असतोष के कारण प्राण त्याग देती है। नाटक में केवल स्त्री वर्ग पर ही व्यग्य नहीं किया गया है आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों का चरित्र भी अपसंस्कृत व पतित बताया है। मालती का, सहपाठी विश्वकान्त के प्रति प्रेम खुलने पर प्रोफेसर उसका कालेज से निष्कासन कर देता है किन्तु प्रोफेसर स्वय ही मालती पर अनुरक्त है। मालती में प्रेम में असफल होकर विश्वकान्त सन्यास ले लेता है। विश्वकान्त व अफगानी अहमद 'एशियाई संघ' की स्थापना करते हैं। एशियाई संघ की स्थापना के मूल में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति तथा गोरी जातियों द्वारा रगभेद की नीति का विरोध प्रकट हुआ है। नाटककार बुद्धिवादी दृष्टिकोण को प्रधानता देता है। नाटक के पात्र अपने विगत जीवन की घटनाओ पर चिन्तन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि भावुकता पूर्ण दृष्टिकोण का परित्याग किया जाय।

'राक्षस का मन्दिर' (१९३१) में मिश्रजी ने वेश्या–समस्या का चित्रण किया है तथा सभ्य और शिक्षित समाज की छिपी हुई बुराईयों का अनावरण किया है। लेखक अपने दृष्टिकोण की अनातोले फ्रांस तथा टाल्सटाय जैसे पश्चिमी लेखकों के मत से पुष्टि करता है।* वृद्ध वकील रामलाल का असगरी वेश्या से सम्बन्ध है। उनका पुत्र रघुनाथ भी इस वेश्या से प्रेम करने लगता है। रघुनाथ का मित्र मनोहर जो क्रान्तिकारी है रघुनाथ को प्रभावित कर उसकी सारी सम्पत्ति वेश्या–सुधार के लिए मातृ–मन्दिर खुलवाने में लगा देता है। किन्तु यह मातृ मन्दिर राक्षस मन्दिर के रूप में सामने आता है जहां असगरी वेश्या रहती है और ऊपर से सभ्य दिखाई देनेवाला समाज यहां पतित जीवन व्यतीत करता है। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने 'मिसेज वारेन्स प्रोफेसन' में मिसेज वारेन्स को वेश्या जीवन बिताने के लिये इसलिये विवश बताया कि वह अपनी लड़की को सभ्य व सुशिक्षित बनाने के लिये धन व्यय कर सके। राक्षस का मन्दिर' में वेश्या समस्या का आधार आर्थिक नहीं बताया गया है वरन् शिक्षित व सभ्य लोगों की दूषित मनोवृति पर व्यंग किया गया है।

मुक्ति का रहस्य' (१९३२) नाटक में मिश्रजी ने प्रेम में प्रतिस्पर्द्धा तथा उसके दुष्परिणामों का वर्णन किया है। उमाशंकर असहयोग–आन्दोलन के समय अपने पद से त्यागपत्र देकर दो वर्ष के लिए जेल जाते हैं। जेल से छूट कर आने पर वे आशा देवी नामक युवती के साथ रहने लगते हैं। उमाशंकर बाबा के ऋण से उऋण होने के लिए अपनी पैतृक सम्पत्ति उन्हें प्रदान कर देते हैं। आशा देवी उमाशंकर के मित्र डाक्टर त्रिभुवन की सहायता से उमाशंकर की पत्नी को जहर दे देती है। आशा देवी की इस दुर्बलता का लाभ उठा कर त्रिभुवन उसका कौमार्य भंग कर देता है। आशा देवी आत्म ग्लानि से विक्षुब्ध हो जहर खा लेती है। त्रिभुवन उसका उपचार करके उसे बचा लेता है और वह आशा देवी से क्षमा याचना करता है। त्रिभुवन के इस व्यवहार से आशा देवी प्रभावित होती है। वह त्रिभुवन के साथ विवाह कर त्रिभुवन को व स्वयं को पतन से बचा लेना चाहती है। किन्तु इसके लिये वह उमाशंकर से अनुमति चाहती है। वह उमाशंकर को यह भी बता देती है कि उसकी पत्नी को उसी ने विष दिया था तथा अब उसका त्रिभुवन के साथ अवैध सम्बन्ध हो चुका है। उमाशंकर यह रहस्योद्घाटन होने पर व्यथित होकर पिस्तोल से आत्म हत्या करने को तत्पर हो जाते हैं किन्तु आशादेवी के आग्रह करने से व मनोहर के प्रति वात्सल्य के कारण वे आत्म हत्या करने से रुक जाते हैं। मिश्रजी ने इस नाटक में एक ओर स्वच्छन्द प्रेम की असावधानी की ओर इंगित किया है किन्तु दूसरी ओर आशा देवी को त्रिभुवन के साथ विवाह सम्बन्ध में बंधा कर भारतीयता

---

* लक्ष्मीनारायण मिश्र 'राक्षस का मन्दिर' (मेरा दृष्टिकोण) पृ १

भी रंगा की है। भारतीय नारी का किसी भी पुरुष के साथ जिस स्थिति में यौन सम्बन्ध हो जाता है वह उसी की जीवन संगिनी होकर रहती है। मिश्रजी ने इसी मान्यता को 'मुक्ति का रहस्य' में प्रतिपादित किया है। आशा देवी का उमाशंकर को अपने सम्बन्ध के बारे में जानकारी देना बुद्धिवादी दृष्टिकोण से यथार्थ समस्या का सामना करना सूचित करता है। इस प्रकार, मिश्रजी के नाटकों में पूर्व व पश्चिम के विचारों का अपूर्व समन्वय पाया जाता है। मिश्रजी का कथन है "बुद्धिवाद किसी तरह का हो किसी कोटि का हो समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता, बुद्धिवाद में गुणकर कोटेड कुनैन की व्यवस्था है ही नहीं वह तो तीक्ष्ण सत्य है"×

मिश्रजी के 'सिन्दूर की होली' (१९३४) नाटक में सम्पत्ति के लिये झगड़े, विधवा विवाह एवं रिश्वतखोरी की समस्याओं को प्रदर्शित किया गया है। मजिस्ट्रेट मुरारीलाल आठ सहस्र रुपया के लिए अपने मित्र की हत्या कर देता है किन्तु इससे उसका मन अशांत रहता है और उसी की शान्ति के लिए वह उस मित्र के लड़के मनोजशंकर का लालन पालन करता है तथा इससे भी अधिक धन उस पर व्यय कर देता है। मुरारीलाल एक ऐसे व्यक्ति से चालीस सहस्र रुपय रिश्वत लेता है जो अपने पट्टीदार रजनीकान्त की हत्या कर उसका धन हड़प जाता है। मजिस्ट्रेट मुरारीलाल की कन्या चन्द्रकला रजनीकान्त के चित्र को देख कर मन में अनेक संकल्प विकल्प करती है और अन्त में मृत रजनीकान्त के हाथों से अपनी मांग में सिन्दूर भर लेती है तथा आजन्म अविवाहित रह कर अपने पिता से दूर रहती है। मनोजशंकर को भी यह ज्ञात हो जाता है कि मुरारीलाल ने धन के लिये उसके पिता की हत्या की थी। प्रस्तुत नाटक में लेखक मुरारीलाल के रूप में उस सभ्य समाज के लोगों की दुष्प्रवृत्तियों का चित्रण करता है जो ऊपर से सभ्य दिखाई देते हैं पर छिप कर नीच कृत्य करने में भी नहीं झिझकते हैं। नाटककार बुद्धिवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर इन गुप्त समस्याओं पर तीव्र भेदी प्रकाश डालता है। वह किसी भी प्रकार की विकृति को अनदेखा नहीं करता। मनोरमा के रूप में नाटककार ने भारतीय नारी का समुज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है। वह विधवा विवाह का विरोध करती है क्योंकि इससे तलाक की समस्या उत्पन्न हो जायेगी जिस प्रेमी के मुख को भी उसने नहीं देखा उसके रूप की कल्पना कर वह उसे मन आंखों में बसाये है। मिश्रजी ने पश्चिम के बुद्धिवादी दृष्टिकोण को अपना कर उसमें भारतीय आदर्शों को प्रतिष्ठित किया है।

मिश्रजी का 'आधी रात' (१९३६) नाटक पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करनेवाली नारी पर व्यंग है। इसमें ऐसी नारी का चित्रण है जो पाश्चात्य सभ्यता

× लक्ष्मीनारायण मिश्र—'मुक्ति का रहस्य' (मैं बुद्धिवादी क्यों भूमिका)

की नारी स्वतन्त्रता की भावना से प्रेरित होकर पुरुषों के अधिकारों को ललकारती है किन्तु अन्त में भारतीय नारी के आदर्शों की श्रेष्ठता उसके लिए स्पृहणीय बन जाती है। वह कहती है "अपनी आत्मा से, अपने हृदय से उन सभी संस्कारों को निकाल रही हूँ जिनका मोह इस जन्म में प्रबल रहा है। मैं चाहती जिस समय मैं मरने लगूँ एक अपढ़ गवार स्त्री रहूँ।" =

यद्यपि मिश्रजी इब्सन (Ibsen) की विचारधारा के बुद्धिवादी पक्ष से तथा उसकी रंगमंचीय कला से प्रभावित हैं किन्तु उन्होंने भारतीय सामाजिक आदर्शों की अपने नाटकों में स्थापना की है। यही कारण है उन्हें अपने नाटकों में भारतीयता की स्थापना के लिए सांस्कृतिक नाटक लिखने पड़े जिनकी विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं है। मिश्रजी के अतिरिक्त सेठ गोविन्ददास एवं उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी समस्यात्मक नाटकों का प्रणयन किया है। सेठजी के नाटकों में राजनीतिक एवं अश्कजी के नाटकों में मध्यमवर्गीय सामाजिक समस्याएं मुख्य हैं। रंगमंचीय शैली की दृष्टि से सेठ गोविन्ददास एवं उपेन्द्रनाथ अश्क इब्सन या जार्ज बर्नार्ड शॉ से प्रभावित हैं किन्तु मिश्रजी की तरह व्यक्ति की समस्याओं का उनके नाटकों में समावेश नहीं हुआ।

(२) प्रयोगवाद

हिन्दी साहित्य में पिछले दस पन्द्रह वर्षों (अब पच्चीस) में नवीन काव्य प्रवृत्ति का विकास होने लगा है जिसे प्रयोगवाद (अब नयी कविता) के नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः 'प्रयोग' शब्द जैसा कि इस वाद के प्रवर्तक अज्ञेयजी का आग्रह था अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त नहीं हो सका एवं एक विशेष प्रकार की वैयक्तिकता एवं बौद्धिकता प्रधान शैलीगत काव्य प्रयोगों के लिए काम में लाया जाने लगा है। हिन्दी में प्रयोगवादी कविता का जन्म 'तार-सप्तक' के प्रकाशन (सन् १९४३) से माना जाता है। इस कविता-संग्रह के सम्पादक स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय हैं। उनके सम्पादकत्व में 'दूसरा सप्तक' (१९५१) और हाल ही में 'तीसरा सप्तक' का इसी परम्परा में प्रकाशन हो चुका है। इन संग्रहों के अतिरिक्त 'प्रतीक' 'पाटल' 'दृष्टिकोण' आदि पत्रों में प्रयोगवादी कविता को विशेष प्रोत्साहन दिया गया।

प्रयोगवाद वस्तुतः वैयक्तिकता से संबंधित शैलीगत वाद है। अज्ञेय जी ने साधारणीकरण की समस्या को इस प्रसंग में उठाया है "यह आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है। यों समस्याएं अनेक हैं—काव्य विषय की, सामाजिक उत्तर-दायित्व की, संवेदना के पुनः संस्कार की आदि किन्तु उन सब का स्थान इसके पीछे है क्योंकि वह कवि कर्म की मौलिक समस्या है, साधारणीकरण और (Comm

= लक्ष्मीनारायण मिश्र—आधी रात—पृष्ठ ३५

unication) (नियेन्त) की समस्या है।" × अत प्रयोगवादी कवि शैली को विषय से अधिक महत्त्व देते हैं। उनके सामने व्यक्ति के अनुभूत को समष्टि तक पहुँचाने का प्रश्न ही प्रधान है। इसके लिए वे भाषा का नया प्रयोग करते हैं। परन्तु प्रश्न है वह कौन-सा महत्तर व्यक्ति सत्य है जिसे समष्टि तक पहुँचाना अभिप्रेत है। इस सम्बन्ध में 'तार-सप्तक' में सात कवियों के वक्तव्यों से कुछ पता नहीं लगता। इन कवियों में साम्यवादी एवं व्यक्तिवादी दोनों प्रकार के कवि सम्मिलित हैं। डा० रामविलास के 'किसान-कवि और उसका पुत्र' कविता में खेतों को किसान की तरह प्यार करने की भावना प्रकट होती है तो अज्ञेय के "सावन मेघ" में यौन-प्रतीकों की अभिव्यक्ति मिलती है। "तार सप्तक" के कवि किसी एक राजनैतिक मतवाद को माननेवाले नहीं हैं जीवन आदर्शों के प्रति भी उनकी मान्यताओं में समानता नहीं मिलती। इसी से स्पष्ट है कि यह शैलीगत वाद है। परन्तु इस प्रकार के शैलीगत प्रयोगों का प्रगतिवाद से कोई अनिवार्य सबंध नहीं था अत 'तार सप्तक" के प्रकाशन के कुछ समय बाद ही साम्यवादी विचारधारा को माननेवाले कवियों ने इस प्रयोगशीलता से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

डा० देवराज के अनुसार—"हिन्दी प्रयोगवाद केवल युग से प्रभावित नहीं है, वह बहुत हद तक इलियट पाउण्ड आदि के अनुकरण से उपस्थित हुआ है।" + वस्तुत किसी भाषा के साहित्य पर विदेशी साहित्य का प्रभाव प्राय देर से पड़ता है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् आंग्ल कविता का नेतृत्व इलियट व पाउण्ड के हाथों में आया था, युद्ध के ध्वंस से पीड़ित संसार ने भविष्य की आशाओं को खो दिया था तथा शान्ति की किरण कहीं नहीं दिखाई पड़ती थी। इलियट ने वेस्ट लैंड (Waste Land) (१९२२) में युग की मनःस्थिति को वाणी दी। इलियट की निराशा भी स्वानुभूति प्रेरित न होकर चेष्टापूर्ण थी। भारत का युद्ध से द्वितीय विश्व युद्ध से भी निकट सबंध नहीं रहा इस दृष्टि से कि युद्ध के बादल भारत का दरवाजा खटखटा कर ही चले गये। अत युद्धजनित निराशा की वाणी प्रयोगवादी कविता में नहीं पायी जाती परन्तु, जैसे कि इलियट की कविता दुरूह थी उसी प्रकार प्रयोगवादी कविता का शैलीगत संस्कार स्वानुभूति प्रेरित न होकर चेष्टाजनित है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—'एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे के पत्र की तरह जमती जाती है। छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म तरल भावना चिन्तन के स्थान पर यहां ठोस बौद्धिक तत्व का बोझीलापन है%

× अज्ञेय (सपा) "तार सप्तक" प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली १९४३ पृ० ७५

+ डा० देवराज प्रयोगवादी कवि एक चेतावनी शीर्षक लेख नई कविता प्रथम अंक

% डा० नगेन्द्र आधुनिक कविता की मुख्य प्रवत्तियां' गौतम बुक डिपो, दिल्ली सं० २००८ पृष्ठ १२०

द्वितीयत प्रयोगवादी कवियों म प्रगतिवाद के 'समष्टि-सत्य' के विरुद्धव्यक्ति-सत्य' की स्थापना का आग्रह पाया जाता है। इस आग्रह के मूल मे साम्यवाद के अधिनायकत्व के विपरीत व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति पायी जाती हैं। प्रयोगवादी कविता पर मनोविज्ञान का प्रभाव भी गहरा पडा है। यौन-प्रतीकों की बहुलता, उलझी हुई सवेदना की अभिव्यक्ति, अन्तदर्शन एव शब्दो म अभिधार्थ से अधिक अर्थ भरने की चेष्टा मनोविज्ञान के प्रभाव को दर्शाती है। प्रयोगवादी कविता मे व्यक्तित्व की विशिष्टता एव क्षण की लघुता म आस्था पायी जाती है। नये कवि समष्टि जीवन के प्रति अपने उत्तरदायित्व का भी निभाने के लिए तत्पर जान पडत हैं किन्तु अपनी व्यक्ति-विशिष्टता के आत्म गौरव के साथ

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर, इसको भी पक्ति को दे दो

यह वह विश्वास नहीं जो अपनी लघुता मे भी कापा
यह वह पीडा जिसकी गहराई को स्वय उसी ने नापा

जिज्ञासु प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय इसको भक्ति को दे दो।
(अज्ञेय)

लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में 'उदीयमान नये कवि का स्वर उसके समक्ष अपने अकेलेपन और अपनी वयक्तिक अहमन्यता को स्वीकार करते हुए अपनी आस्था को प्रतिष्ठित करने के प्रति जागरूक है।' ×

परन्तु इस आस्था का समष्टि जीवन स कोई सबध नही दिखायी देता। प्रयोगवादी कवियो की विचार धारा अत्यन्त अस्पष्ट और धूमिल है। इस दृष्टि से उनके प्रयोगो का मूल्य केवल एक प्रवृत्ति के रूप म भी अधिक काल तक नही ठहर सकता। वस्तुत इन नवीन काव्य प्रयोगों की अपेक्षा युग का युद्ध जन्य उत्पीडन दिनकर के "कुरुक्षेत्र" अथवा धमवीर भारती के "अन्धा युग" प्रबन्ध काव्यो मे अधिक सबलता से व्यक्त हुआ हैं।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् योरूप म ज्या पाल सार्त्र का अस्तित्ववाद का दर्शन अपनी अनास्था मूलक प्रवृति के कारण आकर्षक हो गया था। प्रयोगवाद के प्रवतक अज्ञेय के "नदी के द्वीप" उपन्यास मे इस दर्शन की प्रेरणा मिलती है।

× लक्ष्मीकान्त वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान', भारती-प्रेस प्रकाशन इलाहाबाद पृष्ठ ५४

अस्तित्ववाद (Existentialism) का प्रभा

अनास्था की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति

सामयिक पाश्चात्य साहित्य, विशेषत द्वितीय महायुद्ध के बा" के साहित्य म अस्तित्ववाद (Existentialism) क जीवन ५ वस्तुवाद (Sur-realism) के खण्डित चेतना के मनोविज्ञान का ▪ से पाया जाता है। शिवनारायण राय ने अपने निब ध 'द मार्डन लिट्रेचर,' मे लिखा है "अस्तित्ववाद" के ऊब' के मनोविज्ञान तथ अव्यवस्था ने मानव-जीवन के वृहद् भाग को घेर लिया है। इसका ▪ वाद व अस्तित्ववाद के प्रवतको तक ही सीमित नही रहा है। क युग का कोई भी प्रमुख कलाकार इन प्रभावो से अपने को मुक्त न है।" × सामयिक हि दी साहित्य म भी अस्तित्ववाद की व ▪ मनोविज्ञान की कलागत सम्भावनाए प्रतिफलित हुई हैं।

अस्तित्ववाद (Existentailism) पश्चिम का प्राचीन द आरम्भ ग्रीक दार्शनिको से ही माना जाता है। अस्तित्ववाद दर्शन आदर्शवाद (Objective Idealism) की परम्परा का विरोध कर (Subjective) क सत्य को अपनाता है। उन्नीसवी सदी मे वहिर्सापेक्ष सत्ता थी अत उसके विरोध मे अस्तित्ववाद आधुनिक दर्शन प्रतीत होता

आधुनिक युग मे भी अस्तित्ववाद की दो शाखाए पायी ज कार्ल यास्पर्स (Karl Jaspers) और गब्रिल मार्सेल (Gabriel Marce अस्तित्ववाद जो मनुष्य के आदिम पाप (Original Sin) को उस कारण मानता है। आदिम पाप के कारण मनुष्य का मह सामान्य का रूप है से अलग एकाकी हो गया है तथा सामान्य (से भिन्न उसकी विशेष (Particular) स्थिति ही उसकी ऊब का कारण है। ईसाई अस्तित्ववाद धार्मिकता व रहस्यात्मकता जोड़े है। इससे भिन्न अस्तित्ववाद की दूसरी शाखा नास्तिक म ऊब' का भाव मनुष्य जाति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से उत्प की आन्तरिक सत्यता को व स्वय सिद्ध स्वीकार कर लेते हैं। नास्तिक के मुख्य प्रवतक मार्टिन हेडेगर (Martin Heidegger) तथा ज्या पा Paul Sartre) हैं। उनकी लोक-प्रियता की श्रेय सात्र को ही है। द नायकवाद के युग में दर्शन-शास्त्र की पुस्तकों स बाहर सात्र ने ग्र वयक्तिक स्वतन्त्रता के दर्शन क रूप म अपने नाटको, उपन्यासों मनोवि सम्बन्धी पुस्तको होटलो म होनेवाले विवादो आदि के द्वारा लोकप्रिय

× Sibuarayan Ray Explorations' Essay The Modern Literature

युद्ध पीड़ित योरुप की तत्कालीन मानसिक स्थिति में सार्त्र का अस्तित्ववाद वहां की जनता द्वारा अपनाया जाना स्वाभाविक था जिसमें अनास्था पीड़ा, सवमा य विश्वास के अभाव में वैयक्तिक खोज ही प्रमुख तत्व थे। सार्त्र का अस्तित्ववाद युद्ध-पीड़ित संसार की मानसिक स्थिति के इतना अनुकूल है कि शीघ्र ही फ्रांस से वह सारे योरुप तथा योरुप से बाहर के देशों में भी लोकप्रिय बन गया।

सार्त्र का अस्तित्ववाद मूलतः स्वतन्त्रता का दर्शन है। अधिनायकवाद के युग में सार्त्र ने स्वतन्त्रता की रक्षा का उत्तरदायित्व पूर्णतः व्यक्ति के कंधों पर रखा। अस्तित्ववाद का मूलाधार यह सिद्धान्त है कि मनुष्य का अस्तित्व सार रूप से पहले है (Existence precedes Es ence) मानव इतिहास पूर्व निर्धारित तथ्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व स्वतन्त्रता को लेकर है। अपने जीवन के लिए जीवन को जिस रूप में वह जीता है इसके लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है। व्यक्ति का जीवन स्वयं उसके निर्णयों या चुनावों का पुंजीभूत रूप है। मनुष्य की प्रकृति भी किसी रूप में निश्चित नहीं है। मनुष्य के कार्यों का संकलन ही उसकी प्रवृत्ति है। इस प्रकार मनुष्य का अस्तित्व उसके सार-रूप से पहले है।

मनुष्य विकल्पों के संसार में रहता है—यह या वह, उसके सामने सदैव एक से अधिक रास्ते रहते हैं और किसी एक रास्ते को उसे अपनाना होता है। अपने निर्णय के सही होने का उसके पास कोई विश्वास नहीं है। फिर भी ऐसा नहीं हो सकता कि वह निर्णय न ले। यह निर्णय चुनाव या वरण ही उसका अस्तित्व है। उसका अस्तित्व तो स्वतन्त्रता को लेकर है किन्तु यह स्वतन्त्रता निर्णय लेने के प्रति अकर्मण्य बनने की स्वतन्त्रता नहीं देती। निर्णय न लेने का भी उसके अस्तित्व को निर्णय लेना होगा।

एक व्यक्ति का निर्णय केवल उस व्यक्ति का निर्णय नहीं है, उसकी ओर से वह समस्त मानवता के लिए निर्णय है। व्यक्ति का निर्णय दूसरों को प्रभावित करता है। व्यक्ति का अपना निर्णय मानव अस्तित्व को उसकी देन है। वह मानवता के भाग्य का निर्माता बनता है।

परन्तु अपने छोटे-छोटे कार्मों द्वारा मानवता के भाग्य निर्माण की भावना उस पर व्यर्थ उत्तरदायित्व का बोझ बन कर झूलती है जिससे उसके लिए छुटकारा नहीं है। यह उसकी ऊब या व्यथा का कारण है।

पर एक कारण और है। चूंकि मनुष्य की कोई निश्चित प्रकृति नहीं है अतः एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से वास्तविक सम्पर्क नहीं है। अतः व्यक्ति अकेला है—सब। अकेला निर्णय या वरण के बिना उसका अस्तित्व नहीं है। वरण सही होने का उसके पास विश्वास नहीं है। उसका निर्णय अन्य व्यक्तियों के भाग्य को प्रभावित करता है जिनसे उसका वास्तविक सम्पर्क सम्भव

केवल समय हैं, सत्य तभी है जब भीतर से उद्भूत हों।"* रेखा एक और दूसरे एक व्यक्ति जीवन को ही सत्य मानती है। सम्पूर्ण अथवा मानवता का भाव उसकी दृष्टि में युक्ति सत्य हो है अपने आप में कुछ नहीं, केवल एक काल्पनिक योगफल। गौरा भी अस्तित्ववाद की व्यक्ति मूलक स्वतन्त्रता के लिए अपने को ट्रेन करती है। चन्द्रमाधव के यारूपवास के समय वह उसे एक पत्र में लिखती है, "स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नहीं है। वह एक दृष्टिकोण है व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है। हम कहते हैं कि समाज हमें स्वाधीनता नहीं देता, पर समाज दे कैसे? हमीं तो अपने दृष्टिकोण से समाज बनाते हैं। मैं अपने आप को बद्ध नहीं मानती हूँ और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ।"× गौरा की पढ़ाई समाप्त होने के बाद उसका विवाह का प्रश्न उठने पर जब वह भुवन को बुलाती है तो भुवन का उत्तर कि अन्तत निर्णय की उत्तरदायी वही है, वह विवाह न करने का निर्णय लेती है। 'शेखर एक जीवनी' में भी जेल से शेखर ने शशि को स्वयं निर्णय लेने को लिखा था तब शशि ने आत्म बलिदान का पथ चुना पर नदी के द्वीप की गौरा, (भुवन ने जिस माता पिता की भक्ति को स्वाधीन जीवन की अपाश्रना का प्रतीक बताया के विरुद्ध व बाद में विरोध न होने के कारण इतना विरुद्ध भी नहीं) स्वाधीन निर्णय लेती है। रह जाता है केवल एक पात्र चन्द्रमाधव जो अस्तित्ववाद की स्वतन्त्रता के विरोध में हमारे सामने आता है। वस्तुत अस्तित्ववाद को विवेच्य स्वाधीनता साहसी का धर्म है। पर उस साहस का माद्दा चन्द्रमाधव में नहीं है। अपनी विवाहिता पत्नी से असन्तुष्ट इसलिए कि वह विवाहिता है, वह रेखा की ओर उन्मुख होता है। पर उसकी वासना ही निराशा का कारण बनती है। रेखा से निराश गौरा की ओर उन्मुख होता है पर असफल ही रहता है। अपने कुण्ठित व्यक्तित्व का दयनीय रूप लेकर वह अन्त में कम्युनिस्ट बन जाता है और भुवन के अनुसार "वन मोर ट्रायम्फ फार डेविल्स एण्ड सारी फार ए जेल्स" सिद्ध होता है। वह अस्तित्ववाद की भाषा में आत्म-वचना' (Mauvaise foi) से पूर्ण जीवन का उदाहरण है।

जीवन एक बार का वरण नहीं है वह अनन्त वरण है प्रत्येक क्षण हम स्वीकार और परिहार करते चलते हैं।'✓

'कम को जज करना मैंने छोड़ दिया है भीतर से जो प्रेरणा है– मगर उसके साथ ही पाप का बोध जुड़ा नहीं हुआ है तो वही ठीक है वही नैतिक है। यह नैतिकता अधूरी हो सकती है–पर इसलिए कि उसे देने वाला व्यक्तित्व अधूरा

---

* अज्ञेय वही, पृष्ठ ३०७,

× वही, पृष्ठ ७०

✓ वही पृ ११

है। उस व्यक्तित्व की तो वह सर्वोच्च रचना है—उसी की कल्याणकामी, कल्याणप्रद सम्भावनाओं की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति ।"*

'जीवन के सारे महत्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति अकेले मे करता है, सारे दर्द अकेले भोगता है—और तो और, प्यार के चरम आत्म समर्पण का सबसे बड़ा दर्द भी मिलने म जो विरह का परम रस होता है तुम जानते हो उसे? समर्पण के धधकते क्षण म जब यह ज्ञान चीत्कार कर उठता है कि हम अलग ही हैं देना सम्पूर्ण नहीं हुआ, कि मिटने में भी म मैं हूँ तू तू है मैं तू नहीं हूँ—और हमारी माग बाकी है इतना अभिन्न मिलन क्या हो सकता है कि माग बाकी न रहे?"×

उपर्युक्त उद्धरण व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखते। अस्तित्ववाद के पूर्व विवेचन के साथ इन्हे रख कर पढने से स्पष्ट हो जाता है—'नदी के द्वीप' मे अस्तित्ववाद की विचारधारा ही अन्तः सलिला की तरह बह रही है। वही व्यक्ति का अकेलापन, वरण की अनिवार्यता, वरण म सही होने का अनिश्चय और एक से दूसरे के पूर्ण सान्निध्य की असम्भाव्यता तथा इनके सम्मिलित प्रभाव जन्य उत्पन्न ऊब या व्यथा की अनुभूति सार्त्र के अस्तित्ववाद व अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास की विचारधारा के समान तथ्य है। किंचित् सा भेद यही है, जब कि सार्त्र की ऊब" या व्यथा का भाव अमिश्रित है, अज्ञेय उस व्यथा म भी आनन्द भाव की अवस्थिति देखते हैं क्योंकि यह व्यथा आत्म वरण है। रेखा का प्रेम भुवन के प्रति समर्पित है। रेखा का पति हेमेन्द्र आने वाले जीव को लाछना दे सके, यह रेखा के लिए असह्य बन जाता है। तब वह स्वय ही भ्रूण हत्या करा लेती है जिसकी व्यथा म भुवन का जीवन ही अनमना हो गया है। पति से तलाक के बाद रेखा भुवन का अनमनापन पहचानती है पर वह भुवन के प्रति गौरा की भावना जानती है और जानती है गौरा भुवन को सुखी भी रख सकेगी। तब डाक्टर रमेशचन्द्र द्वारा विवाह का प्रस्ताव किये जाने पर रेखा उसे स्वीकार कर लेती है यद्यपि भुवन से गर्भ स्थापन व गर्भ निपात की बात कह देती है। अस्तु, यह आकस्मिक नहीं है कि "नदी के द्वीप म भुवन रेखा को देख कर उसके चरित्र मे सार्त्र की नायिका क रूप म अपनी मानसिक कल्पना म सगति बैठाता है। सार्त्र के नाटक उपन्यास और कहानियों के पात्रो की तरह अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' के पात्र भी गत्यात्मक हैं तथा सतत स्वप्रेरित कार्यों द्वारा अपने पुनरोद्भव म सलग्न हैं। अज्ञेय के 'अपने अपने अजनबी' तथा कतिपय अन्य हिन्दी उपन्यासों म अस्तित्ववादी दृष्टि के नये आयाम प्रकट हुए हैं किन्तु वे कृतियां प्रस्तुत अध्ययन की काल-सीमा म समाविष्ट नहीं होतीं।

---

* वही पृष्ठ २३८ × वही, पृष्ठ २३९

उपसंहार

आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा के विकास के मूल में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य पाश्चात्य विचारधाराओं का प्रभाव है। हिन्दी साहित्य की इस युग की विभिन्न प्रवृत्तियां पाश्चात्य सभ्यता के प्रति हमारे देश की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को प्रकट करती हैं। इतिहास-क्रम के अनुसार पाश्चात्य सभ्यता के प्रति भारतेंदु युग में तत्कालिक प्रतिक्रिया, द्विवेदी-युग में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से संतुलन, छायावाद के विकास के समय पश्चिम के प्रति नैकट्य का अनुभव एवं मुक्त प्रभाव ग्रहण तथा प्रगतिवाद मनोविश्लेषण धारा आदि विविध वादों के युग में पश्चिम के विविध रंगों के ग्रहण की प्रवृत्ति पाई जाती है। हिन्दी साहित्य की धारा एक अविरल प्रवाह है, उसकी विभिन्न विचारधाराएं अथवा प्रवृत्तियां प्रवाह में उठने वाली वीचियां हैं, पाश्चात्य प्रभाव एक प्रकाश स्तम्भ के सदृश है जिससे विभिन्न रंगों की किरणें विकीर्ण होकर प्रवाह में उठनेवाली लहरों को विभिन्न रंग प्रदान कर देती हैं।

भारतेन्दु-युग के साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियां धर्म-निरपेक्षता, समाज-सुधार, सामन्ती तत्वों का विरोध एवं देश भक्ति की भावना है। इस युग में पाश्चात्य सभ्यता के ऐहिकतापरक रूप के कारण आध्यात्मिकता के बदले लौकिक समृद्धि की भावना का उदय हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व बालकृष्ण भट्ट ने भक्ति व वेदान्त-दर्शन को अकर्मण्यता फैलानेवाला बतलाया। आध्यात्मिकता का स्वर मन्द पड़ने लगा। प्रतापनारायण मिश्र ने वैराग्य की भावना की उपेक्षा कर ईश्वर से देश-कल्याण की याचना की। दूसरा परिवर्तन तत्कालीन धार्मिक अवस्था में सुधार की मांग के रूप में प्रकट हुआ। ईसाई मिशनरी भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करते समय हिन्दुओं की धार्मिक बुराईयों की ओर व्यंग्यात्मक इंगित करते थे। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दुओं के धार्मिक संस्थाओं में सुधार की आवश्यकता अनुभव की गयी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र तथा प्रतापनारायण मिश्र ने मन्दिरों में व्याप्त व्यभिचार के विरुद्ध लिखा। भारतेंदु की 'प्रेमयोगिनी' नाटिका में तीर्थों में व्याप्त पंडितों के दुराचरण का रहस्योद्घाटन किया गया। धर्म की आड़ में मदिरा पान, मांस भक्षण तथा इन्द्रिय भोग की कुप्रवृत्तियों को रोकने पर इस युग के साहित्यकारों ने बल दिया। यह प्रवृत्तियां अंग्रेजों के अंधानुकरण से अत्यधिक फल रही थीं। भारतेंदु ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' प्रहसन में 'ब्रह्म समाज' की भी इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण निन्दा की। भारतेंदु तथा प्रतापनारायण मिश्र ने धार्मिक उत्सवों पर होनेवाली पशु बलि के भी विरुद्ध लिखा। बालकृष्ण भट्ट व राधाचरण गोस्वामी ने धार्मिक अंधविश्वासों व जाति-पांति के भेद भाव का विरोध किया। धार्मिक मत-मतान्तरों से परे भारतेंदु-युग के लेखक प्रेम को ही धर्म का मूल-तत्व मानते हैं जिस पर सम्भवतः ईसाई धर्म की प्रेम भावना का प्रभाव प्रतिफलित हुआ है। भारतेन्दु युग के साहित्य में समाज सुधार का मूल स्वर नारी स्वातन्त्र्य की भावना है। भारतेंदु को पश्चिम की नारी जाति की स्वतन्त्रता से इस

सम्बन्ध में प्रेरणा मिली थी जिसे उन्होंने 'नीलदेवी' की भूमिका में स्वीकार किया है। नारी जाति की स्वतन्त्रता के लिए इस युग के लेखकों ने दहेज, वर्ण प्रथा व बाल विवाह का विरोध तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। इस युग के साहित्य में पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से उत्पन्न दुर्गुणों यथा फैशन, मद्यपान, मांस भक्षण, प्रतिष्ठा, जुआ, व्यभिचार आदि के विरुद्ध लिखा गया। भारतेन्दु युग के लेखकों द्वारा प्रारम्भ में आंग्ल शासन का स्वागत किया गया तथा उन्होंने मुसलमानी अत्याचारों से सन्तोष की सांस ली। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' प्रतापनारायण मिश्र की कविताओं तथा भारतेन्दु के गीति रूपक 'नीलदेवी', राधाचरण गोस्वामी के 'अमरसिंह राठौर' व 'सती चन्द्रावली' नाटकों में मुस्लिम विरोधी भावनाएं पाई जाती हैं। भारतेन्दु 'बादशाह-दर्पण' में आंग्ल शासन की बुराईयों को स्वीकार करते हुए भी उसे अत्याचारी मुस्लिम शासन से श्रेयस्कर मानते हैं। किन्तु भारतेन्दु युग की मुस्लिम विरोधी भावना विगत युग के मुस्लिम शासकों के अत्याचारों की भर्त्सना तथा विरोध की मानसिक स्थिति तक ही सीमित है। ब्रिटिश शासन द्वारा किये जाने वाले आर्थिक शोषण व राजनैतिक पराधीनता की चेतना जगने पर भारतेन्दु युग में ही हिन्दू मुस्लिम एकता का स्वर छेड़ा गया। १८५७ के विद्रोह के सम्बन्ध में भारतेन्दु युग के लेखकों का दृष्टिकोण अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति-पूर्ण ही था। उन्होंने इसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में न देख कर मृत सामन्तवाद के अन्त के रूप में देखा। इस धारणा की पुष्टि भारतेन्दु की साम्राज्यवाद विरोधी प्रवृत्ति में भी होती है। 'अंधेर नगरी' 'विषस्य विषमौषधम्' 'दिल्ली दरबार दर्पण' 'लेवी प्राण लेवी' आदि में भारतेन्दु ने देशी नरेशों की सांस्कृतिक हीनता व कायरपन की मीठी चुटकियां ली हैं। गदर के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की घोषणा से जिसमें भारतीय प्रजा पर पुत्रवत् शासन करने का आश्वासन दिया गया था भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में नवीन आशाओं का संचार हुआ। भारतेन्दु ने बहुत सी कविताओं में अंग्रेजी राज परिवार के लोगों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए देश की दुर्व्यवस्था की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। बंगला कवि हेमचन्द्र बनर्जी की एक कविता का भावानुवाद भारतेन्दु की 'भारत भिक्षा' कविता इसी भावना से पूर्ण है। पर भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की आशा शीघ्र ही निराशा में परिणत हो गई। इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट में कन्जरवेटिव दल के स्थान पर लिबरल आने पर भी वह आशा पूर्ण फलवती न हो सकी। भारतेन्दु युग के साहित्य में आंग्ल शासन का सर्वाधिक विरोध देश के आर्थिक शोषण के कारण पाया जाता है। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' व 'अंधेर नगरी' नाटकों तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'दुर्दशा' कविता में आंग्ल शासन के आर्थिक शोषण का विरोध किया। इस युग के लेखकों ने विदेशों से आनेवाले माल पर आयात कर लगाने की मांग की। ब्रिटिश सरकार द्वारा लड़े गये अफगान व अबीसीनिया युद्धों के खर्च का बोझ भारत पर लाद कर युद्ध-कर व टैक्स लगाने का विरोध किया एवं

…ा की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण किया। भारतेन्दु-युग के लेखकों में तीव्र विरोध की भावना जगने के अन्य मनोवैज्ञानिक कारण अंग्रेजों की रंगभेद नीति, भारतीयों की स्वतंत्रता का अपहरण व हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों की शासकों द्वारा उपेक्षा करना था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतीयों को 'काला' कहने पर अंग्रेजों के प्रति व्यंग्य किया। प्रतापनारायण मिश्र ने अंग्रेजों के भारतीयों से न मिलने के व्यवहार की आलोचना की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रताप-नारायण मिश्र बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन' आदि ने आर्म्स एक्ट व प्रेस एक्ट का विरोध किया। भारतेन्दु युग के लेखकों में राजनैतिक चेतना का प्रारम्भिक प्रस्फुटन पाया जाता है। इस युग के लेखकों ने देश के औद्योगीकरण विदेशी माल का बहिष्कार कर स्वदेशी को अपनाने हिन्दु मुस्लिम एकता इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट में भारतीय प्रतिनिधि भेजने आदि विचारों का समर्थन किया। प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रम का भी अपनी रचनाओं द्वारा समर्थन किया। पाश्चात्य सभ्यता के तात्कालिक प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय संस्कृति की रचनात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अंकुर भी प्रकट हुए।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रति तात्कालिक प्रतिक्रिया के पश्चात् द्विवेदी युग के साहित्य-कारों में नवागत सभ्यता से सन्तुलन स्थापित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप मानसिक गठन में नया परिवर्तन दृष्टिगत होता है। इस युग की मुख्य चार विचारधाराएं बुद्धिवाद मानववाद, राष्ट्रवाद एवं स्वच्छन्दवाद हैं। बुद्धिवाद पश्चिम की प्रमुख विचारधारा है जिसने धार्मिक अन्धविश्वासों व बाह्याडम्बरों का अन्त कर सत्य के ज्ञान का मार्ग खोला था। बुद्धिवाद की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया धार्मिक क्षेत्र में पायी जाती है। भारतेन्दु युग की धर्म निरपेक्षता एवं धार्मिक सुधार की भावना द्विवेदी युग में बुद्धिवाद की प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई। इस युग के साहित्यकारों ने परलोक के बदले इहलोक की सभ्यता को अधिक महत्त्व दिया। श्रीधर पाठक व रायकृष्णदास के काव्य व गद्य गीतों में लोकसेवा व रवीन्द्रनाथ के प्रभावस्वरूप परलोक के बदले इहलोक के प्रति प्रेम व विश्वास की भावना मिलती है। मूर्ति पूजा व मत–मतान्तरों की कट्टरता के बदले भक्ति एक सामान्य आध्यात्मिक प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई। यह बुद्धिवाद का ही प्रभाव था कि इस युग के मैथिलीशरण गुप्त व हरिऔध जैसे आस्तिक कवि जहाँ एक ओर अवतारवाद में अपने विश्वास को किसी प्रकार के हेतुवाद (Rationalisation) से बचाये रखते हैं वहां व अपने चरितनायक ईश्वरावतारों की जीवन घटनाओं से अतिप्राकृत तत्त्व को हटा कर उनमें स्वाभाविकता का समावेश करने के लिए पूर्ण सचेष्ट दिखाई देते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के राम व हरिऔध के कृष्ण अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न नहीं है वरन् मानवी शक्तियों के सहारे ही महान बताये गये है। बुद्धिवाद का दूसरा प्रभाव यह हुआ कि काव्य मैं

वर्णित चरित्रों को सामान्य मानवता की भूमि पर चित्रित किया जाने लगा तथा बुरे को परिस्थितिवश व जन्मजात बुरा नहीं माना गया। बंगला कवि मधुसूदन दत्त जिन्होंने स्वयं पाश्चात्य कवियों की काव्यधारा में अवगाहन किया था के काव्य के माध्यम से यह प्रवृत्ति मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में विकसित हुई। गुप्तजी का रावण राम से भी अधिक सहृदय चित्रित किया गया है तथा कैकयी के चरित्र की रक्षा करने के लिए उन्हें मंथरा की जीभ पर स्वयं सरस्वती को बुला कर नहीं बैठाना पड़ा वरन् मनोवैज्ञानिक आधार अपनाया गया है। बुद्धिवाद के प्रभावस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में एक अन्य प्रवृत्ति अतिशय चारित्रिक नैतिक भावना का समावेश हुआ। भारतीय जीवन में मध्ययुग की कुत्सित विलासिता ने पौराणिक ईश्वरावतारों को भी विलासिता के ऐसे रंग में चित्रित कर दिया था कि जिसका विचार भी साधारण मनुष्य की बुद्धि के लिए घृणाजनक बन गया। नवयुग की बुद्धिवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर हरिऔध 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण के चारित्रिक लांछन को दूर करने के लिए अत्यधिक सचेष्ट दिखाई देते हैं। बुद्धिवाद की प्रेरणा से पौराणिक कथाओं को भी प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया। द्विवेदी युग की दूसरी विचारधारा मानववाद है जिस पर फ्रांसिसी दार्शनिक काम्टे के पाजिटिविस्ट दर्शन तथा टर्की साम्राज्य के पतन के कारण सर्व इस्लामवाद के प्रसार से भारतीय मुसलमानों में उत्पन्न जागृति का प्रभाव है। मानव सेवा को ही ईश्वर सेवा मानने की पाजिटिविस्ट दर्शन की धारणा हिन्दी में विवेकानन्द अरविन्द व रवीन्द्र नाथ टगोर के माध्यम द्वारा बंगला से आई। रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय के काव्य का केन्द्र मानव सेवा भावना है। 'मिलन' की नायिका विजया तथा 'प्रिय प्रवास' के राधा और कृष्ण मानव सेवा आदर्श को ही जीवन में अपनाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद व मुकुटधर पाण्डेय की स्फुट कविताओं में ईश्वर सेवा के बदले मानव सेवा का महत्व दर्शाया गया। लोकसेवा को जीवन आदर्श के रूप में अपनाने में गांधीवादी विचारदर्शन का भी यथेष्ठ प्रभाव रहा किन्तु, स्वयं गांधीवादी विचार दर्शन विभिन्न पाश्चात्य प्रभावों से अनुप्रेरित था। मानव सेवा को जीवन आदर्श मानने से दीन दुखियों के प्रति सहानुभूति का भाव जगना स्वाभाविक था। महावीर प्रसाद द्विवेदी मैथिलीशरण गुप्त व प्रेमचन्द उर्दू साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय मुसलमानों की जागृति जो सर्व इस्लामवाद के प्रसार का परिणाम थी से समाज सुधार की ओर प्रेरित हुए। समाज सुधार के क्षेत्र में भारतेन्दु-युग से चली आनेवाली नारी उत्थान की प्रवृत्ति का द्विवेदी-युग में और प्रसार हुआ। राजनैतिक संघर्ष में महात्मा गांधी द्वारा नारी का योग दान आवश्यक बतलाने पर नारी उत्थान के प्रयत्नों को बल मिला। हिन्दी लेखकों ने नारी को केवल घर की सीमा में ही बंधी नहीं देखा वरन् उन्होंने उसकी सामाजिक स्थिति को उठाने की ओर ध्यान दिया। अतः स्त्री शिक्षा की आवश्यकता बतलायी गयी। फिर भी उन्होंने भारतीय संस्कृति की रक्षणात्मक

प्रवृत्ति से प्रेरित होकर समाज की प्रथा का प्रकारा बुरा बताया। नारी में पति धन धर्म के पालन की भावना। रत्नोंवाने पुरुष समाज ने स्वयं पत्नीव्रत पालन के महत्व को दर्शाया। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत तथा हरिऔध ने वदेही-वनवास' में एक पत्नीव्रत भाव का भाव्य महिमामण्डित किया। प्रेमचन्द ने तथा सदन' में वेश्यावृत्ति के मौलिक कारणों को खोजते हुए उस सामाजिक व्यवस्था की बुराई तथा नारी के प्रति पुरुष समाज के अत्याचार का परिणाम बताया। द्विवेदी-युग के साहित्य में नारी की उच्चता की भावना अभिव्यक्त हुई है। नारी केवल पुरुष की सहयोगिनी ही चित्रित नहीं की गयी है वरन् उसे आवश्यकतानुसार पुरुष का पथ दिखानेवाली प्रेरक शक्ति रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। नारी का त्याग पुरुष के त्याग से महानतर बताया गया। 'साकेत' की उर्मिला, 'यशोधरा' की गोपा 'प्रिय प्रवास' की राधा अपने त्यागमय रूप में भव्य हैं। लक्ष्मण, सिद्धार्थ और कृष्ण का त्याग इन महिलाओं के त्याग के सामने फीका दिखाई देता है। मानवतावादी भावना समाज-सुधार की धारणा और राष्ट्रीय-चेतना की आवश्यकता के कारण अछूतोद्धार और किसानों की दयनीय दशा के चित्रण की प्रवृत्ति का भी स्फुरण हुआ। द्विवेदी युग की तीसरी विचारधारा राष्ट्रीयता की है जिस पर पाश्चात्य प्रभाव की छाप गहरी अंकित हुई है। आधुनिक राष्ट्रीयता का भाव सामान्य देश-प्रेम की भावना से भिन्न अपने देश को अन्य देशों से अलग व श्रेष्ठ समझने एवं किसी भी बाह्य शक्ति की आधीनता स्वीकार न करने के रूप मे पश्चिमी राष्ट्रों में पोप के धार्मिक आधिपत्य को समाप्त कर विकसित हुआ था। बर्क मिल आदि अंग्रेज लेखकों के अध्ययन रूस पर जापान की विजय, रूस की अक्टूबर क्रान्ति की सफलता आदि अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, मैक्समूलर, शापेनहॉर गेटे, कर्नल टाड प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन, फ्रांसीसी दार्शनिक काम्ते के पाजिटिविस्ट दर्शन के अनुरूप सांस्कृतिक विशिष्टता की देन सम्बन्धी विचारधारा आदि के सम्मिलित प्रभाव तथा अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध राजनतिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप हमारे देश मे राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रीयता की भावना तीन रूपो मे पाई जाती है। हिन्दी की राष्ट्रभाषा रूप में प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न भारतीय सभ्यता व संस्कृति की नवागत पाश्चात्य सभ्यता से श्रेष्ठता प्रतिपादन एवं राजनतिक आन्दोलन के अनुकूल स्वतन्त्रता व राष्ट्रीय एकता के भावों की अभिव्यक्ति के रूप में। हिन्दी की राष्ट्रभाषा का प्रश्न भारतीय राष्ट्रीयता का अंग बन गया यह इसी तथ्य से स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती, एनी बेसेन्ट बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी शारदाचरण मित्र अहिन्दी भाषियों ने भी देश के लिए एक राष्ट्रभाषा और वह हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए अनवरत प्रयत्न किया। यह प्रयत्न हिन्दी को राज भाषा का स्थान दिलाने के लिए नहीं था वरन् राष्ट्रीय आन्दोलन की अभिव्यक्ति हिन्दी के माध्यम से करने के रूप मे रहा। श्रीधर पाठक व महावीर-

प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी मे विकास की भावना को राष्ट्रीयता की भावना के अनिवार्य अंग के रूप म देखा। राष्ट्रीय रूप अपनाने के कारण स्वभावत हिन्दी का अन्य प्रादेशिक भाषाओं से सम्पर्क बढ़ा तथा उनमे भाषा म जो एक प्रकार का अनगढ़पन आ गया उसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप म दूर कर हिन्दी गद्य का टकसाली रूप निर्मित किया। इस युग के साहित्यकारों द्वारा गद्य के समान पद्य की भाषा भी खड़ी बोली अपनायी गयी जिससे भाषा की एकरूपता की स्थापना हुई। पाश्चात्य विद्वानों की प्रेरणा से प्राचीन भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध व प्रसाद के साहित्य म सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना परिलक्षित होती है। फ्रांसीसी दार्शनिक काम्टे के पाजिटिविस्ट दर्शन के अनुरूप सांस्कृतिक विशिष्टता की देन छायावादी विचारणा बगला कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के माध्यम से हिन्दी साहित्य मे प्रकट हुई। मैथिलीशरण गुप्त व रामनरेश त्रिपाठी की कविता म यह प्रवृत्ति पायी जाती है। देश म राजनीतिक जागृति के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक विकास हुआ दमन पूर्ण ब्रिटिश शासन के रूप म सामान्य शत्रु के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता की भावना संगठित हुई। बालमुकुन्द गुप्त की रचनाओं म ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध गहरा असतोष पाया जाता है। तथापि राय देवीप्रसाद पूर्ण जैसे उदारवादी लेखक वैधानिक रीति से राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति म विश्वास रखते हैं। फ्रांस के 'मार्सेलस' व अन्य पश्चिमीय राष्ट्रों के राष्ट्र-गीतों के समान बगला नाटककार बंकिमचन्द्र के 'वदे मातरम्' गीत को राष्ट्र-गीत के रूप मे अपनाया गया। बगला के माध्यम से हिन्दी मे राष्ट्रगीत की भावना का प्रसार हुआ तथा 'वदे मातरम्' की भावना हिन्दी की बहुत-सी कविताओं म व्यक्त हुई। राजनीतिक आवश्यकता की दृष्टि से हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना भी व्यक्त हुई मैथिलीशरण गुप्त प्रेमघन द सियारामशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद प्रभृति साहित्यकारों की रचनाओं मे गांधीवाद के तत्व अहिंसा, सत्याग्रह, खादी प्रेम, अछूतोद्धार आदि प्रकट किये गये। पुनरुत्थान युग की अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद है जो अपने प्रारम्भिक व आगे के काल मे भी आंग्ल साहित्य के रोमांटिक आन्दोलन से प्रभावित रही है। इस युग की कविता पर आंग्ल रोमांटिक आन्दोलन का प्रभाव कुछ अंश में बगला के माध्यम से प्रतिफलित हुआ किन्तु अधिकांश सीधा ही दिखाई दिया। रीतिकालीन नायिक श्रृंगारिकता का विरोध कर आंग्ल रोमांटिक कवियो के अनुसरण म नवीन विषयो को अपनाया गया। विद्यानाथ मिश्र के 'कवि कर्त्तव्य' तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'कवि और कविता' शीर्षक लेखो म स्वच्छन्दवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई। इस युग मे आंग्ल रोमांटिक कवियो के हिन्दी मे सर्वाधिक अनुवाद हुए। अनुवादो मे मूल भावो के विस्तार व भारतीय वातावरण के समावेश की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे कि हिन्दी कविता में नवीन

भाव व विषयों का प्रवेश द्वार खुला। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति मूलत ग्राम्य संस्कृति के विघटन तथा नागरिक सभ्यता के विकास के कारण उत्पन्न अतीत के मोह का परिणाम है। श्रीधर पाठक व बालमुकुन्द गुप्त ने ग्राम्य संस्कृति के विघटन पर दुःख व्यक्त किया। ग्राम्य संस्कृति के प्रति मोह के कारण प्रकृति, जिसके विविध रूपों के भण्डार ग्राम ही हैं, के वर्णन की प्रधानता हुई। टामसन व गोल्डस्मिथ की कविताओं का इस युग में प्रकृति-वर्णन की कविताओं पर विशेष रूप से प्रभाव लक्षित हुआ। प्रकृति के शान्त-उदात्त व भयंकर दोनों रूपों का चित्रण किया गया, सुनासुनाया व पोथी ज्ञान के आधार पर प्रकृति वर्णन करने के बदले देखे हुए दृश्यों का कल्पना-समन्वित वर्णन किया जाने लगा। प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी प्रकट हुई। प्रकृति वर्णन का यह रूप पुनरुत्थान युग की कविता में आरम्भिक रूप में ही पाया जाता है जिसका छायावादी कविता में पूर्ण विकास हुआ। प्रकृति वर्णन के साथ ही प्रेम भावना भी स्वच्छन्दतावाद का प्रमुख तत्व है। स्वच्छन्दतावाद में प्रेम के उदात्तकृत रूप का ही चित्रण मिलता है। श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद व पंत के प्रेमकथात्मक काव्यों में प्रेम के वासनाजन्य स्वरूप को छोड़ प्रेम भावना का राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम मानवता प्रेम आदि के रूप में उन्नयन हुआ है। स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत एक अन्य प्रवृत्ति लोक गीतों की ओर रुचि भी उल्लेखनीय है जो आंग्ल रोमांटिक काव्य के प्रभाव को प्रकट करती है। पुनरुत्थान-युग में श्रीधर पाठक व बालमुकुन्द गुप्त की कविता में यह प्रवृत्ति लक्षित होती है।

राजनैतिक संक्रान्ति युग का साहित्य कल्पना व वास्तव के संघर्ष का साहित्य है। इस युग की विचारधारा अमूर्त व यथार्थ दो भिन्न दृष्टिकोणों में प्रकट हुई है। राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलता के कारण उत्पन्न निराशा के वातावरण में जहां कवि ने यथार्थ जीवन से पराङ्मुख हो साहित्यिक कृतियों में शान्ति उपस्थित की वहां जीवन की नग्न वास्तविकता भी इस युग के साहित्यकार की लेखनी से प्रकट हुए बिना न रही। यह दोनों प्रवृत्तियां तत्कालीन युग के साहित्य में पद्य व गद्य के भिन्न साहित्यिक अंगों में प्रकट हुई है।

निराशाजनक वातावरण में साहित्यकार प्रायः जीवन की अपेक्षा साहित्य ग्रन्थों से प्रेरणा लेता है। आंग्ल रोमांटिक काव्य में व्यक्त मानसिक स्थिति बहुत अंशों में अपनी मनोदशा के अनुकूल पाकर हिन्दी के कवियों ने उसी से प्रेरणा ली। किन्तु यह मनोरंजक संयोग है कि स्वयं योरुपीय रोमांटिक काव्य के प्रेरणा स्रोतों में भारत के प्रति आकर्षण भी एक स्रोत रहा है एवं उसके मूल जर्मनी इंगलैण्ड व फ्रांस के रोमांटिक आन्दोलन में पाये जाते हैं। हिन्दी की छायावादी कविता पर आंग्ल रोमांटिक काव्य जर्मन आध्यात्मवाद ईसाई संतों का रहस्यवाद तथा फ्रांसिसी प्रतीकवाद का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभाव प्रतिफलित हुआ है।

छायावादी कविता पर आंग्ल रोमांटिक काव्य का प्रभाव इतना गहरा है कि वह प्राय उसकी छाया भी अनुवर्तिनी प्रतीत होती है। पूर्वयुगीन काव्य परम्परा का विरोध प्रकृति चित्रण आत्माभिव्यक्ति विद्रोह, सौन्दर्यवाद मन अवसाद, अलौकिक तत्व प्रतीत का काल्पनिक मनोरम चित्रण आदि आंग्ल रोमांटिक काव्य व हिन्दी छायावादी काव्य की समान विशेषताए हैं। मानसिक स्थिति की भिन्नता के कारण छायावादी कविता म अवसाद व वेदना का रग अधिक गहरा है तथा उसके स्वप्न अस्पष्ट व धूमिल हैं। छायावादी कविता के अन्तर्गत रहस्यवादी काव्य धारा पर जमन आध्यात्मवाद का प्रभाव विशेष रूप से पाया जाता है। प्राचीन रहस्यवाद व आधुनिक रहस्यवाद का भेद जीवन क प्रति दृष्टिकोण का है। प्राचीन रहस्यवाद सांसारिकता को ईश्वर प्राप्ति के माग म बाधक मानता था। जमन दार्शनिक हेगेल के आध्यात्मवाद के प्रभाव-स्वरूप परिवर्तनशील जगत् म परम सत्ता के व्यक्त सौन्य का दशन करना आधुनिक रहस्यवाद की प्रमुख विशेषता है। जमन दार्शनिक शापेनहार के दुखवादी दशन से छायावादी कविता मे वेदना प्रेम की समानता पायी जाती है। ईसाई सन्तो क आत्मा व परमात्मा के पत्नी पति सम्बन्ध की प्रतीको का छायावादी कविता म बहुलता से प्रयोग हुआ है तथा फ्रांसिसी प्रतीकवाद के प्रभाव से इसमे सागीतिकता व चित्रात्मकता का शलीगत समावेश हुआ है। छायावादी काव्य पर यद्यपि आंग्ल रोमांटिक काव्य का प्रभाव सीधा लक्षित होता है किन्तु उस पर अन्य विविध पाश्चात्य प्रभाव बगला कविता विशेषतया रवीन्द्रनाथ की कविता के माध्यम से प्रतिफलित हुए हैं।

छायावादी कविता म मूलत पाच प्रवतियां पायी जाती हैं (१) प्राचीन काव्य रूढ़ियो के प्रति विद्रोह (२) सौन्दय भावना (३) आध्यात्मिकता (४, वेदना प्रेम व निराशा तथा (५) नवीन भावनाए।

काव्य रूढ़ियो के प्रति विद्रोह विषय व शली दोनो रूपो म प्रकट हुआ है। रीतिकालीन शृ गारिकता नारी के बाह्य सौन्दय तक सीमित थी एव उसमें भाव सौन्दय के लिए स्थान नहीं था। इसके विपरीत छायावादी कविता म सभोग चित्रो का अभाव है तथा शृ गार भावना को पवित्र भाव स अभिप्लुत किया गया है। जयशंकर प्रसाद के 'प्रेम पथिक', 'प्रलय की छाया सुमित्रानन्दन पत के 'आसू', अनग व निराला की कविताओ म नारी के प्रति पवित्रता की भावना का दशन होता है। काव्य रूप की दृष्टि से द्विवेदी युग की प्रबन्ध काव्य पद्धति जिसम आख्यान वस्तु चरित्र सृष्टि व विचार गाम्भीय की प्रधानता थी स भिन्न छायावादी काव्य पद्धति गीतिपूर्ण है जो कवि के भावात्मक एव अन्तमु खी दृष्टिकोण को प्रकट करती है। प्रसाद की कामायनी' में प्रबन्ध शिथिलता इसी दृष्टिकोण का परिणाम है। छायावाद ने अभिव्यजना के नवीन प्रकारो को अपनाया जिनम सहज अभिव्यक्ति,

छंदों के बंधन से मुक्ति, सागीतिकता व चित्रात्मकता प्रमुख हैं। पंत, निराला व महादेवी की कविता में यह प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं। छायावादी कविता में नवीन सौन्दर्य भावना का समावेश हुआ है। इस युग की कविता में बाह्य-सौन्दर्य निरूपण के बदले अन्तमुखी सौन्दर्य चेतना प्रकृति व नारी के सौंदर्य अकन के रूप में व्यक्त हुई है।

छायावादी सौन्दर्य दृष्टि आंग्ल रोमांटिक काव्य के सौन्दर्य चित्रण से पूर्णत प्रभावित है। रोमांटिक कवियों की तरह यह कवि प्रकृति को स्वतन्त्र सजीव सत्ता के रूप में देखते हैं। प्रसाद की 'झरना' व 'किरण' पंत की 'प्रथम रश्मि', 'पंत प्रवेश में पावस' 'लहरों का गीत', निराला की 'बादल राग' आदि कविताओं में प्रकृति स्वतन्त्र सजीव रूप में चित्रित की गयी है। फ्रांसिसी दार्शनिक रूसो ने प्रकृति के सम्पर्क में रहनेवाले मनुष्यों पर प्रकृति के सुखद प्रभाव का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अंग्रेजी रोमांटिक कवि वर्ड्सवर्थ की कविता में प्रकृति सम्बन्धी यही विचारधारा व्यक्त हुई है। हिन्दी के छायावादी कवियों ने भी प्रकृति के साहचर्य से उठनेवाले भाव मन विचारों का उद्‌घाटन किया है। पंत की 'एक तारा' व नौका विहार' कविताओं में प्रकृति के मानव मन पर पड़नेवाले प्रभाव का चित्रण मिलता है निराला व महादेवी की कविता में प्रकृति के सौम्य प्रभाव का वर्णन है प्रसाद की 'कामायनी' में प्रकृति मानवता को सन्देश देती है, पंत व महादेवी में प्रकृति से शिक्षा-ग्रहण की प्रवृत्ति पायी जाती है। छायावादी कवि प्रकृति के साहचर्य से मानव मन पर पड़नेवाले प्रभाव को ही नहीं चित्रित करते वरन् वे प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करते हैं। पंत, महादेवी व नरेन्द्र की कविताओं में यह तादात्म्य भाव प्रमुख रूप से पाया जाता है। आंग्ल रोमांटिक कविता के प्रभाव से छायावादी कविता में प्रकृति के उग्र रूप का चित्रण भी हुआ यद्यपि यह प्रवृत्ति व्यापक नहीं है। प्रसाद की 'कामायनी' में कतिपय स्थलों पर पंत की 'परिवर्तन' नरेन्द्र की 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' आदि कविताओं में प्रकृति के उग्र रूप का चित्रण हुआ है। आंग्ल रोमांटिक उपन्यासकार वाल्टर स्काट के उपन्यासों की तरह छायावादी कविता में प्रकृति की वस्तुएं ऐतिहासिक अनुभवों को जगाती हैं। निराला व दिनकर की कविता में यह प्रवृत्ति पायी जाती है। कीट्स शेली स्विनबर्न प्रभृति आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह छायावादी कविता में प्रकृति चित्रण के रूपों में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से पायी जाती है। प्रसाद की 'झिकर' 'किरण', पंत की 'बादल' 'छाया' आदि सजीव गीतियों प्रसाद की 'कामायनी' के काम सर्ग में रजनी के चित्रण, प्रसाद के 'लहर' के गीतों, पंत के 'गुंजन' में 'चांदनी' व सन्ध्या के चित्रण निराला की 'जूही की कली', 'शेफालिका', 'सध्या सुन्दरी' महादेवी की 'वसंत रजनी', 'रश्मि' तथा घन कश-पाश', 'लय गीत मदिर

प्रमर' गीतों, नरेन्द्र शर्मा के 'प्रभात' प्रभृति कविताओं में प्रकृति [redacted] सुन्दर मानवी करण किया गया है। वर्डसवर्थ की कविता की तरह छायावादी कविता में प्रकृति के साहचर्य में रहनेवाले लोगों के सरल जीवन का सौन्दर्य अंकन किया गया है। पंत की 'ग्राम बाला' व नरेन्द्र की 'अन्नो' की पुत्री में वर्डसवर्थ की 'रीपर' की छाया भासित होती है।

छायावादी कवियों की सौन्दर्यानुभूति प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त नारी सौन्दर्य चित्रण के रूप में प्रधानतया व्यक्त हुई है। रीतिकालीन बाह्य-सौन्दर्य वर्णन के विपरीत छायावादी कविता में भाव-सौन्दर्य की प्रधानता पायी जाती है। नारी के बाह्य-सौन्दर्य के रूप में भी उसके मन सौन्दर्य की ही छायावादी कविता में अभि-व्यक्ति हुई है। छायावादी कवियों ने नारी के बाह्य-सौन्दर्य चित्रण में रीतिकालीन उपमानों का बहिष्कार कर आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह प्रकृति से उपमान ग्रहण किये हैं। प्रसाद की 'कामायनी' में श्रद्धा के सौन्दर्य चित्रण में प्रकृति से उप-मान ग्रहण की प्रवृत्ति के साथ सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रण मिलता है। पंत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में प्रकृति से उपमान ग्रहण किये गये हैं। प्रकृति नारी अंगों को सौन्दर्य प्रदान करती है तथा कभी प्रकृति नारी अंगों से सौन्दर्य ग्रहण करते हुए चित्रित की गयी है। इस कविता में नारी के ऐन्द्रिय सौन्दर्य का चित्रण भी हुआ है। वर्डसवर्थ, कीट्स व शैली के नारी सौन्दर्य चित्रण की विशेषताएं पंत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में सम्मिलित रूप में मिलती हैं। छायावादी कविता में नारी सौन्दर्य चित्रण की प्रवृत्ति आंग्ल रोमांटिक काव्य में नारी सौन्दर्य वर्णन से अत्यधिक प्रभावित है तथा कतिपय कविताओं यथा, पंत की 'मनग' व कीट्स की 'ओड टु माइके', इलाचन्द्र जोशी की 'विजनवती' व कीट्स की 'ला बेल डेम सा मर्सी', पंत की 'अप्सरा' व रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' एवं स्विनबर्न की 'एटलेण्टा इन केलीडोन' में अति निकट भाव साम्य मिलता है।

छायावाद की अन्तर्मुखी काव्य दृष्टि के कारण छायावादी कवि सामान्य जीवन की समस्याओं से ऊपर उठ कर स्वभावतः जीवन व जगत् के संबंध में सोचने लगता है जिससे उसमें आध्यात्मिकता व रहस्यात्मकता का समावेश हो जाता है। रवीन्द्रनाथ की कविताओं के माध्यम से छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रहस्यवादी काव्य धारा पर विविध पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुए जिनमें हेगेलियन आध्या-त्मवाद, आंग्ल रोमांटिक काव्य में प्रतिपादित बाल्य जीवन के प्रति पवित्रता का भाव, सर्वात्मवाद दर्शन तथा ईसाई संतों के दाम्पत्य प्रेम प्रतीक हैं। पंत की 'परिवर्तन' कविता में हेगेलियन आध्यात्मवाद के अनुसार परिवर्तन को ही नित्य सत्य, परम भाव को विश्व की प्राणभूत सत्ता तथा आत्म ज्ञान को सर्वोच्च ज्ञान दशा माना गया है। प्रसाद की 'कामायनी' में यद्यपि शैवागमों के अनुकूल विश्व में केवल

पंत की सत्ता स्वीकार की गयी है किन्तु, परिवर्त्तनमय जगत् की नित्यता में स्पष्ट विश्वास व सामाजिक दर्शन रूप में इस सिद्धान्त की मान्यता हेगेलीय दर्शन के अनुरूप प्रतीत होती है। हेगेलीय आध्यात्मवाद के प्रभाव में भारतीय विचारधारा के पुनर्जन्म सिद्धान्त की नवीन रूप में अभिव्यक्ति हुई है। हेगेलीय दर्शन में काल की अनन्तता का भाव जीवन व मृत्यु को नवीन सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है। पंत की "परिवर्तन" कविता में जीवन अनन्त काल के रूप में चित्रित किया गया है जिसमें मृत्यु व जीवन नेत्रोन्मीलन रूप में उद्भासित होते हैं। प्रसाद महादेवी व निराला के काव्य में मृत्यु का चित्रण प्राचीन रहस्यवादी कविता की तरह जीवन की निस्सारता सिद्ध करने के लिए नहीं वरन् क्षणिक जीवन व अनन्त काल की एकता को दर्शाने अत्यन्त मोहक रूप में किया गया है। आंग्ल रोमांटिक कवियों (वर्ड्सवर्थ व ब्लेक) तथा रवीन्द्रनाथ द्वारा चित्रित बालक के सरल जीवन में पवित्रता व स्वर्गिक ज्ञान की भावना के अनुरूप पंत की कविता में बालक के प्रति पवित्रता व स्वर्गिक भावना का आरोप मिलता है। आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह छायावादी कवियों ने भी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को साधन रूप में अपनाया है। अतः छायावादी कविता का दार्शनिक आधार सर्वात्मवाद है। पंत प्रकृति के व्यक्त प्रसार में आनन्द मग्न रहते हैं जब कि प्रसाद व महादेवी प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक समझते हैं। यह बाधा केवल सतह पर ही प्रतीत होती है और अतः प्रकृति रहस्यवादी की साधना का अंग बन कर उसे परोक्ष सत्ता का संकेत करती स्वयं साधना के भावों में रंगी चित्रित की गयी है। ईसाई रहस्यवादियों की तरह रहस्यवादी काव्य धारा में दाम्पत्य प्रेम के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। जीव व ब्रह्म के प्रणय सम्बन्ध की मधुर भावना परोक्ष प्रियतम के विरह की तीव्र अनुभूति विरह-वेदना में सांसारिक सुखों से ऊब कर सान्त्वना, मिलन की अंधेरी रात्रि का आह्वान एवं स्मृति, स्वप्न संकेत अभिसार मिलन उत्कण्ठा आदि प्रेम की नाना अनुभूतियों का प्रसाद महादेवी निराला पंत रामकुमार वर्मा की कविता में चित्रण हुआ है। महादेवी की कविता में विरह वेदना साधन न रह कर साध्य सी प्रतीत होती है तथा मिलन में भी उनकी व्यक्तित्व चेतना अत्यधिक सजग रहती है। रामकुमार वर्मा की कविता में भी व्यक्तित्व का अभिमान रहते हुए आध्यात्मिक मिलन की आनन्दानुभूति की आतुरता व्यक्त हुई है।

तथापि छायावादी काव्य में मंद अवसाद व निराशा का भाव प्रधानतः मिलता है जिसका कारण आध्यात्मिक दृष्टिकोण, वैयक्तिक निराशा भावना एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों के पराजय की अनुभूति है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण भौतिक जीवन की नश्वरता के चित्र महादेवी व रामकुमार वर्मा की कविता में उभर आये हैं। छायावादी कवि प्रसाद निराला, महादेवी आदि भौतिक जीवन की व्यथता से

भ्रमर' गीतो, नरेन्द्र शर्मा के 'आषाढ' प्रभृति कविताओ मे प्रकृति का सुन्दर मानवी करण किया गया है। वडसवर्थ की कविता की तरह छायावादी कविता में प्रकृति के साहचय मे रहनेवाले लोगो के सरल जीवन का सौ दय व्यक्त किया गया है। पत की 'चपक वाला' व नरेन्द्र को 'अल्मोड़े की युवती' मे वडसवथ की 'रीपर' की छाया भासित होती है।

छायावादी कवियों की सौन्दयवृत्ति प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त नारी सौन्दय चित्रण के रूप मे प्रधानतया व्यक्त हुई है। रीतिकालीन बाह्य सौन्दय वणन के विपरीत छायावादी कविता मे भाव-सौन्दय की प्रधानता पायी जाती है। नारी के बाह्य-सौन्दय के रूप म भी उसके अत सौदय की ही छायावादी कविता मे अभि व्यक्ति हुई है। छायावादी कवियो ने नारी के बाह्य सौन्दय चित्रण म रीतिकालीन उपमानो का बहिष्कार कर आंग्ल रोमांटिक कवियो की तरह प्रकृति से उपमान ग्रहण किये हैं। प्रसाद की 'कामायनी' मे श्रद्धा के सौन्दय चित्रण मे प्रकति से उप मान ग्रहण की प्रवत्ति के साथ सूक्ष्म सौ दय चित्रण मिलता है। पत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में प्रकृति से उपमान ग्रहण किये गये हैं, प्रकृति नारी अ गो को सौन्दय प्रदान करती है तथा कभी प्रकृति नारी अ गो से सौ दय ग्रहण करते हुए चित्रित की गयी है। इस कविता मे नारी के एन्द्रिय सौन्म्य का चित्रण भी हुआ है। वडसवथ, कीटस व शैली के नारी सौ दय चित्रण की विशेषताए पत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता मे समन्वित रूप मे मिलती हैं। छायावादी कविता मे नारी सौ दय चित्रण की प्रवत्ति आग्ल रोमांटिक काव्य म नारी सौन्दय वणन से अत्यधिक प्रभावित है तथा कतिपय कविताओं यथा, पत की 'अनग' व कीटस की 'ओड टु साइक' इलाचन्द जोशी की 'विजनवती' व कीटस की 'ला बेल डेम सा मर्सी', पत की 'अप्सरा' व रवीन्द्रनाथ की 'उवशी एव स्विनबन की एटलेण्टा इन केलीडोन' मे अति निकट भाव साम्य मिलता है।

छायावाद की अन्तमु खी काव्य दृष्टि के कारण छायावादी कवि सामान्य जीवन की समस्याओं से ऊपर उठ कर स्वभावत जीवन व जगत् के सबध म सोचने लगता है जिससे उसम आध्यात्मिकता व रहस्यात्मकता का समावश हो जाता है। रवीन्द्रनाथ की कविताओ के माध्यम से छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रहस्यवादी काव्य धारा पर विविध पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुए जिनम हृगेलियन आध्या त्मवाद, आग्ल रोमांटिक काव्य म प्रतिपादित बाल्य जीवन के प्रति पवित्रता का भाव, सर्वात्मवाद दशन तथा ईसाई सतों के दाम्पत्य प्रेम प्रतीक हैं। पत की 'परिवतन' कविता में हेगेलियन आध्यात्मवाद के अनुसार परिवतन का ही नित्य सत्य, परम सत्र को विश्व की प्राणभूत सत्ता तथा आत्म ज्ञान का सर्वोच्च ज्ञान-दशा माना गया है। प्रसाद की 'कामायनी' म यद्यपि शवागमों के अनुकूल विश्व में केवल

सत्य की सत्ता स्वीकार की गयी है किन्तु, परिवर्तनमय जगत् की नित्यता में सत्य विश्वास व सामाजिक दर्शन रूप में इस सिद्धांत की मान्यता हेगेलीय दर्शन के अनुरूप प्रतीत होती है। हेगेलीय आध्यात्मवाद के प्रकाश मे भारतीय विचार धारा के पुनर्जन्म सिद्धान्त की नवीन रूप मे अभिव्यक्ति हुई है। हेगेलीय दर्शन में ज्ञान की अनन्तता का भाव जीवन व मृत्यु को नवीन सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है। पंत की "परिवर्तन" कविता में जीवन अनन्त काल के रूप मे चित्रित किया गया है जिसमें मृत्यु व जीवन नवोन्मीलन रूप में उदभासित होते हैं। प्रसाद, महादेवी व निराला के काव्य म मृत्यु का चित्रण प्राचीन रहस्यवादी कविता क तरह जीवन की निस्सारता सिद्ध करने के लिए नहीं वरन् क्षणिक जीवन व अनन्त काल की एकता को दर्शाने अत्यन्त मोहक रूप में किया गया है। आंग्ल रोमांटिक कवियों (वर्डसवर्थ व ब्लेक) तथा रवीन्द्रनाथ द्वारा चित्रित बालक के सरस जीवन में पवित्रता व स्वर्गिक ज्ञान की भावना के अनुरूप पंत की कविता में बालक के प्रति पवित्रता व स्वर्गिक भावना का आरोप मिलता है। आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह छायावादी कवियों ने भी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को साधन रूप में अपनाया है। पंत छायावादी कविता का दार्शनिक आधार सर्वात्मवाद है। पंत प्रकृति के व्यापत प्रसार में आनन्द मग्न रहते हैं जब कि प्रसाद व महादेवी प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक समझते हैं। यह बाधा केवल सतह पर ही प्रतीत होती है और अततः प्रकृति रहस्यवादी की साधना का अंग बन कर उसे परम सत्ता का संकेत करती स्वयं साधना के भावों में रंगी चित्रित की गयी है। ईसाई रहस्यवादियों की तरह रहस्यवादी काव्य धारा में दाम्पत्य प्रेम के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। जीव व ब्रह्म के प्रणय सबंध की मधुर भावना, परोक्ष प्रियतम के विरह की तीव्र अनुभूति विरह-वेदना में सांसारिक सुखों से बढ़ कर सांत्वना, मिलन की अंधेरी रात्रि का आह्वान एवं स्मृति स्वप्न संकेत अभिसार मिलन-उत्कण्ठा आदि प्रेम की नाना अनुभूतियों का प्रसार महादेवी निराला पंत रामकुमार वर्मा की कविता मे चित्रण हुआ है। महादेवी की कविता म विरह वेदना साधन न रह कर साध्य सी प्रतीत होती है तथा मिलन में भी उनकी व्यक्तित्व चेतना अव्याहत सजग रहती है। रामकुमार वर्मा की कविता में भी व्यक्तित्व का अभिमान रहते हुए आध्यात्मिक मिलन की आनन्दानुभूति की अभिव्यक्ति व्यक्त हुई है।

यद्यपि छायावादी काव्य में मद अवसाद व निराशा का भाव प्रधानतः मिलता है जिसका कारण आध्यात्मिक दृष्टिकोण वैयक्तिक निराशा भावना एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के पराजय की अनुभूति है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण भौतिक जीवन की नश्वरता के चित्र महादेवी व रामकुमार वर्मा की कविता में उभर कर हैं। छायावादी कवि प्रसाद निराला, महादेवी आदि भौतिक जीवन की व्यर्थता

जाता है उसमे इतिहास की विकासमान प्रक्रिया में व्यक्ति की देन को समुचित रूप मे स्वीकार नहीं किया जाता एवं कभी सिद्धान्त व प्रयोजन व्यक्तित्व चेतना को कुण्ठित कर देते हैं। यशपाल के 'दादा कामरेड' व 'मनुष्य के रूप' तथा अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास, अज्ञेय व नरेन्द्र की कविताओं में व्यक्तित्व चेतना व सामाजिक विचारधारा का संघर्ष मुखर है। वैयक्तिक अनुभूति के प्रकाशन की आवश्यकता के साथ मनोवैज्ञानिक चित्रण का प्रश्न स्वभावतः सबद्ध है। समाज की आर्थिक व्यवस्था के संबंध में मौन रहने के कारण प्रगतिवादी प्रायः फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के विरोधी हैं। प्रगतिवादियों का एक वर्ग मार्क्स व फ्रायड के विचारों को मिलाने का पक्षपाती है और उनकी कविता में यौन प्रतीकों व सामाजिक न्याय की माँग साथ साथ प्रकट होती है। सामाजिक दायित्व के प्रति अतिशय जागरूकता के कारण कुछ कवि अपनी रोमांटिक प्रवृत्ति के प्रति अपनी आत्मा को दोषी मान बैठते हैं। फ्रायड की विचारधारा का विरोध करने पर भी प्रगतिवादियों पर उसका दो रूपों में प्रभाव पड़ा है। प्रथमतः फ्रायड के समान प्रगतिवादियों ने यौन-नैतिकता का विरोध कर काम वासना को सहज प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। यशपाल ने 'दादा कामरेड' में यौन सम्बन्धों की स्वच्छन्दता व गर्भ निवारण की आवश्यकता को भी दर्शाया है। द्वितीयतः प्रगतिवादी साहित्य में यौन विकृतियों का अधिक चित्रण हुआ है तथा नारी के प्रति सहज स्वाभाविक स्वस्थ सतुलित भाव नहीं पाया जाता। जहाँ नारी को क्रान्ति पथ की राही व स्वयं क्रान्तिस्वरूपा चित्रित किया गया है वहाँ वासनात्मक उद्‌गार, यौन प्रतीक व स्पष्ट अश्लील चित्रण भी प्रगतिवादी साहित्य में सहज प्राप्य हैं।

काडवेल के समान प्रगतिवादियों की दृष्टि में सामाजिक (आर्थिक) सघर्षों का भावात्मक पहलू ही प्रेम है। प्रेम का कोई शाश्वत रूप नहीं है तथा उसका आधार आर्थिक है। यशपाल के 'दादा-कामरेड, देशद्रोही', मनुष्य के रूप' प्रभृति उपन्यासों में प्रेम का आधार आर्थिक दर्शाया गया है। आत्म निर्भर प्रेम ही सच्चा प्रेम है जिसमें आश्रय की माँग न हो।

प्रगतिवादियों की दृष्टि में ईश्वर व धर्म सबंधी प्रचलित मान्यताएं आर्थिक वैषम्यपूर्ण समाज को बनाए रखनेवाली साधन हैं अतः प्रगतिवादी साहित्यकार इनका खण्डन करता है। अंचल, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', केदारनाथ अग्रवाल प्रभृति कवियों की कविताओं में तथा प्रेमचन्द के 'गोदान' व यशपाल के 'दादा कामरेड' उपन्यास में अनीश्वरवाद में आस्था तथा रूढ़िगत धार्मिक विश्वासों का विरोध व्यक्त हुआ है। प्रेमचन्द व यशपाल मनुष्य की सद्‌वृत्तियों में विश्वास रखते हैं तथा धर्म निरपेक्ष नैतिकता का प्रतिपादन करते हैं।

छायावादी कविता के सौन्दर्याभास के विरुद्ध प्रगतिवादी साहित्य मे वस्तुपरक सत्य की माग प्रकट हुई है। पत, दिनकर, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र की कविताओ म छायावादी कल्पना विलासिता का विरोध व नित्य प्रति जीवन की वास्तविक समस्याओं के दर्शन की स्पष्ट आवश्यकता बतलायी गई है। सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्तन प्रगतिवादी साहित्य रचना का ध्येय है अत उसमे समाज की प्रचलित मान्यताओ के प्रति आक्रोश पाया जाता है एव उन्हें ढहते हुए रूप म चित्रित किया गया है। पूजीवादी व्यवस्था मे सदाचार, सभ्यता, शिक्षा, न्याय कला, आदि का रूप गर्हित तथा शोषण व्यवस्था को बनाये रखनेवाला है। प्रगतिवादी इन निष्ठाओ का मूल्याकन जनहित के आधार पर करता है। पत, निराला दिनकर प्रेमचन्द प्रभाकर माचवे आदि ने आधुनिक सभ्यता पर व्यग्य किये हैं, प्रेमचन्द, अज्ञेय व रामविलास शर्मा आधुनिक शिक्षा को जनहित की दृष्टि से हेय दर्शाते हैं। प्रेमचन्द व यशपाल पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मिलनेवाले कानून व न्याय को इस व्यवस्था की रक्षा के लिए निर्मित ढोंग दर्शाते हैं। प्रेमचन्द, यशपाल अज्ञेय उपेन्द्रनाथ अश्क, भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती की दृष्टि मे पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत कलाकार का अस्तित्व स्वतन्त्र नहीं रहता, कला पूजी के हाथो बिक जाती है। अत सभ्यता व सस्कृति की रक्षार्थ वे पूजीवादी व्यवस्था का अन्त चाहते हैं।

मार्क्सवादी जीवन-दर्शन अपनाने के कारण प्रगतिवादी वर्तमान मानव समाज को पूजीवादी वर्ग व सर्वहारा वर्ग म विभाजित देखते हैं तथा उनके अनुसार यह दोनो वर्ग सतत सघर्ष मे लीन हैं एव पूजीपति वर्ग को नष्ट कर वर्गहीन समाज की स्थापना करना उनका लक्ष्य है। समाज मे व्याप्त वर्ग सघर्ष म प्रगतिवादियों की सहानुभूति सर्वहारा वर्ग के प्रति रहती है। यद्यपि हिन्दी के बहुत से साहित्यकारो ने दलित व सर्वहारा के प्रति सहानुभूति प्रकट की किन्तु, छायावाद के प्रतिक्रिया रूप म केवल 'सौन्दर्य-पूजा' के भाव से हट सामाजिक न्याय की माग के आन्दोलन रूप में प्रारम्भ होकर प्रगतिवाद निश्चित सैद्धान्तिक मतवाद म परिणत हो गया एव इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग सघर्ष साम्यवादी व्यवस्था में विश्वास आदि सैद्धान्तिक मान्यताए प्रगतिवाद के प्रमुख लक्षण स्वीकार किये गए। प्रेमचन्द के 'गोदान' म आभास रूप म तथा यशपाल के उपन्यासो म स्पष्टत वर्ग सघर्ष की सत्यता को प्रतिपादित किया गया। यशपाल के उपन्यासो के पात्र स्वय भी वर्ग-सघर्ष की चेतना के प्रति जागरूक चित्रित किय गए हैं। पत निराला भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताओं में पूजीवादी व्यवस्था को निष्प्रयोजन शोषक, विभेदक व प्रवचक माना गया है।

पूजीवादी व्यवस्था म किसानों व मजदूरों का सर्वाधिक आर्थिक शोषण

व जीवन सुविधाओं के प्रति कठोर नहीं बनने देना चाहते । 'त्याग पत्र' में गेस्टाल्ट वादी मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नवीन मूल्य सत्वों की खोज का प्रयत्न लक्षित होता है । जीवन को समग्र रूप में देखा गया है तथा जो संस्थाएं व नियम स्वाभाविक जीवन विकास में बाधक हों उन्हें खण्डित कर स्वाभाविक जीवन को प्रवहमान बनाने की प्रेरणा दी गयी है । कलईवाले सदाचार का विरोध किया गया है । बाहर व भीतर समग्र सच्चाई की आवश्यकता बतलायी गयी है एवं इस रूप में विवाह बंधन धन संचय की प्रवृत्ति को आदर्श सामाजिक संगठन के गत्यात्मक चुनाव में अवरेण्य बताया गया है । अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में इलाचन्द जोशी की 'पर्दे की रानी' उपन्यास में विवाह संस्था की आड़ में व्यक्ति के मन की दुष्प्रवृत्ति के पोषण पर व्यंग्य किया गया है । अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में वैवाहिक जीवन की एकरसता, व उसके आधार के सूनेपन का निर्देशन हुआ है । डा० देवराज 'पथ की खोज' में विवाह को उच्चादर्श की खोज या प्राप्ति का साधन न मान काम वासना का क्रीड़ा क्षेत्र अथवा प्रजनन यंत्र मात्र बतलाते हैं तथा उसे ही हिन्दू विवाह की सफलता का कारण ठहराते हैं ।

हिन्दी के उपन्यासों में 'शेखर एक जीवनी' प्रथम भाग में बाल-मन का चित्रण किया गया है जिसका आधार आधुनिक मनोविज्ञान की सामग्री है । अज्ञेय ने इस उपन्यास में बाल-मन के अध्ययन के महत्व को दर्शाया है । वे बच्चों के व्यक्तित्व के स्वाभाविक व स्वतन्त्र विकास के पक्षपाती हैं तथा बच्चों के प्रति उदासीन रहने व उन्हें अबोध समझ उनके सामने अकरणीय हरकतें कर जाने की प्रवृत्ति को घातक ठहराते हैं । आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुकूल अज्ञेय ने शिशु-मन पर जन्म के अवसर एवं मानव विकास की परम्परा में पड़नेवाले प्रभावों का उल्लेख किया है । अहं, सेक्स व भय की मूल प्रवृत्तियों को शेखर के व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्शाया गया है एवं शेखर के बाल-जीवन व युवाकाल में इन्हीं प्रवृत्तियों के मिश्रित प्रभावों से उसके व्यक्तित्व का गठन हुआ है । 'शेखर एक जीवनी' में वय संधि अवस्था के मनोविज्ञान का भी चित्रण किया गया है । वय संधि काल के विद्रोह भाव, आत्म केन्द्रगामिता, शारीरिक परिवर्तनों का भान, विजातीय रति एवं व्यक्ति मात्र के प्रति घृणा व विद्वेष-काल के प्रेम को शेखर के वयः संधि काल के चित्रण में मनोवैज्ञानिक रूप में अभिव्यंजित किया गया है । मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुरूप शेखर के व्यक्तित्व में उसके परिवार के लोगों व परिवेश का महत्वपूर्ण योग रहा है । पिता के प्रभाव से उसमें जीवन के प्रति आदर भाव माता के प्रभाव से विद्रोह भावना, परिवार के वातावरण में जिज्ञासाओं के शान्त न हो पाने के कारण तीव्र बौद्धिकता एवं प्रकृति के साहचर्य तथा सरस्वती, शारदा व शशि के सम्पर्क में रहने से सौन्दर्य चेतना जागृत हुई है ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में शिष्ट शारीरिक दूरी बनाए रखते हुए भाई के बहिन के प्रति आकर्षण का चित्रित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिसे रति भाव की संज्ञा दी जा सकती है। इलाचन्द के 'घृणामयी', अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' डा० देवराज के 'पथ की खोज' में बहिन के रति भाव का चित्रण किया गया है जिसे मनोविश्लेषण सिद्धान्त के आधार पर समझना कठिन नहीं है।

द्वितीय महायुद्ध के समय पश्चिम में लोकप्रिय अस्तित्ववाद की विचारधारा व मनोविज्ञान का अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास में चित्रण हुआ है। नदी के द्वीप' में अस्तित्ववाद के अनुकूल व्यक्ति के अकेलेपन व केवल अपने प्रति उत्तरदायी होने, निरन्तर वरण की अनिवार्यता, वरण के सही होने का अनिश्चय, व्यक्ति व्यक्ति के पूर्ण सान्निध्य की असम्भाव्यता एवं तद्जनित जीवन से ऊब का वर्णन किया गया है एवं सम्कृति की रक्षा व व्यक्ति स्वातन्त्र्य की समस्या को अस्तित्ववाद की विचारधारा के आलोक में समझा गया है। इलाचन्द के उपन्यासों में मानसिक ग्रन्थियों का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। आधुनिक उपन्यासों व कविता में प्रेम के क्षेत्र में स्त्री व पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण मिलता है जिस पर डी एच लारेंस का प्रभाव है। मानसिक ग्रन्थियों के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं यथा प्रक्षेपण, आरोपण सांकेतिक चेष्टाएं, अकारण भय स्वप्न आदि का यत्र-तत्र वर्णन किया गया है। मनोविश्लेषण विचारधारा के कारण आधुनिक साहित्य में यौनीगत व्यापक प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ जिससे प्रतीकात्मकता, मुक्त-आसंग व अन्तर्द्वन्द्विमय व्याख्या की प्रधानता हो गयी है।

अस्तु हमारे साहित्य पर पाश्चात्य विचारधाराओं का गहरा प्रभाव प्रतिफलित हुआ है और विषय व शैली दोनों दृष्टि से आधुनिक साहित्य परिवर्तन दिखाई देता है। पाश्चात्य विचारधाराओं को अपनाना कहां तक हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी है यह तो इतने से ही स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य की विविधता उन विचारधाराओं के परिणाम की ही द्योतक है। साहित्य में स्थायी रूप केवल वे ही विचारधाराएं पा सकती हैं जिनका मानव जीवन के विकास के लिए भी कोई उपयोग रहा हो। किसी विचारधारा के उपयोग के नष्ट होने पर वह अनुकरणीय नहीं रहती। इस दृष्टि से पाश्चात्य विचारधाराओं का अनुकरण मात्र श्लाघनीय नहीं यद्यपि उनका गहरा परिचय हमारे अपने विचार-निर्माण के लिए आवश्यक है क्योंकि विचारों की दुनिया में दीवारें नहीं होतीं। आधुनिक विचारधारा की श्रेष्ठता की कसौटी मानवी गरिमा की स्थापना है और मानव-स्वातन्त्र्य की खोज आधुनिक साहित्य का केन्द्र है। मानव जीवन के प्रस्फुटन में सहयोगी होनेवाली विचारधाराएं हमारे साहित्य की समृद्धि में भी सहायक होंगी।

व जीवन सुविधाओं के प्रति कठोर नहीं बनने देना चाहते । 'त्याग पत्र' में गैस्टाल्ट वादी मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नवीन मूल्य सत्यों की खोज का प्रयत्न लक्षित होता है । जीवन को समग्र रूप में देखा गया है तथा जो संस्थाएं व नियम स्वाभाविक जीवन विकास में बाधक हों उन्हें खण्डित कर स्वाभाविक जीवन को प्रवहमान बनाने की प्रेरणा दी गयी है । कलईवाले सदाचार का विरोध किया गया है । बाहर व भीतर समग्र सच्चाई की आवश्यकता बतलायी गयी है एवं इस रूप में विवाह बंधन धन संचय की प्रवृत्ति का आदेश सामाजिक संगठन के गत्यात्मक चुनाव में अवरेण्य बताया गया है । अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में इलाचन्द जोशी की 'पर्दे की रानी' उपन्यास में विवाह संस्था की आड़ में व्यक्ति के मन की दुष्प्रवृत्ति के पोषण पर व्यंग्य किया गया है । अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में वैवाहिक जीवन की एकरसता, व उसके आधार के सूनेपन का निर्देशन हुआ है । डा० देवराज 'पथ की खोज' में विवाह को उच्चादर्श की खोज या प्राप्ति का साधन न मान काम वासना का क्रीड़ा क्षेत्र अथवा प्रजनन यंत्र मात्र बतलाते हैं तथा उसे ही हिन्दू विवाह की सफलता का कारण ठहराते हैं ।

हिन्दी के उपन्यासों में 'शेखर एक जीवनी' प्रथम भाग में बाल मन का चित्रण किया गया है जिसका आधार आधुनिक मनोविज्ञान की सामग्री है । अज्ञेय ने इस उपन्यास में बाल-मन के अध्ययन के महत्व को दर्शाया है । वे बच्चों के व्यक्तित्व के स्वाभाविक व स्वतंत्र विकास के पक्षपाती हैं तथा बच्चों के प्रति उदासीन रहने व उन्हें अबोध समझ उनके सामने अकरणीय हरकतें कर जाने की प्रवृत्ति को घातक ठहराते हैं । आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुरूप अज्ञेय ने शिशु मन पर जन्म के अवसर एवं मानव विकास की परम्परा में पड़नेवाले प्रभावों का उल्लेख किया है । अहं, सेक्स व भय की मूल प्रवृत्तियों को शेखर के व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्शाया गया है एवं शेखर के बाल-जीवन व युवाकाल में इन्हीं प्रवृत्तियों के मिश्रित प्रभावों से उसके व्यक्तित्व का गठन हुआ है । 'शेखर एक जीवनी' में वय संधि अवस्था के मनोविज्ञान का भी चित्रण किया गया है । वय संधि काल के विद्रोह भाव, आत्म केन्द्रोन्मुखगामिता, शारीरिक परिवर्तनों का भान, विजातीय रति एवं व्यक्ति मात्र के प्रति घृणा व किशोर-काल के प्रेम को शेखर के वयः संधि काल के चित्रण में मनोवैज्ञानिक रूप में अभिव्यक्ति किया गया है । मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुरूप शेखर के व्यक्तित्व में उसके परिवार के लोगों व परिवेश का महत्वपूर्ण योग रहा है । पिता के प्रभाव से उसमें जीवन के प्रति आदर भाव माता के प्रभाव से विद्रोह भावना, परिवार के वातावरण में जिज्ञासाओं के शान्त न हो पाने के कारण तीव्र बौद्धिकता एवं प्रकृति के साहचर्य तथा सरस्वती, शारदा व शशि के सम्पर्क में रहने से सौन्दर्य चेतना जागृत हुई है ।

आधुनिक मना नैतिक उपन्यासों में शिष्ट शारीरिक दूरी बनाए रखते हुए भाई के बहिन के प्रति आकर्षण को चित्रित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिसे रति भाव की सना दी जा सकती है। इलाचन्द के 'घृणामयी', अज्ञेय के शेखर एक जीवनी' डा० देवराज के 'पथ की खोज' में बहिन के रति भाव का चित्रण किया गया है जिसे मनोविश्लेषण सिद्धान्त के आधार पर समझना कठिन नहीं है।

द्वितीय महायुद्ध के समय पश्चिम में लोकप्रिय अस्तित्ववाद की विचारधारा व मनोविज्ञान का अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास में चित्रण हुआ है। नदी के द्वीप' में अस्तित्ववाद के अनुकूल व्यक्ति के अकेलेपन व केवल अपने प्रति उत्तरदायी होने, निरंतर वरण की अनिवार्यता, वरण के सही होने का अनिश्चय, व्यक्ति व्यक्ति के पूर्ण सान्निध्य की असम्भाव्यता एवं तद्जनित जीवन से ऊब का वर्णन किया गया है एवं संस्कृति की रक्षा व व्यक्ति स्वातन्त्र्य की समस्या को अस्तित्ववाद की विचारधारा के आलोक में समझा गया है। इलाचन्द के उपन्यासों में मानसिक ग्रन्थियों का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। आधुनिक उपन्यासों व कविता में प्रेम के क्षेत्र में स्त्री व पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण मिलता है जिस पर डी एच लारेंस का प्रभाव है। मानसिक ग्रन्थियों के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं यथा प्रक्षेपण, आरोपण साकेतिक चेष्टाएं, अकारण भय स्वप्न आदि का यत्र-तत्र वर्णन किया गया है। मनोविश्लेषण विचारधारा के कारण आधुनिक साहित्य में शैलीगत व्यापक प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ जिससे प्रतीकात्मकता मुक्त-आसंग व अन्तर्दृष्टिमय व्याख्या की प्रधानता हो गयी है।

अस्तु हमारे साहित्य पर पाश्चात्य विचारधाराओं का गहरा प्रभाव प्रतिफलित हुआ है और विषय व शैली दोनों दृष्टि से आधुनिक साहित्य परिवर्तित दिखाई देता है। पाश्चात्य विचारधाराओं को अपनाना कहां तक हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी है यह तो इतने से ही स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य की विविधता उन विचारधाराओं के परिणाम की ही द्योतक है। साहित्य में स्थायी रूप केवल वे ही विचारधाराएं पा सकती हैं जिनका मानव जीवन के विकास के लिए भी कोई उपयोग रहा हो। किसी विचारधारा के उपयोग के नष्ट होने पर वह अनुकरणीय नहीं रहती। इस दृष्टि से पाश्चात्य विचारधाराओं का अनुकरण मात्र श्लाघनीय नहीं यद्यपि उनका गहरा परिचय हमारे अपने विचार-निर्माण के लिए आवश्यक है क्योंकि विचारों की दुनिया में दीवारें नहीं होतीं। आधुनिक विचारधारा की श्रेष्ठता की कसौटी मानवी गरिमा की स्थापना है और मानव स्वातन्त्र्य की खोज आधुनिक साहित्य का केन्द्र है। मानव जीवन के प्रस्फुटन में सहयोगी होनेवाली विचारधाराएं हमारे साहित्य की समृद्धि में भी सहायक होंगी।

कोई एक विचारधारा फिर चाहे वह राष्ट्रीयता हो या मानववाद, मार्क्सवाद हो या मनोविश्लेषण सिद्धान्त मतपरकता का आग्रह लेकर साहित्य में मान्य नहीं हो सकती। हमारे साहित्य की जड़ें जीवन में गहरी होनी चाहिए। वस्तुतः जीवन का वृक्ष सदैव हरा भरा रहता है। युग विशेष में प्रचलित विचारधारा उन पत्तों की तरह होती है जो वसंत में खिल कर पतझड़ में मुर्झा जाते हैं। अतः किसी एक विचार-धारा को सम्पूर्ण मानने के बदले मानव हित को केन्द्र मानकर उन विचारधाराओं के उपयोगी तत्त्वों को आत्मसात् करना ही साहित्य व साहित्यकार की महत्ता घोषित करते हैं।